भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य शिल्प

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
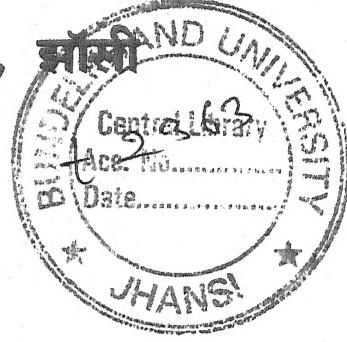
शोध (पी-एच०डी०) उपाधि हेतु हिन्दी विषय
में प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2006

निर्देशक
डा० महाबीर सिंह
रीडर हिन्दी विभाग
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा

शोध छात्रा
श्रीमती गरिमा द्विवेदी

शोध केन्द्र

"अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा (बाँदा)"

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
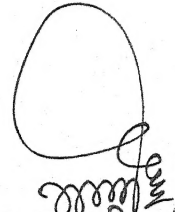
डा० महाबीर सिंह
रीडर हिन्दी विभाग
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती गरिमा द्विवेदी ने मेरे निर्देश में ''भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य शिल्प'' शीर्षक शोध प्रबन्ध लिखा है। इन्होंने विश्वविद्यालय परिनियमावली में दिये गये प्रावधानों के अन्तर्गत दो सौ से अधिक दिन रहकर यह कार्य पूर्ण किया है। यह इनका मौलिक शोध प्रबन्ध है। जिसे मैं बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

डा० महाबीर सिंह
रीडर हिन्दी विभाग
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा

आभार प्रदर्शन

इस शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करने में डॉ0 महावीर सिंह रीडर, हिन्दी विभाग अतर्रा महाविद्यालय अतर्रा का अर्थ से इति तक मार्गदर्शन, दिशा–निर्देशन सहजता और अपनत्व के साथ के साथ मुझे प्राप्त हुआ मैं उनको सादर नमन करती हूँ।

मेरे बड़े पापा श्री ए0एन0 द्विवेदी, कर्मनिष्ठ ईमानदार न्यायाधीश रहे। वास्तव में उनका जीवन 'बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय' के रूप में मैनें देखा है, इस शोध प्रबन्ध के मूल प्रेरणा स्रोत वही रहे जिनकों मैं इन पंक्तियों के साथ सादर प्रणाम करती है–

आपके दुआओं वाले हाथ, हमारे सिर पर रहें।

हम आपकी छाया में ही नित–प्रति सोपान चढ़ें।

मेरे पापा श्री सत्यनारायण द्विवेदी ईमानदार शासकीय अधिवक्ता है, क्रियाशील है, विपत्तिधैर्यम् के प्रतीक है उनकी अन्तस् से आकाँक्षा थी कि यह शोध प्रबन्ध शीघ्रता से प्रस्तुत हो उनकों इन पंक्तियों के साथ प्रणाम करती हूँ–

'रजनीगंधा ज्यो झरे ऐसे मीठे बोल।

मेधदूत के छंद–सा हर अक्षर अनमोल।''

यह शोधकार्य चल ही रहा था कि मैं यमक शिशुओं की सद्यः प्रसूता प्रसवा बनी, सघन चिकित्सा प्रारम्भ हुयी मेरे मातायें द्वय श्रीमती गीता द्विवेदी श्रीमती कमला द्विवेदी, यदि सम्बल नहीं देती तो यह शोधकार्य अधूरा ही रहता। इन दोनों को मैं इन पंक्तियों के साथ सादर प्रणाम करती हूँ–

'व्योम चमत्कृत है उनके अनुबंधों से।

आगॅन अभी भी महक रहा है सुयश सुगंधों से।'

शास्त्र सम्मत है कि ज्येष्ठ का नाम लेना वर्जित है। मेरे वरिष्ट ज्येष्ठ निष्णात हिन्दी अधिकारी विद्वान जिनकी वाणी शोध की रसधारा, प्रगल्भता है, विदग्धता है। वे वरिष्ठ हिन्दी विभागाध्यक्ष है शोध का अक्षरारम्भ तो उन्होनें ही कराया। उनके विद्वान अनुज जो स्वयं पी–एच0डी0, डी0लिट0 उपाधियों से विभूषित अन्तरम भी गहराइयों से सदृश्य, ईमानदारी,

संकोची तथा शिष्ट है और संपूर्ति में इंटर कालेज के प्राचार्य (प्रिसंपल) हैं की मैं अत्यंत कृतज्ञ हूँ जिन्होनें समय–समय पर मेरा उत्साहवर्धन किया। ज्येष्ठ द्वय इस को मैं इन पंक्तियों के साथ प्रणाम करती हूँ–

'हर पत्थर की तकदीर बदल सकती है।
शर्त यह है कि उसे करीने से सवाराँ जाये।'

इस शोध प्रबंध की सामग्री जुटाने टंकित कराने में चि0 संदीप सिंह जो सद्यः विद्या–वाहित की उपाधि से विभूषित होने वाले हैं तथा चि0 पवनतनय द्विवेदी एवं चि0 पुष्कर द्विवेदी ने जो अथक परिश्रम किया उन्हे मैं अपने अन्तस से उनके मंगलमय भविष्य के लिये शुभ कामनायें आर्शीवाद के रूप निम्न पंक्तियों के माध्यम से देती हूँ–

''जहाँ भी रहें आफ़ताब बन के रहें।
काँटों के बीच गुलाब बन के रहें।
जिंदगी में कहीं आ जाये अगर तपन।
है मेरी आरजू कि मलय बयार बन के रहें।''

और अन्त में श्री प्रिन्टर्स, बाँदा के प्रोपाइटर श्रीकान्त शुक्ल नें जिस तत्परता, शीघ्रता, तल्लीनता, त्रुटिविहीन शोध प्रबंध टंकित किया उनके प्रति आभार प्रदर्शन–
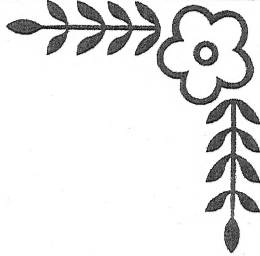
शोधकर्त्री

गरिमा द्विवेदी
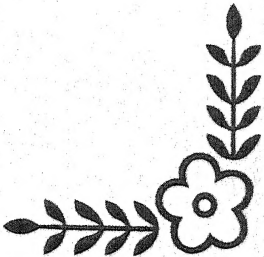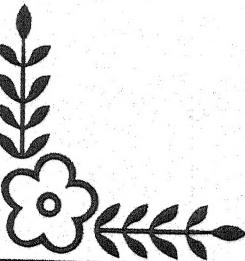
श्रीमती गरिमा द्विवेदी

विषय-सूची

प्रथम-अध्याय

अध्याय–प्रथम
आधुनिक काव्य यात्रा

(क) आधुनिक युगीन परिस्थितियाँ

काल अखण्ड है, वह अनंत काल से बहता आया है और आगे भी बहता रहेगा। ज्यो–ज्यों काल चक्र चलता रहता है त्यों–त्यों मानवी जीवन की स्थितियाँ भी उनके साथ परिवर्तित होती रहती है। यह परिवर्तन गतिशीलता का द्योतक है। परिवर्तन से मानवी जीवन में नूतनता उभरती है। व्यक्ति की जिज्ञासा मूलक वृत्ति पुरातनता को छोड़कर नूतनता के प्रति आकर्षित होती है। आधुनिक भारतीय व्यक्ति भी इसके लिए अपवाद नही हैं। आजादी के पहले तथा बाद में भारत की सारी स्थितियों में उथल–पुथल हुई, उसने संवेदनशील मन को प्रभावित किया। श्री भवानी प्रसाद मिश्र पर विस्तृत चर्चा करने से पूर्व यह अनिवार्य हो जाता है कि आधुनिक युगीन परिस्थितियों का विहगावलोकन किया जाय।

1. राजनीतिक परिस्थिति :–

लम्बे अरसे की दासता के उपरान्त 15 अगस्त 1947 को भारत को आजादी प्राप्त हुई। आजादी के बाद भारतीय संविधान लागू होने पर देशवासी भविष्य के प्रति आशान्वित हुए कि उन्हें अपने व्यक्त्वि विकास का तथा समृद्ध जीवन–यापन का सुअवसर प्राप्त होगा। हर एक को निष्पक्ष भाव से उन्नति करने का अवसर मिलेगा और अपने इस अधिकार का अपहरण करने पर उसे उचित न्याय मिलेगा। आजादी की प्राप्ति के आरम्भ से ही भारत सरकार द्वारा भारतीयों के जीवन को सुखी, सुरक्षित एवं समृद्ध बनाने के लिए अनेक प्रयास किये जाने लगे। पंचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वित किया गया। जमींदारी उन्मूलन न्यूनतम वेतन अधिनियम, अस्पृश्यता अधिनियम बनाकर देशवासियों के उत्थान के लिए शैक्षिक सुविधा, स्वास्थ्य विषयक सुविधा की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। परन्तु इन प्रयासों के साथ–साथ कुछ गतिरोध भी आए, जिससे विकास के मार्ग में बधाएँ उत्पन्न हुई। आजादी के बाद सन् 1952 से आगे हर चुनाव में बहुत–सा रुपया व्यय होने लगा। नेता लोग देश–सेवा, देश उन्नति के बदले चुनाव जीत लेने में अत्यधिक रुचि लेने लगे। सन् 1965 में हुए पाकिस्तानी आक्रमण से देश की आर्थिक स्थिति पर भी आघात हुआ। फलतः सामाजिक जीवन का विकास नहीं हो पाया। राजनीतिक स्तर पर हुए नैतिकता के ह्रास ने भ्रष्टाचार, शोषण, स्वार्थ जैसी प्रवृत्तियों को जन्म दिया। प्रजातंत्र के नाम पर प्रजा शोषण आरम्भ हुआ।

आजादी के बाद का राजनीतिक परिवेश देखकर लगने लगा कि जन–मानस की स्वतंत्रता पूर्व की आकाँक्षाएँ कुचलती जा रही है। आजादी तो मिली परन्तु उसके भोग का अधिकार राजनेताओं, पूजीपतियों और नौकर शाहों ने अपने लिए सुरक्षित कर लिया और जनता के उत्थान के नाम पर शोषण दुष्चक्र चलाकर मानवीय जीवन–खोखला कर दिया। इसका मूलकारण यह था कि भारत की शासन व्यवस्था बदल चुकी थी। रक्षक ही भक्षक बन गये, शोषण की प्रक्रिया तीव्र से तीव्रतम हो गयी। आजादी के पश्चात् भ्रष्टाचार, रिश्वत, अवसरवादिता, स्वार्थपरता आदि राजनीति के अभिन्न अंग बन गये। स्वाभाविक अर्थ से देश में लोकतंत्र का नही तंत्रलोक का उदय हुआ। राजनीतिज्ञों का प्रमुख लक्ष्य लोगों की सेवा न रह कर सत्ता को सुरक्षित रखना हो गया। जनकल्याणकारी योजना के नाम पर नेताओं ने स्वयं–कल्याणकारी योजनाएँ बना ली। कल्याणकारी योजनाए लोगों तक पहुँच नही पायी, फलतः आम आदमी अत्यन्त दीन होकर दम तोड़ता हुआ दिखाई देने लगा।

2. सामाजिक परिवेश :–

स्वतंत्रता के पश्चात का भारतीय समाज अपने पूर्ववर्ती समाज से अलग है। शिक्षा का प्रसार, सुधारवादी आंदोलन, पाश्चात्य संस्कृति से सम्पर्क, आधुनिक चिन्तन धारा, औद्योगिक क्रान्ति, वैज्ञानिक प्रगति आदि के कारण एक नया समाज सामने आया। शिक्षा तथा नये विचारों के प्रचार–प्रसार ने युवा पीढ़ी को प्राचीन रूढ़ियों और परम्पराओं के प्रति विद्रोह के लिए प्रेरित किया। इस पीढ़ी को लगने लगा कि परम्परागत मूल्य और आदर्श उसकी समस्याओं का समाधान करने में असमर्थ है। उसकी दृष्टि में परम्परा, रीति–रिवाज आदर्श आदि निरर्थक है।

शिक्षा के व्यापक प्रसार ने समाज में स्थित वैवाहिक जीवन की रूढ़ मान्यताएँ और परम्परागत बंधन शिथिल कर दिए हैं। अब प्रेम विवाह अंतर्जातीय विवाह, विधवा विवाह होने लगे। शिक्षा की सुविधा ने नारी का नया रूप प्रस्तुत किया। स्वतंत्र भारत में स्त्रियों के उपयुक्त बहुत से ऐसे पेशे हैं, जिनमें स्त्रियां आसानी से अर्थोपार्जन कर सकती हैं। देश में शान्ति होने से स्त्रियों को कोई भय नही। अब उनको अपनी रक्षार्थ किसी पुरुष का आलम्बन उतना आवश्यक नहीं रहा जितना स्वतंत्रता पूर्व में था। स्वातंत्र्योत्तर काल में सामाजिक मंच पर नारी के नये रुप का जन्म हुआ। उसे अपने अस्तित्व का बोध होने लगा। उसमें आत्म गौरव, स्वाभिमान् आकांक्षा, अधिकार जैसे भावों का विकास होने लगा। जहाँ एक ओर नारी समाज प्रगतिशील होता रहा है तो दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के अंधानुकरण का शिकार हो जा रहा है। आजादी के बाद स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के नये दायरे स्पष्ट हुए।

पति–पत्नी के बीच स्वच्छंदता की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

स्वातंन्योत्तर समाज–जीवन के रहन–सहन, आचार–विचार और व्यवहारों में काफी परिर्वतन आया। परम्परा और नवीनता का द्वन्द, पीढ़ी संघर्ष आदि इसी काल की उपज है। संयुक्त परिवार का विघटन होने लगा। परिवार के विघटन का प्रमुख कारण है आर्थिक कमजोरी तथा रोज़गार का अभाव। नौकरी की तलाश में शिक्षित नवयुवक महानगरों की ओर भागने लगा। लेकिन नौकरी न मिलने के कारण या वेतन कम मिलने के कारण अत्याधिक व्यवसाध्य महानगरीय जीवन जीना उसके लिए बड़ा कठिन हो गया। अल्प आय, मँहगाई, भौतिक सुखो की लालसा उसे तनावपूर्ण और घुटन–भरी जिन्दगी जीने को विवश कर देती है। धन और पद की स्पर्धा ने आजादी के बाद मनुष्य के जीवन यांत्रिक बना दिया। ऐसी हालत में सक्षम, संवेदनशील व्यक्ति अपने लक्ष्य तक पहुँचने में अपने को असमर्थ अनुभव कर रहा है। व्यक्ति अपने ही भीतर बिखराव महसूस कर रहा है। उसका मन, उसकी चेतना, उसकी आकांक्षाए, उसके सपने उसका स्व और उसका सब कुछ बिखरता जा रहा है। व्यक्ति जिस समूह और वर्ग की इकाई है, वह समूह और वर्ग भी बिखरता जा रहा है। समूह या वर्ग बिखर जाने से सारा समाज बिखरता जा रहा है और समाज के बिखर जाने से सारा देश टुकड़ों में बिखरा दृष्टिगत होता है। आजादी के पूर्व व्यक्ति ने, समूह ने समाज ने और सम्पूर्ण देश ने जो सपने देखे थे वे टूट गये, जो बनना चाहा था, वह बिगड़ गया, जो समेटना चाहा था वह बिखर गया। स्वतंन्योत्तर सामाजिक जीवन में बिखराव ही बिखराव दिखाई देने लगा।

3. धार्मिक परिवेश :–

आजादी के बाद की धार्मिक परिस्थिति, आजादी की धार्मिक परिस्थिति से अत्यन्त भिन्न है। स्वातंन्योत्तर काल में शिक्षा का प्रसार तेजी से हुआ। स्कूलो में विज्ञान पढ़ाया जाने ला अतः आधुनिकता के साथ नये समाज का उदय होने लगा। ऐसे समाज का उदय होने लगा, जो परम्परागत बातों की अपेक्षा अनुभूति जन्य बातों का विश्वास करता है। वर्तमान समाज में आध्यात्मिक तथा धार्मिक मूल्य ढ़ह चुके है। आध्यात्मिकता तथा धार्मिक की उपेक्षा ही नहीं बल्कि उसके प्रति अविश्वास की भावना दृढ़ हो गयी है।

भारतीय संविधान ने भारत का धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया है। संविधान समिति के सभी महानुभाव सदस्य जानते थे कि भारत विभिन्न प्रांत, भाषा जाति और धर्म में बसा हुआ है। देश में धार्मिक अलगाव होने के कारण किसी एक धर्म को राष्ट्रीय धर्म के रूप में

स्वीकार करना अन्य धर्मियों के प्रति अन्याय करना था। अतः भारतीय संविधान में भारत को धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया। भारत की यह निधर्मी राज्य कल्पना अद्वितीय है संविधान की इस संकल्पना का आशय यह है कि भारत का अपना न कोई राजकीय धर्म है न किसी धर्म के प्रति पक्षपात किया जाता है। देश के हर नागरिक को अधिकार है कि चाहे वह जिस धर्म को माने और उसके अनुसार विधि–विधान तथा पूजा–पाठ करे। सरकारी शिक्षण संस्थाओं में किसी धर्म विशेष की शिक्षा नहीं दी जा सकती है। भारत सरकार इस धर्म निरपेक्ष की संकल्पना का पालन भी कर रही है। स्वातंन्योत्तर काल में धार्मिक भावना में दिन–ब–दिन शिथिलता आती जा रही है। वैज्ञानिक दृष्किोण, औद्योगीकरण एवं शिक्षा के प्रसार ने आधुनिकता को जन्म दिया है, परन्तु इस आधुनिकता ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है, जिनमें महँगाई, बेकारी, स्पर्धा नैतिकता, महानगरों, के विस्तार से जगह की कमी रोजी–रोटी की समस्या आदि प्रमुख है। इन समस्याओं के निराकरण में आदमी उलझा हुआ है। उसने अनुभव कि घर बैठने से ईश्वर या अल्लाह रोटी नही दे देगा। उसकी गंगा–स्नान करने की भावना कि उसके पाप धुल जायेगें और उसे पुण्य प्राप्त होगा, कम होती जा रही है। आज, जबकि चिन्तन में व्याप्त वैज्ञानिकता के कारण धर्म का स्वरूप बदल रहा है ईश्वर एक भ्रम सिद्ध होता जा रहा है, भैतिकवादियों ने उसे समाज के लिए अफीम सिद्ध कर दिया है, तब धर्म के नाम पर अब तक बने मूल्य जर्जर हो गये हैं, स्वातंन्योतर काल की बहुत बड़ी उपलब्धि जॉति–पॉति के बन्धन तथा धार्मिक भावना में शिथिलता आ जाना फिर भी यह दावा करना गलत है कि आज धार्मिक या साम्प्रादायिक दंगे होते ही नहीं आज भी भारत भूमि धार्मिक, साम्प्रदायिक या जातीय दंगों से पूर्णतः अछूती नही है। एक–दूसरे के धर्म जाति पर कीचड़ उछालने का कार्य कम मात्रा में ही क्यों न हो, परन्तु आज भी होता रहता है। आगे भी होता रहेगा। यह कार्य जन नेताओं की देन है, जो स्वार्थ पूर्ति हेतु इस तरह के धार्मिक उन्मादी दंगे सहज ही उपजा देते हैं।

4. आर्थिक परिवेश :–

" सम्बन्धों की बात है झूठी, रुपया ही भगवान बन गया" आजादी के बाद भारतीय सामाजिक जीवन के आर्थिक परिवेश में काफी परिवर्तन आया। अर्थ जीवन मूल्य बन गया। अर्थ के आधार पर व्यक्ति का मूल्यांकन किया जाने लगा। अतः अर्थ के बिना व्यक्ति के जीवन शुष्क प्रतीत होने लगा। इस अर्थ युग ने मनुष्य की आर्थिक भावना को बढावा दिया। परिणाम स्वरूप अर्थ के पीछे दौड़ने वाले वर्ग का उदय हुआ, धन दौलत, सत्ता, प्रतिष्ठा आदि

के पीछे दौड़ प्रारम्भ हो गयी। नतीजा यह हुआ कि चारो ओर नैतिकता का ह्रास होकर अनैतिकता, भ्रष्टाचार रिश्वतखोरी और बेईमानी की मनोवृत्तियाँ फैलती गयी। जीव, संन्यास, ऊब, घुटन कलह, दुश्मनी बिखराव और अविश्वास से जटिल हो गया। आजादी के बाद समाज में आर्थिक सुधार करने के उद्देश्य से भारत ने पंचवर्षीय योजनाएँ बना दी, समाजवादी व्यवस्था का संकल्प किया। लेकिन सच्चाई यह कि आजादी के बाद गरीब लगातार गरीब होता गया, अमीर अधिक अमीर होता गया।

भारत कृषि प्रधान देश है, आजादी के बाद कृषि में सुधार किये जाने लगे, परन्तु यह प्रयास अत्यन्त कम मात्रा में किए गये। सिंचाई की सुविधा आज भी सभी किसानों को उपलब्ध नही हुई है। कृषि उद्योग के लिए सिंचाई, यातायात, आवास, वैज्ञानिक तकनीक से हुए सभी साधन आदि से भारतीय किसान आज भी वंचित है; फलतः किसानों की स्थिति दयनीय हुई। देश में आर्थिक समस्या अधिक जटिल हुई। देश के विभाजन से भारत की आर्थिक हानि ही नहीं अपितु देश की आर्थिक समस्या अत्यन्त जटिलतम हो गयी। सन् 1962 में चीन तथा 1965 और 1971 में पाकिस्तान से हुए युद्ध ने देश की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। व्यक्ति और समाज–विकास की जितनी भी योजनाएं बनायी गयी वे सब प्रत्यक्ष रुप से उस तक नही पहुँच पायी। आम आदमी योजनाओं के लाभ से वंचित रहा। किन्तु ऐसा भी नहीं है कि आजाद भारत की कोई उपलब्धि ही नही है; भूमि विकास के लिए आधुनिक साधन, कारखानों का निर्माण, रासायनिक खादों की खोज, रेल्वे इंजन हवाई जहाज, पानी के जहाज, लोहा–इस्पात का समान, टेलीफोन–रेडियो टेलीविजन, बिजली, तेल , स्वास्थ्य सम्बन्धी औषधियां, शिक्षा प्रसार आजाद भारत की ही उपलब्धियां है, परन्तु बढ़ती हुइ जनसंख्या, भ्रष्ट शासन व्यवस्था बेकारी पदलोलुपता, अनैतिकता, अपराध महानगरों का विस्तार आदि के कारण स्वातंन्योत्तर भारतीय आर्थिक परिस्थिति में आशातीत वृद्धि हुई है। इसका दूसरा कारण यह भी है स्वतंत्रता के पश्चात देश में उपभोक्ता संस्कृति विकसित हुई जो कि अंग्रेजों की ही देन है। आदमी आराम तलब बनने लगा, वह हर नयी चीज का उपभोग करने की कामना में तल्लीन हो गया, इससे भ्रष्टाचार, अनैतिकता एवं अमानवीयता को बढ़ावा मिला। समाज–सेवा नेताओं के लिए जीविका का साधन बन गया, नेताओं ने द्दम वेश धारण कर अपनी आर्थिक स्थिति सुधार ली। फल यह हुआ कि अर्थहीन लोग अधिक अर्थ हीन हो गये और अर्थ सम्पन्न लोग अधिक अर्थ सम्पन्न हो गये। अर्थ ही अर्थ रखने लगा, आर्थिक विषमता की जड़े और अधिक मजबूत हो गयी।

5. सांस्कृतिक परिवेश :–

स्वतंत्रता के पश्चात देश में नयी संस्कृति का उदय हुआ, इस संस्कृति को उपभोक्ता संस्कृति कहना अनुचित नहीं होगा। इस संस्कृति ने मनुष्य को अर्थ प्रधान और आत्म केन्द्रित बना दिया। इसने मनुष्य के आचार–विचार, रहन–सहन जीवन दर्शन को पूरी तरह से बदल दिया। परम्परा और आधुनिकता के द्वन्द में परम्परा का लोप और आधुनिकता का विकास होता गया। औद्योगिक विकास के कारण नयी चीजें सामने आने लगी, नया लोगों तक बिना पहुँचे ही पुराना पड़ने लगा। स्वतंत्रता के बाद देश की सांस्कृतिक स्थिति ने बड़ी तेजी से करवट बदली, सांस्कृतिक मूल्यों का पालन करने के बदले व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना अधिक बदलने लगी, व्यक्ति भौतिकता का उपासक बन गया। वह परम्परा विरोधी, अंसतोष और विद्रोह का प्रतीक बन गया। वैज्ञानिक प्रगति से एक ओर उसका जीवन सुखी होने लगा तो दूसरी ओर जीवन में समस्याएं, जटिलताएं, द्वन्द एवं तनाव बढ़ने लगा। इस काल के जीवन में समस्याओं का दबाव जितना बढ़ गया, उतना पहले कभी नही था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के फलस्वरूप राष्ट्रीय जीवन के विविध क्षेत्रों के सम्बन्ध में बड़े–बड़े सपने देखे गये। गाँधी जी ने राष्ट्र की संस्कृति की महानता सारे विश्व के सामने रखी। उन्होनें भारत में राम राज्य का सपना देखा था, परन्तु गाँधी जी की हत्या होने से सारे स्वप्न भंग हो गये, जितना सत्य, अहिंसा बंधुता का प्रसार हुआ उससे सौ गुना अधिक असत्य, हिंसा, शत्रुता का प्रसार हुआ। एक ओर सांस्कृतिक गरिमा, स्वर्णिम भविष्य तथा सुखद जीवन की कोमल मनोरम आकर्षक आशाएँ थी, इसकी पूर्ति का दृढ संकल्प था, लेकिन दूसरी ओर देखने को मिला सत्ता और स्वार्थ–सिद्धि के पीछे भागने वाला संस्कृतिहीन, सिद्धान्तहीन जीवन। सपनों की हत्या होने लगी। इस काल की स्थितियों ने व्यक्ति और संस्कृति को तोड़ दिया। इस टूटन के कारण जीवन मूल्य, आस्था, सदाचार, विश्वास एवं नैतिकता के मानदण्ड खण्डित हुए सारी परम्पराएँ टूट गयीं, उसमें बौद्धिकता का समावेश होता गया। जीवन मूल्य ही बदल गये, मानव यंत्रवत् बन कर रह गया।

आजादी के बाद देश की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक सांस्कृतिक परिस्थितियों वर्तमान साहित्यकार रचना संसार उसका चिन्तन और बोध, उसकी सर्जनात्मक, दायित्व निर्वाह की उसकी दिशा आदि सब कुछ तेजी से परिवर्तित हुए। वर्तमान साहित्यकार समाज को बदलने, राजनीति को नया रूप देने, आर्थिक दृष्टि से समृद्धि लाने के लिए क्रान्ति की कामना करने लगा। परन्तु क्रान्ति लाने या जीवन को नया मोड़ देने में उत्साह में उसके सामने व्यक्तिगत जीवन की असंगतियाँ और उलझने ही आ गयी। फलतः उसका साहित्य भी

घुटन, कुंठा, संन्यास, बिडम्बना अन्तर विरोध आदि से परिपूर्ण दिखायी देने लगा। उसे संदेह होने लगा कि आज का प्रजातंत्र व्यक्ति को टूटने से बचा पायेगा ? आज का मानव इतने विभिन्न भागों में विभाजित है कि मानवात्मा, संस्कृति मानव गरिमा, विश्वबधुता, आदर्शवाद आदि की चर्चा करना भी उसे उपहासस्पद लगने लगा, ऐसी हालात में वर्तमान साहित्यकार को मानव संस्कृति की जड़े हिलती हुई दिखायी देने लगी। काल प्रवाह में अनेक समस्याएं उठने लगीं और आगे भी उठेगी। साहित्यकार इसके प्रभाव से बच नहीं पाया और न आगे भी बच पायेगा। उसके सामने बुनियादी प्रश्न जीवन के अस्तित्व बोध और जीवन की सार्थकता का है। व्यक्ति की विवशता और नियति पहचानने का प्रयास ही उसका साहित्य है।

(ख) आधुनिक–काव्य–प्रवृत्तियाँ :–

1. भारतेन्दु युग :–

आधुनिक काव्य धारा का प्रथम उत्थान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम पर भारतेन्दु युग कहलाता है। भारतेन्दु इस उत्थान की काव्य धारा में महान व्यक्तित्व के रूप में अवतीर्ण हुए है। उन्होनें कविता में नवयुग की चेतना का प्रादुर्भाव किया, साथ ही कवियों का एक मडण्ल स्थापित किया जिसने कविता में नवयुग की चेतना को उभारा। इस मण्डल के केन्द्र और प्रेरणाबिन्दु भारतेन्दु जी ही थे।

हम आधुनिक काल के सम्बन्ध में कह ही चुके है इस काल में नवयुग की चेतना का प्रादुर्भाव तत्कालीन राजनीतिक चेतना, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति प्रवृत्तियो और साहित्यिक पृष्ठभूमि में ढूँढ़ा जा सकता है। यदि भक्तिकालीन कविता में सामाजिक पक्ष प्रबल था तो श्रृंगार कालीन कविता में दरबारी संस्कृति का प्रभुत्व झलकता है। इसी प्रकार आधुनिक हिन्दी साहित्य जनवादी साहित्य है। भारतीय मध्यवर्ग की सांस्कृतिक चेतना का विकास आधुनिक काल के साहित्य में दिखाई पड़ता है। इस सांस्कृतिक चेतना के विकास में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा पाश्चात्य सभ्यता का योग परिलक्षित होता है। भारतेन्दु युग का साहित्य पूर्णतया जनवादी साहित्य है और भारतेन्दु जन जाग्रति के अग्रदूत।

डॉ0 राम विलास शर्मा भारतेन्दु युग का साहित्यिक मूल्यांकन करते हुए कहते है है–"प्रथम उत्थान नवयुग का आरम्भ मात्र था। इस लिए हमें इस समय की कविता में उस कलात्मकता के दर्शन नहीं होते हैं जो कालान्तर में सतत परिश्रम से प्रकट हुई। काव्य विषयों के सर्वथा नवीन होने के कारण इसकी काव्यपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए समय की आवश्यकता

थी।''

भारतेन्दु युग की प्रवृत्तियाँ :-

1. देश भक्ति एवं राष्ट्रीय भावना :-

भारतेन्दु युगीन कविता में देश भक्ति का स्वर सुनाई पड़ता है। इसका प्रदर्शन कोरी ब्रिटिश शासकों की प्रार्थना भी सन्निहित है। यह भावना देश भक्ति की परिचायक है और यही इस युग की राष्ट्रीयता की भी घोतक है।

''परम–मोक्ष फल राज पद, परसन जीवन माँहि।
बृटन देवता राजसुत, पद परसुह चित चाहि।।''

इस प्रकार राजभक्ति के भीतर देश भक्ति का स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है। इसके प्रदर्शन के कारण कम्पनी के अत्याचार शासन की समाप्ति और नवीन शासन व्यवस्था का स्थापित होना है –

'' लेकर राज कम्पनी के कर सौ निज हाथन,
किय सनाथ भोली भारत की प्रजा अनाथन''

आज जन समुदाय बिना पथ प्रदर्शक के बिगड़ रहा है, पाश्चात्य संस्कृति को अपना रहा है, इससे इन कवियों को दुख होता है। इतना ही नहीं उन्हें वीरता, एकता, ममता का भी अभाव खलता है। भारतीयों का उधम छोड़कर दासभक्ति अपनाना हीनता का घोतक लगता है।

'' सब भाँति दैव प्रतिकूल होई एहि नासा
अब तजुँह वीर वर भारत की सब आशा''

भारतेन्दु युग के कवियों में देश की दयनीय अवस्था से ऊपर क्षोभ की परिणति ईश्वर की प्रार्थना में भी की गई है। वे करूण पुकार करते हैं –

''कहाँ करूणानिधि केशव सोए?
जानत नाहि अनेक जतन करि भारत वासी रोए।''[1]

2. जनवादी विचारधारा :-

भारतेन्दु कालीन कविता की दूसरी प्रवृत्ति जनवादी विचाराधारा है इस जनवादी विचारधरा का स्वर भारतेन्दु युग की कविता की विषय वस्तु और शैली दोनों में समान रूप

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र – नील देवी।

से मुखरित हुआ। डॉ0 रामविलास शर्मा के शब्दो में –" भारतेन्दु युग का साहित्य जनवादी इस अर्थ में है कि वह भारतीय समाज में पुराने ढाँचें से सन्तुष्ट न होकर उसमें सुधार भी चाहता है।[1]

भारतेन्दु की कविता में साम्प्रतिक समाज की दशा का विदेशी सभ्यता के संकट का चित्रण –

" लोक क्रिस्तान भए जाधैं वन–थैं साहब।
कैसा अब पुन्न धरम गंगा नहाना कैसा।।"

छुआछूत के अशुभ प्रचार का भी क्षोभ भरा संकेत भारतेन्दु की कविता में मिलता है–

बहुत हमने फैलाये धर्म बढ़ाया छुआछूत का कर्म।

भारतेन्दु युग की इस मूल जनवादी धारा के आधार की ठोस यथार्थवादी अनुभूति की। यही वास्तविक यथार्थ है।

(1) प्रकाशन शैली– जनवाणी :–

यह तो हुई जनवादी धारा की विषय वस्तु की बात अब इसकी प्रकाशन शैली की भी परीक्षण करना चाहिए। जैसे विचार है वैसे उसकी प्रकाशन शैली। जनवाणी को न अलंकार चाहिए न शब्दाडम्बर फिर जन–जागरण का उपाय ही इससे अच्छा क्या हो सकता है कि ग्रामीण जनता में नवयुग की जनवादी विचारधारा का प्रचार उन्हीं के छन्दों में किया जाय।

" भारत में सब भिन्न अति ताहीं सों उत्पात।
विविध देश महतू विविध भाषा विविध लखात।"[2]

(2) भारतेन्दु द्वारा भ्रमर गीतों में नवयुग की चेतना का प्रसार :–

भारतेन्दु जी ने जन–जागृति के लिए जातीय संगीत के प्रचार का महत्व बताया था–

बाल विवाह :–

इसमें स्त्री का बालक पति होने का दु:ख फिर परस्पर मन न मिलने का वर्णन।

जन्मपत्री की विधि :–

इसके बिना मन मिले स्त्री पुरूष का विवाह और इसकी अशास्त्रता।

बालको की शिक्षा :–

---

1. कविवचन सुधा, 22 दिसम्बर।
2. जन जागरण के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र –श्री चन्द्रबली पाण्डेय पृ0 11

इसमें बालकों से योग्य रीति का बर्ताव न करने से उनका नाश होना।

अँग्रेजी फैशन :-

इससे बिगड़कर बालकों का मद्यादि सेवन और स्वधर्म विस्मरण।

बहुजातित्व और बहुभक्तित्व के दोष :-

इससे परस्पर चित्त का न मिलना, इसी से एक दूसरे के सहाय में असमर्थ होना।

पूर्वज आर्यो की स्तुति :-

इसमें उनके शौर्य, औदार्य, सत्य, चातुर्य विद्यादि गुणों का वर्णन।

हिन्दुस्तान की वस्तु हिन्दोस्तानियों का व्यवहार करना :-

इसकी आवश्यकता इसके गुण इनके न होने से हानि का वर्णन

3. प्राचीन परिपाटी की कविता-भक्ति और श्रृंगार :-

भारतेन्दु युगीन काव्यधारा में प्राचीन परिपाटी की कविता का सृजन किया है। भक्ति और श्रृंगार की परम्पराएं भारतेन्दु युग तक चली आई थी। यही कारण है कि भारतेन्दु ने स्वयं तथा उनके अन्य सहयोगियों ने सैकड़ों पद पुराने भक्त कवियों की परिपाटी पर बना डाले। भारतेन्दु को एक भक्त ह्रदय प्राप्त था, उनके भक्ति पदों में भक्त ह्रदय की स्निग्धता देखने को मिलती है-

" ब्रज के लता पता मोहि की जै।
गोपी पद पंकज पावन की रज जामैं सिर भीजैं।
श्री राधे मुख यह वर मुँह मांग्यों हरि दीजै।"

भारतेन्दु ने रीति, परिपाटी, पर बहुत सी कविताएँ की है। उनकी 'प्रेम माधुरी' में पद्माकर तथा देव का श्या श्रृंगार वर्णन मिलता है।

" सजि सेज रंग के महल में उमंग भरी।
पिय गर लागी काम-कसक मिटायें लेत।।"

श्रृंगार काल की पद्धति पर कविता करने वालों में भारतेन्दु युग के बाबू राधाकृष्ण दास का भी नाम उल्लेखनीय है-

" मोहन की यह मोहनी मूरत, जो सो भूलत नाहिं भुलाये।
छोरन चाहत नेह को नातों, कोऊ विधि छूटत नाँहि छुरायें।

भारतेन्दु युग की कविता में केवल श्रृंगार काल की ही परम्परा नहीं है उसमें भक्ति युगीन परम्परा भी जीवित है फिर इसकी अभिव्यक्ति में सूरदास के पद और तुलसी की विनय

पत्रिका की वन्दनाओं की झलक भी स्पष्ट है।

" सखी से नैना बहुत बुरे।
तब सों भये परायें, हरि सों जब सों जाइ जुरे।।
मोहन के रस बस है डोलत तलफत तनिक दुरे
मोहन सखि प्रीति सब छोंड़ी ऐसे ये निगुरे।।"

इस प्रकार भारतेन्दु जी के भक्ति रस के पदों में सूरदास की परम्परा की झलक स्पष्ट लक्षित होती है।

" आजु उठि भोर वृषभानु नान्दिनी फूल के महल ते निकसि ठाढ़ी भई।
खसिंत मुख सरितें कलित कुसुमावली मधुप की मंडली मत्त रस हौ गई।।

डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दो में :-

" छन्द की विलम्बित गति शब्दावली का लालित्य और चित्र का सौन्दर्य सभी सूरदास के उत्कृष्ट पदों से होड़ करते हैं"[1]

4. कलात्मकता का अभाव :-

भारतेन्दु युगीन काव्यधारा में कलातमकता का अभाव रहा है। नवयुग की अभिव्यक्ति करने वाली यह कविता कलात्मक न हो सकी। इसमें कलात्मकता लाने में बहुत समय लगा। डॉ० केशरी नारायण शुक्ल के शब्दों में " इस युग की कविता में कलात्मकता के अभाव का कारण इस उत्थान में विचारों का संक्रान्ति-काल होना है। फिर जनता की मनोवृत्ति भी बदलनी थी, उस पर प्रेम गीतों का प्रभाव हटाना था।

गद्य एवं समाचार पत्रों का प्रचार एवं प्रभाव :-

इस युग की कविता में कलात्मकता के अभाव का एक और कारण भी है वह है इस युग में गद्य एवं समाचार पत्रों का प्रचार। कवि समाचार-पत्रों द्वारा ही अपनी कविता का प्रचार करते थे इस लिए उन्हे इसे काव्य पूर्ण बनाने की विशेष चिन्ता नहीं थी। डॉ० केशरी नारायण शुक्ल जी ने इस युग की कविता में कलात्मकता के अभाव का एक और कारण बतलाया है वह है भाषा का अस्तित्व एवं नागरी आन्दोलन। इस आन्दोलन के लिए कवियों को जनमत जागरित करना था, इसलिए उन्होनें जनवादी को अपनाया और उसमें कलात्मकता से बचे रहे। धार्मिक उदारता की एक झलक-

खंडन-मंडन की बाते सब करते सुनी सुनाई।

---

1. भारतेन्दु युग – डॉ० रामविलास शर्मा तृतीय संस्करण पृ० 136।

गाली देकर हाय बनाते बैरी अपने भाई।।"

इसलिए जब हम मुख्य प्रवृत्ति की बात कहते है तो यही कहना पड़ता है कि नवीन कविता में कलात्मकता का अभाव तथा प्रभावहीनता है।

5. काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग :-

भारतेन्दु युगीन कविता की भाषा प्रमुख रूप से ब्रज भाषा ही रही है। वैसे इस युग के अन्तिमकाल में खड़ी बोली में भी रचनाएं हुई। खड़ी बोली का प्रचार गद्य तक सीमित रहने का कारण गुलाबराय जी की इस युक्ति में ढूँढा जा सकता है-

" गद्य की अपेक्षा पद्य में रूढ़िवाद अधिक दिन तक ठहरता है। अयोध्यानाथ खत्री, बद्रीनारायण चौधरी, प्रेमधन, अम्बिका दत्त व्यास, प्रताप नारायण मिश्र इत्यादि। प्रेमधन जी की कविता का एक उदाहरण –

हमें जो है चाहते निबाहते हैं प्रेमधन,
उन दिलदारों से ही मेल मिला लेते हैं।

भारतेन्दु की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है –

साँझ सवेरे पंछी सब क्या कहते है कुछ तेरा है।
हम सब एक दिन उठ जायेगे यह दिन चार बसेरा है।।

श्रीधर पाठक की कुछ पंक्तियां –

" यह भूमि भारती, अब क्या पुकारती।
इसके ही हाथ से तो हुई इसकी दुर्गती।।"

उपर्युक्त उद्धरणों से एक बात तो स्पष्ट हो गई वह यह है कि भारतेन्दु युग में खड़ी बोली में उच्च्य कोटि की रचना नहीं मिलती। खड़ी बोली के आचार्य पं0 श्रीधर पाठक भी ब्रजभाषा की माधुरी से प्रभावित थे– "ब्रजभाषा सरीखी रसीली वाणी को कविता के क्षेत्र से बहिण्कृत करने का विचार केवल उन ह्दय हीन अरसिकों के ह्दय में उठना सम्भव है, जो उस भाषा के स्वरूप ज्ञान से शून्य और उसकी सुधा के आस्वादन से बिल्कुल वंचित हैं।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि ब्रजभाषा की माधुरी का भारतेन्दु युगीन कवियों पर बड़ा गहरा प्रभाव था।

6. छन्द विद्यान के क्षेत्र में नवीनता का अभाव :-

भारतेन्दु युग में कवियो ने छन्द के क्षेत्र में कोई नवीन एवं स्वतन्त्र प्रयास नही किया है। डॉ0 केशरी नारायण शुक्ल ने लिखा है– "भारतेन्दु युग के कवियों ने भावाभिव्यक्ति के लिए, परम्परा से चले आते हुए छन्दों का ही उपयोग किया है। इनमें छन्द सौन्दर्य का नवीन

उपक्रम नही लक्षित होता। भक्ति तथा रीतिकाल के कवित्त, सवैया रोला, दोहा और छप्पय इय युग में भी प्रचलित थें। इन छन्दों में सवैया तथा रोला इस समय के कवियों को अधिक प्रिय थे।

जातीय संगीत का गॉव–गॉव के साधारण लोगों में प्रचार करने के लिये भारतेन्दु जी ने कजली, ठुयरी, खेमटा, कहखा गजल, अद्धा, चैती, होली साँझी लाबे लावनी बिरहा, इत्यादि छन्दों को अपनाने पर जोर दिया था। उन्होने लिखा था– ''उत्साही लोग इसमें जो बनाने की शक्ति रखते है वे बनावें जो छपवाने की शक्ति रखते है वे छपवा दें और जो प्रचार की शक्ति रखते है वे प्रचार करें। मुझसे जहॉ तक हो सकेगा। मै भी करूँगा।

इस युग के प्रमुख कवि है–भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, अम्बिका दत्त व्यास, ठाकुर जगमोहन सिंह, बद्रीनारायण चौधरी।

डॉ0 रामविलास शर्मा भारतेन्दु युग का साहित्यिक मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं–

'' प्रथम उत्थान नव युग का आरम्भ मात्र था। इस लिए हमें इस समय की कविता में उस कलात्मकता के दर्शन नहीं होते जो कालांतर में सतत परिश्रम से प्रकट हुई। काव्य–विषयों के सर्वथा नवीन होने के कारण इनकी काव्यपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए समय की आवश्यकता थी।''

2. द्विवेदी युग :–

द्विवेदी युग में नवीन शिक्षा के प्रसार एवं वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रभाव बड़ा व्यपाक पड़ा। वैसे तो आधुनिक काल के प्रारम्भ से ही हमें पुरातनता के प्रति एक विद्रोह सुनाई पड़ता है, परन्तु द्विवेदी युग में बुद्धिवाद का बोलबाला है, इसीलिए इस युग के हिन्दी के धार्मिक काव्यों में अवतारवाद की भावना का विरोध दिखलाई पड़ता है। माईकेल मधुसूदन ने अपने मेघनाद वध में अवतारवाद की भावना का विरोध दिखलाई पड़ता है। इस बुद्धिवाद का प्रभाव द्विवेदीयुगीन मानव जीवन पर बड़ा व्यापक पड़ा। अब रूढ़िवादिता एवं सड़ी–गली प्राचीन परम्परा छोड़ रहा था इसलिए दलित एवं निम्न वर्ग का भी उद्धार हो रहा था और रूढ़ि से दुष्ट माने जाने वाले पात्रों में भी नवीन मानवीय मूल्यों की स्थापना हो रही थी। कहने का तात्पर्य यह है कि लोगों ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वैज्ञानिक तार्किक कसौटी पर शुद्ध रूप न पाकर बहिष्कार हो रहा था। अलौकिक कृत्यों का भी मानवीकरण हो रहा था।

द्विवेदी युगीन काव्य धारा की राजनीति चेतना, सामाजिक अवस्था एवं धार्मिक स्थिति की पृष्ठभूमि का अध्ययन करने से उस युग की काव्य स्थिति का आधार स्पष्ट हो गया है।

1. देशभक्ति एवं राष्ट्रीय जागरण का उद्दीप्त स्वर :–

भारतेन्दु युगीन काव्यधारा की भाँति द्विवेदी युगीन कविता की प्रधान भावना देशभक्ति की है कवियों का विशेष आग्रह साम्प्रायिक सामंजस्य और सदिच्छा में दिखलाई पड़ता है क्योंकि भारत की उन्नति करने के लिये प्रेरणा देते है और इस लक्ष्य की प्राप्ति में आत्मबलिदान करने का महत्व सिद्ध करते है। वस्तुतः उस युग में ऐसी भावनाओं का महत्व स्पष्ट ही है। बंग–भंग की भारत विरोधी और जाति भेदीकरण की नीति से राष्ट्रीय भावनाओं से पूरित भारतीय जनता की आँखें खुल गई और वे अंग्रेजों को बड़े सन्देह की दृष्टि से देखने लगे और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप तथा राष्ट्रीयता के अनुरूप सभी जातियों में भ्रातत्व–भावना का प्रचार हुआ। रूप नारायण पाण्डेय एक कविता में ईसाई, मुसलमान, पारसी, जैन बौद्ध इत्यादि सभी भारत देश में निवास करने वाली जातियों में भ्रातृत्व का विकास करने पर जोर देते है–

" जैन बौद्ध, पारसी यहूदी मुसलमान सिख ईसाई।
कोटि कंल से मिलकर कह हो हम सब है भाई–भाई।।
पुण्य भूमि है, स्वर्ग भूमि है, जन्म भूमि है देश यही।
इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया में है जगह नहीं।।"

2. मानवतावादी विचारधारा :–

द्विवेदी युग की काव्यधारा की दूसरी मुख्य विशेषता मानवता वादी विचार धारा है। डॉक्टर रवीन्द्र सहाय वर्मा ने अपनी पुस्तक हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव में द्विवेदी युग की कविता में व्यक्त मानवता वाद के स्वरूप–" मानवता के प्रति रीतिकालीन हिन्दी कवियों का दृष्टिकोण बहुत ही संकीर्ण था, उनके लिए समस्त पुरूष नायक थे और स्त्रियाँ नायिकाएँ। किन्तु द्विवेदी–युग में प्रथम बार मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा गया और श्रृडारिकता एवं धार्मिकता की संकीर्ण कारा में दीर्घकाल से बन्दिनी मानवता को मुक्त करने का प्रयास किया। काव्य अब उच्चवर्गीय जीवन मात्र का प्रतिबिम्ब न होकर निम्नवर्ग के जीवन का भी चित्रण करने लगा। निरन्तर शोषण के बीच जीवन–यापन करने वाले अशिक्षित कृषकों और श्रमिकों का जीवन अब हिन्दी कवियों का प्रिय विषय बन गया। इस प्रकार काव्य दुःख और दैन्य से त्रस्त मानवता के जीवन को अभिव्यक्ति करने में पूर्ण समर्थ हो गया।"

3. नारी–स्वातन्त्र्य एवं समानता की भावना :–

अब नारी पुरुष के कन्धें से कन्धा मिलाकर चलने वाली वीर प्रसू के रूप में आती है।

अब समानता की भावना दृढ़ हो रही थी और इस समानता की चर्चा में ही नारी प्रति पूत भावनाओं का सहज ही विकास हो रहा था। नारीत्व के प्रति उच्च–भावना की अभिव्यक्ति करने वाले द्विवेदी युग के चार कवि प्रमुख हैं– श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्यासिंह उपाध्याय एवं मैथिलीशरण गुप्त। श्रीधर पाठक ने स्त्री जाति के प्रति अत्याचारों की ओर ध्यान आकृष्ट किया, प्रभु से उसमें करने की प्रार्थना की हैं–

" प्रार्थना अब ईश की सब करहु कर जुग जोर।
दीनबन्धु सुदृष्टि कीजै बाल–विधवा–ओर।।"

4. नायिकाओं के नवीन भेद–लोकसेविका नायिका :–

अयोध्या सिंह उपाध्याय के काव्य में नारी के महान् स्वरूप का उद्घाटन हुआ है। उन्होनें नारी के प्रति उच्च भावना के स्वरूप को सम्मुख रखकर ही नायिका के नवीन भेद किये है। उन्होनें 'रस कलश' में 'देश–प्रेमिका, जाति–प्रेमिका, 'जन्मभूमि–प्रेमिका, 'लोक सेविका' धर्म–प्रेमिका' इत्यादि नायिकाओं के नवीन रूपों की उद्भावना की है जो नव युगीन विचार धारा के अनुकूल ही है। 'प्रियप्रवास' की राधा 'लोकसेविका' नायिका है।

"प्यारे जीवें जग–हित करें गेह चाहे न आवें।"

5. बौद्धिकता का समावेश :–

पाश्चात्य संस्कृति के संघर्षण एवं नवीन परिस्थितियों के परिर्वतन से भारतीय संस्कृति की परीक्षा वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टि से होने लगी। इस बुद्धिवादी विचार धारा का द्विवेद युग में बड़ा व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। पुरानी रूढ़ियों एवं परम्पराओं को वैज्ञानिक तथा तार्किक दृष्टि से परखा गया। पहले ईश्वर को मानव अबतार लेते दिखाया गया था, अब मानव में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा हुई। 'साकेत' महाकाव्य को प्रारम्भ करते समय उसके मूल में स्थित भावना को कवि इस प्रश्न में रखता है –

'राम, तुम मानव हो? ईश्वर नही हो क्या?"

इस प्रकार नर में नारायणत्व की उद्भावना इस युग की बुद्धिवादिता का स्वरूप है। राम का आगमन नर में नारायणत्व के स्थापित करने के लिए है। यह बुद्धि वाद राम के अवतार लेने का कारण प्राचीन शास्त्रविदित' दुष्टानाम विनाशाय साधुनाम् रक्षणाय' नही मानता–

" मै आर्यो का आदर्श बताने आया।
जन–सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।

भव में नव वैभव प्राप्त कराने आया।

नर को ईश्वरता प्राप्त करने आया।''

6. श्रृंगार का बहिष्कार :–

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से इस युग की काव्य धारा नैतिकता के कठोर बन्धन में जकड़–सी गयी। भारतेन्दु युग में नवीन भावनाओं के समावेश के साथ ही प्राचीन श्रृंगार की धारा भी प्रवाहित हो रही थी, किन्तु द्विवेदी युग में रीतिकालीन श्रृंगाररस की धारा के विरूद्ध प्रतिक्रिय हुई यहाँ तक कि श्रृंगाररस मात्र को अश्लील की संज्ञा दे दी गयी। 'रामचरित्र उपाध्याय की एक कविता' काम की करतूत' में श्रृंगार का स्वरूप देखिए–

''रति के पति। तू प्रेतों से भी बढ़कर है सन्देह नहीं,

जिसके सिर पर तू चढ़ता है उसकों रूचता गेह नहीं।

मरघट उसकों नन्दन–वन है, सुखद अंधेरी रात उसे।

कुश कण्टक हैं फूल–सेज से, उत्सव है बरसात उसे।''

इस वर्णन में कितनी नीरसता है, संवेदनहीनता है, सहृदय पाठक सहज ही समझ सकते है।

7. इतिवृत्तात्मकता एवं गद्यात्मकता :–

द्विवेदी युग में कविता का उद्देश्य केवल उपयोगिता हो गया। उपयोगितावाद का स्वरूप काव्य में इतिवृत्तात्मक वर्णनों में दिखाई पड़ता है। उसमें विशेष कल्पना–प्राचुर्य एवं सरसता और माधुर्य नहीं हैं ठाकुर गोपाल शरण सिंह की विश्व–प्रेम एवं मानवता की सेवा में मुक्ति की झलक दर्शाने वाली पंक्तियाँ –

''जग की सेवा करना ही बस है सब सारों का सार।

विश्व प्रेम के बन्धन ही में मुझकों मिला मुक्ति का द्वार।''

कविगण' सन्तोष', 'आशा', साहस' आदि विषयों पर कविता लिखकर लम्बे–चौड़े उपदेश देते हैं, जो पद्य–निबन्ध बनकर रह जाते हैं, इनमें हृदयतत्व का नितान्त अभाव है।

8. प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण :–

इस युग की कविता में सच्चा प्रकृति प्रेम प्रतिफलित हुआ है। इससे पहले परम्परा युक्त प्रकृति–चित्रण था, जिसका उद्देश्य श्रृंगार–भावना को उद्दीप्त करना था। भारतेन्दु युग में भी प्रकृति–चित्रण आलंकारिक अधिक है, उसमें सौन्दर्यानुभूति का अभाव है। द्विवेदी–युग के कवियों को प्रकृति से सच्चा प्रेम है। रामनरेश त्रिपाठी प्रकृति के सच्चे पुजारी है उनके

खण्डकाव्यों में प्रकृति के सुन्दर चित्रण भरे पड़े हैं–

"रेणु स्वर्णकण–सदृश देखकर तट पर ललचाती है।
बड़ी दूर से चलकर लहरें मौज भरी आती है।।"

9. खड़ीबोली की काव्य–भाषा के रूप में प्रतिष्ठा :–

द्विवेदी युग की कविता की नवीं प्रमुख प्रवृत्ति भाषा का परिवर्तन है। अब खड़ी बोली काव्य–भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। प्रारम्भ में तो यह भाषा बड़ी अत्यवस्थिति रही। किन्तु महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्न से इसकी पदावली का परिष्कार हुआ। इन्होनें सरस्वती में प्रकाशित होने वाली कविताओं की पदावली में अपने मन से ही सुधार किये और कवियों को भी त्रुटियों की ओर सचेत किया। उन्होनें मार्ग–प्रदर्शन के लिए स्वयं खड़ी बोली की रचनाएं भी की जिनका अनुकरण उस युग के कवियों ने किया। द्विवेदी जी भाषा तथा व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियों को ही दूर नही किया वरन् उनकों सामर्थ्यवान बनाने का भी प्रयत्न किया। द्विवेदी जी का दूसरा प्रभाव कविता में संस्कृत पदावली का प्रसार करना है। अयोध्या सिंह उपाध्याय ने तो 'रूपोद्यान–प्रफुल्ल प्रायः कलिका राकेन्दु विडम्बना में बिल्कुल संस्कृत का रूप उतार दिया। द्विवेदी जी ने गद्य और पद्य का– पद विन्यास भी एक सा करने का आदर्श रखा।

"सुरम्य रूपे रसराशि रंजिते
विचित्र–वर्णा भरणें। कहाँ गई?"

10. छन्द के क्षेत्र में स्वच्छन्दता की ओर झुकाव–हिन्दी छन्द :–

द्विवेदी युग की कविता के छन्द की चर्चा भी आवश्यक है। द्विवेदी जी कविता में तुकबन्दी के विरोधी थे। वे छन्द के क्षेत्र में स्वछन्दवादी थे। उन्होनें कवियों को विविध प्रकार छन्दों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होनें अतुकांत छन्द को भी महत्व दिया। संस्कृत वृत्तों का प्रयोग भी बहुतायत से हुआ और संस्कृत वृत्त के प्रयोगों ने अतुकांत या अनुप्रास को हटा दिया। द्विवेदी जी ने लिखा– इस प्रकार अतुकांत छन्द जब संस्कृत, अंग्रजी, बंगला में विद्यमान है तब कोई कारण नहीं कि हमारी भाषा में वे न लिखें जावें। अनुप्रास युक्त पद्यान्त सुनते–सुनते हमारे कान इस प्रकार की पंक्ति के पक्षपाती हो गये है। इसलिए अनुप्रासहीन रचना अच्छी नहीं लगती बिना तुकवाली कविता के लिखने अथवा सुनने का अभ्यास होते ही

---

1. रसज्ञ–रंजन पृ0 4।

वह अच्छी लगने लगेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।[1]

संस्कृत अतुकांत छन्दों की माधुरी अयोध्या सिंह उपाध्याय के प्रिय प्रवास में –

" कथन को अब न कुछ शेष है

विनय यों करता दीन अब।"

इस युग के प्रमुख कवि है श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, राय देवी प्रसाद पूर्ण, नाथूराम शंकर, रामनरेश त्रिपाठी जगन्नाथदास रत्नाकर 'गंगा प्रसाद स्नेही' 'सत्यनारायण कविरत्न।'

डॉ० केसरी नारायण शुक्ल ने द्विवेदी युग का महत्व प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि " द्विवेदी युग के कवियों ने साहित्य, जाति और देश की सेवा की और कवि के स्वतंत्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा बनाए रखी। अतीत का चित्रण करते हुए भी ये कवि वर्तमान न भूले। सांस्कृतिक रक्षा के साथ–साथ सुधार का भी ध्यान रखा और जाति का अभ्युत्थान चाहते हुए भी देशहित का गान गया। हिन्दु होते हुए भी ये कवि भारतीय थे। इनमें जातीयता थी, किन्तु साम्प्रदायिकता नही थी। सच्चे कवि के समान ये युग से प्रभावित भी हुए और उस पर अपनी छाप भी लगा दी और इस प्रकार काव्य को उन्नतिशील बनाया। इस प्रकार द्विवेदी युग का काव्य जहाँ एक ओर सांस्कृतिक संघर्ष और संस्कार की कथा कह रहा है वहाँ इन कवियों की सहानुभूति सच्चाई और स्वतन्य तथा उदार व्यक्तित्व का संकेत दे रहा है। इसी में इन कवियों की सफलता और इसी में इन कवियों की महत्ता है।"

3. छायावाद :–

'छायावाद' शब्द हिन्दी में काफी प्रसिद्ध है काफी उलझा हुआ भी। छायावाद को लेकर हिन्दी के आलोचकों के बीच काफी विवाद रहा और वर्षो के व्यर्थ के कोलाहल के बाद भी आज सर्वसम्मत उसकी कोई परिभाषा नही बन पायी है। परिभाषा को संकीर्ण परिधि के अन्दर छायावाद का गौरव बँध भी नहीं सकता, फिर भी विषय की सम्यक् व्याख्या करने और उसे समझानें की जगह उसे दुरूह और रहस्य बनाने में कैसी बुद्धिमानी है, छायावाद–सम्बन्धी प्रायः सभी पूर्व युगीन आलोचनाओं पर यह प्रश्न किया जा सकता है। छायावाद, वास्तव मे क्या है यह बताने के पूर्व मैं चाहूंगी कि के सम्बन्ध में विद्वान आलोचकों के क्या विचार हैं–

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल :–

" छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थो में समझाना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ

में जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य वस्तु से होता है। अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है। छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ, प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।"[1]

पं0 नन्द दुलारे बाजपेयी :–

छायावाद को हम शुक्ल जी के अनुसार केवल अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली नहीं मान सकेंगे। छायावाद मानव तथा प्रकृति की सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का मान है।"[2]

डॉ0 नगेन्द्र :–

छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव–पद्धति है– जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण का आघेय नव–जीवन के स्वप्नों और कुण्ठाओं के सम्मिश्रण से बना है, प्रवृत्ति अन्तर्मुखी तथा वायवी है और अभिव्यक्ति हुई है प्रायः प्रकृति के प्रतीकों द्वारा। विचार पद्धति उसकी तत्वतः सर्वात्मवाद मानी जा सकती है।"[3]

श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी :–

"छायावाद केवल एक काव्य कला नहीं है। जहाँ तक साहित्यिक टेकनीक से उसका सम्बन्ध है वहाँ तक वह कला है और जहाँ दार्शनिक अनुभूतियों से उसका सम्बन्ध है, वहाँ वह एक प्राण है, एक सत्य है।"[4]

डॉ0 रामकुमार वर्मा :–

" छायावाद वास्तव में ह्रदय की एक अनुभूति है। वह भैतिक संसार के क्रोड में प्रवेश कर अनन्त जीवन के तत्व ग्रहण करता है और उसे हमारे वास्तविक जीवन में जोड़कर ह्रदय में जीवन के प्रति एक गहरी संवेदना और आशावाद प्रदान करता है।"[5]

श्री गंगा प्रसाद पाण्डेय :–

छायावाद शब्द से ही उसकी छायात्मकता स्पष्ट है। विश्व की किसी वस्तु में एक

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 सं0 668।
2. जयशंकर प्रसाद – पं0 नन्ददुलारे बाजपेयी, पृ0 सं0 18।
3. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 सं0 15।
4. संचारिणी– श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी – पृ0सं0 22।
5. विचार–दर्शन – डॉ0 रामकुमार वर्मा, पृ0 सं0 72।
6. छायावाद और रहस्यावाद – श्री गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ0 सं0 40।

अज्ञात सप्राण छाया की झाँकी पाना अथवा उसका आरोप करना ही छायावाद है।"[6]

श्री जयशंकर प्रसाद :–

कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना, अथवा देश–विदेश की सुन्दर के बाध्य वर्णन से भिन्न, जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अमिहित किया गया। रीतिकालीन प्रचलित परम्परा में जिसमें बाहय वर्णन की प्रधानता थी– इस ढंग की कविताओं में भिन्न प्रकार के भावों की नये ढंग से अभिव्यक्ति हुई। वे नवीन भाव आन्तरिक स्पर्श से पुलकित थे।"[1]

श्री सुमित्रानंदन पंत :–

"नवीन सामाजिक जीवन की वास्तविकता को ग्रहण कर सकने के पहले, हिन्दी कविता, छायावाद के रूप में ह्रास युग के वैयक्तिक अनुभवों, ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रवृत्तियों, ऐहिक जीवन की आकांक्षाओं सम्बन्धी स्वप्नो, निराशाओं और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने लगी, और व्यक्तिगत जीवन संघर्ष की कठिनाइयों से क्षुब्ध होकर पलायनवाद के रूप में प्राकृतिक दर्शन के सिद्धान्तों के आधार पर भीतर बाहर में सुख–दुःख में आशा–निराशा और संयोग–वियोग के द्वन्द्वों में सामंजस्य स्थापित करने लगी।"[3]

सुश्री महादेवी वर्मा :–

"छायावाद तन्तवतः प्रकृति के बीच जीवन का उदगीय है। इस युग की (छायावाद की) प्रायः सब प्रतिनिधि रचनाओं में किसी न किसी अंश तक प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी रहता है और प्रकृति के व्यष्टिगत सौन्दर्य पर चेतना का आरोप भी।"[4]

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट पता चलता है कि छायावाद हिन्दी के आलोचकों के बीच बहुत दिनों तक काफी मतभेद का विषय रहा। छायावाद के सम्बन्ध में हिन्दी के विचारकों के विचार प्रायः एक से नहीं है।

मेरी स्थापना यही है कि छायावाद–द्विवेदी युगीन जड़–जर्जर इतिवृत्तात्मकता कविता के विरूद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप उद्भूत वह विशिष्ट काव्य प्रवृत्ति है, जिसमें आत्म निष्ठता, प्रकृति में चेतना का आरोप अशरीरी प्रेम, सूक्ष्म सौन्दर्य, प्रकृति की सौन्दर्य राशि में किसी एक अज्ञात परोक्ष चेतन सत्ता का आभास, विस्मय भावना, नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण, लाक्षणिकता,

---

1. काव्यकला तथा अन्य निबंध –प्रसाद – पृ0 सं0 89।
2. आधुनिक कवि – 2 (पर्यालोचन) – पंत – पृ0सं0 18।
3. आधुनिक कवि – 1 (अपने दृष्टिकोण से) महादेवी वर्मा

कल्पना का आतिशय्य, नवीन प्रतीक योजना।

इन्ही विशेषताओं के आधार पर छायावाद का विश्लेषण प्रस्तुत है–

छायावादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां

1. व्यक्तिवाद की प्रधानता :–

हिन्दी के छायवादी काव्य की मूलभूत प्रवृत्ति आधुनिक औद्योगिकता से प्रेरित व्यक्तिवाद है। आधुनिक युग की प्रसिद्वन्द्धात्मक व्यवस्था, अधिकार–स्वायन्ता और पूजीवाद नितव्यता के परिणाम स्वरूप व्यक्तिवाद का जन्म हुआ। इस व्यक्तिवाद के फलरूवरूप छायावादी कवि ने स्वच्छन्दतावाद कलावाद की दुहाई दी जो नैसर्गिक थी। छायवादी कविता मूलतः व्यक्तिवाद की कविता है, जिसमें मध्ययुगीन अवशेषों से युक्त भारतीय समाज और व्यक्ति के बीच व्यवधान और विरोध को वाणी मिली है। छायावादी कवि को अपने व्यक्तित्व के प्रति अगाघ विश्वास था और उसने बड़े उत्साह से काव्य के भाव और कलापक्ष में निज व्यक्तित्व का प्रदर्शन किया। अहंभावना छायावादी काव्य की सर्वप्रमुख विशेषता बन गयी और इस प्रकार छायवादी काव्य में वैयक्तिक सुख–दुख की अभिव्यक्ति खुलकर हुई। प्रसाद का 'आँसू' पन्ती जी का 'उच्द्वास' व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति के सुन्दर निदर्शन हैं, निराला जी ने लिखा है–

"मैने 'मैं' शैली अपनाई।
देखा एक दुखी निज भाई।।
दुःख की छाया पड़ी ह्दय में
झट उमड़ वेदना आई।।"

2. प्रकृति चित्रण :–

सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण छायावादी काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है, जिसे तीन रूपों में विभक्त किया जा सकता है नारी सौन्दर्य एवं प्रेम–चित्रण, प्रकृति के सौन्दर्य और प्रेम की अभिव्यंजना अलौकिक 'प्रेम या रहस्यवाद' का चित्रण। छायावादी कवि का मन प्रकृति चित्रण में खूब रमा है। इस काव्य में प्रकृति पर चेतनता का आरोप (मानवीयकरण) किया गया है।

"पगली हाँ सँभाल ले कैसे छूट पड़ा तेरा अंचल।
देख बिखरती है मणिराजी अरी ठठा बेसुध चंचल।। प्रसाद

छायावादी कवि के लिए प्रकृति की प्रत्येक छवि विस्मयोत्पादक बन जाती है, वह

प्राकृतिक सौन्दर्य पर विमुग्ध होकर रहस्यात्मकता की ओर उन्मुख हो जाता है–

"मै भूल गया निज सीमायें जिससे,
वह छवि मिल गई मुझे।"

3. नारी के सौन्दर्य एवं प्रेम का चित्रण :–

छायावादी कवि का नारी चित्रण अपेक्षा कृत सूक्ष्म और श्लील है। इसमें स्थूलता और नग्नता न के बराबर है –

"मील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अघखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग।।"

स्वच्छन्दवादी होने के नाते इस कवि को प्रेम के क्षेत्र में जाति, वर्ण, सामाजिक रीति–रिवाज, रूढ़ियों और मिथ्या मान्यताएं आर मर्यादाएं मान्य नहीं है, निराला लिखते हैं–

"दोनों हम भिन्न वर्ण, भिन्न जाति, भिन्न रूप।
भिन्न धर्म भाव, पर केवल अपनाव से प्राणों से एक थे।।"

इनकी प्रणय गाथा का अन्त प्रायः दुःख, निराशा एवं असफलता में होता है, अतः उसमें मिलन अनुभूतियों की अपेक्षा विरहानुभूतियों का चित्रण अधिक हुआ है और इस दिशा में इन्हें प्रशस्य सफलता मिली है– पन्त जी के शब्दों में –

"शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर, विरह अहह कराहते इस शब्द को।
किसी कुलिश की तीक्ष्ण चुमती नोंक से, निठुर विधि ने आँसुओं से है लिखा।।"

4. रहस्यवाद–अलौकिक प्रेम चित्रण :–

छायावाद में बाहय पदार्थो की अपेक्षा आंतरिकता की प्रवृत्ति अधिक होती है। यह अन्तर्मुखी प्रवृत्ति मनुष्य को रहस्वाद की ओर अग्रसर करती है। इसलिए छायावाद के प्रत्येक कवि ने फैशन के रूप में, नाम कमाने के रूप में या आंतरिक अनुभूतियों के प्रदर्शन के रूप में रहस्यावादी भावना की अभिव्यक्ति की है। इस प्रकार छायावादी रहस्यात्मकता में स्वभाव–भिन्नता के कारण व्यंजना और प्रतीकों में अनेक रूपता मिलती है। निराला तत्व ज्ञान के कारण तो पन्त प्राकृतिक सौन्दर्य से रहस्योन्मुख हुए। प्रेम और वेदना ने महादेवी वर्मा को रहस्योमुख किया तो प्रसाद ने उस परमसत्ता को अपने बाहर खोजा। एक बात यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि छायावाद के रहस्यवादी कवियों में वह तन्मयता और विराहानुभूति की तीव्रता नहीं जो कबीर आदि में। सच तो यह है कि इनमें स्वाभाविकता के स्थान पर कृत्रिमता है। रहस्यवादी कवि लौकिकता से अलौकिक और स्थूल से सूक्ष्मता की ओर अग्रसर

होता है, किन्तु इन छायावाद के रहस्यवादियों का क्रम उल्टा ही है। उदाहरण देखिए–

"पिय चिश्न्तन है सजनि

" क्षण–क्षण नवीन सुहागिनि मैं

तुम–मुझ में फिर परिचय क्या।"

5. देश–प्रेम :–

राष्ट्रीय जागरण की क्रोड़ में पलने–पनपने वाला स्वच्छन्दता छायावादी साहित्य भी राष्ट्र–प्रेम की भावना को साथ लेकर चला। सच तो यह कि राष्ट्रीय जागरण ने छायावाद के व्यक्तिवाद को सामाजिक पदो पर भटकने से बचा लिया छायावादी कवि में आंतरिकता की कितनी भी प्रधानता क्यों न हो वह अपने युग से निश्चित रूप में प्रभावित हुआ है–

"अरूण यह मघुमय देश हमारा"

अथवा

" हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती"

इस प्रकार की राष्ट्र–प्रेम भावनांए प्रायः प्रत्येक छायावादी कवि की रचनाओं में अभिव्यक्ति हुई है।

6. वेदना और निराशा :–

छायावादी कविता में वेदानोनुभूति के विबिध रूप मिलते है। कहीं यह अनन्त वेदना के रूप में है, तो कहीं करूणा के रूप में अन्यत्र निराशा की भावना के रूप में। प्रसाद और महादेवी के काव्य में वेदानानुभूति का दर्शन सेवावाद और अध्यात्मवाद है।

"प्रिय। जिसने दुःख पाला हो।

वर दो यह मेरा ऑसू

उसके डर की माला हो।

मैं दुःख से श्रृंगार करूँगी।" महादेवी

7. विज्ञान का प्रभाव :–

आधुनिक युग की सबसे अधिक प्रगति वैज्ञानिक आविष्कारों में देखी जा सकती है। वैज्ञानिक युग में बौद्धिक प्रक्रिया का प्राधान्य हुआ और एक वैज्ञानिक संस्कृति का जन्म हुआ। बिखरे हुए शक्ति के कणों का संयोजन करके मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त की है। इसी से विश्व की दुर्बलता बल में परिणत होगी और मानव–संस्कृति की चेतना का इतिहास सुन्दर

होगा–

"शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे है, हो निरूपाय।
समन्वय उनका करें समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।।" – प्रसाद–कामायनी

वैज्ञानिक संस्कृति में बुद्धिवाद का महत्व बहुत अधिक है। प्रसाद जी की 'इड़ा' भी बुद्धिवाद की प्रतीक है–

"बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।
वह विश्व मुकुट सा उज्जवलतम शशि खण्ड सदृश था स्पष्ट भाल।।"

8. गीत और प्रगति मुक्तक :–

वैयक्तिकता और आत्मभिव्यंजन के कारण छायावादी कविता में गीत तत्व का विकास हुआ। महादेवी जी ने गीत की परिभाषा इस प्रकार की है" सुख–दुःख के भावोवेशमयी अवस्था विशेष का गिने चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। गीत यदि दूसरे का इतिहास न कह कर वैयक्तिक सुख–दुःख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है, इसमें सन्देह नहीं। मीरा के ह्रदय में बैठी हुई नारी और विरहिणी के लिए भावातिरेक सहज प्राप्त था। " इस प्रकार छायावादी आत्मभिव्यंजक कविता सहज ही गीत–प्रधान हो गयी। फिर भी यह गीत पुराने गीतों से इस बात से भिन्न है कि इनमें संगीतात्मकता स्वयं सिद्ध है, चाहे वह संगीत शास्त्रानुकूल न हो। ये गेय है। ये स्वच्छन्द शैली पर रचित है इनमें संगीत शास्त्र का आधार नहीं है, वरन् स्वतन्य रूप से छन्द, लय और गेयता का विधान है– 'निराला' की 'गीतिका' में इसके सर्वोत्तम उदाहरण मिलते है। महादेवी की कविता में भी गीति–तत्व का सुन्दर विकास हुआ है। प्रगति मुक्तकों में स्वतंत्र छन्द और लय की योजना तो है, किन्तु गेयता का निश्चित विधान नहीं है। इसमें मुक्तक छन्द का प्रयोग ही अधिक है।

9. प्रतीकात्मक शैली और अलंकार योजना :–

अलंकार योजना की दृष्टि से छायावादी काव्य में लाक्षणिक वक्रता मिलती है वह उत्कृष्ट है। शुक्ल जी के अनुसार " आभ्यंतर– प्रभाव–साम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रचुर विकास छायावाद की काव्य शैली की असली विशेषता है। "शुक्ल जी ने छायावादी चित्रभाषा शैली या प्रतीक पद्धति के अन्तर्गत प्रस्तुत प्रसंग के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाले अप्रस्तुत चित्रों की योजना देखकर उसकी अन्योक्ति पद्धति की

सराहना की है।

1. "धूल की ढेरी में अनजान, छिपे हैं मेरे मधुमयगान।"
2. "मर्म पीड़ा के हास"
3. "कौन तुम अंतुल अरूप अनाम।" पन्त–पल्लव

10. चित्रात्मकता :–

चित्रात्मकता छायावादी कविता की मुख्य प्रवृत्ति है –

"शशि मुख पर घूंघट डाले, आँचल में दीप छिपाए।

जीवन की गोधूलि में कौतूहल से तुम आए।" प्रसाद,

भाषा और शब्द–चयन का सौन्दर्य प्रसाद, महादेवी, निराला, पंत में देखने योग्य है। छायावादी कवियों ने बहुत से अंग्रेजी अलंकार जैसे मानवीकरण, विशेषण–विपर्यय, ध्वनिचित्रण आदि अपना लिये हैं जिससे भाषा की चित्रमयता बहुत बढ़ गयी है। प्रसाद जी ने कामायनी में मानवीकरण की पद्धति का सुन्दर परिचय दिया है तो कुछ स्वच्छन्द कवियों जैसे पंत ने व्याकरण की कड़ियाँ भी तोड़ने का प्रयत्न किया है।

छायावाद के दोष :–

कल्पना की अति ने छायावाद को हमारे जीवन से दूर हटा दिया और इसके पतन का कारण भी बना। कल्पना–क्लिष्टता के कारण जहाँ एक ओर इसमें अस्पष्टता आयी वहाँ इसे अपेक्षित जन–प्रियता भी प्राप्त न हो सकी। सच यह है कि जो जनता को छोड़ देता है, जनता उसे छोड़ देती है। डॉ0 केसरी नारायण के शब्दो में "उसका काव्य मन्दिर ऐसा बन गया, जिसमें सबका प्रवेश न था और उसका वह स्वयं ही पुजारी बना। पूजा विधि तथा पूजा के उपादानों के चयनों में वह पूर्ण स्वतंत्र था। अपने व्यक्तित्व की पृथकता दिखाने के लिए वह नवीनता तथा मौलिकता के नाम पर असमान्य की ओर कभी–कभी बहुत दूर बढ़ गय। भाषा, भावना तथा भावाभिव्यंजना का असामान्य रूप कभी–कभी इसी कारण दिखायी पड़ता है।" कही–कही इनमें अनुभूति में कृत्रिमता और विचारगत तथा रागात्मक असामंजस्य है। इसमें कुछ शैलीगत दोष भी उपलब्ध होते है, जैसे अशुद्ध प्रयोग, अस्पष्टता, कल्पना की क्लिष्टता, उपमानों का अस्वाभाविक प्रयोग। इससे रसानुभूति में व्याघात उपस्थित हुआ है।

पन्त जी छायावाद के ह्रास के कारणों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं " छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी, नवीन आदर्शो का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्य–बोध और नवीन विचारों का रस नही था।"

छायावादी साहित्य में पलायनवाद था।''

महत्व :–

पंत जी के विचारों से मैं सहमत नही हूँ। छायावाद के पास अपना विचार–दर्शन, आदर्शवाद, विश्व मानवतावाद और सौन्दर्य बोध के पर्याप्त उपकरण विद्यमान हैं। छायावादी धारा के मन्द पड़ जाने के और कई कारण हो सकते हैं, सच तो यह है कि 'प्रसाद' के बाद छायावाद को कोई ऐसा दृढ़ व्यक्ति नहीं मिला जो इसका यथोचित नेतृतव कर सकता। यहाँ मैं स्पष्ट कहना चाहूँगी कि विषय की दृष्टि से अलौकिक न होने पर भी यह काव्य श्रेष्ठ है। छायावाद इसलिए भी श्रेष्ठ है कि उसने मानव को महत्व दिया। बीस वर्षो की छोटी–सी अवधि में इसने खड़ीबोली को सरस, सकुमार और सौष्ठव सम्पन्न करके काव्योंपयुक्त बना दिया। काव्य में व्यक्तिवाद आर गीति–तत्व की प्रतिष्ठा इस धारा की अनुपम देन है। डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में 'इस कविता का गौरव अक्षय है। उसकी समृद्धि की समता केवल भक्ति–काव्य ही कर सकता है।'' वस्तुतः आधुनिक हिन्दी–काव्य को सुन्दर शब्द कोश और कोमल मधुर अनुभूतियां छायावाद की ऐतिहासिक देन है। यह सत्य है कि छायावाद आधुनिक हिन्दी–साहित्य में एक महान् आन्दोलन के रूप में आया इसनें भाव तथा शैली जगत् में एक जबरदस्त क्रान्ति उपस्थित की।

छायावाद के प्रमुख कवि और काव्य :–

जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, एवं सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, छायावाद की बृहत–भया हैं, प्रसाद यदि छायावादी युग के ब्रहमा, पंत विष्णु तो निराला, शिव शंकर है। महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा एवं माखन लाल चतुर्वेदी छायावाद की लघुत्रयी के अन्तर्गत आते है।

1. प्रसाद (1989–1937)

छायावादी काव्य के श्री गणेश कर्त्ता माने जाते हैं। इनकी प्रारम्भिक रचनाओं में छायावाद के दर्शन नहीं होते 1912 में उनका काव्य 'झरना' प्रकाशित हुआ। छायावाद की प्रवृत्तियाँ सर्वप्रथम प्रसाद जी इस कृति में प्रकट हुई, किन्तु वे भी कोई परिपक्व रूप में नहीं। 1930–32 के राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में इनके 'आँसू' काव्य का प्रकाशन हुआ, जिसे प्रसाद जी की छायावाद के सम्बन्ध में अत्यन्त प्रौढ़ रचना समझना चाहिए। 'आँसू' की करूणा 'लहर' में आकर आशामय संदेश से सम्मिलित हो गयी। इसमें कवि आत्मचिन्तक तथा स्वच्छन्दवादी

विद्रोह के रूप में हमारे सामनें आता है –

" ले चल मुझे भुलावा देकर,
मेरे नाविक। धीरे–धीरे।"

'कामायनी' प्रसाद की अन्तिम किन्तु सर्वश्रेष्ठ और छायावाद का एक महाकाव्य है।

2. पन्त :–

सुकुमार भावानाओं के कवि, प्रकृति के साथ उनकी ऐसी प्रगाढ़ रागात्मकता हो गयी कि उसके अनेक सौन्दर्यमय चित्र अंकित किए हैं। वीणा (1918), ग्रन्थि (1920), पल्लव (1918–1924) गुंजन (1919–1932), युगान्त (1934–1936), पंत श्री 1938 लगभग छायावादी से प्रगतिवादी बन गये

3. निराला :–

आधुनिक युग के नये कवियों में महाप्राण निराला सदा निराले रहे। छायवादी काव्य के इतिहास में 'पंत' के 'पल्लव' के समान 'निराला' के 'परिमल' का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसे छायावाद का प्रतिनिधि काव्य कहा जा सकता है। शुक्ल जी ने कहा है कि "निराला में बहुवस्तु–स्पर्शिनी प्रतिभा है।" कुल मिलाकर 'परिमल' में छायावाद की अनेकमुखी प्रवृत्तियों की उदान्त झलक मिलती है। राष्ट्रीय चेतना की सूक्ष्म अनुभूतियों की व्यंजना जितनी गम्भीर और प्रौढ़ स्वरों में परिमल में हुई, उतनी उस समय तक छायावाद के किसी अन्य कवि की वाणी में नहीं हो पायी।

4. महादेवी वर्मा :–

सजल गीतों की गायिका महादेवी वर्मा आधुनिक युग की मीरा कही जाती है। इनकी कविता संगीत कला, चित्रकला तथा काव्य कला का अपूर्व समन्यव है। महादेवी वर्मा छायावाद के क्षेत्र में पन्त, निराला, प्रसाद के बाद में प्रविष्ट हुई किन्तु अन्त तक छायावाद, रहस्यवाद से ही जुड़ी रही है। इनकी रचनांए–नीहार, रश्मि, नीरजा और सांध्य–गीत, दीपशिखा और यामा। 'नीहार' में प्रारम्भिक कविताओं का संकलन है, इसमें वैयक्तिक दुःखद और आध्यात्मवाद की अभिव्यक्ति हुई है। 'नीरजा' में प्रकृति में मानवीय भावनाओं की भव्य झाँकियां एवं विरह–वेदना के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। भावपक्ष की दृष्टि से महादेवी की कविताओं में विरह वेदना, रहस्यवाद एवं छायावाद की विषय गत एवं शैलीगत प्रवृत्तियों का भव्य रूप प्रकट हुआ हैं।

"रूपसि तेरा धन केश पाश।

नभ गंगा की रजत धार में धो आई क्या इन्हें रात।''

ऊपर जिन छायावाद के आधार भूत चार मुख्य स्तम्भों के व्यक्तित्व और कृतित्व का उल्लेख किया गया, इनके अतिरिक्त अन्य भी कुछ कवि हुए जिन्होनें इस क्षेत्र में योगदान दिया। सच तो यह है कि छायावादी काव्य की जो व्यापक चेतना प्रसाद, पंत, निराला एवं महादेवी में मिलती है, वह इस क्षेत्र में 1930 के पश्चात् उदीयमान नवीन प्रतिभाओं में नहीं 1 ये कवि छायावाद की एक प्रवृत्ति विशेष को लेकर आगे बढ़े। इनमें प्रमुख हैं– डॉ0 रामकुमार वर्मा, डॉ0हरिवंश राय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, और रामेश्वर शुक्ल अंचल, इन कवियों में छायावाद की कोई न कोई निश्चित प्रवृत्ति उपलब्ध होती है और साथ–साथ उत्तरोत्तर छायावाद के ह्रास की प्रक्रिया भी दृष्टिगोचर होने लगती है।

4. प्रगतिवाद :–

जो विचारधारा राजनैतिक क्षेत्र तें साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद और दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद के नाम से अभिहित की जाती है। दूसरे शब्दों में मार्क्सवादी या साम्यवादी दृष्टिकोण के अनुसार निर्मित काव्य धारा प्रगतिवाद है। हिन्दी के बहुत से विद्वानों ने 'प्रगतिवाद' और 'प्रगतिशील' इन दोनों को एक–दूसरे के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त किया है, किन्तु ऐसा करना भ्रामक है इन शब्दों के अर्थ में सूक्ष्म अन्तर है– प्रगतिवाद शब्द मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा से सर्वथा सम्बद्ध है जबकि प्रगतिशील शब्द उससे सर्वथा स्वतन्य। किसी भी उपकरण से समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करने वाला साहित्य प्रगतिशील कहला सकता है, और ऐसा करना साहित्य का शाश्वत धर्म है। बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसी, सूर, प्रसाद और गुप्र का साहित्य प्रगतिशील है, किन्तु उस रूढ़ अर्थ में प्रगतिवादी साहित्य नहीं कहा जा सकता है। प्रगतिवादी साहित्य सामाजिक वैषम्य के निवारण करने के लिए मार्क्सवादी विचारधारा को माध्यम के रूप में अपनाने के लिए विवश है।

आधारभूत सिद्धान्त :–

प्रगतिवादी साहित्य का भूलाधार कार्ल मार्क्स की विचारधारा है। इस विचारधारा को तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है –

(क) द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद :–

मार्क्स के विचारानुसार इस जगत् की उत्पत्ति एवं विकास भौतिक शक्तियों के द्वन्द्व से होता है। दो वस्तुओं एवं शक्तियों के संघर्ष से तीसरी वस्तु की उत्पत्ति होती और यह क्रम

उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। इस प्रकार इस विकास–क्रम ये योग्यता की सत्ता बनी रहती है। मार्क्स, सृष्टि की उत्पत्ति के पीछे किसी आध्यात्मिक शक्ति को स्वीकार नहीं करता है। उसके अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति नही बल्कि इसका उत्तरोत्तर विकास हुआ है। यह भौतिक जगत् (द्वन्द्वात्मकता से) अपने विकास का कारण स्वयं है। यही कारण है कि मार्क्स आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक, मृत्यु के बाद जन्मान्तरवाद आदि को नहीं मानता।

(ख) मूल्य वृद्धि का सिद्धान्त :–

मार्क्स ने किसी वस्तु की वृद्धि के चार अंगों का उल्लेख किया है– मूल, पदार्थ, स्थूल, साधन, श्रमिक का श्रम और मूल्य वृद्धि। इस प्रक्रिया में पूंजीपति द्वारा मूल्य पदार्थ और मशीने जुटाई जाती है जिन पर उसका व्यय होता है सामाजिक आवश्यकतानुसार श्रमिक–वर्ग अधिकाधिक परिश्रम से अधिकाधिक मात्रा में वस्तुत्पादन करता है। इस उत्पादन कर्म में बलिदान तो होता है, श्रमिक के श्रम और उसके स्वास्थ्य का, किन्तु पंतीपति तिजोरी भरने में ही लगा रहता है, श्रमिक की तरफ देखता तक नहीं। लाभ की दशा में श्रमिक और पूंजीपति में उचित अनुपात से धन का बँटवारा न होने के कारण शोषण को प्रोत्साहन मिलता है, जो कि आज की मानवता के लिए एक महान् अभिशाप है। कार्ल मार्क्स के अनुसार किसान और मजदूर शोषित है, जबकि मालिक जमींदार और पूंजीपति शोषक हैं।

(ग) अर्थ–व्यवस्थानुसार विश्व सभ्यता की व्याख्या :–

मार्क्स ने विश्व–मानवता को दो वर्गो में विभाजित किया है 1शोषक वर्ग 2 शोषित वर्ग। वर्ण, जाति धर्म देश एवं सम्प्रदाय–गत भेद उन्हें मान्य नहीं है, उन्होनें विश्व–सभ्यता के इतिहास को चार युगों में बाँटा है – पहला युग दास प्रथा युग था, जबकि श्रमिक की सब वस्तुओं पर उसके स्वामी का एक मात्र अधिकार था, श्रमिक तो दासवत् था। दूसरा युग सामन्ती प्रथा का युग है जिसमें श्रमिक को व्यक्तिगत बातों में तो स्वतन्त्रता मिल गयी किन्तु बाकी सब कुछ पूर्ववत् बना रहा। तीसरा पूंजीवादी व्यवस्था का युग आया जिसमें मजदूर के व्यक्तित्व और उसके श्रम पर तो उसका अधिकार बना रहा। किन्तु उत्पादन और लाभ पर पूंजीपति का अधिकार हो गया। चौथा है साम्यवादी व्यवस्था का युग जिसमें मजदूरों द्वारा उत्पादन के समस्त उपकरणों पर नियन्त्रण होगा और प्रत्येक व्यक्ति को उसके परिश्रम के अनुरूप फल मिलेगा। कार्लमार्क्स साम्यवादी व्यवस्था की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होनें हिंसात्मक क्रान्तिमय उपायों का भी समर्थन किया। साम्यवाद का उद्देश्य है समाज में आर्थिक स्तर पर समता की प्रतिष्ठा करना और इसकी सिद्धि के लिए

शोषित वर्ग को शोषक के विरूद्ध उत्तेजित करना।

द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ होने से विश्व भर में मँहगाई, दरिद्रता और वर्गवाद का बोलबाला हुआ। उसकी समाप्ति और भी भयावह सिद्ध हुई। मॅहगाई बेरोजगारी तथा शोषण का दमन चक्र सर्वत्र बड़ी निर्ममता से चला और इसके अनिष्ट प्रभाव से भारत जैसे दीन देश का पहले बचना कठिन था। देश की इस दयनीय दशा की ओर राजनीतिज्ञ और साहित्यकार का ध्यान जाना आवश्यक था।

सन् 1936 में मुन्शी प्रेमचन्द्र की अध्यक्षता में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। प्रेमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जोश इलाहाबाद जैसे अग्रणी लेखकों और कवियों ने इस आन्दोलन का स्वागत ही नहीं किया उसमें बढ़कर भाग लिया। पंत, निराला, दिनकर, नवीन ने इसमें सक्रिय योगदान दिया। पंत ने अपनी पत्रिका' रूपाभ' के सम्पादकीय में लिखा था –

"इस युग की वास्तविकता ने जैसे उग्र रूप धारण कर लिया है, इससे प्राचीन विश्वासों से प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं।श्रद्धा अवकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा और काव्य की स्वप्न–जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता केउस नग्न रूप से सहम गयी है। अतएव युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण–सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।"

कुछ लोगों ने हिन्दी–साहित्य के प्रगतिवाद को अंग्रेजी के PROGRESSIVE साहित्य का हिन्दी संस्करण तथा अभारतीय कहा जो कि संगत नहीं है। हिन्दी का प्रगतिवाद साहित्यवाद यहाँ की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों की उपज, है इसमें अपना बहुत कुछ है। हाँ, इस पर अंग्रेजी तथा रूसी साहित्य का प्रभाव अवश्य पड़ा है।

प्रगतिवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :–

प्रगतिवादी साहित्यकार ईश्वर को सृष्टि का कर्ता न मानकर जागतिक द्वन्द्व को सृष्टि के विकास का समवायि कारण स्वीकार करता है। उसे ईश्वर की सत्ता, आत्मा, परलोक, भाग्यवाद, धर्म, स्वर्ग, नरक आदि पर विश्वास नहीं है। उसकी दृष्टि में मानव की महत्ता सर्वोपरि है। उसके लिए धर्म, एक अफीम का नशा है और प्रारब्ध, एक सुन्दर प्रवंचना प्रगतिवादी कवि धर्म, समाज तथा उस कथित ईश्वर द्वारा निर्मित नियमों और उपनियमों को छिन्न–भिन्न कर देना चाहता है। उसके लिए मन्दिर, मस्जिद, गीता और कुरान आज महत्व

नही रखते है। उसे अंधविश्वासों मिथ्या परम्पराओं और रूढ़ियों पर प्रखर प्रहार करके मानव को मानव–रूप में देखना अभीष्ट है–

" किसी को आर्य, अनार्य,
किसी को यवन
किसी हूण–यहूदी द्रविड़
किसी को शीश
किसी को चरण
मनुज को मनुज न कहना आह।"

2. शोषितों का करूण गान :–

शोषित मानव–जाति के लिए एक घोर अभिशाप है और इसका निवारण साम्यवादी व्यवस्था का लक्ष्य है। आज के निर्मम शोषण की चक्की के पाटों में पिसने वाले शोषित वर्ग मजदूरों, किसानों एवं पीड़ितों की दशा का प्रगतिवादी कलाकार ने सहानुभूति पूर्ण कारूणिक चित्रण किया है :–

"ओ मजदूर। मजदूर।
तू सब चीजों का कर्ता तू ही सब चीजों से दूर,
ओ मजदूर। ओ मजदूर।।"

3. शोषकों के प्रति घृणा और रोष :–

इस संसार में केवल दो ही जातियां है – शोषक और शोषित। शोषक वर्ग व्यापारी, जमींदार।

उद्योगपति :–

प्रारब्ध के नाम पर पूंजीवादी व्यवस्था को बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील हैं और जब तक यह पूंजीवादी व्यवस्था बनी रहेगी, तब तक शोषण का अन्त असम्भव है। प्रगतिवादी इस जधन्य व्यवस्था को कुचल देने के पक्ष में है–

"श्वानों को मिलता वस्त्र दूध, भूसे बालक अकुलाते है।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ो की रात बिताते हैं।।
युवती की लज्जा बसब बेचः जब चुकाये जाते ही मलिक
तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं।।

पापी महलों का अहंकार देता मुझकों तब आमन्त्रण। –दिनकर

4. क्रान्ति की भावना :–

साम्यवादी व्यवस्था की प्रतिष्ठा के लिए सामन्तवादी परम्पराओं का समूल नाश आवश्यक है। केवल परम्पराओं का नाश ही पर्याप्त नहीं बल्कि शोषक वर्ग का सर्वथा ध्वंस वांछनीय है, अतः प्रगतिवादी कवि क्रान्ति के उन प्रलंयकारी भैरव स्वरों का अहान करता है, जिनसे जीर्ण–शीर्ण रूढ़ियों एवं परम्पराएं किसी गहन अनल में सदा के लिए विलीन हो जायें –

" कवि कुछ ऐसी तान सुनाओं।
जिससे उथल–पुथल मच जाये।" नवीन
"आ कोकिला बरसा पावक कण।
नष्ठ भ्रष्ट हों जीर्ण पुरातन।। – पंत

5. मार्क्स तथा रूस का गुणगान :–

इस धारा के बहुत से कवियों ने साम्यवाद के प्रवृर्तक मार्क्स तथा रूस, जहाँ उनकी विचारधारा पाल्लवित और पुष्पित हुई दोनो का उन्मुक्त गाव किया इस बात का विचार न करते हुए कि क्या वहाँ की मान्यताएं भारत के लिए उपयोगी भी सिद्ध हो सकती हैं या नहीं।

"लाल रूस है ढाल साथियों। सब मजदूर किसानों की
वहाँ राज है पंचायत का, वहाँ नहीं है बेकारी।
लाल रूस का दुश्मन साथी। दुश्मन इन्सानों का।
दुश्मन है सब दुश्मन साथी। दुश्मन सभी किसानों का। – नरेन्द्र शर्मा

6. मानवतावाद :–

प्रगतिवादी कवियों के दो समुदाय हैं एक तो अपनी मातृभूमि के लिए लिखता है और अपने ही देश के भिखमंगों, किसानों, मजदूरों, वेश्याओं, विघवाओं का उद्धार करना चाहता है। दूसरा समुदाय समस्त मानवता का उद्धार चाहता है। संसार के सब पीड़ितों से प्यार एवं सहानुभूति है।

"जाने कब तक घाव भरेंगे इस घायल मानवता के ?
जाने कब तक सच्चे होंगे, सपने सबकी समता के ? नरेन्द्र शर्मा

7. वेदना और निराशा :–

छायावाद तथा प्रगतिवाद दोनों में वेदना का चित्रण हुआ है, किन्तु प्रगतिवाद की

वेदना वैयक्तिक और सामाजिक है जबकि छायावाद में उसका वैयक्तिक रूप अधिक है। प्रगतिवादी संघर्षो से जूझता हुआ निराशा नहीं होती। उसे विश्वास है कि वह इस सामाजिक वैषम्य को दूर करने में सफल होगा और वह उस समता के स्वर्ण विहान की आशा करता है। उसकी ओजस्विनी वाणी शोषित–वर्ग को स्फूर्ति प्रदान करके उसे अत्याचार के विपरीत मोर्चा लेने के लिए तैयार करती है।

8. नारी–चित्रण :–

प्रगतिवादी कवि के लिए मजदूर तथा किसान के समान नारी भी शोषित है जो कि युग–युग से सामान्वाद की कारा में पुरूष दासता की लौहमयी श्रृंखलाओं से बद्ध बन्दिनी के रूप में पड़ी है। वह अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व खो चुकी है और वह केवल रह गयी है पुरूष की वासना–तृप्ति का उपकरण –

"योनि नहीं है रे नारी वह भी मानवी प्रतिष्ठित।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित।।" पंत

9. सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण :–

प्रगतिवादी काव्य में निम्नवर्ग के जीवन की प्रतिष्ठा हुई। इससे पहले साहित्य में मध्य वर्ग तथा उच्च–वर्ग का जीवन प्रतिबिम्बित हुआ था। आज के वैज्ञानिक युग के कवि के समुम्ख अनेक प्रबल भौतिक समस्याए है उसे अतः अध्यात्मिकता की चिन्ता नहीं। आज उसे व्यक्ति और समाज के कटु–सत्यों के सामनें ऐश्वर्य, विलास, सुमन, सुरभि और मादक वसन्त फीके लगते है। जीवन के अनाचार, भूख की पुकार और पीड़ित की हाहाकार ने उसे व्यथित बना दिया है। आज वह आकाश में विचरण करने की अपेक्षा पृथ्वी के जीवन को खुली आँख से देखने और लिखने लगा –

"हाय मृत्यु का ऐसा अभर उपर्थिव पूजन।
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।। – पंत

10. सामायिक समस्याओं का चित्रण :–

प्रगतिवादी कवि देश और विदेशों की सामायिक समस्याओं के प्रति भी अत्यन्त सजग रहा है। उसके लिए विश्व संस्कृति और मानवतावाद की प्रतिष्ठा के लिए ऐसा करना आवश्यक भी था। इस साधन के द्वारा उसके साहित्य में जीवन वास्तविक रूप से प्रतिबिम्बित हुआ। हिन्दुस्तान–पाकिस्तान–विभाजन, कश्मीर–समस्या, बंगाल का अकाल, मँहगाई, दरिद्रता,

बेकारी और चरित्रहीना आदि का प्रगतिवादी कवि ने मार्मिक वर्णन किया है –

"बापू मेरे ....

अनाथ हो गई भारत माता

अब क्या होगा.........।

इन सामाजिक समस्याओं के चित्रण में कवि ने अनेक सुन्दर व्यंग्य और हास–परिहास आदि का भी उपयोग किया है। 'नागार्जुन' ने आज की थोथी आजादी पर व्यंग्य कसते हुए कहा है –

"कागज की आजादी मिलती

ले लो दो–दो आने में।"

11. कला सम्बन्धी मान्यता :–

प्रगतिवादी कलाकार जितना अनुभूति–पक्ष के सम्बन्ध में चिन्तित है उतना अभिव्यक्ति–पक्ष के सम्बन्ध में नहीं। कवि पन्त कहना है –

"तुम वहन कर सको, जन मन में मेरे विचार।

वाणी मेरी चाहिए वन्या तुम्हें अलंकार।"

संघर्ष :–

कालीन कवि को क्रान्ति की भावना या कलात्मकता में से एक को अपनाना उसका रक्षण करना होता है। प्रगतिवादी कवि को क्रान्ति की भावना के प्रचार के लिए कलात्मकता का बलिदान देना पड़ा क्योंकि इसके बिना वह निम्न वर्ग तक पहुँच ही नही सकता था। प्रगतिवादी काव्य सरलता और सहज बोधगम्यता है, उसमें किसी का आडम्बर नहीं है। प्रगतिवादी काव्य में भाव, भाषा, छन्द, अलंकार सभी दिशाओं में स्वाभाविक प्रगति हुई। भाषा–भावा नुसारिणी है, वह सरल, सुबोध और भावाभिव्यंजना में सक्षम है। छन्द के क्षेत्र में कवियों ने उदार दृष्टिकोण से काम लिया है। मुक्तक और अतुकान्त छंदों के साथ इन्होनें गीतों और लोकगीतों की शैली का भी प्रयोग किया है। प्रगतिवादी की भाषा में पहले–पहल कर्कशता और खुरदरापन था, किन्तु शनैः शनै उसमें कोमलता और सरसता का संचार होने लगा। अलंकार क्षेत्र में भी इन्होनें रूढ़ उपमानों का परित्याग करते हुए नवीन रूपक, उपमान एवं प्रतीक प्रस्तुत किये –

"खुल गये छन्द के बन्ध, प्रास के रजत पाश।

अब गीत मुक्त औ युगवाणी, बहती आयास।।

बन गये कलात्मक भाव जगत के रूप नाम।

जीवन संघर्षण देता सुख लगता ललाम।। – पन्त

प्रगतिवाद के दोष :–

प्रगतिवादी काव्य के प्रारम्भिक वर्षो को देखकर साहित्य जगत् को यह आशा बंध गयी थी कि भविष्य में चलकर यह भी प्रसाद की 'कामयनी' के समान अपनी कोई अमूल्य निधि प्रदान कर साहित्य को गौरवान्वित करेगा, किन्तु वह आशा पूर्ण न हो सकी और विद्रोह का स्वर अलापने वाला यह काव्य स्वयं रूढ़िग्रस्तता तथा ह्रासोन्मुखी प्रक्रिया का शिकार बन गया। लगभग 20 वर्ष की अवधि में इसने साहित्य के उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक किसी भी क्षेत्र में ऐसा कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं दिया जो अविस्मरणीय हो। प्रगतिवादी काव्यध ारा में सामाजिकता की प्रधानता के कारण उसमें जीवन की स्थूल समस्याओं का विवेचन हुआ और यथार्थता इतनी भर दी कि वह विवेचन का विवरण मात्र रह गया। प्रगतिवादी काव्य में गर्जन–तर्जन अधिक–अधिक है किन्तु उसमें वह अजस्र रसधारा नहीं जो हृदय की पिपासा को तृप्त कर सके। बौद्धिकता के अतिरेक और अति यथार्थवादिता ने इसमें प्रेषणीयता के स्थान पर वीमल्सता ला दी। प्रगतिवादी कवि कूलर में बैठ कर पारकर पेन से कविता लिखता था, जेठ की दोपहर में काम करने वाले मजदूर की। फैशन और फरनायश के लिए लिखी गयी प्रगतिवादी कविताएं साहित्य–कोटि में कभी भी नहीं आ सकती। दूसरे ह्रासोन्मुख प्रक्रिया काल में कुछ प्रगतिवादी कवि नग्न चित्रण को ही सच्चा मार्क्सवाद मान बैठे। तीसरे मार्क्सवाद को अवांछित कट्टरता से अपनाना तथा धर्म प्रधान देश भारत की आध्यात्मिकता का सर्वथा विरोध करना आदि भी प्रगतिवादी कविता के ह्रान्सोमुखता का कारण बना। डॉ0 शिवदान सिंह चौहान लिखते है कि "लेकिन तरूण प्रगतिशील कवि स्वतंत्र रूप से किसी नये काव्यादर्श का अभी सम्यक् विकास भी न कर पाये थे कि उन्होनें राजनीतिक दलबन्दी की मतवादी और साम्प्रदायिक संकीर्णताओं में पड़कर अपनी काव्य–प्रतिभा का स्वयं ही हनन कर डाला।"
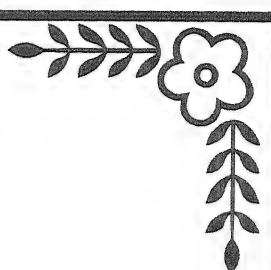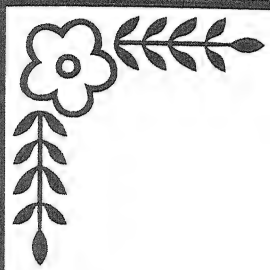
महत्व :–

फिर भी प्रगतिवादी काव्य का अपना महत्व है। यह जीवन के भौतिक पक्ष का अभ्युत्थान करना चाहता है। जीवन की विषमता का निवारण कर मानवता की प्रतिष्ठा इसका उच्चादर्श निश्चित रूप से अभिनन्दनीय है। आवश्यकता इस बात की हे कि प्रगतिवाद को
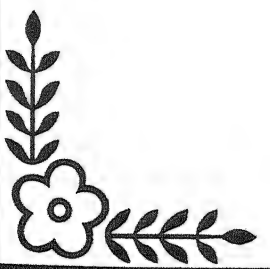
प्रसाद तथा प्रेमचन्द्र जैसा कोई मनीषी कलाकार मिले जो उसके महत्व को स्थायी आधार–शिला का न्यास कर सके। प्रगतिवाद की सत्ता ही उसके महत्व का प्रमाण है। डॉ0 नगेन्द्र के शब्दो में ''भारत में प्रगतिवाद का भविष्य साम्यवाद के साथ बंधा हुआ है लेकिन फिर भी आधुनिक काव्य के अध्ययेता को आदर और धैर्य पूर्वक उसका अध्ययन करना होगा। उसने हन्दी –काव्य को एक जीवन्त चेतना प्रदान की है इसका निषेध किया जा सकता है।''

प्रगतिवादी कवि :–

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी कवि वे है जिन्होनें मार्क्सवाद से प्रभाविक होकर कविताएं लिखी; ऐसे कवियों में डॉ0 शिवमंगल सिंह सुमन, डॉ0 रामविलास शर्मा, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल आदि उल्लेखनीय है। किन्तु इनके अतिरिक्त हिन्दी–साहित्य के कवियों का एक ऐसा वर्ग भी है जिसने मार्क्सवाद का आँख मूंद कर अनुसरण न करते हुए अपने काव्यों में जन सामान्य के लिए प्रगति विधायक तत्वों को विन्यस्त किया है। ऐसे कवियों को प्रगतिवादी न कहकर प्रगतिशील कवि कहना अधिक संगत है। प्रगतिशील कवियों ने मानवतावाद, गाँधीवाद और व्यापक राष्ट्रीयता के प्रचार से समाज और राष्ट्र प्रगतिवाद की ओर प्रेरित किया। इनमें प्रमुख है– पन्त, निराला, भगवतीचरण वर्मा, नवीन, रामेश्वर शुक्ल, नरेन्द्र शर्मा, बच्चन आदि का नाम उल्लेखनीय है।

इनके अतिरिक्त दिनकर, गोपाल शरण सिंह एवं सुभद्रा कुमारी चौहान आदि का भी प्रगतिशील कवियों में विशिष्ट स्थान है।

द्वितीय-अध्याय

अध्याय–द्वितीय
भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य शिल्प
प्रयोगवाद एवं भवानी प्रसाद मिश्र

(क) प्रयोग वाद का नामकरण :–

" छायावादोत्तर काल में प्रगतिवाद के समानान्तर हिन्दी कविता में व्यक्तिवाद की परिणति घोर अंहवादी, स्वार्थ प्रेरित, असामाजिक, उच्छृंखल और असन्तुलित मनोवृत्ति के रुप में हुई। " कविता की इस विद्रूप प्रवृत्ति का शायद अभी तक नामकरण भी नहीं होने पाया है। यही कारण है कि इसे आज तक अनेक नामों से अभिहित किया जा रहा है। प्रयोगवाद प्रतीकवाद, प्रपद्यवाद रुपवाद इसके विविध नाम है। प्रपद्यवाद को प्रारम्भिक अवस्था में 'नकेनवाद" की संज्ञा से अभिहित किया गया। डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त ने प्रयोगवाद को उक्त काव्यधारा के विकास का प्रमुख आधार माना है उनके अनुसार "आरम्भ में जब कवियों का दृष्टिकोण एवं लक्ष्य स्पष्ट नही था, नूतनता की खोज के लिए केवल प्रयोग की घोषणा की गई थी, तो इसे प्रयोगवाद कहा गया था।" इसी आन्दोलन की एक शाखा ने नलिन विलोचन शर्मा के नेतृत्व में प्रयोग को अपना साध्य स्वीकार करते हुए अपनी कविताओं के लिए प्रपद्यवाद का प्रयोग किया

प्रगतिवाद से प्रयोगवाद का उक्त पार्थक्य किन परिस्थितियों में हुआ, यह भी विचारणीय है। प्रगतिवाद जब मार्क्सवादी दर्शन एवं दलगत राजनीति से बद्व हो गया, उसमें राजनीतिक जागरुकता का प्राधान्य हो गया और सबसे अधिक मध्यम वर्गीय चेतना का प्रकाशन करते–करते कविगण ऊब गए तब उनमें अहंवाद और व्यैक्तिकता की भावना आई। इन भावनाओं को बढ़ाने वाला पाश्चात्य दार्शनिकों का प्रभाव भी महत्वपूर्ण है। प्रगतिवाद को डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने मानवता का तिपरीतार्थक माना है।

अति यथार्थवादी के प्रमुख लेखक "फ्रांस के जोला" का कथन है – " साहित्य में हमें मानव के मांस एवं मस्तिष्क का विश्लेषण करना है।" विश्व कवि "वाल्ट ह्विटमैन" का कथन है– "मैं आदि से अन्त तक शरीर–विज्ञान गाता हूँ। मैं अपने शरीर पर कविता करूगाँ, अपनी अपूर्णता के गीत गाऊँगा ताकि मैं पूर्णता और आत्मा तक पहुँच सकूँ।"

इस कथन में काल्पिनिक जगत का आश्रय खोजकर मन को सन्तुलित करने का दर्शन है। यह पूर्णयता वैयक्तिकता एवं अंहभाव की अभिव्यक्ति करता है। प्रकृतिवादी लेखकों में

'फ्रायड़, युग, एडलर का प्रभाव देखने योग्य है।

प्रयोगशील काव्य–कवि आलोचकों की दृष्टि में –

यहॉ तक प्रयोगवाद का ऐतिहासिक विवेचन एवं उस पर विदेशी साहित्य के प्रभाव का निरुपण हुआ। अब हम प्रयोगवादी कविता के विविध पक्षों का उद्घाटन करने वाले प्रमुख प्रयोगवादी कवि आलोचको के कथन प्रस्तुत करेगें।

1. धर्मवीर भारती :–

धर्मवीर भारती जी ने प्रयोगशील कविता की महत्ता इन शब्दों में व्यक्त की है – " "जहाँ तक इस काव्य ने नई परिस्थितियों से प्रभावित नई अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए नये काव्यरुप, नई कल्पनाएँ, नई गठन खोजी वहाँ तक यह काव्य निश्चय ही विकास एवं प्रगति में न केवल सहायक सिद्ध हुआ वरन् वह एक महत्व पूर्ण चरण भी रहा"

.2. श्री रामेश्वर प्रसाद :–

प्राचीन रुढ़ियों और संस्कारों से जब मनुष्यो को एक प्रकार की ऊब की चाह रखता है इसी कारण मानव सौन्दर्य के हो जाती है तब वह नवीनता की चाह मानदण्ड भी बदलते है जैसे–छायावाद का सूक्ष्म भाव–सौन्दर्य, प्रगतिवाद युग में सामाजिक यथार्थ दर्शन की भूमिका पर उत्तर आया।

3. अज्ञेय :–

अज्ञेय जी प्रयोगवाद के सैद्धान्तिक पक्ष का उद्घाटन करते हुए कहते है प्रयोगशील कविता में नए सत्यों या नई यथार्थताओं का जीवित बोध भी है उन सत्यों के साथ नये रागात्मक सम्बन्ध भी और उनकों पाठक या सहृदय तक पहुँचाने की शक्ति है। इसी लिये कलाकार व्यक्ति सत्य को व्यापक बनाने का स्नातक उत्तर दायित्व अब भी निबाहना चाहता है।

4. गिरिजा कुमार माथुर :–

माथुर जी नवीन प्रयोगों के साथ लक्ष्यों की भी चर्चा करते है– प्रयोगों का लक्ष्य है व्यापक सामाजिक सत्य के खण्ड अनुभवों का साधारणीकरण करने में कविता को नवानुकूल माध्यम देना जिसमें व्यक्ति द्वारा इस 'व्यापक सत्य' का सर्व बोधगम्य प्रेषण सम्भव हो सके।

5. डॉ0 देवराज :–

देवराज ने इस कविता का उद्भव एवं विकास इस प्रकार दिखाया है उनका मानना है – पुरानी कविता रुढ़ि ग्रस्त एवं अरोचक हो चुकी थी। इस प्रकार सामाजिक यथार्थ एवं जन जीवन को लेकर चलने वाला प्रयोग इस अभिव्यंजना शैली की समस्या का हल कर रहा था। इस अर्थ में वह इलियट पाउण्ड आदि की शैली से बेहद प्रभावित है।

6. श्री हंस कुमार तिवारी :–

श्री तिवारी जी ने प्रयोग का त्रुटियों का परिहास करते हुए कहा– वर्तमान युग प्रेरणाओं के प्रयोग का युग है। इसी लिए इसमें त्रुटि है, अभिनय है, असंयम है। जब इसकी गवेषणा खत्म हो जायेगी और निष्कर्ष हो जायेगा, तो साहित्य की गंगा अश्विन धारा–सी संयत एवं निर्मल हो जायेगी। यही विद्रोह फिर श्रृंखला बद्ध हो जायेगा।

कुछ आलोचकों एवं कवियों ने प्रयोगवाद की धारा को अस्वस्थ बतलाया है। उन्होनें इसके प्रति क्षोभ प्रगट किया है। पं0 नन्द दुलारे वाजपेयी जी प्रयोगवाद के घोर विरोधी है। वे प्रयोग मात्र का साहित्य क्षेत्र में कोई स्थान नही मानते।

इसी लिए उनकी दृष्टि में ये वैचित्य प्रिय, अतिरिक्त बुद्धिवाद से ग्रस्त एवं वृत्ति के सहज अभिनिवेश से शून्य प्रयोगवादी रचनाएँ अनुभूति की ईमानदारी से रटित है। इसीलिए इन्होनें अपना फैसला सरपंच की तरह सुना दिया ''किसी भी अवस्था में यह प्रयोगों का बाहुल्य वास्तविक साहित्य–सृजन का स्थान नही ले सकता है।'' इसी लिए उनकी दृष्टि में प्रयोगवादी रचनाएँ काव्य की चौहद्दी में नहीं आती है।

प्रयोगवादी कवियों में प्रभाकर माचवे'' ने व्यंग्य की तीक्ष्णता को ''गिरिजा कुमार'' ने नवीन प्रयोगों को '' अज्ञेय'' ने यौन कल्पनाओं को विशेष स्थान दिया है। ''गजानन मुक्ति बोध'' ने उक्ति वैचित्य की सृष्टि करके कविता को दुरुह बना दिया है। उनके सम्बन्ध में यह आक्षेप खरा उतरता है – ''प्रयोगवादी सदैव नवीन प्रयोगों के अन्तेषण में लगा रहता है। वर्ण्य विषय या भाव को मनोर एवं सुबोध बनाने में समर्थ नहीं हो पाता है।'' प्रयोगवाद के कतिपय विद्वानों की यह चेतावनी उपयुक्त थी कि ''हिन्दी की वर्तमान कविता में हृदय एवं मस्तिष्क, अनुभूति और उक्ति वैचित्य के उचित समन्वय की आवश्यकता है।''

प्रयोगवादी कविता के सिद्धान्त पक्ष का उद्घाटन करते हुए हमनें उसके विविध आलोचकों की विचारधारा का भी संक्षेप में परिचय दिया। उक्त विस्तृत विवेचना का लक्ष्य है, इस कविता के सम्बन्ध में विविध दृष्टिकोण से पाठको का साक्षात् परिचय कराया और शायद

इसी लिए प्रमुख आलोचकों का उद्धरणा की गई है।

प्रयोगवाद का विकास :-

उत्तर छायावादी काव्य की धारा को विकास क्रम की दो भागों में विभक्त किया जा सकता है— (क) प्रयोग काल में (1943—53) (ख) विकास काल (1953—अब तक)

1943 में "अज्ञेय" जी के सम्पादकत्व में विभिन्न कवियों की कविताओं का संग्रह "तार सप्तक" (प्रथम भाग) प्रकाशित हुआ। इन कविताओं में प्रवृत्तिगत साम्य की अपेक्षा पारस्परिक वैषम्य अधिक है। अज्ञेय जी उक्त पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं— " उनके एकत्र होने का कारण यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं है, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं है। अभी राही है— राही नही राहों के अन्वेषी।"

प्रथम तार सप्तक के कवि है —श्री अज्ञेय, गजानन माधव, मुक्ति बोध नेमिचन्द्र जैन भारत भूषण अग्रवाल प्रभाकर माचवे गिरिजा कुमार माथुर रामबिलास शर्मा।

1951 में द्वितीय तार सप्तक प्रकाशिक हुआ जिसमें— भवानी शंकर मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरि नारायण व्यास शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती की रचनाएँ मुख्य हैं।

इसके अतिरिक्त प्रयोगवाद के प्रवर्तक श्री अज्ञेय जी ने "प्रतीक" नामक पत्रिका निकाली, जिसमें समय—समय पर प्रयोग वादियों की कविताएँ प्रकाशित होती रही। पटना से निकलने वाले दो पत्र 'दृष्टिकोण ' और 'पाटल' प्रयोगवादी कविता में महत्वपूर्ण स्थान करते है।

तार सप्तक परम्परा के अतिरिक्त कुछ और है जिनमें प्रमुख हैं— चन्द्र कुँवर वर्त्वाल , राजेन्द्र यादव सूर्य प्रताप और केदारनाथ सिंह। तारसप्तक परम्परा के सभी कवि प्रयोगवादी हो ऐसी बात नही है।

प्रयोगवादी साहित्य कारों का मानना है — "साहित्य में प्रयोग आदि काल से होते आये हैं।" प्रयोग वादी साहित्य का प्रारम्भ "निराला" के कुकुरमुत्ता और नये पत्ते से मानते है। सुमित्रानन्द पन्त प्रयोगशील कविता का जन्म छायावादी काल से मानते है। उनका कहना है— प्रसाद ने प्रलय की छाया और करुणा की कछार लिखकर वस्तु तथा छन्द सम्बन्धी नवीन प्रयोग प्रारम्भ कर दिये थे।" अस्तु प्रयोगवादी साहित्य के उद्भव एवं विकास से पूर्व साहित्य में जो प्रयोग हुए उनमें आन्तरिक स्वास्थ्य के विकास का पूर्ण ध्यान रखा गया और जीवन

को ही प्रयोग रुप में ग्रहण किया गया, किन्तु आज का प्रयोगवादी साहित्य आन्तरिक महत्व को प्रधानता न देकर बाध्य परिर्वतन में ही प्रयत्न शील है।'' नवीन जीवन प्रेरणा को व्यक्त करने के लिए ही कला रूपों में नये प्रयोग सफल होते है। प्रयोगों के लिए प्रयोग करके नहीं।'' प्रयोगवादी कविता में प्रयुक्त प्रतीकों लक्षणा एवं व्यंजना नामक शब्द शक्तियों का प्रवेश सवर्धा निषिद्ध है। इन प्रतीकों को केवल नये सौन्दर्य एवं आधुनिक बोध से सम्पन्न नवीन कविता का लेखक ही समझ सकता है। इन प्रतीकों में साधारणीकरण तथा भाव सम्प्रेषणीय की मात्रा का सर्वधा अभाव है। कला और साहित्य के क्षेत्र में नये प्रयोगों प्रतीकों बिम्बों की सार्थकता तभी है जब वे सत्योन्मुख जीवनोन्मुख शिवोन्मुख तथा सुन्दरोन्मुख हों।

प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :—

प्रयोगवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित है :—

1.घोर अंह निष्ठ व्यक्तिवाद :—

प्रयोगवादी कविता के लेखक की अन्तरात्मा में अहंनिष्ठ इस रुप में अद्वंमूल है कि वह सामाजिक जीवन के साथ किसी प्रकार का सामन्जस्य स्थापित नहीं कर सकता है। यह एक प्रकार से व्यक्तिवाद की परम विकृति में परिणित है। वैयक्तिकता का अभिव्यंजन आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है। भारतेन्दु द्विवेदी एवं छायावादी युग में वैयक्तिकता की प्रधानता रही है किन्तु वह वह समष्टि से सर्वथा विच्छिन्न नहीं थी। उसमें उदात्त लोक भावना थी। प्रयोगवादी काल में व्यक्तिकता आत्म विज्ञापन एवं प्रख्यापन ही बनकर रह गई।

''एक साधारण नगर के
एक साधारण घर में
मेरा जन्म हुआ
बचपन बीता अति साधारण
साधारण खान—पान
x x x
तब मै एकाग्रमन
जुट गया ग्रन्थों में
मुझे परीक्षाओं में विलक्षण क्षेय मिला[1]।

---

1. भारत भूषण अग्रवाल।

इन पंक्तियों में हिन्दी साहित्य की कहाँ तक श्री वृद्धि होगी इस बात को पाण्क वर्ग ही जान सकता है। डॉ0 शिवदान सिंह चौहान इन कवियों की वैयक्तिकता के सम्बन्ध में लिखते हैं– ''साधारणतया प्रयोगवादी कवियो मे एक दयनीय प्रकार की खोज औद्वव्य भावना, कुण्ठा, निराशा, झुँझलाहट ही व्यक्त हुआ है। यह कवि को प्रमाणित करने का नहीं खण्डित करने का मार्ग है। महान कविता का जन्म सारें संसार को सारे समाज को जीवन के प्रगतिशील आदर्शो एवं नैतिक भावनों को एक उदण्ड और छिछोरे बालक की तरह मुँह बिचकाने से नही होता। सामाजिक बन्धनों के प्रति व्यक्तिवादी प्रतिवाद का यह स्वांग बनकर ही रह जाता है।''

2. सामाजिकता का अभाव :–

प्रयोगवादी समाज कल्याण के आदर्श को लेकर नहीं चलते है। ये व्यक्ति को समाज में चलते हुए देखने के अभ्यासी नही वरन् वैयक्तिक कुरुपन का प्रकाशन करके मध्यवर्गीय मानव की दुर्बलताओं का प्रकाशन करते है इन कवियों की व्यक्तिवाद की अराजकता सबसे अधिक नारी के प्रति व्यक्त की है –

आओ मेरे आगे बैठा
जैसे बैठी होती काली
कांली नागिन दो जिछा वाली
उगलों जहर ओंठ पर
x x x
जैसे बैठी होती बाधिन
लगता हो
अब झपटे मानों अब निगले।[1]

दमित वासनाओं की कुण्ठा का एक चित्र देखिये–

छाया छाया तुम कौन?
ओ श्वेत शान्त धन अवगुंठन।
तुम कौन सी आग की तड़प
छिपाये हुए हो।

1. आरसी प्रसाद

ओ शुभ्र शान्त धन परिवेष्टन।

तुम्हारे अन्ह्रर में कौन सी बिजलियाँ

सोती है।................

वह है मेरे अन्तरतम की भूख[1]

3. कल्पना शीलता की प्रक्रिया :–

छायावादी कवियों ने प्रकृति के चिर–परिचित उपमानों को अपनी उदात्त कल्पना से संजोकर वातावरण में बड़ी मृदुलता पैदा कर दी थी।

प्रयोगवादी कवि उसकी क्षुद्रता का उद्घाटन करने में ही अपनी यथार्थवादिता का परिचय देता है। 'अज्ञेय' ने छायावादी शीतल चाँदनी का उपहास एवं बौद्धिकता का नग्न यथार्थ अपनी कविता में दिखाया है –

वंचना है चाँदनी सित

झूठ वह आकाश का निखधि गहन विस्तार

शिशिर की राका–निशा की शान्ति है निस्तार।

दूर वह सब शान्ति, वह सित भव्यता, वह

शून्य के लवलेप का प्रस्तार।[2]

इन कवियों को रंगीन आवरण में छिपी नग्नता तथा कुरुपता के सभी दर्शन होते है। यही नग्न यथार्थवाद का रुप है। जहॉ ये अपनी यथार्थवादी पैनी दृष्टि फेंकते है वहीं कुरुपता खोज निकलते हैं। उक्त कविता में आगे कवि को जो दिखाई पड़ता है वह उसकी उक्त मानसिक प्रक्रिया का सूचक है –

इधर कंवल झलमिलाते

चेत–हर दुर्धर कुहासे की हलाहल स्निग्ध मुट्टी में

सिहरते से नग्न पगुं टुण्डे

नग्न बुच्चे दइयारे पेड़।

4. लघुता के प्रति दृष्टिगत :–

छायावादी कवियों कल्पना ने अपनी उदान्त के सहारे प्रकृति तथा वस्तु जगत की लघु

---

1. अज्ञेय।
2. अज्ञेय–शिशिर की राका–निशा।

वस्तुओं का सजीव वर्णन किया तथा भानवीय सूक्ष्म भावों का मूर्तिकरण भी। प्रयोगवादी कवियों ने अपनी असामाजिक एवं अंहवादी प्रवृत्ति के कारण ही मानव जगत के लघु एवं क्षुद्र प्राणियों पर साहित्यिक दृष्टिपात करके प्रकृति एवं यंत्र जगत की लघु वस्तुओं को अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। रात्रि के इस चित्रण में यह प्रवृत्ति परिलक्षित होती है :-

ठण्डी हो रही है रात।
धीमी
यंत्र की आवाज
रह–रह गूजँती अज्ञात।
स्तब्धता को चीर देती है
कभी सीटी कहीं से दूर इंजन की
कही मच्छर तड़प भन–मन
अनोखा शोर करते है,
कभी चूहे निकलकर
दौड़ने की होड़ करते है,[1]

5. निराशावाद :-

प्रगतिवादी कविता का कवि अतीत की प्रेरणा और भविष्य की उल्लास मयी उज्जवल आकाक्षा दोनों से विहीन है उसकी दृष्टि केवल वर्तमान पर ही टिकी है। यह निराशा के कुहासे से सर्वतः आवृत्त है। उनका दृष्टिकोण दृश्यमान जगत के प्रति क्षणवादी तथा निराशावादी है। उसके लिए कल निरर्थक है। उसे उसके दोनों रुपों पर भरोसा एवं विश्वास नहीं है। डॉ0 गणपति चन्द्रगुप्त के शब्दो में – ''उनकी स्थिति उस व्यक्ति की भाँति है जिसे यह विश्वास हो कि अगले क्षण यह प्रलय होने वाली है अतः वह वर्तमान क्षण में ही सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहते है आओ हम उस अतीत को भूल, और आज की अपनी रग–रग के अन्तर को छूले छू ले इसी क्षण क्योकि कल वे नही रहे, क्योकि कल हम भी नही रहेगें।''

बौद्धिकता की प्रतिष्ठा :-

प्रयोगवादी कवियों ने भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता की प्रतिष्ठा की। 'धर्मवीर भारती ने इस बौद्धिकता का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा '' प्रयोगवादी कविता में भावना है,

---

1. महेन्द्र भटनागर टूटती श्रंखलाएं, द्वि0 सं0 पृष्ठ 65।

किन्तु हर भावना के सामनें प्रश्न चिन्ह लगा है। इस प्रश्न चिन्ह को आप बौद्धिकता कह सकते है। सांस्कृतिक ढाँचा चरमा उठा है और प्रश्न चिन्ह उसी की ध्वनिमात्र है।'' इसी परिप्रेक्ष्य में डॉ0 जगदीश चन्द्रगुप्त जी का कथन है –''यह कविता उन प्रबुद्ध विवेकशील आस्वादकों को लक्षित करकें लिखी जा रही है जिनकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक चेतना नए कवि के समान है। बहुत अंशों में इसकी प्रगति ऐसे प्रबुद्ध भावुक वर्ग पर आश्रित रहती है।''

''अज्ञेय'' की ''हरी घास पर क्षण भर'' कविता में भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता की प्रतिष्ठा हुई हे। इसमें कवि स्वयं ही अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए समाज की शंका को प्रकट कर देता है –

चलों उठें अब,
अब तक हम थे बन्धु
सैर को आये
और रहे बैठे तो
लोग कहेगें
धुधँले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं
वह हम भी हों
तो यह हरी घास ही जाने[1]

प्रेम का स्वरूप :–

प्रयोगवादी काव्य में प्रेम का स्वरूप मनो विश्लेषण वाद से प्रभावित है। उसमें साधानात्मक प्रेम का अभाव है। इसमें माँसल प्रेम एवं दमित भावना तथा वासना की अभिव्यक्ति की प्रचुरता है। प्रयोगवादी कवि अपनी ईमानदारी यौन वर्जनाओं के चित्रण में प्रदर्शित करता है।

अज्ञेय जीने तार सप्तक की भूमिका में इस बात को स्वीकार किया कि– ''आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति सेक्स सम्बन्धी वर्जनाओं से आक्रान्त है। शायद यही कारण है कि प्रयोगवादी कवि में न तो प्रेम का सामाजिक रूप है, न रहस्यात्मक आवरण वाला न छायवाद सा सूक्ष्म एवं भावनात्मक प्रयोगवादी कवि की भावना बादलों कोदेखकर उद्दीप्त होती है–

---

1. हरी घास पर क्षण भर।

आह। मेरा स्वास है उत्तप्त –

धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार

प्यार है, अभिशप्ट

तुम कहाँ हो नारि?

विद्रोह का स्वर :–

कला के क्षेत्र में छन्द विधान तथा भाषा शैली के प्रति विद्रोह हुआ और भाव क्षेत्र में रुढ़ियों का परित्याग कर दिया गया। सामाजिक परिस्थिति की उलझन का जो स्वर "कुकुरमुत्ता" में मुखरित हुआ वह आज भी विद्यमान है –

ठहर, ठहर आततायी जरा सुन ले

मेरे कुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा।

कुवॅर नारायण की कविता में अन्तरात्मा की पीड़ित विवेक

चेतना और जीवन की आलोचना है,

किया तो अबस की तरह बे सबब जीना है या सकुरात की तरह जहर पीना है।

मुक्ति बोध जी ने भी विवेक चेतना की अभिव्यक्ति की है –

मुझे भ्रम होता है कि

प्रत्येक पत्थर में

चमकता हीरा है

हरके छाती में आत्मा अधीरा है

प्रत्येक सुस्मित में

विमल सदा नीरा है

मुझे भ्रम होता है कि

प्रत्येक वाणी में

महाकाव्य पीड़ा है।[1]

अतृप्त रागात्मकता– प्रयोगवाद में विद्रोह के तीव्र उद्‌गार प्रकट हुए है। इसी लिए इन कवियों में अतृप्त रागात्मकता के दर्शन होते हैं। अज्ञेय जी की कविता इस प्रवृत्ति का सुन्दर उदाहरण है –

---

1. चौराहे – मुक्ति बोध।

मकई से लाल गेहुएँ तलुए
मालिश से चिकने है,
सूखी भूरी झाड़ियों में व्यस्त
चलती फिरती पिण्डलियाँ
मोटी डालें जाधों से न अड़े।
सूरज का आइना जैसे नदिया
ईन मदार्नी रानों की चमक
'इन को खूब पसन्द[1]

सामाजिक एवं राजनीतिक विद्रूपता :–

प्रयोगवादी कविता में जीवन का व्यंग्यपूर्ण चित्रण है। नये जीवन की कुरुपता पर कवि की नजर टिकती है। इसी लिए वह व्यंग्य करता है। सामाजिक विद्रूपता के चित्रण में इन कवियों का ध्यान दफ्तर के क्लर्कों ने विशेष रुप से आकर्षित किया –

सबेरे सॉझ चाय पीता है,
डालडा खा खुशी से जीता है,
कौन जाने शरीर में क्या है,
दिल है खाली दिमाग रीता है।
कलम से मन से काम करता है,
यों ही हर दिन को शाम करता है,
है समझदार कि साहब को
बाअदब झुक सलाम करता है।[2]

वैचित्र्य प्रदर्शन :–

अधिकतर प्रयोगवादी कवि वैचित्य प्रदर्शन को लेकर चले है। इनमें वृत्ति का सहज संयोजन प्रायः नहीं मिलता है। कही–कही तो यह वैचित्य प्रदर्शन बड़ा ही हास्यास्पद हो गया है। इनमें कवि का लक्ष्य केवल विलक्षणता, आश्चर्य आदि से अपनी नूतनता प्रकट करना है –

---

1. प्रथम किरण – अज्ञेय।
2. देवराज।

" अगर कहीं मैं तोता होता।

तो क्या होता?

तो क्या होता;

तो होता।

तो तो तो तो ता ता ता ता

होता होता होता होता"

प्रकृति चित्रण :–

प्रयोगवादी कविता में प्रकृति चित्रण शुद्ध कला के आग्रह से पूर्ण है। नया कवि अति वैयक्तिकता से पूर्ण होने के कारण अपने अहं से प्रकृति को परिवेष्ठित करना चाहता है। अतः इनके प्रकृति चित्रण में साम्य की अपेक्षा वैषम्य अधिक है :–

फूटा प्रभात फूटा विहान

वह चले रश्मि के प्राण विहग के गान,

मधुर निर्झर के स्वर

झर झर झर झर।

प्राची का अरुणाभ क्षितिज

मानों अम्बर की सरसी में

कोई फूल रक्तिम गुलाब , रक्मित सरसिज।[1]

जाड़ों की सुबह का यह चित्रण बिम्ब–विचार की दृष्टि से उत्तम है –

(1) रात के कंबल में

दुबकी उजियाली ने

धीरे से मुँह खोला

नीड़ो में कुल बुल कर

अलसाया–अलसाया,

पहला पंक्षी बोला;[2]

(2) नहीं

साँझ

---

1. भारत भूषण अग्रवाल – रूपाम्बरा पृष्ठ–304।
2. कुंवर नारायण सक्सेना – तीसरा तार सप्तक।
3. पन्त – चितम्बरा पृष्ठ 257।

एक असभ्य आदमी की जम्हाई है।[3]

प्रयोगवादी कविता में नारी बिम्बों द्वारा प्रकृति चित्रण दृष्टव्य है–

एक वस्त्र चम्पई रेशमी

उँगली में नगभर पहने

स्नानालय की धरे सिठकनी

वह तू ऊषा

मेरी आँखों पर तेरा स्वागत है।[1]

व्यापक सौन्दर्य बोध :–

सौन्दर्य वाद एक व्यापक एवं शाश्वत प्रवृत्ति है। यह युगानुरुप प्रतीकों एवं भाषा शैली के माध्यम से प्रत्येक युग के साहित्य में प्रकट होती रही है। छायावाद को प्रसाद जी सौन्दर्य की शाश्वत प्रवृत्तिका युगानुरुप प्रकाशन मानते हैं। प्रगतिवाद में सौन्दर्य बोध के मान दण्ड बदले और क्षुद्र तथा निम्न स्तर के मानव जगत में सौन्दर्य का बोध उद्घाटित हुआ। प्रयोगवादी कवि और आगे बढ़ा। अति उपेक्षित वस्तु या स्थान का बड़ा सौन्दर्य पूर्ण वर्णन करना इन कवियों की विशेषता है –

हवा चली

छिपकली की टॉग

मकड़ी के जाले में फंसी रही–फॅसी रही[2]

प्रतीक विधान :–

प्रयोगवादी काव्य में यौन वर्जनाओं की अभिव्यक्ति प्रतीकों के माध्यम से हुई बहुत सी मानसिक उलझनों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक पद्धति का विधान मिलता है –

घिर आया नभ,

उमड़ आये मेघ काले,

भूमि के कम्पित उरोजों में झुका सा

विराद, श्वासाहत चिरातुर

छा गया इन्द्र का नील वक्ष[3]

---

1. तीसरा तार सप्तक पृ0 309।
2. मेघराज इन्द्र – हवा चली।
3. अज्ञेय – सावन मेघ।

छन्द योजना :–

प्रयोगों का कहीं अन्त नहीं है। छन्द का क्षेत्र भी अछूता नहीं है। प्रयोगवादी कवियों ने कही–कही गीतों की धुन गीत गढ़े हैं। मुक्त छन्दों में नई लय और नये स्वंर मिलते हैं।

पीके फूटे आज प्यार के पानी बरसा री।
हरियाली छा गई हमारे सावन सरसा री।

अरी सुहागन भरी मांग में भूली–भूली री।[1]

छन्द का एक नवीन विधान डॉ0 मंहेन्द्र भटनागर में मिलता है –

अंधेरा है अंधेरा है,
कि चारों और अंधतम का ही
बसेरा है,
कि जिसने सब दिशाओं को
कुटिल भय पाश से भर मौन घेरा है।

ध्वन्यात्मकता, सुर मैत्री, रंगो का ज्ञान तथा गंध चित्र :–

प्रयोगवादी कविता में ध्वन्यात्मकता की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार प्रयोगवादी कवियों ने अपनी–कविताओं में रंग का भी ज्ञान दिखलाया है। अज्ञेय जी ने अपनी कविता "गंध के डोल डालती" भालती के माध्यम से गंध बिम्ब एवं चित्र का वर्णन किया है।

---

1. शमशेर सिंह।

खण्ड ख

प्रयोगवादी कविता के प्रमुख कवि–अज्ञेय :–

अज्ञेय प्रयोगवादी धारा के प्रवर्तक हैं। वे कहानीकार, उपन्यासकार, कविता लेखक, निबन्धकार एवं आलोचक आदि के रुप में हिन्दी साहित्य में प्रकट हुए। कविता के क्षेत्र में भी अधावधि इनके अनेक कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके है। इनमें – भग्नदूता, चिन्ता, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्र धनुष रौंदे हुए ये अरीओं करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार तथा सुनहले शैवाल प्रमुख हैं। कला के विषय में वे अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं – ''कला सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरूद्ध अपने को प्रभावित करने का प्रयत्न अपर्याप्तता के विरूद्ध विद्रोह है। अपने विद्रोह द्वारा उस जीवन का क्षेत्र विस्तृत कर दिया है। उसे एक नई उपयोगिता सिरतलाई है। जिस हम सौन्दर्य बोध कहते हैं।

जनवादी कविताओं में अज्ञेय जी ने मानव के प्रेम, रूप, यौवन, आनन्द भोग तथा विरह का वर्णन किया है। कुछ कविताओं में वर्ग संघर्ष संत्रास के क्षीण स्वरों के साथ आज के तनाव और दबावपूर्ण मानव जीवन का करुण क्रन्दन भी सुनाई पड़ता है। शिल्प विधान की दृष्टि से ''सुनहले शैलाव'' में संकलित कविताएँ काफी सन्तोष–जनक हैं।

धर्मवीर भारती :–(1916)

प्रयांग वि0वि0 में हिन्दी अध्यापन के अनन्तर आज कल ''धर्मयुग'' के सम्पादक है। पद्मश्री पुरस्कृत भारती जी के काव्य में विकास की कई मंजिले हैं। धर्मवीर भारती जी की कविता का मूल स्वर है जीवन जीने योग्य है। उसे भोगना है, भागना नही है। रुपासिक्त तथा वासना के चित्रण भी इनकी कविता में मिल जाते है।

अब तक इनके प्रकाशित काव्यों में ठण्डा लोहा, सात गीत वर्ष कनुप्रिया विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। इन रचनाओं में भारती जी ने जीवन की एक नई प्रक्रिया को दर्शाया है। कनुप्रिया में राधाकृष्ण के प्रेम को चेतना के एक नये धरातल पर उपस्थित करनेका प्रयास किया है।

सुनो कनु सुनो,
क्या मैं सिर्फ एक सेतु थी
तुम्हारे लिये
लीला भूमि और युद्ध क्षेत्र के
उल्लंहटा धरातल में।

भारती जी की कविता नंव प्रतीक बन्धों बिम्बों अभिनव उपमेयोपमान विधान से संवलित है। उसमें अर्थ की अपार क्षमता है। कनु प्रिया का वैष्णवी महा भाव, सिद्धो का रतिभाव तथा अस्तित्व वादियों का क्षण भाव का अपूर्व सामंजस्य आधुनिक कला कृतियों में इसे महत्वपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित कर देता है।

भारतभूषण अग्रवाल :–(1919)

इनका जन्म मथुरा में हुआ अंग्रेजी में एम0ए0 करने के उपरान्त इन्होनें कलकत्ता और उ0प्र0 में काम किया।

इनके छवि के बंधन जागते रहो मुक्ति मार्गओं अप्रस्तुतमना नामक काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके है। ये संग्रह इनके जीवन के विविध मोड़ों के सूचक है। "छवि के बन्धन में" सौन्दर्य प्रेम और विरह की अनुभूतियों के साथ हुई हैं। कविता के विषय में इनका लक्ष्य सर्वथा उदात्त रहा है। इनका कथन है – "भले ही इनकी कविताएँ महान नहीं है। परन्तु इनमें मन की सच्ची अकुलाहट है। इन कविताओं में आदर्श की उच्चता सर्वत्र लक्षित होती है।

जितनी भी हलचल मचनी है, मच जाने दो
रस विष दोनों को गहरे में पच जाने दो
तभी तुम्हें धरती का आशीष मिलेगा।
तभी तुम्हारे प्राणों में भी यह पलाश का फूल खिलेगा।

दुष्यन्त कुमार :– (1933)

ये भोपाल में हिन्दी विभाग के सहायक निर्देशक हैं। इन्होनें अपनी कविताओं में जीवन चेतना को छोटे–छोटे खण्डों में उभारने का प्रयास किया है। इनके कविता संग्रहों में – सूर्यास्त का स्वगत और आवाजों के घेरे में उपर्युक्त प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है। इनके काव्य नाटक "एक कंठ विषपायी" में जीवन को एक व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है। इनमें कल्पना और अनुभूति पर्याप्त मात्रा में है।

गिरिजा कुमार माथुर :– (1919)

माथुर जी का जन्म मध्य प्रदेश में अशोक नगर में हुआ था। 13 वर्ष की अवस्था में इन्होनें कविता लिखनी प्रारम्भ कर दी थी। इनकी कविता संग्रह– मंजरी, नाश और निर्माण, धूप के धान, शिला पंख चमकीले प्रमुख है। इनका शीर्ष क प्रतीकात्मक हे। इनकी प्रारम्भिक

रचनाओं में छायावादी रोमांस का गहरा प्रभाव रहा किन्तु बाद में प्रयोगवाद के प्रभाव के फलस्वरूप इनकी कविताओं में निराशा, असफलता, विषाढ़, रुग्णता की छाया अंकित है। इनकी रचनाओं में रुप और रस का मांसल चित्रण अब भी बना हुआ है।

गजानन माधव मुक्ति बोध :–(1917–64)

इनकी रचनाओं में स्वस्थ सामाजिक चेतना लोक मंगल की भावना तथा जीवन के प्रति व्यापक दृष्टिकोण विद्यमान है। इनकी कविताओं में तथा कथित अस्तित्ववादियों के क्षणवाद के स्थान पर शाश्वत आशावाद, जीवन की विद्रूपता और क्षण भंगुरता के स्थान पर उसकी सुन्दरता और गतिशीलता निराशा के स्थान पर आस्था तथा व्यक्ति के दर्पाहत अहं के स्थान पर समाष्टि चेतना चित्रित है।

" चाँद का मुँह ढेढ़ा है" में मुक्तिबोध की अधिकांश कविताओं का संकलन हैं। इनकी रचनाओं में बुद्धि जन्य प्रतीक विधान पर्याप्त मात्रा में हैं।

मदन वात्स्यापन :–

इनकी कविताएँ "सप्तक" में संकलित है। ये प्रयोगवाद के प्रभाव से सर्वथा मुक्त है। मदन जी एक नई काव्य परम्परा का निर्माण करना चाहते है। अतः वे किसी पूर्ववर्ती परम्परा के अनुगमन के लिये प्रतिज्ञा बद्ध नहीं है। "अपयगा" नामक कविता में इन्होनें आद्यौगिक मशीनों तथा उस जीवन से प्रभावित नाना समस्याओं की ओर इंगित किया है। प्रकृति चित्रण के विषय में भी इनका एक निजी दृष्टिकोण है। "शुक्रतारा" नामक रचना इसका एक अच्छा उदाहरण है।

कुवँर नारायण :–

इनकी कविताएं "चक्रव्यूह" नामक संकलन में प्रकाशित हो चुकी है। पुस्तक का नाम प्रतीकात्मक प्रतीत होता है। कवि ने आज के समस्याग्रस्त मानव को विघटन कारी सात महारथियो से घिरे अभिमन्यु के रूप में चित्रित किया है। नारायण जी कविता को गम्भीर चिन्तन, प्रयोग सापेक्ष तथा प्रयत्न साध्य मानता है। परिणामतः इनकी रचनाओं में अनुभूमि की जगह बौद्धिकता तथा वैचारिक सिद्धान्तों की भरमार है।

केदार नाथ सिंह :–

इनकी कतिपय रचनाएँ "तीसरा सप्तक" में प्रकाशित हुई है। इनकी आरम्भ की रचनाओं में प्रगतिवाद का प्रभाव था बाद में अज्ञेय जी के अध्ययन से प्रयोगवादी बने। वास्वमें

इनकी कविताओं में प्रगतिवाद प्रयोगवाद तथा नई कविता की प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती है। इन्होनें कविताओं में मुक्तक छन्दों का प्रयोग किया है। केदार जी को बिम्बों और प्रतीकों से अधिक मोह है शायद इसी लिए इनके काव्य में अस्पष्टता तथा दुरुहता भी परिलक्षित होती है।

अजित कुमार :–

इनकी कविताएँ "अकेले कण्ठ की पुकार" नामक काव्य संग्रह में प्रकाशित हुई हैं। इनके अनुसार–नूतन जिन्दगी लाना और नई दुनिया बसाना भी कवि का कार्य है। अजित कुमार जी की कविताओं में परम्परागत अप्रस्तुत प्रतीक विधान तथा काव्य रुढ़ियों के प्रति विद्रोही स्वर है। इन्होनें मध्य वर्गीय बुद्धिजीवियों की मनः स्थितियों के चित्रों को अंकित किया है।

राजेन्द्र किशोर :–

इनकी कविताएँ "स्थितियाँ नामक काव्य संग्रह में संकलित हैं। नई कविता के आलोचकों ने इन्हें "अतिवादों" को छूने वाला कवि कहा है। इन्होने निम्न मध्य वर्ग के व्यक्ति की मानसिक दशाओं का चित्रण किया है। प्रेम के चित्रण में कही–कही मासलता उभर आई है। स्पष्टवादिता इनकी शैली का प्रमुख गुण है। किशोर जी ने अधिकतर मुक्तक छन्दों का प्रयोग किया है।

मलयज :–

इनकी कविताएँ नई कविता में संकलित है। मलयज आधुनिक हिन्दी साहित्य के किसी वाद अथवा दल विशेष से संबद्ध नही हैं। इन्होनें मध्यम वर्ग के बुद्धि जीवियों का सच्चा चित्र अंकित करने का प्रयास किया है। इनकी कविताओं में उच्च वर्ग की संघर्षजन्य पीड़ा निराशा, विवशता आदि की भावनाएँ चित्रित हैं।

विपिन कुमार अगवाल :–

विपिन कुमार की कविताएँ " नई कविता" में प्रकाशित हैं। ये कविताएँ आधुनिक जीवन की अति वैज्ञानिकता, बैद्धिकता, जटिलता और अस्वस्थ्यता से ग्रस्त हैं। इन्होनें मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण यथार्थवादी दृष्टि से यंग्य शैली का किया है। श्रृंगारिक चित्रण में कामुकता उभर आई है। इनकी अभिव्यंजना शैली में पर्याप्त परिस्कृति अपेक्षा है।

शकुन्तला कुमार माथुर :–

इनका "चाँदनी चूनर" नामक काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त इनकी कविताएँ तार सप्तक में स्थान पाने में भी सफल हुई है। कवयित्री स्वभाव से अत्यन्त संकोचशील है। इन्होनें जीवन के साधारण दृश्यों को अंकित करने का प्रयास किया है –

चला जा रहा हिन्दी साहित्य
आलोचनाएँ सो रही बेफिकर
परवाह नहीं है सीट तो रिजर्व

प्रभाकर माचवे :–

प्रभाकर माचवे एक उच्च कोटि के कवि आलोचक निबन्धकार, कहानीकार, सम्पादक एवं रचनाएँ प्रकाशित हुइ हैं। "स्वपन भंग" एवं इन अनुक्षण इनके प्रमुख काव्य संग्रह है।

इन कविताओं में माचवें जी की काव्यानुभूति और अभिव्यंजना शैली पर्याप्त सुन्दर है।

अन्य कवि :–

इस काव्य धारा के और भी नामचीनी कवि है किन्तु विस्तार भय के कारण उन्हें के नामतः ही प्रस्तुत किया जा रहा है –

1. शमशेर बहादुर सिंह 2. अक्षय कुमार सिंह 3.राम सिंह 4. शरद देवड़ा 5. विनोद चन्द्र पाण्डेय 6.राजा दुबे 7. शभुनाद सिंह 8. डॉ0 रामविलास शर्मा 9. अमृतराय 10. डॉ0 देव राज 11. डॉ0 श्याम मोहन श्रीवास्तव 12. नरेश मेहता 13. रघुवीर सहाय 14.त्रिलोकन 15. नेमिचन्द्र 16. राजेन्द्र माथुर 17. राधाकृष्ण सहाय 18. परमानन्द श्रीवास्तव 19. रवीन्द्र भ्रमर 20. रणधीर सिंह।

भवानी प्रसाद मिश्र :–

कविवर भवानी प्रसाद मिश्र के कई नाम–रुप हैं। पंडित भवानी प्रसाद मिश्र, भवानी भाई, भवानी दादा, भवानी बाबू, भवानी मन्ना आदि पर हिन्दी–जगत में वे भवानी माई के नाम से ही विख्यात थे। रुप शिक्षक का, स्वाधीनता सेनानी और जेल यात्री का, सम्पादक का, प्रोड्यूसर का कवि–सर्जक रचनाकार का, किन्तु प्रतिष्ठित वे कवि–रूप में ही हुए। बहुत पहले वे 'कर्मवीर में बाल मोहन के नाम से लिखा करते थे।

"गिर रहा है आज पानी।
याद आता है भवानी।।

भवानी भाई का जन्म 29 मई 1913 को होशंगाबाद (म0प्र0) में हआ था। उन्ही के शब्दों में "मेरे पास मेरी जन्मकुण्डली थी, उसके सहारे समय आदि बताया जा सकता था, किन्तु वह मैनें नर्मदा में विसर्जित कर दी थी, इस लिए केवल जन्मतिथि 29 मई 1913, ग्राम टिगरिया, तहसील सिवनी मालवा, जिला होशंगाबाद से काम चलाइए।"[1]

उनके पिता पं0 श्री सीताराम मिश्र शिक्षा-विभाग में निरीक्षक थे। पत्नी-सरला मिश्र, दो पुत्र हैं- अनुपम मिश्र, अमिताभ मिश्र।

व्यक्तित्व :-

कवि मिश्र के मन पर अपनी धरती और चतुर्दिक परिवेश का जो सहज संस्कार है, वह उन्हें अद्भुत व्यक्तित्व-सम्पन्न बनाता है। 'दूसरा सप्तक' के आत्म-वक्तव्य में वे सहज भाव से स्वीकार करते है कि "छोंटी सी जगह में रहता था छोटी-सी नही नर्मदा के किनारे छोटे से पहाड़ विन्ध्याचल के आंचल में। छोटे-छोटे साधारण लोगों के बीच। साधारण मध्यवित्त के परिवार में पैदा हुए साधारण पढ़ा-लिखा और काम भी जो किये वे भी असाधारण से अछूतें। मेरे आस-पास के तमाम लोगों की सी सुविधाएँ -असुविधाएं मेरी थी।एकदम घटना विहीन अविचित्र मेरे जीवन की कथा हैं।"[2]

शिक्षा-संस्कार एंव क्रिया कलाप :-

भवानी प्रसाद मिश्र का बचपन खण्डवा, बैतूल और सुहागपुर में बीता। उनकी पांचवी कक्षा तक की पढ़ाई सुहागपुर में ही प्रारम्भ हुई। हाईस्कूल नरसिंहपुर तथा होशंगाबाद में उन्हे हाईस्कूल के आखिरी साल में होशंगाबाद से नरसिंहपुर जाना पड़ा, क्योकि होशंगाबाद के प्रधानाध्यापक की उनके पिता को सलाह थी कि आप भवानी प्रसाद का अपने पास रखिए, यह आन्दोलनों में दिलचस्पी लेता है, जो ठीक नहीं है। तथ बी0ए0 राबर्टसन कालेज, जबलपुर (सम्प्रति-महाकौशल महाविद्यालय, जबलपुर) से किया। आगे की पढ़ाई उन्होनें अपने लिए आवश्यक नहीं समझी।

अनन्तर लगभग छह वर्षो तक उन्होनें बैतूल में एक विद्यालय चलाकर वहाँ अध्यापन-कार्य किया। फिर महात्मा गांधी के स्वतन्त्रता आन्दोलनों से प्रभावित होकर 29 वर्ष की अवस्था में सन् 1942 के भारत छोड़ों आन्दोलन में कूद पड़े करीब दो वर्ष आठ महीनें

---

1. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि (भवानी प्रसाद मिश्र) सम्पा0 विजय बहादुर पृ0सं0-3
2. दूसरा सप्तक- पृ0 3।

नागपुर की जेल में बन्द रहे। छूटने के बाद सन् 1946 से 50 तक महिलाश्रम वर्धा में शिक्षण–कार्य किया। फिर 1950 से 51 तक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा से जुड़े रहे। सन् 52से 55 तक हैदराबाद से प्रकाशित 'कल्पना' पत्रिका के सम्पादकीय विभाग में कार्य किया। सन् 1955 से 56 तक आकाशवाणी बम्बई और 1957 में आकाशवाणी दिल्ली में हिन्दी वार्ता विभाग में प्रोड्यूसर के रुप में कार्यरत रहे , फिर 1958 में सम्पूर्ण गांधी वाड्यम' के सम्पादक पर दिल्ली में नियुक्त हुए। शासन–सत्ता से अधिक मानव सेवा को अपने जीवन का उद्देश्य मानने वाले मिश्र जी गांधीवादी विचारक के रुप में सुप्रतिष्ठित होकर लगातार 14 वर्ष सन् 1972 तक सेवा भाव से 'गांधी वाड्यम' का सम्पादन करते रहे। बाद में सन् 1972 से 85 तक गांधी शान्ति प्रतिष्ठान' गांधी स्मारक निधि और सर्व सेवा संघ से सम्बद्ध रहे। वे मृत्युपर्यन्त्र 'गंगनांचल' के सम्पादक रहे। इस तरह प्राध्यापन से जीवन की शुरूआत करने वाले भवानी मिश्र स्वतन्त्रता–आन्दोंलन, पत्रकारिता, आकाशवाणी की सेवा और सम्पादन से आजीवन जुड़े रहे। स्वयं मिश्र जी के शब्दों में "मैने जीवन गांधी के विचारों के अनुसार शिक्षा देने के विचार से एक स्कूल खोलकर शुरू किया और उस स्कूल को चलाता हुआ ही सन् 42 में गिरफ्तार होकर 45 में छूटा। उसी वर्ष महिलाश्रम वर्धा में शिक्षक की तरह चला गया और चार–पाँच साल वर्धा में बिताये। आश्रम के बाद कुछ समय तक राष्ट्रभाषा प्रचार–सभा का कार्य भी किया। इसके बाद एक वर्ष तक आकाशवाणी के आनन्द लिये। वहाँ से एक कवि–सम्मेलन में हैदराबाद गया और बद्रीविशाल जी ने इतना स्नेह दिया कि तीन साल हैदराबाद में काट दिये। जब हैदराबाद से उखड़ा तो चित्रपट के संवाद लिखे और मद्रास के ए0बी0एम0 में सवांद–निर्देशन भी किये। मद्रास से बम्बई आकाशवाणी का प्रोड्यूसर होकर चला गया। वहाँ से आकाशवाणी केन्द्र दिल्ली पर आया। बम्बई के मुकाबले में उस काम बहुत थोड़ा लगा इसलिए सम्पूर्ण गांधी वाड्यम में चला गया और यहाँ काम को लगभग अंजाम देकर अब गांधी शान्ति–प्रतिष्ठान में हूँ। काम जितने किये सब मन के किये और मन से किये। जिन कार्यो का स्वभाव थोड़ा, बहुत विपरीत था, उन्हें भी अपने सॉचे में ढला, उनके साँचे में मैं ढला।

इसी परिवेशगत संस्कार के कारण वे साधारण लोगों के साथ जुड़ने में जीवन का सच्चा आनंद मानते है :–

"सागर से मिलकर जैसे/ नदी खारी हो जाती है।

तबीयत वैसे ही/भारी हो जाती है मेरी/ सम्पत्रों से मिलकर।

व्यक्ति से मिलने का/अनुभव नहीं होता।
ऐसा नही लगता/धारा से धारा जुड़ी है।
कि साधारण जन/ठीक जन है/उसने मिलो–जुलों।
उसे खोलो/उसके सामने खुलो/वह सूर्य है। जल है।
फूल है फल है।नदी है धारा है। सुगन्ध ह।
स्वर है ध्वनि है छन्द है। साधारण का ही जीवन में/आनंद है।''[1]

ख्यातिलब्ध उर्दूशायर जनाब जानिसार अख्तर का कलाम है न कोई ख्याब न खुमारी न तरन्नुम की लहर। ये आदमी तो अधूरा दिखायी देता है।'' मिश्र जी इस ऐसे अधूरेपन को कभी स्वीकार नही करते उनमें मानव की महिमा प्रतिष्ठित है। तभी तो देश–दुनिया के सुख–दुख से निरपेक्ष रहकर महज खाने–पीने, मौजमस्ती मनाने वाला एक रस–नीरस जीवन बिताना उन्हें कतई प्रीति कर नहीं है। उनकी ये पंक्तियां इस बात का पुष्ट प्रमाण है–

''कैसा है एक रस जीवन। जिस पर न मेघ छाते हैं। न तुषार पड़ता है।
न फूल है खिलते हैं। न काँटा गड़ता है। तुम जाओं।
या भेजो कोई बढ़ा दर्द। ऐसा निरानन्द।
सुख–दुःख से अछूता जीवन। नही नहीं चाहिए।''

सहजता–सरलता, स्पष्टता एवं साफगोई भवानी प्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व की सबसे विशिष्ट पहचान है। चतुराई न तो उनमें थी और न ही उन्हें कभी किसी चतुराई अच्छी ही लगी–

''चतुर मुझे कुछ भी। कभी नही भाया। न औरत। न आदमी। न कविता।
सामान्यता ही सदा। असामान्य मानकर। छाती से लगाया।''[2]

तार सप्रक के प्रखर हस्ताक्षर प्रभाकर माचवे' भवानी भाई' शीर्षक अपनी कविता में बड़ी उत्कंठा से यह जानने की कामना व्यक्त करते है। कि आखिर यह सहजता उन्हें कहाँ से आप्र हुई –

'' तुमनें यह सादगी, यह साफगोई, स्पष्टता
सीखी कहाँ से (जगत में तो कपट था या दुष्टता)

---

1. व्यक्तिगत – पृ0सं0 93–94।
2. चकित है दुःख, पृ0सं0 133।

यह बहुत ही पारदर्शी शब्दशैली, सरलता,
यह दिखावें से बनावट से घृणा, यह सरलता
तुम कहाँ सीखे– पिता से, गाँव से, संस्कार से?
तुम कहाँ सीखे– बहन से, या किसी के प्यार से?
क्या यहीं सीखे– निरन्तर गुन–गुनाती धार से
या कि धीरज विन्ध्य की चट्टान से व पठार से?''[1]

जीवन की यह सहजता बहुत ही साधना–सापेक्ष है, यह आसानी से प्राप्त नही हो सकती। उनके व्यक्तित्व की अन्य विशेषताएं, जो उन्हें विशिष्ट तथा रेखांकनीय बनाती है– वे है ईमानदारी, उनकी शान्ति प्रियता, उनकी सिद्धान्त प्रियता, उनका संवेदना–भाव, उनका बात व्यवहार आदि।

उनकी आत्मोक्तियों एवं दूसरों द्वारा उन पर की गयी टिप्पणियों से इन्हें आसानी से जाना समझा जा सकता है।

''यदि मै चाहता तो दफ्तर में बैठा अपनी किताबे बेचता। पर मै दफ़्तर के स्टैनों से अपनी चिट्टियाँ टाइप नहीं कराता। व्यक्तिगत पत्र स्वयं लिखता हूँ। दफ़्तर की स्टेशनरी का प्रयोग नही करता और न दफ़्तर के डाक टिकटों का। यदि मैं चाहता तो सरकारी पुस्तकालयों में अपनी पुस्तक का पूरा संस्करण खपा देता।''

अब 1958 में आकाशवाणी की नौकरी छोड़कर उन्होनें गांधी वाडमय के सम्पादन का कार्यभार सँभाला तो उनके एक शुभ चिन्तक ने उनसे पूछा 'रेडियों से आप यहाँ क्यों चले आए? वहाँ अधिक चहल–पहल थी।' उनका उत्तर था ''यहाँ शान्ति है वहाँ चहल–पहल थी और मैं शान्ति प्रिय व्यक्ति हूँ। शान्ति मं ही काम हो सकता है।''

''लहरो के आने पर। काई–सा फटे नहीं।
रोटी के लालच में। तोते–सा रटे नही। प्राणी वही प्राणी है।''[2]

उन्ही के शब्दों में एक तो मेरी इच्छाए ही बहुत कम है, जो वे बराबर पूरी होती रही है। थोड़े में आनन्द के साथ जीना दरिद्र ब्राह्मण–परिवार से विरासत में मिला। तीर्थो में कभी जाता हूँ तो भिखारियों की पंक्तियाँ देखकर मन का उत्साह मर जाता है। वे लोगों के लिए सिफारिश करने, किसी को नौकरी दिलाने, किसी का मकान बनवाने, किसी की दूकान

---

1. भवानी प्रसाद मिश्र–सुरेशचन्द्र त्यागी पृ0 1
2. दूसरा सप्तक पृ0सं0–22

खुलवाने में भाई–भतीजावाद तक चले जाते थे।''

भवानी भाई बड़े दृढ़ मनोबल और जीवट के व्यक्ति थे। जीवन के प्रति उनमें बड़ा विश्वास था। इसी विश्वास और मनोबल पर वे पिछले अनेक वर्षो से जीवन–मृत्यु के बीच झूलते हुए जीवित रहे। उन्हें करीब दस बार दिन का दौरा पड़ा था। स्पष्ट है कि वे लम्बे समय तक हृदयरोग से पीड़ित रहे। कभी–कभी दु:खी उन्हें व्यक्तिगत चिन्ता सताने लगी थी–

'' चिन्ता होती है। न कुछ बनाया है। न बचाया है
न कही जमीन का टुकड़ा है। न कहीं सिर पर घर की छाया है।''[1]

अक्टूबर 1976 में कानपुर में उन पर पहला दौरा पड़ा था, जब 'सौरभ' नामक संस्था द्वारा अभिनन्दित होने के बाद दूसरे दिन आम सभा में वे 'जयप्रकाश' पर भावावेश में डेढ़ घण्टे तक बोलते रहे थे। तक से दौरे–पर दौरे पड़ते रहे और वे अपनी सहज मुस्कान से उसे नगण्य बनाते रहे। मृत्यु को झुँठालाते , बरगलाते और धोखा देते रहे। यहॉ उनकी पंक्तियाँ अकस्मात् स्मृति में कौंध जाती हैं–

'' दर्द जब उठे बहाना करो।
न ना ना ना ना ना ना करो।''

फिर भी, कष्ट झेलते–झेलते सहते मन में मृत्यु की इच्छा होने लगे तो क्या आश्चर्य है? निश्चित ही उनके अन्तर्मन में यह इच्छा जगी होगी, तभी तो उन्होनें लिखा कि –

'' चौंसठ बरस भी कम नहीं होते
अमाओं को रोने के लिए
इसीलिए अब मै थोड़ा व्याकुल हूँ
न होने के लिए।''[2]

श्री भवानी प्रसाद मिश्र का देहावसान 20 फरवरी, 1985 ई0 को 'नरसिंहपुर में हुआ। मुखाग्नि उनके बेटे अमितान ने दी। वे हैदराबाद रहे, मद्रास, बम्बई और दिल्ली में रहें। फिर भी कभी महा नगरीय नही हो पाये। नरसिंहपुर, विन्ध्य और नर्मदा उनकी आँखों के सामने से ओझल नहीं हो पायें। वे शायद नरसिंहपुर से ही जाना भी चाहते थे, क्योंकि अपनी भतीजी की जिस शादी के बहाने वे नरसिंहपुर गये थे, वह तो 6 फरवरी को ही सम्पन्न हो चुकी थी।

---

1. व्यक्तिगत – पृ0सं0 88
2. अनाम तुम आते हो– पृ0सं0 64।

फिर तो वे आसानी से जबलपुर या दिल्ली जाकर अपना इलाज करवा सकते थे। किन्तु वे नरसिंहपुर छोड़कर जाना नहीं चाहते थे, इस लिए कि नरसिंहपुर से भवानी भाई का वही रिश्ता था जो बेटे का घर से होता है, इसी लिए वे नरसिंहपुर में ही देह त्यागना चाहते थे। उनके घरवालों ने अच्छा कियो जो उन्हें शमशान में नहीं, अपने खेत की मेड़ पर जलाया, जिसके नीचे सीगरी नदी का प्रसन्न जल आज भी बह रहा हैं।

रचना कर्म :–

कवि भवानी प्रसाद मिश्र, बचपन से ही तुकबन्दी किया करते थे। स्कूल में जब ये चौथी कक्षा के छात्र थे तो बाल–कवि के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे। इनके अग्रज दुर्गा प्रसाद मिश्र प्रारम्भ से ही इनकी कवि–प्रतिभा के प्रेरक प्रशंसक थे। बड़े भाई के सहयोग से, जब पहली बार उन्होनें किसी पत्र में अपनी रचना प्रकाशन के लिए भेजी थी, तब ये चौथी कक्षा के छात्र थे। तब रचना के साथ संलग्न एक पत्र सम्पादक को लिखा था कि ''छापना हो तो छाप / नहीं तो बैठे–बैठे टाप।'' स्पष्ट है कि 9–10 वर्ष की उम्र में ही अपनी पहली कविता जिस ठसक के साथ उन्होनें प्रकाशन के लिए भेजी थी, वह स्मरणीय है। यहाँ मिश्र जी द्वारा सृजित 'खुशबू के शिलालेख' की ये पंक्तियाँ बरबस याद आती है हैं '' हिमालय के खड़े होने का ढंग / उसका मन जाहिर करता है।'' अत्यल्प वय और पहली कविता में भवानी प्रसाद मिश्र का यह अनोखा–अदम्य साहस उनके खड़े होने का उनका मन जाहिर करता है। मिश्र जी के नियमित कवि–कर्म का प्रस्थान बिन्दु सन् 1930 है। उनके प्रथम काव्य–संग्रह 'गीत फ़रोश' में प्रकाशित पहली रचना 'कवि जनवरी 1930 की है। गांधी पंचशती' में प्रकाशित प्रथम कविता भी 24 जनवरी 1930 की है। उन्होनें लिखा है कि '' कविताएं लिखना सन् 30 से नियमित प्रारम्भ हो गया था और कुछ कविताएं पं0 ईश्वरी प्रसाद शर्मा के सम्पादनकत्व में निकलने वाले '' हिन्दुपंच'' (कलकत्ता) में हाईस्कूल पास होने से पहले प्रकाशित हो चुकी थी। '' उस समय 'छायावाद' अपनी चरम सीमा पर प्रतिष्ठित था, किन्तु उन्होनें छायावादी काव्यशिल्प का अनुसरण नही किया। उनके ही शब्दों में लगभग सभी कुछ बँधे–बँधाये ढंग से कुछ बँधी–बँधायी बाते कहते रहते थे। उन दिनों उसे 'छायावाद' कहा जाता था। लेकिन मैनें वह सब नहीं लिखा और उस ढंग से नहीं लिखा। क्यों नही लिखा सो नहीं जानता। यह निश्चित है कि वैसा नहीं लिखा। बातें कुछ अलग की और अलग ढंग से की।''[1]

---

1. बुनी हुई रस्सी, अपनी ओर से – पृ0सं0 5–6।

जहाँ तक उनकी कविताओं के सार्थक रूप से प्रकाशित होने की बात है, पुस्तककार में उनका प्रकाशन बहुत बाद में हुआ। व्यवस्थित रूप से सबसे पहले उनकी ।।रचनाएं अज्ञेय जी द्वारा सम्पादित' दूसरा सप्तक' में प्रकाशित हुई। यद्यपि, अज्ञेय जी उन्हें 1943 में प्रकाशित 'तार सप्तक' में ही लेना चाहा था, किन्तु उस समय वे जेल में थे। उनके ही शब्दों में, ''अज्ञेय जी' आगामी कल' में मेरी रचनाएं पढ़कर उनकी ओर आकर्षित हुए और मुझे 'पहला सप्तक' में लेना चाहा। किन्तु तब मैं जेल में बन्द था, इसलिए रचनाएं उनके पास भेजी नहीं जा सकती थी। ''दूसरा सप्तक' में प्रकाशन के बाद उनका पहला काव्य संग्रह 'गीत फ़रोश' सन् 1956 में प्रकाशित हुआ। उनकी प्रकाशित रचनाओं का विवरण अधोलिखित है –

(क) कविता संग्रह :–

1. गीत फ़रोश :–

सन् 1956 में प्रकाशित इस संग्रह में 68 कविताएँ संकलित है। संग्रह का नामकरण उसमें उपस्थित कविता 'गीत फरोश' पर आधारित है। यह आधुनिक कविता का अति महत्वपूर्ण संग्रह है। इसकी भूमिका कविता–रूप में लिखी गयी है शीर्षक है– 'शब्दो का महल'। कृति की पहली कविता 'कवि' तथा भूमिका–कविता 'शब्दों का महल' में कवि ने अपने काव्यादर्श की अभिव्यक्ति की है।

2. चकित है दु:ख :–

भूमिका–रहित इस संकलन में कुल 65 कविताएँ संगृहीत है। यह संग्रह 12 वर्षो के अन्तराल पर (प्रथम संग्रह के बाद) सन् 1968 में प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह के प्रकाशन के बाद सुधेश ने जब मिश्र जी से प्रश्न किया कि यह दूसरा संग्रह 12 वर्षो के बाद क्यों निकल पाया? उनका उत्तर था'' जब प्रकाशकों ने छापा ही नहीं, तो कैसे छ़पता। इस लिए मुझे 'सरला' प्रकाशन शुरू करना पड़ा।''

3. अँधेरी कविताएँ :–

सन् 1968 में प्रकाशित इस संग्रह में 55 कविताएँ हैं। इस संग्रह में हृदय रोग से पीड़ित कवि की बीमारी की छाया विद्यमान है।

4. गाँधी पंचशती :–

गाँधी जन्मशती के अवसर पर सन् 1969 में प्रकाशित इस संग्रह में दो खण्ड हैं – पहले खण्ड में 308 दूसरे खण्ड में 200 कविताएँ संकलित है। 'प्रारम्भिक ' शीर्षक भूमि भी

कविता में दी गयी है। गांधी पंचशती नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें केवल गांधी जी से सम्बन्धित कविताएं ही संगृहीत है। ऐसा नही है, इसमें कवि क लगभग चार दशक की कविता–यात्रा की प्रतिनिधि कविताएं विद्यमान है। इसमें –दूसरा सप्तक' गीत फ़रोश' में संकलित कई कविताएं भी शामिल है।

5. बुनी हुइ रस्सी :–

सन् 1971 में प्रकाशित, 128 कविताओं के इस संग्रह में अपनी ओर से शीर्षक भूमिका है। यह कवि की प्रौढ़ कृति है। इस कृति में पहली बार कवि ने अपनी वैचारिकता एवं रचना प्रक्रिया पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इस संग्रह पर मिश्र को 'साहित्य अकादमी' ने पुरस्कार दिया था।

6. खुशबू के शिला लेख :–

यह संग्रह 1973 में प्रकाशित हुआ था। 2 कविताओं के इस संग्रह में भूमिका भी कविता में है। खुशबू के शिला लेख षष्टिपूर्ति के अवसर पर कवि के निज कवि–कर्म का ऐसा लेखा–जोखा है जो कवि के अवसर पर अपने दायित्व, औचित्य, सहज संवेदन, आनुभूतिक गहनता एवं वैचारिक परिपक्वता के बीच माटी की सहज गन्ध की परिव्याप्रि से सम्पन्न है।

7. व्यक्तिगत :–

सन् 1974 में प्रकाशित इस संग्रह में 76 कविताएं संकलित है। संग्रह का भूमिका का शीर्षक है। व्यक्तिगत के आगे–पीछे। माना यह जाता कि इस संग्रह की रचनाएं "बीमार बिस्तर की स्वस्थ कविताएं है। "यहॉ कवि का व्यक्तिगत बहुत व्यापक धरातल पर है क्योकि कवि–कथन है– वैसे व्यक्तिगत है, मैं में खुद व्यक्तिगत नही हूँ तो मेरी कविताएं क्या होगी।"

8. परिवर्तन जिए :–

इस संग्रह में 99 कविताएं है। प्रकाशन वर्ष है – 1976।

9. अमान तुम आते हो :–

सन् 1976 में ही प्रकाशित इस संग्रह में मात्र आठ किन्तु बहुत लम्बी–लम्बी कविताएं संगृहीत है। संग्रह महादेवी वर्मा को समर्पित है।

10. त्रिकाल सन्ध्या :–

इस संग्रह का प्रकाशन–वर्ष भी 1976 है। इसमें कुल 97 कविताएं प्रकाशित है। इस भूमिका शीर्षक है किस्सा त्रिकाल सन्ध्या का। वास्तव में आपात काल ने गान्धीवादी कवि

भवानी भाई को झकझोर दिया था। उन दिनों उन्होनें लिखकर रोज–रोज/तीन कविताएं त्रिकाल सन्ध्या की थी। रोजाना सुबह, दोपहर, शाम की लिखी हुई यही कविताएं त्रिकाल सन्ध्या 'संग्रह में संकलित है। इस संग्रह का स्वाद कुछ अलग किस्म का है क्योकि इसकी कविताएं अत्याचार के विरोध में उठ खड़े होने की सतत प्रक्रिया का दस्तावेज है।' यह आपातकाल में 'भीषण अत्याचार की लोम हर्षक गया है। इसमें व्यंग्य, आक्रोश गर्जन–तर्जन सब कुछ है। किन्तु भाषायी स्वर यहाँ भी बहुत संयत और शालीन है। कवि नागार्जुन द्वारा उसी काल खण्ड के लिए लिखी गयी कविताओं का भाषायी तेवर यहाँ बिलकुल नही है। न आक्रामकता, न असंयम और न ही गाली–गलौच। दो –एक उदाहरण प्रस्तुत है –

1. "तुम बोलो, चाहे मत बोलो/तुम्हारी इच्छा स्पष्ट है
साठ करोड़ आदमियों की इच्छा में बल होता है।
वे जो चाहते है। वह आज नही तो कल होता है।"

2. "दोनों (इन्दिरा–संजय) चेत जाएं। और पशुता छोड़े।
जिस ठीक वंश में पैदा हुए हैं। अपने को फिर उसी से जोड़े।
इस देश के लोग। आखिर इस देश के हैं। उन्हे माफ कर देंगे।
और नहीं तो इस देश के लोग। आखिर देश के हैं।
उन्हे साफ कर देंगे।" पृ0सं0 37

शालीनता से कही गयी दोनों बातों में बड़ा दम था क्योंकि दोनों बातें सही सिद्ध हुई थी

11. शरीर कविता फसले और फूल :–

सन् 1980 में प्रकाशित इस संग्रह में कुल 105 कविताएं है।

12. कालजयी :–

सन् 1980 में प्रकाशित यह कवि का एक मात्र खण्ड काव्य है। इससे छह सर्ग हैं – बीज, अंकुर, विकास, वट, छाया और निर्वाण। इस कृति प्रारम्भ में काव्य की कहानी शीर्षक भूमिका है। कवि के शब्दों में –

"यह कथा व्यक्ति की नही। एक संस्कृति की है।
यह स्नेह शान्ति/सौन्दर्य शौर्य की घृति की है।"

13. सम्पत्ति :–

सन् 1982 में प्रकाशित इस संग्रह में 77 कविताएं संकलित है।

14. नीली रेखा तक :–

कवि की 44 कविताओं का यह संग्रह सन् 1984 में प्रकाशित हुआ था। प्रारम्भ में मै क्यों लिखता हूँ शीर्षक महत्वपूर्ण भूमिका है।

15. तस की आग :–

सन् 1985 में प्रकाशित 170 कविताओं के इस संग्रह की भूमिका में भी कहूँ 'शीर्षक से डॉ0 कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखी है। अन्तिम दिनों में सृजित इन कविताओं का समर्पण कवि ने अपनी पत्नी सरला मिश्र को किया है।

16. इदंनमम :–

इस संग्रह में 98 कविताएं है।

17. मान सरोवर दिन।

(ख) गद्य–कृतियाँ।

1. जिन्होने मुझे रचा :–

यह भवानी प्रसाद मिश्र की प्रथम गद्य रचना है। इस महत्वपूर्ण कृति में तीन साहित्य–मनीषियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित कराने वाले संस्मरणात्मक लेख है। ये है – द्वि विधाहीन कवि, सुविधा हीन व्यक्ति नवीन, एक और अद्वितीय माखनलाल जी और मेरे नेपथ्य की आवाज बक्शी जी।

2. कुछ नीति कुछ राजनीति :–

सन् 1983 में प्रकाशित इस निबन्ध संग्रह में कुल।। लेख संकलित है इस पुस्तक के अधिकांश लेख वस्तुतः उनके लिखित भाषण ही हैं। आरम्भ में 'आवश्यक मानकर' शीर्षक भूमिका है। यहाँ उनकी गद्य भाषा, काव्य भाषा की तरह सीधी सच्ची एवं सक्षिप्त है।'

भवानी प्रसाद मिश्र का रचना–कर्म इस बात का साक्षी है कि वे समूचे कवि है। स्वयं उन्ही के अनुसार "कवि के बारे मे। उसका समूचापन/उसके दिखने से भी ज्यादा। उसके लिखने से भी ज्यादा। उसके लिखने में आता है। (खुशबू के शिला लेख पृ0 20) इस समूचेपन तक पहुँचने का मार्ग उनकी आत्मा से होकर गुजरता है। मेरी आत्मा तक आओगे/ तभी मेरे

समूचेपन को पाओगे। (बुनी हुई रस्सी पृ0 93) भवानी प्रसाद कविता का मर्म एवं महत्व इसी बात में जाना जा सकता है कि दिन कर जैसा समय सूर्य कवि भी उनकी कविताओं के नीचे अपना नाम लिखे होने की कामना करता है। ''भवानी ही आजकल वह कवि है। जिसकी कविता देखकर जी में आता है, काश। इस कविता के नीचे मेरा नाम होता।'' (दिनकर की डायरी, पृ052)

'गीत फरोश' से लेकर 'तूस की आग' तक विस्तृत उनके कविता संसार में विविधता का अद्‌भूत समावेश है। यह वैविध्य उनके भाव एवं शिल्प–दोनों में विद्यमान है। यह भी कि उन्हें दिल के कितने–कितने दौर पड़े, किन्तु सबकों पराजित करते हुए वे अपनी खुशबू के अनेकानेक शिलालेख से हिन्दी–कविता–संसार को समृद्ध करते रहे आलोकित करते रहे।

भाव–प्रभाव :–

किसी भी श्रेष्ठ समर्थ कवि–कलाकार को अपनी परम्परा से जुड़ने एवं परिचित होने के लिए पुराने कवियो–मनीषियों को पढना तो आवश्यक होता ही है। नये एवं समकालीनों से भी अध्ययन्–स्तर पर जुड़ना होता है। फिर भी कोई सर्जक बिना अपनी अलग पहचान एवं लीक बनाये हुए सक्रंल नही हो सकता।

जहॉ तक कवि भवानी प्रसाद मिश्र के प्रभावित होने की बात है। उन्होनें प्रारम्भ में तो अपने ऊपर किसी भी कवि के प्रभाव को अस्वीकार किया है। उन्ही के शब्दो में ''मुझ पर किन–किन कवियों का प्रभाव पड़ा, यह भी एक प्रश्न है। किसी का नही। पुराने कवि मैने कम पढे नये कवि जो मैने पढे मुझें जॅचे नही। तो उनका क्या प्रभाव पडता? (दूसरा सप्तक, पृ04) दूसरा सप्तक के इस वक्तव्य के काफी अन्तराल बाद डॉ0 विजय बहादुर सिंह द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में इस सन्दर्भ में पुनमूल्यांकन करते हुए स्वीकार किया कि सबसे अधिक तो बचपन में सुने हुए पिता जी द्वारा किये गये संस्कृत ग्रन्थों के सस्वर पाठ छन्द देने में सहायक हुए। मेरे आदर्श कवि एक नही अनेक है जिनमें हिन्दी संस्कृत उर्दू मराठी और बँगला के नये पुराने नाम शामिल हो जाते है। हिन्दी में तुलसी, कबीर, सर्वाधिक प्रिय रहे, खड़ी बोली में थोड़ी बहुत असर सबका हुआ क्योकि श्रम से सबको पढता था। मगर मेरे दुर्भाग्य से आदर्श के रूप में मेरे सामने कोई नही रहा। संस्कृत के कवियों में भी सबसे अच्छे मुझे तुलसी दास के श्लोक लगे जो रामायण में है। संस्कृत के कवियो है मैने संस्कृत के कवियों को गहराई के साथ पढ़ा लेकिन फिर भी मैने जितना पढ़ा उसमें कालिदास ने सर्वाधिक आनन्द दिया। बंगला तो मैने रवीन्द्रनाथ को पढ़ने के लिए ही सीखी/मराठी में ज्ञानेश्वरी और तुकाराम के

अभंग मैने परिश्रम के साथ पढ़े। इतने बड़े कवियों का असर तो होकर रहना ही था, चाहे जितनी परतों में छनकर क्यों न आया हो।''

वैसे अपने काव्यादर्श के धरातल पर उन्हे जिन दो व्यक्तियों का विशेष रूप से ऋणी कहा जा सकता है। उसमें एक है रोमैण्टिक कवि वर्ड्सवर्थ और दूसरे है महाकवि तुलसीदास के सम्बन्ध में तो उनकी स्वीकृति है ''तुलसी दास मेरे आदर्श कवि है। या कहो वे मेरी कविता–धारा के सागर है। मै बहते–बहते उस स्नेह सागर मे लीन होना चाहता हूँ। कई बार समीपता का अनुभव करता हूँ। संभव है और छोटी बड़ी अनेक धाराएँ मुझे सहारा देकर वहाँ तक ले जाएँ।''

आज कल, जून 1981 पृ04

उर्दू कवियों में वे नजीर बनारसी से काफी–कुछ प्रभावित है। नजीर की 'बरसात की बहारें' तथा मिश्र जी की बरसात आ गयी रे' कविताओं में अद्‌भूत साम्य है –– मात्र छन्द का नही, शब्द और अनेक पंक्तियाँ ज्यों की त्यों दोनों में विद्यमान हैं।

भवानी भाई ने कभी भी आलोचकों की परवाह कभी नही की। अपनी कविता को लेकर उनका स्पष्ट निर्देश है –
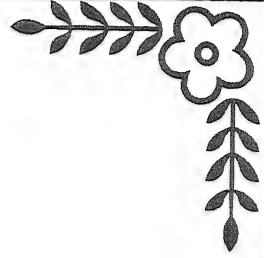
'' मै नही चाहता / सुख से भरे मन उन्हें बाँचे।
आराम से बैठे / आलोचक उसे जाँचे।''

इससे यह भी स्पष्ट है कि वे अपनी भावनाओं को आलोचकों से दूर ही रखना चाहते थे। अपने समान धर्मा कवि बाल कवि वैरागी को लिखे पत्र से यह बात और साफ हो जाती है कि वे लिखते हैं'' तुम जैसा लिखते हो, वैसा लिखते रहो और जैसा पढ़ते हो वैसा पढ़ते रहो। नदी जब निकलती है तो यह तय करके नहीं निकलती कि वह इतनी लम्बी और इतनी चौड़ी बहेगी। उसका काम है निकल जाना। रहा सवाल अमुक ऐसा कहता है, अमुक वैसा बोलता है तो एक बात सुन लो। इन आलोचकों की परवाह मत करो। धरती पर आज तक किसी एक भी आलोचक का स्मारक नही बना।''[1]

सम्मान :–

1. सन् 1972 में' बुनी हुई रस्सी' काव्य–संग्रह पर 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार।
2. सन् 1981–82 में उ0प्र0 हिन्दी संस्थान के 'संस्थान पुरस्कार' से सम्मानित।
3. सन् 1983 में मध्य प्रदेश शासन के 'शिखर सम्मान' से सम्मानित।

---

1. भवानी भाई– सम्पा0 प्रेमशंकर रघुवंशी पृ0सं0 169।

तृतीय-अध्याय

अध्याय तीन
आलोच्य कवि की काव्य–प्रवृत्तियाँ

रचना–दृष्टि :–

कवि भवानी प्रसाद मिश्र स्वयं अपनी कविताओं के बारे में अलग से कुछ कहने में संकोच करते रहे है, बल्कि उनके ही शब्दों में कतराते रहे हैं। इस का कारण यही कि लोग उन्हें और उनके कवि को उनकी कविताओं के बीच से ही खोजे और समझें। लेकिन जब उन्होनें यह महसूस किया कि तमाम ईमानदार प्रयासों के बावजूद भवानी प्रसाद मिश्र और उनकी कविता की जो साफ और सही समझ सामने आनी चाहिए थी वह नही आ सकी तो उन्होनें अपना मौन तोड़ा। उन्होनें 'बुनी हुई रस्सी' नमक अपने संकलन में स्पष्ट रूप से लिखा है। कि, "मैने देखा कि मेरे संग्रहों की जहाँ–तहाँ जो आलोचनाएँ निकली, उनमें ज्यादातर बात मेरी कविता की शैली की ही की गई। शैली कविता की एक प्रधान बात तो है ही, मगर आखिरकार वह किसी भीतरी चीज का बाहर रुप है। सर्वाधिक प्रधान बात तो वह नही है। इस लिए मैने अपना यह सं यह प्रस्तुत करते समय बहुत संक्षेप में थोड़ा कह देना जरुरी मान लिया हैं।"[1]

भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य–विषयक अन्तवृत्तियों का परिचय पाने के लिए हमें उनके संकलनों के साथ उनकी दी गई तथा कथित 'भूमिका' (जो बहुत ही कम है), तथा उनकी कविताओं से ही सहायता लेनी पड़ेगी। अपने बारे में अपनी कविताओं के बारे में कविता की रचना–प्रक्रिया के बारे में और कवि–कर्म के बारे में उनका दृष्टिकोण इसी प्रकार जाना जा सकता है। उनकी रचना दृष्टि के महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार देखे जा सकते हैं–

काव्य–रचना की प्रेरणा :–

रचना तथा सर्जना दायित्व–बोध से भी होती है और अन्तः प्रेरणा की विवशता से भी। मिश्र जी ने आरम्भ में दायित्व –बोध से काव्य रचना की। उन्होनें कहा भी है कि, "मैने लिखना किसी बड़ी व्याकुलता या प्रेरणा से शुरु नही किया था। शुरू शायद इस लिए किया था कि काफी कविता पढ चुका था। थोड़ी जी चुका था और मन में कही से यह ख्याल आ गया था कि पढे लोग लिखकर सार्थक होते है।"[2] लगता है यही उनके मन में कही यश का मोह बैठ गया था। क्यों कि उन्होनें आगे लिखा है। सार्थकता की बड़ी छोटी से छोटी कल्पना तब मन में थी। याने इतना ही कि आस–पास के लोग उनकी तरफ ध्यान देते है और वे दूसरों में अलग माने जाते है। लेकिन उनके वक्तव्य से यह भी स्पष्ट है कि उनकी अन्तश्चेतना अपनी राह स्वयं बनाने की ओर भी सक्रिय थी। इस लिए उस समय छायावाद का जोर होने

1. बुनी हुई रस्सी, भवानी प्रसाद मिश्र, पृ0सं0–5
2. वही, पृ0सं0 5

पर भी मिश्र जी ने न तो वह सब कुछ लिखा और न उस ढंग से लिखा, जो उस समय के कवि लिख रहे थे। उन्होनें बाते कुछ अलग की और कुछ ढंग से की और देखा कि अलगाव में वे व्यक्त हो रहे है अर्थात् धीरे–धीरे वे अन्तः प्रेरणा की ओर जुड़ने लगे। वास्तव में काव्य व्यक्तित्व की विकासगामी अभिव्यंजना है और वह पूर्णतः व्यक्त होने की स्थिति में तब आता है। जब अन्तः प्रेरणा विवशता या व्याकुलता महसूस होने लगती है। काव्य लिखने के सन्दर्भ में शनै : शनैः ब्राह्म अन्तर वातारण का दबाव वे इस प्रकार महसूस करने लगे कि कविता अब उन्हें विवशता लगने लगी। "अब वे दायित्व बोध की जगह अन्तः प्रेरणा या व्याकुंलता वश लिखने की स्थिति में आने लगे। किसी सोपान पर पहुँचकर उन्हें ऐसा लगा कि " वे कविता नही लिखते, कवित उन्हें लिखती है।"[1]

व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति :-

कविता में व्यक्तित्व की सहज अभिव्यक्ति ही कवि भवानी मिश्र का साध्य है। वे चाहते है कि कवि अभिव्यक्ति के माध्यम का माध्यम बन जाय। उसके प्रति अपने को समर्पित कर दे। मिश्र जी की रचनाएं यदि विश्लेषित की जाये, तो ऐसा प्रतीत होता है। कि जीवन औश्र जगत् कि तीखे अनुभवों ने उत्तरोन्तर उनमें अकेलापन विरुप प्रति क्रिया, अप्रत्याशित व्यवहार– बोध की इतनी मात्राएं दी है जिनके उनका व्यक्तित्व मुखर होने के लिए विवश हो उठा है। अपने व्यक्तित्व का समग्रता में साक्षात्कार करना और उसको व्यक्त करने के लिए अपेक्षित माध्यम से संघर्ष करते रहना उनकी काव्य–साधना है। यही कारण है कि उनका व्यक्तित्व और कृतित्व एक रुप है। उनकी कृतियां इस बात का प्रमाण है। कि उनकी जिन्दगी कविता में डूबी उतराई और कविता जीवन के रेले में बही तथा आस–पास की आशाओं एवं आकांक्षाओं से जुड़ी। और वास्तव में कहना चाहें तो यह है कविता में जिन्दगी और जिन्दगी में कविता इस समबन्ध में कवि मिश्र ने कहा भी, "अपने को व्यक्त करने की जरुरत ही सबसे बड़ी लगने लगी। लगने लगा कि व्यक्ति अपने को व्यक्त करने के सिवा कुछ और नही कर सकता। यही उसकी निभति है। खालिस अपने को व्यक्त करके आदमी पूरा व्यक्ति बन सकता है और इसी तरह वह समाज के भी किसी काम का हो सकता है। अगर व्यक्ति के पैदा होने, बढने उसके समाज बनने आदि सबको व्यर्थ नही जाता है तो उसे अपने को ही अभिव्यक्त करना है।"[2] यह बात उनकी रचना– प्रक्रिया से और भी स्पष्ट हो सकती है।

कोरी बौद्धिकता के स्थान पर भाव-प्रवणता का आग्रह :-

भवानी मिश्र कविता को बौद्धिक इन्द्र जाल बनाने के पक्ष में नही है। उन्होनें अधिक बुद्धिवाद का ह्रस्व दृष्टि पर चिन्ता व्यक्त करते हुए लिखा है, " हमारे युग ने अभी ' और 'यही

---

1. बुनी हुई रस्सी, भवानी प्रसाद मिश्र, पृ0सं0–7.
2. वही, पृ0सं0 – 7

पर बहुत जोर दे रखा है। उसके कारण आदमी और उसकी तेजस्विता का जबर्दस्त अब मूल्य हुआ है। निरकुंश तानाशाहों झूठे और ढुलमुल प्रजातन्त्रों और उन्ही के कारण वनवे हुए अति बुद्धि वादियां की ह्रस्व दृष्टि ने मिल जुल कर 'कभी' औश्र कही केआश्वासन को मिटाकर रख दिया है। आदमी अपनी चेतना के सहारे बढ़ने के बजाय अब चेतन से हाँ का जाने वाला पशु बन गया है।"[1]

लिखने का उद्देश्य :-

कवि मिश्र मानते है।कि कविता किसी अनुभव की अभिव्यक्ति नही है, बल्कि अनुभव करने की एक प्रक्रिया है। इसी सदंर्भ में उनके विचार उल्लेखनीय है। वे कहते है, "मुझे लगने लगा कि कविता अपने को व्यक्त करने का साधन नही है, कविता एक तरह का जानना है जो लिख चुको तब हस्तगत होता है। याने यह जानना एक पद्धति में से गुजर कर उसके पूरा हो चुकने पर हस्तगत होता है। कविता लिखने का मेरा उद्देश्य अब यही जानना हो गया है। इसके अतिरिक्त वे एक स्थल पर इस प्रक्रिया को अन्त तक काममें लगा हुआ रहना मानते हुए कहते है, "मैने–अपनी कविता म ें लिखा है कि इसे लिखना नही मानता और फिर उसी में आगे लिखा है कि मै अन्त तक काम में लगा दिखूँ– यह मेरे लिखने का उद्देश्य है। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि यह जो 'लगा और 'लिखना' सो क्षण भर जो लगा वही है। असल में मैं इन दिनों इस लिए लिखता हूँ कि मुझे कुछ चीजे ठीक–ठीक समझ लेनी है और में नही जानता मेरे लिए लिखते रहने के सिवा समझने का और क्या साधन हैं, – अनेक कारणों से अब मेरी स्थिति सन्देह में रहने की नही है। मैं कुछ बातों को यथा संभव बिल्कुल ठीक समझ लेना चाहता हूँ।"[2]

इस प्रकार स्पष्टतः कवि भवानी मिश्र के लिए कविता लिखने का उद्देश्य स्थितियों और परिवेश को, चीजों को ठीक जानने– समझने और अनुभव करने की तथा काम लगे रहने की सक्रिया रहने की उक प्रक्रिया है।

"वादो में अनास्था :-

आधुनिक काव्य में विशेष रुप से 'वादो का जो प्रचलन चन पड़ा है, उन सब से कवि मिश्र असहमत है। वे किसी विचार विशेष को पकड़कर आगे बढने के हामी नही है। बल्कि वे चाहते है कि अलग–अलग विचारों के लोग मिल जुल कर संसार में पारस्परिकता और भाई चारे का प्रसार करें। इसी आधार पर उन्होनें एक साक्षात्कार में कविता में वादों से अपनी असहमति इस प्रकार व्यक्त की है, "कविता में जब विचार की जगह किसी विचार विशेष का आयह प्रधान हो जाता है तो वह वाद बन जाता है। आ यह केवल किसी बड़ी श्रद्धा के प्रति

---

1. वही, पृष्ठ – 10.
2. वही, पृष्ठ 8.

हो सकता है और एक बड़ी श्रद्धा का आग्रह व्यक्ति को दूसरी बड़ी श्रद्धा प्रति आदर–भावना देता है, विशेष विरोध –भावना नहीं। मार्क्स के विचार में श्रद्धा रखने वाला आदमी गांधी के विचार में श्रद्धा रखने वाले आदमी से जुड़कर उसी तरह संसार को आगे बढा सकता है जिस तरह एक धर्म में विश्वास करने वाला आदमी दूसरे धर्म के विश्वास को आदर और प्रेम देता हुआ संसार में पारस्परिकता और भाई चारे का प्रसार कर सकता है। सत्य के पथ नी सब को अपने अपने पॉव चलना है, इस लिए भले ही यह पथ कभी राज पथ हो कभी पगडंड़ियाँ। बेशक लकीर की फकीरी ''बाद' का दूसरा नाम है। इससे बचकर ही ठीक गंतव्य तक पहुँचा जा सकता है। गंतव्य तक पहुँचे न पर हम देखेंगे कि वहाँ इकट्ठे तमाम लोग हमारे ही होकर वहाँ नही पहुँचे है।[1]

आज की कविता और उसका भविष्य:-

आज की कविता की स्थिति और उसके भविष्य पर पूर्व ग्रह– रहित होकर उन्होने कई महत्व बातें की है। हिन्दी कविता के जाग एक आलोचकों पाठकों और कवियों के लिए उनकी ये मान्यताएं विशेष रुप से ध्याजतव्य है। समग्रतः उनकी इन मान्यताओं को इस प्रकार देखा जा सकता है– बेचारी कविता आज झंझट में पड गई है। वह एक दो कारणों से नही कितनी ही चीजों से त्रस्त है। उसके लिए किसी भी एक जगह को अपना मान–कर स्थिर रहना, सोचना, समझना, जानना, कहना कठिन हो गया है। यदि वह हठ करके इतना करती भी है, तो किसी को उसकी हठ परख कर उससे कुछ लेने या उसे कुछ देने की जरुरत नही लगती। पहले की अधिकांश कविता आशा की होती थी। किसी भी स्वर से शुरू होकर विलीन वह होती थी। अभी–अभी तक दुनिया छोटी थी और स्थिरता ऐसी थी कि अपना ही जीवन सब कुछ कर डालने योग्य लम्बा लगता था। फिर उसमें के पीछे की कितनी ही शताद्धियों से कोई बड़ा अन्तर दिखाई नही देता था और न ऐसा लगता था कि आगे का काल हमारे काल से कुछ भिन्न होगा। इसस लिए कविता कभी निराशा की वाणी बोलती थी तो वह आराम से बैठे शक्तिशाली व्यक्ति की क्षणिक निराश से अधिक गम्भीर कोई चीज नही होती थी। किन्तु आज तो कविता का स्थाई भाव ही कुंठा और निराशा का हो गया है। तब वह स्वाभाविक था, आज यह।

आदमी अपनी चेतना के सहारे बढने के बजाय अब चेतन से हाँका जाने वाला पशु बन गया है। अब चेतन जिन तत्वों को गति देता है उन्हें समझा जाता है। और अपने अब चेतन के इशारे पर डोलने–फिरने के बजाय उसके द्वारा उमारे जाने वाले तत्वों की नकेल चेतन के हाथों दी जाती है। मेंरी समझ में 'होने' के अँधरें तथ्य पर चेतना की चिनगारियाँ उछालते रहे कर उसे मशाल की जला देना ही आदमी के अस्तित्व का हेतु है। अब चेतन या अचेतन

---

1. आजकल, पत्रिका जून, 1981, पृ0सं0–4, (साक्षात्कार)

हमारे चेतन को जितना – प्रभावित करते है उससे कई गुना कहीं ज्यादा चेतन के हाथों अवचेतन और अचेतन को प्रभावित किया जाना है, अलग–अलग लोग इसे अलग–अलग ढंग से करेगें। मै इसे कविता की प्रक्रिया से गुजर कर करना सम्भव देख पा रहा हूँ। एक बड़ी बीमारी ने मुझे अब तक के अनेक ख्यालों से छुट्टी दे दी और मैं उस मुक्ति का उपयोग इस दिशा में करते रहना चाहता हूँ।

"किसी काल की कविता अपने ही जमाने से बद्ध रही, क्योंकि कोई भी जमाना अपने में ही बद्ध नही रहता। वह सदा कम ज्यादा अपने अब तक के जमाने में सम्बद्ध रहता है और इस लिए किसी भी समय की ठीक कविता में तब तक का समय काल प्रति बिम्बित होता रहा है। अपने किसी युग की कविता अपने से आगे के काल की झॉकी भले ही न दे पाती हो किन्तु उसे तत्काल के सारे काल की आत्मा के संस्पर्श से रोमाचित तो रहना ही पड़ता है चूंकि आज तक का सारा काल और अभी तक की कविता जितनी अधिक अतीत से अब तक की हो सकती है। वैसी होने की सुविधा उसे इसके पहले कभी नही रही। इस लिए मेरी समझ में आज युग बोध का अर्थ आज के सामाजिक चलनो, मान्यताओं विज्ञान की उन्नति आन्दोलनों आदि का ही बोध न होकर इस बात का बोध होना है कि विकास की जो गतिशीलता हमें चेतन के प्रथम जीव चिन्ह अमीवा से आदमी तक ले आई है वह लगत् को आदमी की अपेक्षा अधिक जटिल और यहाँ तक सम्भव है कि किसी नितान्त भिन्न जीव दर्श या जीवा दर्शो तक ले जाएगी।"

" हमें इतना तो ही लेना चाहिए कि हमारे कर्तव्य कृतित्व, कविता, कला धर्म, दर्शन, मन प्राण और समूची सत्ता काल सापेक्ष नित्य परिवर्तित रुप ही है और कालांतर में यह काल करोड़ों वर्षो का भी हो सकता है। कोई न कोई अधिक विकसित विचार और सत्ता–रुप इनकी जगह ले लेगें। आत्माभिव्यक्ति और युग बोध के नाम से लिखी जाने वाली चीजें मुझे कई बार विराट् से घिर कर घबरा कर किसी बहुत छोटे दायरे में छुप रहने की कोशिश भर दिखाई देती है। यह कोशिश स्वाभाविक तो हो सकती है और शायद सामान्य भी यही है किन्तु मै इसे नितान्त उचित और आवश्यक नही मान पाता।"[1]

इस प्रकार वे आज की कविता को काल–सापेक्ष युग–सत्यों की अभिव्यक्ति के माध्यम के रुप में देखना चाहते है। वे मानते है कि पूर्ववती कविता से भिन्न आज की कविता का दायित्व और भी बढ गया है। कवि मिश्र के ये विचार उनकी कविता की पृष्ठभूमि में विशेष महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते देखे जा सकते है।

---

1. बुनी हुई रस्सी, भवानी प्रसाद मिश्र, पृ0सं0–11.

कविता की रचना-प्रक्रिया :-

भवानी प्रसाद मिश्र की कविता की रचना प्रक्रिया को समझने के लिए उनकी एक कविता बुनी हुई रस्सी को अपने सामने रखना अनिवार्य है। वह कविता है –

"बुनी हुई रस्सी को घुमाएँ उल्टा
तो वह खुल जाती है
और अलग–अलग देखे जा सकते है
उसके सारे रेशे।
मगर कविता को कोई
खोले ऐसा उल्टा
तो साफ नही होंगे हमारे अनुभव
इस तरह
क्यों कि अनुभव तो हमें
जितने उसके माध्यम से हुई है
उससे ज्यादा हुए है दूसरे माध्यमों से
व्यक्त वे जरुर हुए है यहाँ
कविता को
बिखराकर देखने से
शिवा रेशों के क्या दिखता है
लिखने वाला तो
हर बिखरे अनुभव को / रेशे को
समेट कर लिखता है।"[1]

इस कविता में मिश्र जी ने कविता के बारे में दो बाते कही है जो सीधे जाकर कविता की रचना–प्रक्रिया से जुड़ती है। एक तो यह कि कविता में अनुभव व्यक्त होते है। दूसरे यह कि कविता को विश्लेषित करके पूरी तरह नही समझा जा सकता, क्योंकि कि वह आस–पास बिखरे हुए अनुभवों की बुनी हुई रस्सी की तरह होती है।

कविता की रचना–प्रक्रिया के सम्बन्ध में ये दोनों ही बाते बड़े महत्व की है। कविता की रचना के लिए मिश्र जी ने अनुभव को आधार माना है। कवि अपने आस–पास बिखरे अनुभवों को समेटता है। कविता का एक–एक शब्द इन्ही अनुभवों से निकल कर आता है। एक अन्य कविता में उन्होनें कहा है –

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0–17.

"इसी लिए नही लिख पाता मैं
छोटी छोटी बाते
जितना छू जाता है
उतना कह देता हूँ।"[1]

अर्थात् वे कविता के लिए उन अनुभवों को बरीयता देते है, जो कवि को लिखने के लिए बाध्य करे। उनका विश्वास है कि ऐसे अनुभव हवा में नही उड़ते, सख्त और ठोस घरती पर होते है। इसलिए वे कवि को समाज और स्थितियों से बराबर जुड़े रहने की सलाह देते है और कहते है कि –

"उठो सिमट कर बहते हुए जीवन में उतरो
घाट से हाट तक
आओ जाओ
तूफान के बीच में गाओ
मत बैठो ऐसे चुपचाप तट पर।"[2]

यही कारण है कि उनके अनुभव व्यक्तित्व अनुभव नही है। जीवन के और समाज के बहुत सारे अनुभवों का एक पूरा आकाश उनकी कविता में मिलता है। कविता अनुभवों के पकने केबाद शान्त क्षणों में ही सम्भव है। वे कहते है, " कविता का प्रेरक भाव, अगर लिखते समय हलचल मचा रहा हो, तो कविता बिखर जाती है अगर वह मन में समाया हुआ हो तो अभिव्यक्ति की, कि इन बिखरे अनुभवों को समेट कर व्यक्त कैसे किया जाय। माध्यम के विषय में वे आरम्भ ही सहज के पक्षपाती है, व्यक्तित्व की सहज अभिव्यक्ति ही उनका साध्य है। उनकी एक कविता की पंक्तियाँ है :–

"जिस तरह हम बोलते है, उस तरह तू लिख
और उसके बाद भी, हम से बड़ा तू दिखा।[3]

अर्थात भाषा रहे सहज स्वाभाविक पर इतनी सशक्त और गम्भीर कि कवि भी उसका माध्यम बन जाय, उस पर हाबी न रहे, कवि अभिव्यक्ति के माध्यम का माध्यम बन जाए उसके प्रति अपने को समर्पित कर दे। अभिव्यक्ति के विषय में उनका कहना है –

"अभिव्यक्ति तो होती ही रहती है
मैं उसके ढंग नही सोचता।"[4]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 23.
2. गाँधी पंचशती, पृ0सं0 272.
3. गीत फरोश पृ0सं0–1
4. चकित है दुःख, पृ0सं0–80.

उनकी यह सहजता, सरलता का पर्याय नही है। वे न केवल कविता की भाषा की सहजता के पक्ष घर है, अपितु अभिव्यक्ति के भी सायास नही, सोच कर नही अमायास निष्पन्न हो जाने के पक्ष पाती है। नागार्जुन के शब्दों में कहा जा सकता है, यहाँ न तो शब्द चिमटे से उठा–उठा कर जड़े गए है और न ही अभिव्यक्ति का ढंग ही आयास साध्य है। स्वाभाविक बोल–चाल की भाषा अपनी लयात्मकता में स्वत छंदोबद्ध हो उठी है। मिश्र जी ने एक जगह कहा भी है, " लिखना आखिर मेरा बोलना है। मैं जो लिखता हूँ उसे जब बोल कर देखता हूँ और बोली उसमें बजती नही हैं, तो मै पंक्तियों को हिलाता–डुलाता हूँ। बोल चाल हिन्दी की मेरी ताकत है।

जैसा हमने पीछे कहा, कविता को वे अनुभव करने की प्रक्रिया मानते है और कहते है कि मुझे जो पाना है अपने इसी माध्यम से पाना है। इस लिए उन्होनें शब्दों की बड़ी साधना की है। क्यों कि संसार में जो कुछ भी जानने समझने योग्य है, शब्दों की सत्ता के अस्तित्व से परिचित होने का अर्थ है, संसार के अस्तित्व से परिचित होना। अपने को सम्पूर्णतः पहचान लेना और पा लेना। शब्दों की क्षमता असीम और उनकी सम्भावनाएं अनन्त है। उनके पार और उनसे परे कुछ नही है। यह शब्द साधना का परिणाम है। शब्दो और प्रतीकों के विभिन्न सन्दर्भो में कविता के द्वारा नये–नये अर्थो की उद्भावना और इस लिए उनके माध्यम से प्राप्ति की एक सम्भावना हर क्षण बनी रहती है। देखता हूँ मैं। एक शब्द लेता हूँ और शब्द पर शब्द जमने लगते है और प्रवाह अर्थ का नये अर्थ का और नये–नये अर्थो का होने लगता है।

कविता लिखते समय भवानी मिश्र स्कूल व्यक्ति न रहकर, केवल सूक्ष्म अनुभव रह जाते है। यह एक ऐसा क्षण होता है जिसमें कवि अपने समूचे अस्तित्व को खो देता है। उन्होनें एक लगह कहा है : "कविता लिखते समय मेरा मन, मन ही नही समूचा अस्तित्व शब्दों में ध्वनित होने वाली झंकार से काँपता रहता है। ये झंकारे कभी–कभी अकेली बजती है, कभी समवेत और समुदायों में। इस लिए मैं कविता के सन्दर्भ में अपने को शब्दों की रौ में बहने वाला कोई व्यक्ति सोचता हूँ। उनकी कविता में इसी बात का संकेत इस प्रकार है–

"कविता का वर्ण–वर्ण
मिलकर मिट्टी में
बनेगा सोना
मगर मिट्टी में रचने–वचपे के लिए
फिर से पड़ेगा मुझे
बोना अपने को
मिट्टी में "[1]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0–18

कविता को कवि के व्यक्तित्व होने की बात मिश्र जी ने बार–बार कही है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि समाज, धर्म, दर्शन, भाषा आदि की जंजीरें तोड़कर कविता में अपने–आपकों व्यक्त करके ही आदमी पूरा व्यक्ति बन सकता है। उनकी कविताएं भी उनके सुविकसित व्यक्ति की वर्ण माला है। उनकी व्यक्ति मन्ता समाज, धर्म दर्शन, दन्द भाषा आदि की जंजीरों को तोड़कर खुलने का उपक्रम करने लगती है, किन्तु वे जंजीरें पूरी तरह से खुली या टूटटी नही है और अपने को खोला जाकर विलग नही हुआ, अपने से तोड़ा जाकर टूट नही पाया, क्योकि वे मानते है कि आदमी की व्यक्तिमन्ता आनुवांशिक विशेषताओं से अंकुरित और परिवेश से परिपुष्ट होती है। अतः खुलने के लिए जंजीरों का बन्धन भी आवश्यक है – शर्त यही है कि वे व्यक्तित्व के विकास का अंग बन चुकी हों, उसके खुलने की भूमिका अदा कर रही हों। परिपुष्ट व्यक्तिमता 'अह– मे 'वयम्' को और 'युग बोध' में चिरंतन बोध को आत्मसात् किये रहती है। कि उसके माध्यम में भी वैसी क्षमता का शनै : शनै : फूटना सम्भव है। उन्होनें अपनी व्यक्तिमन्ता को स्पष्ट करते हुए कहा हैं –

" खाली दुनिया जैसे कहीं बँधी है पहाड़ों से
घिरी है जैसे कहीं झाडों से या समुन्द्र की श्रृंखला से
ऐसे ही बँधा है मेरा मन यहाँ कर्तव्य से वहाँ आदर्श से
अभी इसके शोक से अभी इसके हर्ष से
मैं इस अर्थ में स्वतन्त्र नही हूँ, हो ना भी नही चाहता
कितनी चीजों से बँध कर खुला हूँ मैं
कितनी चीजों के बल पर ठीक अभिव्यक्ति होता हूँ मैं
अभी आँसू अभी रक्त होता हूँ मैं
मेरी व्यक्ति कितनी सारी चीजों से मिलकर बनती है
समूची दुनिया मन जाती है, तब मेरी मर्जी मनती है।"[1]

इस व्यक्तिमन्ता की सार्थकता को उनके शब्दों में इस प्रकार भी समझ सकते है इस "अगर व्यक्ति के पैदा होने, बढने, उसके समज बनने आदि सब व्यर्थ नही जाना है तो उसे अपने को ही अभिव्यक्त करना है।"

जीवन-दृष्टि :-

भवानी प्रसाद मिश्र खड़ी बोली हिन्दी के ऐसे आधुनिक कवि है, मानव–मूल्यों और साहित्यिक मूल्यों–दोनों को बराबर अपनाया है। तुलना की दृष्टि से उनके काव्य में मानव मूल्यों का पलड़ा भारी है। सन् 1951 ई0 में उन्होनें अपनी काव्य रचना के सम्बन में एक वक्तव्य दिया था, कि कभी कोई दर्शन वाद या जिसे टेकनीक कहते है मैने नही सोचा। बहुत

1. गांधी पंचशती, पृ0सं0–332.

से ख्याल अलबत्ता मेरे है। मगर मै मानता हूँ कि ज्यादातर लोगों के ख्याल भी तो वही है। वे अमल भले ही उन ख्यालों के मुताबिक न करते हों। दर्शन में अद्वैत, वाद में गाँधी का और टेकनीक में सहज ही मेरे लक्ष्य बन जाएँ ऐसी कोशिश है।

यह सब होते हुए भी भवानी प्रसाद मिश्र ने किसी मत या वाद का पिद्दलग्गू होना स्वीकार नही किया, क्योकि एक मत या वाद के पीछे ऑख मूंदकर चला जाय तो व्यक्ति उन्मुक्त विकास बाधित होता है। इस लिए उन्होनें समन्वय वादी जीवन–पद्धति को स्वीकार किया है। गांधी–दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता उसकी समाहार शक्ति है। गांधी–दर्शन भी प्रगतिशील जीवन की दृष्टि लेकर चलता है किन्तु उसका आधार राजनीति–प्ररित,मार्क्सवाद, या साम्यवाद नही है। इस लिए मिश्र जी साम्यवाद तथा गांधीवाद दोनों श्रेष्ठ तत्वों की समाहार चेष्टा में रत है। वे चाहते है कि गांधी की प्रेम और अहिंसा की नीति अपनाकर साम्यवादी अपनी उग्रक्रान्ति अथवा हिंसा का परित्याग करें और गांधीवादी शोषित वर्ग के उन्नयन हेतु उसी तीव्रता और निष्ठा से यथाशक्ति चेष्ठा करें जैसा कि साम्यवाद उसे प्राथमिकता देता है।

मिश्र जी का जीवन–दर्शन है कि जिन्दगी एक ठोस चीज है। छोटी–छोटी बातों में ही जीवन के ठोस तत्व समाहित है। अहंकार, बड बोलापन और अधिकार का मद व्यर्थ भटकता है। कवि की जागरुकता और संवेदन शीलता इस बात में है कि वह परिवेश को समझे, समसामयिकता के प्रति सतर्कता बरते, सामान्य व्यक्ति के सुख–दुख में डूबें और जीवन मूल्यों को उजागर करे। मिश्र जी इस कसौटी पर खरे है। जन जीवन से सहज साभीप्य उनकी विशेषता है। सच तो यह है कि विरागी नही बना कभी अपने आस–पास से कृत्रिमता, चतुराई, या कौरी बौद्धिकता (दार्शनिकता) बघारने का शौक उनमें कभी नहीं रहा। जन–सामान्य जैसा जीवन उन्होनें जीया है और दुःख को भी त्यौहार माना है –

" सामान्य ही को सदा
असामान्य मानकर
छाती से लगाया
और उसी के बल पर
बड़े से बड़े दुःख को
त्योहार की तरह
मनाया।"[1]

---

1. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0–133.

वे कल्पना के स्वप्न से कोसो दूर है और जीवन के संघर्षो से ही निकलकर आने वाले अनुभवों को प्राथमिकता देते है। जन–सामान्य के प्रति असीम अनुराग, प्रेम निष्ठा को लेकर आगे बढे हैं।

वे जमीन से जुड़े कलाकर है। विरक्ति का प्रकाश और अनुरक्ति की माया दोनों का सामंजस्य स्वस्थ जीवन–विकास के लिए आवश्यक है। भवानी मिश्र सदैव ही जीवन से अनुरक्त है, किन्तु विरक्ति के साथ आसक्ति और आसक्ति के साथ विरक्ति की साधना उनके काव्य से परिलक्षित होती है। वे एक कविता में कहते हैं –

" सखा ओ, छाया दो
छाया भी चाहिए
विरक्ति का प्रकाश पड़ा चुका
अनुरक्ति की माया भी चाहिए।"[1]

यह सच है कि कवि के लिए 'अनुप कुछ नही रहा सूने पन के सिवा, सूने मन के सिवा, किन्तु कवि की आकांक्षा है कि उसके मन की बुनावट, मन का विस्तार, मन की सफाई–सजावट सबके लायक बनी रहे। वह जुड़ा रहे जन–जीवन से, व्यक्तिपरक होकर समष्टि से। कवि के व्यक्ति में कोई दुराव–छिपाव नही, क्यों कि उसकी आत्मा में सहज ही झाँका जा सकता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म विकार और विचार, सब साथ दिखलाई देते है।

वस्तुतः वे यह मानते है कि जब तक अन्त बिह्म का तादात्म्य स्थापित नही होती, कविता नही हो सकती। अन्तर्मुखी होकर केवल अपनी आत्मा के विकास की चेष्टा करना कवि–दायित्व से पायन है। मावन–मन की सही पकड़, जीवन की ठीक समझ और द्धन्द्ध का आभास संसार के प्रति विरक्ति या उदासीनता से सम्भव नही है। कवि की संवेदन शीलता बाहरी वातावरण से उद्धेलित होता है। स्थितियाँ उसें झकझोरती है और उसके अन्तर को बदतली है। समय उसी कवि को याद रखता हैं जो बीहड़ बंजरों में अपने अर्थो के गुलाब की महक दे, भीतर और बाहर को एक रुप दे –

" बड़ा हिसाबी है काल
वह तभी लिखेगा
अपनी बही से किसी
कोने में तुम्हें
जब तुम

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0–106.

भीतर और बाहर को
कर लोगे परस्पर एक।''[1]

यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि भवानी प्रसाद मिश्र जनवादी चेतना के कवि है। वे अपनी व्यक्तिगत रचनाओं के भीतर से बाहर निकले हैं और व्यक्ति–व्यक्ति से मिले है। उन्होनें खुली आँखों से देखा है और लिखा है। कवि की ठीक दिशा यही है– ''बाहर निकल गया हूँ मैं/ अपने भीतर से/मिल गया हूँ/ जाकर जहाँ चाहिए था जिससे।''

कवि भवानी प्रसाद मिश्र के जीवन–दर्शन के सम्बन्ध में इस सब बातों के साथ कुछ और ऐसे ही जीवन–मूल्यों को रेखांकित करना अनिवार्य है ,जो उनकी कविताओं में सर्वाधिक उपलब्ध होते है और उनकी विचार धारा को स्पष्ट करते है। ऐसे कुछ जीवन–मूल्य इस प्रकार है :–

भारतीयता :-

भवानी प्रसाद मिश्र बाहर–भीतर समग्रतः भारतीय है। धरती पर जन्म लेने वाले को वे भाग्यवान मानते है। अपने देश के प्रति अगाध प्रेम और श्रद्धा का यह ठोस प्रमाण है। उनकी अनेक कविताओं में इस तरह के भाव विद्यमान है। यथा –

''जिसे जन्म लिया गंगा जमना
रेखा या कृष्णा तट पर
जिसने काँसों की जड़ खोदी
ज्वार कपास बाजरा बोये
जिसने फागुन में डफ ठोके
दीवाली में दीप संजोयें
जिसने यों असिन्धु हिमालय
सबसे मानी स्नेह सगाई
बल्कि और भी सही शब्द
यदि कहूँ कि वह महिला महान है।''[2]

अस्तिकता :-

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्यगत जीवन–मूल्यों में उनकी अस्तिकता बहुमूल्य सूत्रवत् अनुस्यूत है। यथा–

'' ज्ञान से शुरू करो
चाहे कर्म से चाहे भक्ति से

---

1. व्यक्तिगत, पृ0सं0–54.
2. गाँधी पंचशती, पृ0सं0–104

जोड़ना तो पड़ेगा अपने सब कुछ को
अनन्त की शक्ति से
उसके स्त्रोत से उसके प्रवाह से
कुछ नहीं होते हम अलग रहकर
उस अपरम्पार से उस अथाह से।"[1]

इसी प्रकार एक अन्य कविता की पंक्तियाँ है :–

" हमारे अविश्वास करने से
भगवान मर नही पाता
हम न डरें उससे तो इससे
वह डर नहीं जाता
बल्कि मर जाते है+हम उसी क्षण जब
भरोसा उठ जाता है हमारा।"[2]

निर्भीकता एवं स्वाभिमानता :-

भवानी प्रसाद मिश्र ने काव्य में प्रबल आस्तिकता के आधार पर मानव की सरल निर्भीकता की तस्वीर इस प्रकार खड़ी की है –

" लहरो के आने पर
कोई–सा फटें नहीं
रोटी के लालच में
तोते सोरटे नहीं
प्राणी वही प्राणी है।"[3]

मानवीय सद्गुणों में आस्था :-

भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व स्वार्थ–भावना को त्यागकर अपने दुःख–दर्द से विमुख हो, भवानी प्रसाद मिश्र ने अभयगान किया और मानव–मन को इस प्रकार से सम्बोधित किया –

" दर्द है भीतर तो अपने दर्द
की कीमत चुका
प्यार प्रत्यंचा से अपने
देह की धुन ही झुका
छोड़ दे विश्वास के उस पार

---

1. गॉधी पंचशती, पृ0सं0–423.
2. गांधी पंचशती, पृ0सं0–436.
3. दूसरा सप्तक, पृ0सं0–22

चढ़ा कर तीन मन
त किसे देगा अभय जो
खुदे हुआ दिलगीर मन।"[1]

उन्होनें प्राणी–प्राणी में छोटे–बड़े का अन्तर स्वीकार नही किया और सच्चा मानव उनके अनुसार वह है, जो –

" लँगड़े को पाँव
लूले करे हाथ दे
सत की संसार में
मरने तक साथ दे।
बोले तो हमेशा सच
सच से हटे नहीं
झूठ के डरायें से
हरगिज डरे नहीं।
सचमुच वही सच्चा है।
प्राणी का वैसे और
दुनियाँ में टोटा नहीं
कोई प्राणी बड़ा नहीं
कोई प्राणी छोटा नहीं।"[2]

सच्ची कर्मठता :-

धर्म दर्शन, विचार और शास्त्र– ये सब मानव के सम्बल हैं, लेकिन मानव का महत्व इनकी धारा से अधिक है। थोथी घोषणाओं या शास्त्र के उल्लेखों से भवानी प्रसाद मिश्र को लगाव नही। वे स्पष्ट कहते हैं –

" हम जिन्दा तो रहना चाहते हैं
मगर जितना बने उतना बचकर काम से
याने जरुरत से ज्यादा आराम से
और फिर दुःख उठाते है, विवश वेभजा
शिवा शिकायत के फिर हम
कुछ कर नही पाते।

---

1. गॉधी पंचशती, पृ0सं0–103.
2. दूसरा सप्तक, पृ0सं0–22.

ढंग से जीना तो दूर

ढंग से मर नही पाते।''[1]

सह-अस्तित्ववादिता :-

धर्म, जाति, भाषा, प्रान्त, मत, वाद आदि में खण्डित इस देश के सम्मुख गांधी के विचारों को आत्मसात् करके, बिना किसी दुविधा के भवानी प्रसाद मिश्र के सर्वोदयी काव्य का सर्वाधिक उज्जवल जो मानव–मूल्य आज हमारे सामने है, वह सह– अस्तित्ववादिता के नाम से अमिहित किया जा सकता है, जिसकी शुभ्र प्रभा से उनकी रखनाएँ मण्डित है। यथा–

'' जियो और जीने दो

प्रभु बरसा रहे हैं जो सुधा

सो सब को पीने दो

मत भेदों के लिए गुंजाइश रखों मन में

आग्रह तो केवल सत्य का रखा जा

सकता है,

प्रभु बरसा रहे हैं जो जीवन अमृत

इसी तरह रस उसका चखा जा सकता है।''[2]

इसी तरह एक अन्य रचना में वे कहते हैं –

'' आज भी ओ नेक, दामन की

बचाकर चल न अपने

तू अगर झुलसा नही तो

सच न होंगे पुण्य सपने

विश्व व्यापी आग का मतलब

कि मानव एक हैं रे

अछूता बद की बदी से नही वह

जो नेक है रे,

हर बदी में नेक का हिस्सा है।

मत नेक समझों

मौत के इस उजाले में

आदमी को एक समझो

और अपनी इस समझ को

---

1. गांधी पंचशती, पृ0सं0–415.
2. वही, पृ0सं0–421.

शोर के ऊपर उठाओं

आज चुप बैठों नहीं

हे इस तपन के बीच आओं।[1]

अतः हम कह सकते है कि दर्शन में अद्वैत, बाद में गांधी और टेकनीक में सहज के लक्ष्य को लेकर चलने वाले कवि भवानी प्रसाद मिश्र की वजह, सरल कविताओं में सरल मानव के सरल जीवन के सरल मूल्यों का अंकन सर्वत्र विद्यमान है। यह उनके जीवन–दर्शन का आदर्श रुप है, जो आज के कवियों की रचनाओं में प्रायः देखनें में नही मिलता। सच पूछा तो भवानी प्रसाद मिश्र की सम्पूर्ण साधना एक ऐसे समन्वय की साधना है, ऐसे समन्वय की खोज है, जिसमें व्यक्ति समष्टि के लिए समर्पित होकर भी, अपनी इयन्ता को सुरक्षित रखता है, और सब के लिए जीते हुए भी अनाशक्त रहता है। गीता की भाषा में कहा जाए तो यह 'कर्म से अकर्म' की साधना' है।

वैचारिक दृष्टि से कवि की यात्रा प्रकृति से आत्म की ओर निरन्तर गहरी होती गई है। यह यात्रा कोई निष्क्रया, बुद्धि विलास नही, वरन् समय और जीवन के सहज क्रम में जो कुछ सामने आता गया है, उसी को गहन और तीव्र अनुमति से सम्पृक्त करते हुए प्रेरक रुप देने की चेष्टा की गई है। दूसरों को कुछ देने का गर्व इसमें कहीं नहीं है, यह तो जीवन के सहज आन्नद की उपलब्धि का प्रयास है। एक उपभोक्ता के नाते नही, एक दृष्टा की तरह। इस लिए दृष्टि में नकार कहीं नही है। सब को स्वीकार करते हुए, सबसे जुड़े रहते हुए भी निस्संग रहने की कठिन तपश्चर्या है। यानी कि :

''समष्टि को जीने से, सहने से

जीता है आदमी

सब कुछ मिलाकर कहें, भवानी प्रसाद मिश्र की कविता आस्था की कविता है, ठण्डी आस्था नही वरन् उस आस्था की जो संघर्षो के बीच जीकर कवि ने प्राप्त की है।

संवेदना

19वीं शती के प्रारम्भ में कवि शैली के शब्द थे–

'तब तक कुछ न लिखो, जब तक कोई 'सत्य' तुम्हें लिखने के लिये बाध्य न करे।''

अपने काव्य में वस्तु–चयन के प्रति भवानी प्रसाद मिश्र का दृष्टिकोण भी यही रहा। अपने अनुभूत व्यक्ति सत्य को 'व्यापक सत्य' बना देने की समस्या मिश्र जी को सदैव सचेत किए रहती है। यही कारण है कि सहज के उपासक इस कवि ने जो कुछ भी लिखा है, लिखने के पहले उसे रहती है। यही कारण है कि सहज के उपासक इस कवि ने जो कुछ भी लिखा है, लिखने के पहले उसे जिया है। और जिया हुआ, या अनुभूत किया हुआ कुछ

1. गीत फरोश पृ0सं0–179.

भी असत्य ही हो सकता। उनकी काव्य वस्तु अत्यन्त व्यापक है। वह काल्पनिक नही है इसी संसार की है। साथ ही ध्यातब्य है कि मिश्र जी ने न तो अपनी काव्य वस्तु को वस्तु के पूर्ण विशिष्ट होते हुए भी, विशेष का जामा पहनाया है, और भाषा, बल्कि पूरा शिल्प ही, पूर्ण विशिष्ट स्थितियों को सम्पूर्णत : व्यक्त करता है। इसका कारण है कि वे सारे अनुभवों को समेट कर लिखते है, जितना मन को छू जाता है मन में अच्छी तरह रच–बस जाता है उसे ही व्यक्त करते है। उसकी एक कविता की पंक्तियाँ इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है ,वे कहते है –

"लिखने वाला तो
हर बिखरे अनुभव को/रेशे को
समेटकर लिखता है।

और

नही लिख पाता में
छोटी–छोटी बातें
जितना छू जाता है
उतना कह देता हूँ।[1]

इस परिप्रेक्ष्य में यदि हम कवि भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य–वस्तु का विश्लेषण करें तो उसमें एक व्यापक दृष्टि, एक व्यापक वस्तु की प्राप्ति हमें होगी। जितनी साधारण–सी उनकी कविताएँ लगती है, उतनी ही असाधारण उनमें 'वस्तु विद्यमान है। यहाँ मिश्र जी की काव्य–वस्तु का विश्लेषण प्रस्तुत है –

मानवता वादी चेतना :-

भवानी प्रसाद मिश्र की आस्थामयी दृष्टि उनके काव्य की बड़ी सम्पत्ति है जिसका केन्द्रीय चेतना है– मानवतावाद। उनकों विघाता की सृष्टि में पूरी आस्था है। सुख और दु :ख का एक ही उद्गम है एक ही लय है। ऐसा स्वीकार करते हुए कवि आशा के गीत गाता है। वह आखस्त है कि शारवत नही है वेदना, हिंसा, और दमन–चक्र की विषम स्थितियों में भी वह पशुता के विनास की आकांक्षा करता है। नव वर्ष नामक अपनी एक रचना में कवि ने मंगल–विघाता से याचना की है कि वह विचारों की चिनगारियाँ सुलगा दे, ताकि असमय ही अपना अस्तित्व नष्ट न करना पड़े भाग्य के अधीन होकर रोना न पड़े :

"उठें हम और उठ जाए जगत् से भाग्य का रोना
सुलग उठें हमारें प्राण की भट्टी कि तब गल जाए यह सोना

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0–17, 23

कि जिसकी नींव पर पशुता
हवेली बाँध सिंर ताने खड़ी है।"[1]

भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने कैदी–जीवन में भी निराश को कभी स्थान नही दिया, क्यों उनके सामनें भूखे–नंगों की दर्द–भरी दूबारत हमेशा झूलती रही और उनकी मानवीय करुणा विद्रोह तथा क्रान्ति की ज्वाला घघकती रही। उन्हें विश्वास है। कि व्यर्थ जाता ही नही जग में कही विद्रोह कोई, किन्तु विद्रोह करना ही कवि का मकसद नही है, वह तो गंतव्य तक जाने की एक राह है –

" ये नही मकसद
कि ये राह की कुछ मंजिले हैं
मंजिलें है और तय करना हमारा काम है री
जो बढ़ा जाए कि बस इन्सान उनका नाम हैरी।"[2]

भवानी प्रसाद मिश्र ने गांधी वादी दृष्टिकोण और अद्वैतवाद के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की है। इस दृष्टिकोण के कारण एक मर्यादा और आदर्श उनकी रचनाओं में व्यक्त होता रहा है। "फूल लाया हूँ कमल के " रचना (दूसरा सप्तक) में जब वे कहते है –

" ये कमल के फूल
लेकिन मारसर के है,
इन्हें बीच से लाया,
न समझो तीर पर के है।"[3]

तब दृष्टिकोण गत पावित्रय, आदर्श औश्र प्रमाणिकता ही व्यक्त होती है। इसी तरह उनकी 'असाधारण' और 'स्नेह–शपथ' रचनाओं में लोक मांगल्य की भावना निहित है। कवि की साधना हमेशा कर्ममय विश्वास को लेकर चली है। उसने हमेशा रुप से अधिक महत्व गुण को दिया है और गुण भी वह जो समष्टि–चेतना को आत्मसात् करे। उनकी 'सत्य काम' रचना मानवीय धरातल पर गांधीवादी विचारधारा को प्रस्तुत करती है। कवि आर्शीवाद चाहता है कि उसकी जीवन वीणा वेणु– जैसी मादक हो और आवश्यकतानुसार रण मेरी भी। वह लहरों से जुझे और अभय की प्रतिष्ठा करें, हर ह्रदय की पुकार को समझें, किन्तु होंठ पर कभी भीख मांगती भाषा न आने पाये –

"कभी प्रलय के क्षण में प्रमु से रखो न निर्बल आशा,
आने पाए नही ओंठ पर भीख मांगती भाषा,

---

1. गीत फरोश पृ0सं0–46.
2. गीत फरोश–131.
3. दूसरा सप्तक, पृ0सं0–9

चार हाथ लहरो की ताकत कर दें पानी पानी,
प्रलय–वात के प्राणों पर हो अंकित अभय कहानी।"[4]

इतने सबके साथ कवि अत्यन्त विनम्रता के साथ अपनी अभिलाषा व्यक्त करता है कि वह संसार के कुछ काम आ सके। वह जीवन की विरसता को तारों पर कस कर मधुर झंकार उत्पन्न कर सके। यदि किसी एक को भी उसके गीतों से सांत्वना और शान्ति मिल सकी, तो इस सफलता पर ईश्वर के प्रति नतमस्तक होता हुआ वह प्रसन्न होगा। यही नही वह मेरे–तेरे में कोई भेद नही मानता। यह व्यापक दृष्टि कवि को इस जीवन के व्यावहारिक पक्ष से प्राप्त हुई, किसी मत, वाद या कोरे सिद्धान्त से नही मिली। जीवनकी सहज संवेदन शीलता, परिवेश से सम्पृक्ति, आदि स्थितियाँ उसे विराट् जीवन की भाव–भूमि प्रदान करना है :–

" फर्क नही कर पा रहा हूँ मानो
घने कुहरे जैसे इस अँधेरे में
मैं मेरे और तेरे में
और यह स्थिति
दर्शन से नहीं
अदर्शन से पैदा हुई है।"[2]

उपर्युक्त विवेचन ये यह निर्विरोध निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कवि भवानी प्रसाद मिश्र मूलतः मानववादी कवि है। उनमें समाजशास्त्रीय अध्ययन या ऐतिहासिक विकास का एक पक्षीय अतिरेक नही है। मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा उनका अभीष्ट है। सामान्य जीवन की गहरी पकड़, परिवेश के प्रति लगाव और यथार्थ अनुभूत तथ्यों के फलस्वरुप प्रेरणामय मानवतावादी भावना उनके काव्य में सर्वत्र विद्यमान है, चाहे कवि की प्रकृति की दृश्यवालियों या उसकी मनः स्थिति की आत्म स्थता को हम देखें।

स्वस्थ जीवन-बोध :-

कवि की सूक्ष्म दृष्टि युगीन सन्दर्भो तक ही नही है। वह जीवन बोध और आत्म बोध ा तक गई है। कवि स्पष्ट कहता है कि तुम ऐसे लाचार और अकेले नही हो जो सिर पर बोझ लिए सरक्ष धूप में चल रहे हो। जीवन का सही बोध उनके पास है– जो शीत की ठिठुरती रात्रि में अँगीठी, कम्बल और बिस्तरों से वंचित रह कर भी माने वाले बसन्त का स्वप्न देखते है। सख्त धूप, तपी धरती अनचाहा रास्ता सब क्षणिक है, युगीन है, युग मंगुर है। प्रमुख बात है– जिजी विषा, जो कभी नष्ट नही होती है। एक रस जीवन भी बोझ होता है। मेघ तुषार, फूल, काँटे इन सबसे बना है जीवन। वृक्ष से पत्ते गिरते है तभी तो नई कोपले जन्म लेती है।

---

1. गीत फरोश, पृ0सं0–15.
2. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0–123.

दु:ख ही आधार है आगामी सुख का, इसी लिए तो वह सृजन की माता है –

" तुम आओ
या भेजों कोई बड़ा दर्द
ऐसा निरानन्द सुख दु:ख से अछूता जीवन
नही चाहिए
पत्ते झर–झर गिर रहे हैं
याने वृक्षों के दिन फिर रहे हैं।"[1]

भवानी प्रसाद मिश्र जिजी विषा के कवि है। संघर्ष के गायक है पलायन के हिमायती नही। यह सच है कि हर दिन व्यक्ति बिखरता है, टूटता, कभी शरीर से कभी मन से पर इस टूटने–बिखरने से क्या होता है, जीने की लालसा व्यक्ति में सर्वाधिक प्रबल है। फलतः संघर्ष की शक्ति भी। इस लिए कवि मिश्र कहते है, ' जीवन संघर्ष है' लड़ो।

सामाजिक वैषम्य :-

भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं में सामाजिक विषमता को पूरे तथ्यों के साथ और उसके निराकरण की दिशा में कुछ करने की ओर सोचने की प्रेरणा से बड़े ही सार्थक और कलापूर्ण ढंग से व्यक्त किया गया। इस दृष्टि से उनकी 'गांव' शीर्षक एक कविता यहाँ उल्लेखनीय है। इस कविता में पूरी करुणा और संवेदना के साथ ग्रामीण जन की दुर्दशा का यथा अंकन हुआ है। कृयाक की दीनता, निरीहता और कर्मठता मानों इस कविता में मूर्तिमान हो उठी है। 'दरवाजे विहीन झोपड़ियों में घुएँ से घुटता हुआ दम मानव के शोषण का पूरा प्रमाण है। अभाव व्यस्त शिशु माँ की छाती से चिपटे है और माँ चक्की पीस रही है। इस विपन्नता के साथ लोक जीवन की पूरी झाँकी का बिम्ब इस कविता की पंक्तियों में– मूर्तिमान हो उठा है –

" गाँव इसमें झोंपड़ी, घर नहीं है,
झोपड़ी के फटकियाँ है, दर नहीं है,
घूल उठती है घुएँ से दम घुटता है,
मानवों के हाथ से मानव लुटा है।
सो रहा है शिशु कि माँ चक्की लिये है,
पेट पापी के लिए पक्की किये है।
फट रही छाती।"[2]

---

1. चकित है दु:ख, पृ0सं0–20.
2. गीत फरोश, पृ0सं0–36.

वास्तव में श्रम के प्रति निष्ठावान, पर थके हुए मानव, भूखे किसान का यह चित्र सर्वहारा के प्रति सच्चे मानवीय प्रेम का द्योतक है।

इसी प्रकार "मैं कहता हूँ" शीर्षक रचना में कवि में समाज की उन सारी व्यवस्थाओं पर अगुँली उठाई है, जो सम्पन्नों के द्वारा विपन्नों की दुनिया उजाड़ने में और गलत लाभ लेने में प्रयुक्त होती है।

" जब कवि यह कहता है कि
घूल और घुएँ के अस्तित्व में
वे भूल गए है दो बातें
कि सूरज सब पर चमकता है
और किसी भी एक की नही है
यह धरती।"[1]

तब उसका प्रश्न यही है कि जब धरती किसी एक की नही है, तो क्या हक हे, किसी एक को उसे भोगने का? और जब एक ही व्यक्ति या वर्ग के द्वारा उसे मन माना भोगा जाता है, तब कुछ गुलदस्ते और गमले तो हरे–भरे हो जाते है लेकिन हिन्दुस्तान की समूची धरती के बाग–वन नही सरसते, इस लिए जरुरी हो जाते है प्रश्नो का उठना और उठाना –

प्रश्न चारो और से आओ
उठो बैचेन मेरे प्रपून
चारा ओर से गाओं
कि यह क्या हो रहा है ?

कौन है जो नीद सुख की सो रहा है? आग जब घर में लगी है कौन जो बुझाने बढता नही है? कौन है जो और भड़कना जरुरी समझता है आग को? कौन है जो एक सुविधा समझता है जल रहे इस बाग को– और इन प्रश्नों की झड़ी जनता को धरती की आसमान को बन को पवन को सब को झकझोर कर रख देती है।

प्रगतिशील चेतना :-

प्रगति प्रकृति का शासवत नियम है। यह विकास शील हे। कोई संयोग मात्र नही। वह शुद्ध बुद्धि का एवं शुद्धकर्म का योग है। भवानी प्रसाद मिश्र की धारणा हे कि शुद्ध बुद्धि कभी हिंसा नही कराती, संघर्ष नही कराती और न शुद्ध कर्म कभी किसी व्यक्ति या वर्ग का ह्रास करने की प्रेरणा देता है। गांधी दर्शन मार्क्सवाद या साम्यवाद नही है। वे कहते है। वे कहते है कि जब तक गांधी दर्शन के आधार पर उत्तम साधनों का उपयोग नही होगा तब तक उत्तम लक्ष्य की प्राप्ति संभव नहीं। सच तो यह है कि हमनें अधूरे ढंग से उसे अपनाया फिर

1. आदिम सुगंधों के पहरेदार, भवानीभाई, पृ0सं0–292.

भी हमारी उपलब्धियों कम नही –

"इसे वर्ग संघर्ष से पैदा करना
निश्चय ही गति–हत होना है
दिख सकती है प्रगति किसी को कुछ दिन इसमें
किन्तु प्रकारान्तर से तो यह मूतवत होना है
प्रगति साध्य–साधन का सायं जस्य यही तुमने बतलाया
हमने बहुत अधूरे ढंग से
पालन किया किन्तु फिर भी जो पाया
कितना पाया।[1]

प्रगति शीलता केवल शोषित और शोषक के वर्ग– संघर्ष से नही आती। वर्ग संघर्ष सामाजिक यथार्थ का पर्याय बनकर अधिक दिनो तक नही छल सकता। इस तथ्य से वे भलीभाँति परिचित है। यही कारण है कि वे पारिभाषिक अर्थो में प्रगति शील न होकर सही अर्थो में प्रगति शील है। समाज की प्रगति शील शक्तियों के साथ मिश्र जी की निरन्तर सहानुभूति रही है। और उन्होनें अपने वैयक्तिक जीवन की तरह अपने काल में भ्ज्ञी कभी बेईमानी, अत्याचार अथवा अन्याय के साथ समझौता–नही किया। वे कवि है अतः स्वतः सिंद्ध है कि वे प्रगति वादी है, क्योंकि उन्ही के शब्दों में विस्तृत अर्थो में जो प्रगतिवादी नही है। अर्थात् जिसके अपने और दूसरों के अँधेरे में उजाले में जाने की कल्पना नही जागती वह नही है। इस अर्थ मे मैं अपने को प्रगति वादी मानता हूँ। किन्तु हिन्दी में प्रगति वाद एवं प्रगतिवादी एक रुढिगत साम्प्रदायिक अर्थ के द्योतक बन गये है अतः भाँति की सम्भावना को पूरी तरह विनष्ट करते हुए भवानी प्रसाद मिश्र को प्रगति वादी कहने की अपेक्षा प्रगतिशील कहना अधिक संगत ज्ञात होता है। इसी प्रगति शीलता एवं आशा वादिताके बल पर कवि ने मानवता की सुविधाओं की सुविधामय भविष्य की कल्पना अपने गीत फरोश, संग्रह में 'अनन्त मधु मास अथवा प्रकाश सागर, के रुप में की है और उऐसे एक समय की आहट को सुनता हुआ वह मानवता का जय घोष करता हुआ कहता है–

" असहनीय है यह कि काल से हार रहे धरती के बेटे–
सोचे भर अपना अभाग कर आँख बन्द लेटे–लेटे
अभी काल रथ अपने आगे, इसको पीछे छोड़े तक है –
जैसे भी हम मुडे, कि इसको वैसा मोड़े तब है।"[2]

दूसरा सप्तक में संगृहीत उनकी 'सन्नाटा' शीर्षक रचना में भी मिश्र जी की प्रगति

---

1. गांधी पंचशती, पृ0सं0 83.
2. गीत फरोश पृ0सं0–189.

शीलता द्रष्टव्य है। 'सन्नाटा' एक राजा और रानी की मार्मिक कथा व्यक्त करता है, जिसमें रानी की करुण चीत्कार और पागल के गीतों के प्रति उसकी आशक्ति व्यक्त हुई है। रानी संध्या– समय पागल के गीतों को दुहराती बंशी पर गाती किन्तु राजा कैसे सहन करता। सूली पर रानी की कोमल देह झूल गई। किन्तु पागल का गाना प्रति ध्यनिता होता रहा और रानी का मधुर हास भी :

" वह (राजा) भरा क्रोध में आया औं रानी से–
उसने माँगा इन झाँझों का लेखा।
राली बोली, पागल को जरा भुला दो,
मै पागल हूँ राजा, तुम मुझे भुला दो,
मै बहुत दिनों से जाग रही हूँ राजा।
बंसी बजवा कर मुझ को जरा सुला दों।[1]

कवि की व्यंजना यह है कि समाज में पूँति पतियों सामन्तों और शासकों द्वारा कितने अलक्षित और अज्ञात जीवन इसी तरह नष्ट हुए है और मानवीय प्रेम पर न जाने कितने निरंकुश अमानवीय दबाव डाले जाते रहे है। सत्ता वर्ग हमेशा कलाकार का विरोधी रहा है।

जीवन की भयावह विषमताओं के चित्र :-

कवि मिश्र के काव्य में जीवन की भयावह विषमताओं के चित्र, निराशा व उदासी की अनुीातियों से आक्रान्त है। एक आस्थावान कवि अवसाद और क्षोम की भाव–भूति पर कैसे? निराशा की अभिव्यक्ति सामाजिक आदर्शो के विघटन का क्षणिक परिणाम है। उनके काव्य का स्थयी स्वर तो जीवन–संषर्घ की क्रिया शीलता के अनुप्रणित है। जिन्दगी में कभी ऐसे क्षण भी आते है कि सर्वत्र एक खालीपन और उदासी दिखाई देती है। इन क्षणों में थोथा जीवन, खोखले विचार, शक्ति हीनता और दुचिन्ताएं ही प्रधान बन जाती है है, जिन्दगी बेमानी और निःसार हो जाती है। ऐसी स्थिति की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

" बाजार भी जैसे
सन्नाटा है जैसे बहरे के लिए
मेंहदी जैसे
निरर्थक है चेहरे के लिए
ऐसी हो गई है जिन्दगी
खाली और खस्ता
मेरे नजदीक।"[2]

---

1. दूसरा सप्तक, पृ0सं0 14.
2. चकित है दुःख पृ0सं0 106.

कवि सोचता है कि फूलों को गीतों में बुनने का मौसम ही निकल गया है और वह काँटे ही बीनता रहा। कोई शाम धीरे–धीरे इस धरती पर ऐसी आ रही है जिसमें चारों ओर धुप अँधेरा होगा, जिसमें कोई दिया नही जलाएगा, इस लिए कवि चेतना से घबड़ा कर जड़ हो जाना चाहता है। यह चेतना ही मनुष्य के दुःख का कारण है– जन्म, मरण हर्ष विवाद, क्रोध घृणा, आडम्बर , रुप माधुरी, प्रलोभन आदि सब चेतना के अनिवार्य परिणाम है। जिन्दगी एक उपहास बन गई है। सच झूठ के आगे आधा हो गया है। स्वस्थ चिन्तन और मानवीय मूल्यों के लिए कोई आग्रह नही करता –

" कोई नही कहता, व्यक्ति बनों
कोई नही कहता, अनुरक्त बनो
कोई नही कहता अकेले बैठो मन न करो
कोई नही कहता कविता लिखो।"[1]

देश की दुर्व्यवस्था और वर्तमान जीवन की बिउम्बनाएं कवि को इस बात के लिए विवश करती है कि सूर्योदय देखने की कामना व्यर्थ है। अतः वह अँधेरी रातों में अँधेरा ही जीना चाहता है। ज्ञान उसे बोझ बन गया है। वह आधुनिक जीवन के चोंचलों से भलीभांति परिचित है –

" रात को सूरज माँगना
दिन को तारे
हाय रे चेतना के चोंचले
हमारे?"[2]

लेकिन इतना सब होते हुए भी मिश्र जी यथार्थ जीवन का साक्षात्कार बड़े साहस और धैर्य के साथ करते है वे अपनी आस्था को टूटने नही देते बिखरने नही देते।

वर्तमान या सदी के चित्र :-

मिश्र जी की एक कविता है सारा शहर। इस कविता में जीवन कर वर्तमान ट्रेजड़ी का स्पष्ट संकेत मिलता है। कविता पढ़ते समय लगता है कि जैसे सारा शहर अपनी मौत का सपना देख रहा है। सब ओर चिताएँ जल रही है, सब राख की ढेरी हो रहे है। बच्चे स्वयं के लिए अपनी कब्रे खोद रहे है। कोई करुणा स्वर हमारी संवेदनाएँ नही उमारता और न मानवीय मूल्यों पर हमारा ध्यान केन्द्रित होता है। ये सारी विस्फोटक स्थितियाँ कवि की प्रखर दृष्टि से ओझल नही है यथा,

---

1. चकित है दुःख, पृ0सं0–114.
2. वही, पृ0सं0 117.

''चारों तरफ चिताएँ जल रही है
सॉय सन्न हवाएँ चल रही है
होते जा रहे है राख की ढेरी
बूढे और जवान
बच्चे अपनी कब्रे खोद रहे है
और बैठ रहे जा जाकर
अपनी खोदी हुई कब्रों में।''[1]

कवि का मत है कि विदेशी अनुकरण पर आधुनिकता का नशा हमारी बुद्धि का दिवालियापन है। वह हमें कृत्रिम जीवन में फँसाता है। जो इन दिखाबी औपचारिकताओं से सम्बद्ध नही होते है, हमारी मर्त्सना और अपमान के पात्र होते है और हम कहते है, 'अच्छा नही है वह आदमी। हम फैशन और आधुनिकता के नाम पर क्लबों में डांस करते है, सुरा–सुन्दरी में डूबते है और बस्ती के किसी कोने में दिन भर के कठोर परिश्रम के बाद सोते है, उन्हे गिरा हुआ समझकर उनका उपहास करते है, किन्तु ऐसा व्यक्ति हमारे बारे में क्या सोचता है –

'' और जब हम लौटते है
मनाकर जश्न
वह हमारी तरह
ऐसे देखता है
जैसे हम लौटे हो
किसी को दफनाकर
अच्छा नही है वह आदमी।''[2]

वास्तव में इस तरह जश्न मनाना अपनी संस्कृति को दफनाना ही तो है। मिश्र ज़ी तमाम भारतीय संदर्भो से उद्भूत जीवन्त तत्वों के हिमायती है। वे अवचेतन या कुण्ठाओं के द्वारा शासित अथवा विदेशी अनुकरण के शिकार नही है। उनमें चेतना और विकास शील चिनगारियाँ है, जो हमारी स्वस्थ परंम्पराओं से जुड़कर ठोस जीवन दर्शन की महती संभावनाओं की ओर हमकों उन्मुख करती है। कवि जन–हित और समष्टि–चिन्तन से विमुख नही हुआ। इस लिए वह कहता है कि 'दो सूखी डाल को एक पत्ता, नंग बदन पर एक लत्ता। वह व्यक्ति जीवन में समस्त अवरोधों को स्वीकार करने के लिए तैयार है, चाहें उसकी वाणी अवरुद्ध हो जाए, शब्द स्थिर हो जाये जीवन में बसन्त में मुरझायें फूल दिखाई दे, किन्तु

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0–130.
2. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 86.

इन प्रतीकों को वह सार्वजनिक रुप नही देना चाहता। उसकी कामना है कि ये प्रतीक समष्टि–रुप धारण न करे, क्षणिक और जर्जर हों –

" प्रतीक हो अगर ये
किसी सार्वजनिकता के
तो प्राणपण में माँगता हूँ
मै इनकी क्षणिकता
टाँगता हूँ मै अपने को सूली पर
कि वे ये प्रतीक
मेरी अवस्था के
सार्वजनिकता के प्रतीक
न बनें।"[1]

युद्ध के विस्फोटक स्थितियों के चित्र :-

भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य–मन विनाशकारी विघटनों की ओर भी गया है। जिस तरह आँधियाँ महल, मन्दिर और कलश–कंगूरे ढहा देती है, उसी तरह क्रान्तियाँ भी उमरती हुई जवानी, निरराध बच्चे और बृद्ध माताओं को पीस देती है। अतः खूनी मंशाएँ गढ़ी जाएँ अणु–भट्टियाँ स्वयं मे व बुझ जाएँगी। जन्म से मरण तक की आस्था साथ–साथ चलती है। आदमी अपने सौन्दर्य की झाँकी सैकड़ों रंगों में प्रस्तुत करने के लिए सदैव चेष्टारत रहता है। जब युद्ध की रण मेरी बजे तब हमें सीमाओं पर चलकर बरसती गोलियाँ सहन करनी है। हर इंच पर लाशे हो जिसमें हिंसा स्वयं नगी हो। हम मारेगे नही मरेंगे और निःशस्त्र कतारें बाँध ाकर हमलावर के सामने खड़े होंगे। हमारा त्याग और बलिदान हिंसा को खाक में मिला देगा। हिंसा पागलपन है अत : उसका उत्तर घृणा से नही, मुक्त का त्योहार मनाकर दिया जाए।

वे मानते है कि जीवन एक कविता के समान है और बधाएँ यति, गति। हमें एक निपूछल बालक की तरह परम सत्ता को समझे तो बाधाएँ कम होंगी। हम संसार की सुन्दरता का पूरा उपयोग कर उसे और उतनी ही सौन्दर्य–राशि प्रदान कर सकते है, किन्तु हमें तबाही से बचना होगा, क्योकि हमारे देश में भी अणु की भट्टी सुलग रही है। कवि को गहरा दुःख है कि गांधी के देश की यह कैसी बिडम्बना है। इसका अभिप्राय यह नही कि कवि मिश्र पुरुषार्थ का आह्वान नही करते। उनका स्पष्ट मत है कि पुरुषार्थ से जी चुराकर पलायन मात्र से समस्याओं का निराकरण नही होगा, इससे तो समस्याओं के समाधान की सामर्थ्य नष्ट हो

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 137.

जाती है। एक समय ऐसा भी आता है, जब समस्याओं के सामनें घुटने टेकने की स्थिति बन जाती है और आने वाली पीढ़ी उसका फल मांगती है। अतः पुरुषार्थ के साथ विषम परिस्थितियों का साक्षात्कार करना है, स्वस्थ चिन्तन को क्रियात्मक रुप देना है –

" किन्तु जब सन्तान औरंगजेब हो जाती है
तब बरदान देने की शक्तियाँ खों जाती हैं
और देने के लिए उठे हुए हाथों में तब
डाली जाती है हथकड़ियाँ
और युगों–युगों तक गालियाँ खाती है संताने
जिन्हे पुरुषार्थ के लिए जना था माँ ने।"[1]

जब चीन का हमला हमारे देश पर हुआ तो कवि इस बात से क्षुब्ध हो उठा कि पुनः किसी पागल पन के शिकार किसी नेता या राज सत्ता की मुर्खता या मद का यह दुष्परिणाम सामने आया है। गाँधीवादी इस कवि ने सोचा कि यदि हमने आजादी मिलते ही सेनाएँ समाप्त कर दी होती है, तो अहिंसा की सारी भीतरी–बाहरी शक्तियों को समेट लिया होता, हम काम याद होते, किन्तु अब इस वक्त कोई दूसरा सवाल नही उठता। अब तो हमसे जितना बनेगा हम लड़ेगे। इसके बावजूद भी कवि भविष्य के प्रति आश्वस्त है कि युद्ध का राक्षस मारा जाएगा, किन्तु यह होगा किसी एक छोटे देश के मध्य से, जो किसी शक्तिशाली देश की गालियाँ सहकर भी निःशस्त्र खड़ा रहा अहिंसात्मक ढंग से प्रतिकार करेगा वह पड़ा देश शर्म से झुककर लौट जाएगा–

" युद्ध हीनता का त्योहार
कभी किसी छोटे देश के माध्यम से
किसी बहुत छोटे द्वारे पर मनेगा।"[2]

इस शान्ति–सेना के एक सिपाही ने नाते कवि सबसे पहले आत्मोंत्सर्ग–हेतु प्रस्तुत है। कवि ने केवल शब्दों का जाल नही फैलाया, बल्कि कथनी और करनी में एक रुपता लाने की पूरी चेष्टा की है। लगता है गाँधी दर्शन अपनी चरम सीमा पर कवि के व्यक्तित्व में बोल उठा है–

इतना हो सकता है मेरे किए
कि अगर देश निः शस्त्र भेजना तय करे
पहला सैनिक यह हिन्दी का कवि मरे।"[3]

---

1. गॉधी पंचशती, पृ०सं० 247.
2. गांधी पंचशती, पृ०सं० 308.
3. गॉधी पंचशती पृ०सं० 311.

अतिशय बौद्धिकता और विषमताएँ :-

अतिशय बौद्धिकता व्यक्ति को तर्क की कील पर घुमाती रहती है। ऐसा भ्रमित व्यक्ति दूसरों को गोल–मोल समझता है, जब कि वह स्वयं दिशाहीन होता है। उसमें स्वयं ही अस्थिरता होती है। वह दूसरों को अस्थिर तथा उलझनों में व्यस्त मानता है। कवि मिश्र इस अतिशय बौद्धिकता के शिकार नही हुए, जब कि नई कविता के अनेक कवि इस आरोप से मुक्त नही माने जा सकते है।

मिश्र जी की रचनाओं ने निश्चित ही बौद्धिक सन्तुलन है। वे दर्शन की बोझिल बाते नही कहते बल्कि एक संवेदन शील कवि के नाते तो मर्म को सहज स्पर्श करता है उसे ही अभिव्यक्ति देते है। जीवन की भया वह विषमताएँ जीना दूभर किए है। कवि वर्तमान परिप्रेक्ष्य का सही विश्लेषण अपनी रचनाओं में दे सकता है। आज हवा में जलन है आसमान की बुलन्दी भी खत्म है, स्वयं प्रकाश अँधेरे में डूब रहा है। हृदय की कुलषताओं, शोषण की प्रवृत्तियों और छल प्रपंचों के आघातों ने उत्पीड़न और दैन्य की स्थिति पैदा कर दी है। जीवन की सहजता नष्ट हो गई है। सवेरा होते हुए भी पक्षियों का चहकना बन्द है। देश स्वतन्त्र है। सर्वत्र सत्य अहिंसा, और पंचशील के सिद्धान्तों की दुहाई दी जाती है, किन्तु यह दृवा वृक्षों तक को उदास किये हुए है यह है हमारा आज का परिवेश –

" आज हवाएँ चल रही हे
जैसे किसी से जल रही है
पत्ते उसे छूकर
खुश नही लगते
यह कैसा सवेरा हो रहा है आज
कि पंछी
किरन और हवा के जगाए नही जगते।"[1]

व्यंग्य :-

मिश्र जी की अनेक रचनाओं में व्यंग्य की तीखी तल्खी विद्यमान है। ऐसी रचनाओं मे उनकी 'गीत फरोश' कविता विशेष चर्चित है। अंधरों की मुस्कान के साथ बड़ा सूक्ष्म और सशक्त व्यग्य इसकी विशेषता है। कवि विवश होकर अपनी कलम बेचता है। पूँजीवादी समाज में जो बाजार की मांग होती है, उसी के अनुसार गीत लिखे जाते है। कवि ग्राहक की मर्जी के अनुसार कई किस्म के गीत बेचना है, मानो गली–गली फेरी लगा रहा हो। बड़ी नाटकीयता के साथ गम्भीर भावों को सहज ढंग से इस रचना में व्यक्त किया गया है। मस्ती

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 75.

और पस्ती दोनों में कवि ने गीत लिखे है, मस्ती में पीता कुर्ता पहनकर और पस्ती में दर्द को स्याही से कागज पर बहाकर। वह दिन–रात लिखता है क्यों कि दूसरों की पसन्द पर उसकी कलम बिक रही है। कभी वह प्रिया को पास बुलाने के लिए छन्द लिखता है और कभी भूख–प्यास तथा दर्द भुलाने के लिए। कभी पहाड़ी पर एकान्त में, कभी विजय–गीत कभी शरण–गीत। इस कविता में कवि–जीवन की विडम्बना पर करुणा, आक्रोश बड़े गहरे स्तर पर उमरा है। स्वच्छन्द कवि की सशक्त कलम कुछ दायों में बिक जाती है। इस तरह कवि की स्वतन्त्र चेतना नीलाम हो जाती है। जहाँ ईमान बिकता है, वहाँ गीतकार गीत क्यों न बेचे। समाज की स्थिति पर सीधा प्रहार है। रेशमी गीत, खादी का गीत, फिल्मी– गीत आदि सब सांकेतिक है। व्यंग्य के साथ कवि की विवशता और करुण स्पर्श इस कविता में विशेष रुप से द्रष्टव्य है। कवि जानता है कि गीत बेचना पाप है, किन्तु पूँजीवादी परिवेश में कलम स्वच्छन्द कहाँ, चन्द टुकड़ो में भय और दबाव में लाचार हो गया है

गीतकार–

"जी नही– दिल्लगी की इसमें क्या बात,
मैं लिखता ही तो रहता हूँ दिन–रात
तो तरह–तरह के बन जाते है गीत
जी रुठ–रुठ कर मन जाते है गीत
जी, बहुत ढेंर लग गया है, हटाता हूँ,
ग्राहक की मर्जी, अच्छा जाता हूँ
या भीतर जाकर पूछ आइए आप
है गीत बेचना वैसे बिल्कुल पाप,
क्या करु मगर लाचार
हार कर गीत बेचता हूँ।
जी हाँ, हुजूर मै गीत बेचता हूँ।
मै किसिम–किसिम के गीत बेचता हूँ।"[1]

इसी तरह उनकी एक कविता है, "दैनिक"। इस कविता मे आज की अमानवीय संस्कृति असन्तुलित, अमर्यादित जीवन–स्थितियों पर तीखा व्यंग्य है। प्रतिदिन अखबार में कही पर–बलि कही धमकियाँ, कही निर्लज्ज दाबे, कही अपहरण के खुले विवरण–लगता है मनुष्य का प्रतिमय मन मर चुका है। इन्ही समाचारों में वह गौरव का आभास पाता है। कवि व्यंग्य के साथ कहते है –

---

1. गीत फरोश, पृ0सं0 182.

" आज का हमारा मानव
कितना सुसंस्कृत है।"

आशावादिता और संकल्प-शक्ति :-

क्षयी और ह्रासोन्मुख कल्पनाएँ व्यक्ति को हताश करती है, जिससे विकास का क्रम रुकता है। कवि को इस बात का गहरा दुःख है कि 'आदम का जाया अपनी छाया से भी कम है"। जो समाष्टि की कसम खाते है और अपने अहं की तुष्टि करते है वे मूलतः सामाजिक चेतना से दूर अकेलेपन का बोझ लिये अनुन्तर दायी कार्यो में संलग्न रहते है और जाने अन जाने लोगों की निगाह बचाकर अनैतिक और असामाजिक कार्यो से जुड़ जाते है।

व्यक्ति की अपनी भावनाएँ ही उसके बाह्रय जीवन की सफलता और असफलता का कारण बनती है। जिसके मन में अन्धकार का एक धब्बा है, उसके सामनें अँधेरा और घनीभूत होकर चतुर्दिक फैलता जाता है। यदि कही वह प्रकाश का भाव–बिन्दु होता है तो सब ओर उसे आलोक मयी, आशा प्रद सुखद अनुभूति होती है। निराशा और आशा हमारे भीतरी चिन्तन औश्र दृष्टि के अनुरुप उभरती और विकसित होती है। अतः कवि मिश्र का स्पष्ट संकेत है कि हमें आशावादी दृष्टि का चयन करता होगा। इसी तरह आकर्षण के वशीभूत होकर, सुख की लालसा व्यर्थ है, क्यों कि दुःख ह्रदय की गहराईयों में उतर कर व्यक्ति की महती संम्भावनाओं से ऐसा साक्षात्कार कराते है कि गहरे कुएँ की तरह मानवीय करुणा स्नेह मैत्री औश्र सद्भावना का मीठा जल हमें उल्लसित और तृप्त कर देता है –

"यह विडम्बना कौन कहे श्रेयस् ही ठहरे
क्योकि दुःख भीतर जाते है गहरे–गहरे
जितना गहरा कूप खुदे,
उतना मीठा जल
आज नही कल।"[1]

युग के अनुरुप ढलना ठीक है किन्तु अपने को समय के हाथों बेच देना ठीक नही, वक्त अच्छा है न बुरा न कोमल, न कठोर। अतः उसे सन्तुलित जीवन दृष्टि से अपने अनुकूल ढाला जा सकता है। समय के पंख है, यह सच है किन्तु हम उड़ते समय को भी नियंत्रित कर सकते है। बशर्ते हमारे पैरों में बल हो। युगीन चेतना या सामयिकता को समझना आवश्यक है, किन्तु अपना बैशिष्ट्य खोकर नही। कवि पूरी आस्था के साथ कहता है कि समर्थ व्यक्ति समय को भी पकड़ सकता है –

" पाँव हमारे बल शाली है
अगर जरुरत पड़ ही जाए

---

1. चकित है दुःख पृ0सं0–73.

तो पंख वालों को हम पकड़ सकते है

पाल सकते है

उनकी उड़ानों को अपनी जरुरत/मे ढाल सकते हैं।''[1]

भवानी प्रसाद मिश्र में वस्तु–सत्य की पूरी पकड़ है। वे नहीं चाहते कि व्यक्ति असम्बद्ध होकर वस्तु– वंचित रहे। संसार के कुछ ऐसे व्यक्ति होते है जो छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति के कारण तार्किकता के भ्रम में पड़कर हर वस्तु की निन्दा करते रहते है। अतः किसी चीज का आनन्द नही ले पाते। हर व्यक्ति उन्हें मूर्ख लगता है और हर औरत उन्हें क्षुद्रता का पर्याय मालूम होता है। उनके लिए न आँसुओं का कुछ मूल्य है, और न सरिता की गति–शीलता का किन्तु जब जीवन के अन्तिम क्षण आ जाते है, तब वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि संसार माधुर्य से परिपूर्ण है। अभिप्राय यह है कि वस्तु–सत्य से लगाव और सम्बद्धता अनिवार्य है। वह जीवन की सहज गति है–

'' वे कुछ इसी तरह कहते जा रहे थे

कहते जा रहे थे, कहते जा रहे थे

कि शामें जिन्दगी आ पहुँची

और बे बोले

हाय, अभी तो मै

जीना चाहता था

जगत् की माधुरी को

पीना चाहता था।''[2]

आत्म-विश्लेषण और निर्वेव्यक्तिकता :-

अकेलेपन में आदमी अपने मन के आर–पार देखता है। बार–बार को समझाने की चेष्टा करता है। यह अकेलापन पराग के बादल की तरह है, तो बरसकर शान्ति, शीतलता और आह्वाद देने वाली खुशबू में सराबोर कर देता है। जब यह अकेलापन व्यक्त होता है तब मन की तपन शान्त होती है और सदियों का उल्लास उमड़ता है, हरियाली अंकुरित होती इस लिए कवि मिश्र के शब्दों में – अकेला पड़ जाना एक उत्सव है –

'' रुके रहो प्रार्थना में रत

कि अकेलेपन का यह पराग–धन

धाराहत करें।

तुम्हारे मन का तप्त विस्तार

---

1. चकित है दुःख पृ0सं0 88.
2. वही, पृ0सं0 76.

फूटे हरीतिमा

उमड़े नदियाँ

सदियाँ सोचे, लू ठीक है

पराग का यह बादल अलीक है।''[1]

कवि जब रात के गहन अन्धकार में चिन्तन की गहराइयों में डूबकर देखने की चेष्टा करता है, तब उसे महसूस होता है जैसे उस का अन्त र्वाहन सभी कुछ काव्य सा बन गया है और उसे कुछ असम्भाव्य–सा प्राप्त हो गया है। इसमें सन्देह नही कि ये रचनाएँ एवं संवेदन शील कवि की भीतरी और बाहरी जीवनसे प्राप्त सच्ची काव्यानुभूतियाँ है। इस सन्दर्भ में यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि कवि का अँधेरापन और अकेलापन, उसकी तन्मय चुप्पी की विरोधी नहीं। कवि का मन और प्राण उजाले की आखिरी किरन तक पी लेने का आंकाक्षी है ,जिससे अँधेरा घिरने पर भी संध्या के हल्के गहरे रंग प्रतिच्छायित होते रहे। सूरज के डूबने पर भी उसकी लाली देर तक छाई रहे–

'' डूबे जब मेरा सूरज

तो छाई रहे उसकी लाली

शाम के बाद भी दो–चार पहर

उजाले की आखिरी किरन तक

पिये मेरा मन मेरा प्राण।''[2]

साहस और संकल्प की अभिव्यक्ति :-

आज जो असमय ही तूफानों के भय से चट्टानों की ओट में छिपे है, उन्हें झकझोरता हुआ कवि इस संकल्प की ओर ध्यान आकृष्ट करता है कि हमें जमीन के टुकड़े पर आसमान लाना है/तभी सम्भव है, जब हम '' दृढ बने रहे अपने पक्षो पर/अपने मन के–मन्थनों पर''। भवानी मिश्र निरन्तर गति के वि है, गन्तव्य तक पहुँचने वाले राही है। जैसे पगडंडी व्यक्ति की इच्छाओं को नही, केवल उसके पाँवों की गति को देखती है, उसी तरह व्यक्ति की गतिशील आस्था मय साधना ही गन्तव्य का परिचय देती है। कवि प्रकाश और कर्म संकुल घड़ियों का आकांक्षी है। जहाँ पीड़ा भी ''सद्यः पुत्रवती किसी सुहागिन –सी'' सुखद मालूम होने लगती है। पूरी हार्दिकता और उत्साह के साथ बढते हुए मंजिल पर ही रुकना है –

'' पाँव उत्साह के

बेताला न ठहरे

फहरें स्वरों की

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 47.
2. वही, पृ0सं0 – 51.

गति पर लहरें।
ठहरें तो ठहरे पाँव
पहुँचकर पिया के गाँव।"[1]

कवि की जीवन्त आस्था और संकल्प–शक्ति प्रशंसनीय है, क्योकि उसके– "पैलाने बैठा है जीवन और सिर हाने बैठा है मरण " फिर भी वह मौत की चुनौती को स्वीकार करते हुए हर्ष पूर्वक गीत गा सका है। जब बुद्धि और कल्पना की लहरें स्थिर हो जाती है, तब सत्य अपने आप सिर पर सवार हो जाता है। जब हम सामने उगते हुए सूर्य को देखते है, तब पीछे का अँधेरा क्रमशः छूटता चला जाता है। इस सन्धिकाल में कवि को लगता है जैसे "निकल रहा हूँ अँधेरे से प्रकाश में।" कवि नये क्षितिज पर भावी महती सम्भावनाओं की ओर संकेत दे रहा है –

" लाओं अपना हाथ मेरे हाथ में दो
नये क्षितिजो तक चलेंगे
हाथ में हाथ डालकर
सूरज से मिलेंगे।"[2]

कवि जीवन की परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालना जानता है, क्यों कि जीवन किसी भी तरह का इशारा दे और नाचे नहीं आदमी उस पर तो यह आदमी की कमी मानी जाती है। सच कहना आशावादिता है। झूठ हम को भले ही निराश से क्षणिक–मुक्ति दिला दे, किन्तु वह स्वस्थ आशाएँ नही दे सकता अतः हम अपनी उदासी और रिक्तता को उसी तरह एक दूसरे पर व्यक्त होने दें जैसे वह यथार्थ में अनुभूत होती है, तभी तो वह सब में बँटेगी। ईमानदार अनुभूति , यथार्थ की अभिव्यक्ति यथार्थ की अभिव्यक्ति आशावादिता की भाव–भूमि कम कवियों में होती है। मिश्र जी इस जीवन–दृष्टि के धनी हैं –

" कहें हम एक–दूसरे से
कि हम उदास है और दुःखी है
झूठ तो न निराशा है
न आशा।"[3]

नये व्यक्ति की तलाश :-

भवानी प्रसाद मिश्र अपनी रचनाओं में जिस व्यक्ति को पाने की कामना करते है वह असाधारण है। उसमें लघुता का अहसास नही है। वह खणिडत अथवा कुण्डित भी नही है।

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0– 27.
2. वही, पृ0सं0 112.
3. वही, पृ0सं0 118.

ऐसे आदर्श एवं असाधारण मनुष्य को पाने की आकांक्षा के पीछे कवि का यह भाव झाँक रहा है कि ऐसे व्यक्तित्व समाज में विरल है, पर समाज को उनकी नितान्त आवश्यकता है। इसी आदर्श भावना से प्रेरित होकर उन्होने कहा–

''तपित को स्निग्ध करे,
प्यासे कौ चैन दे,
सखे हुए अधरो को
फिर से जो बैन दे
ऐसा सभी पानी है। लहरो के आने पर
काई–सा फटे नही
तोते–सा रेट नही...
........बोले तो हमेशा सच,
सच से हटे नहीं
झूठ के डराए से
हरगिज डरे नहीं,
.........माथे को फूल जैसा
अपना चढ़ा दे जो,
रुकती–सी दुनिया को
आगे बढा दे जो
मरना वही अच्छा है।''[1]

मिश्र जी जिस असाधारण व्यक्तित्व को अपने बीच देखना चाहते हैं उसका कारण यह है कि साधारण व्यक्तिभस्त, बेचैन एवं परिस्थितियों की मार से गूंगा हो गया है। वह विपत्ति का सामना करने में असमर्थ हो गया औश्र दारिद्रय का मार से तोता बन गया है झूठ सदा उसे भयमीत किए है और सन्य को कोसों दूर किए है, वह सामाजिक प्राणी होते हुए भी समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को मूल गया है। यही वह युग का सच्चा प्रतिनिधि व्यक्ति है, जिसके उद्धार के लिए मिश्र जी असाधारण व्यक्ति की कामना करते है। गिरे हुए भ्रष्ट साध ारण व्यक्ति के प्रति सामाजिक दायित्व का बोध कराते हुए उनहोनें अपनी एक रचना में कहा है–

'' जो गिरे हुए को उठा सकें। इससे प्यारा कुछ जतन नही,
दे प्यार उठा न पाए जिसे

1. दूसरा सप्तक, पृ0सं0– 22.

इतना गहरा कुछ पतन नही।''[1]

साधारण व्यक्ति को सामाजिक स्नेह आवश्यक मानकर उन्होनें ईश्वर के नाम पर शपथ भी दिला डाली है –

'' है शपथ तुम्हें करुणाकर की
है शपथ तुम्हें उस नंगे की
जो स्नेह भीख की माँग–माँग
मर गया कि उस भिखमंगे की।''[2]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्नेह के अभाव से व्यक्ति को टूटने–बिखरते देखकर कवि की संवेदना और वैचारिकता तड़प उठी है। इसी सन्दर्भ में कवि व्यक्ति का दायित्व निर्धारित करते हुए कहता है –

'' इस दुःखी संसार में जितना
बन हम सुख लुटा दें,
बन सके तो निष्टपट मृदु हास के,
दो कन जुटा दे, दर्द की ज्वाला जगाएँ
नेह भीगे गीत गाएँ।''[3]

आन्तरिक विकास की अनिवार्यता :-

मानव का ऊर्ध्व–संचरण आवश्यक है। जिस तरह किरणें आसमान से उतर कर मैदान में बिछी हुई घास पर ओर–छोर फैल जाती है और समय आने पर उठकर ऊपर चली जाती है, उसी तरह जीवन से जुड़कर भी वस्तु जगत में रहकर भी व्यक्ति को भीतर की ओर मुड़ना जरुरी है, जिससे आन्तरिक उन्नयन सम्भव हो सके। आत्मा के आलोक तक पहुँचने के लिए अँधेरे के सत्य को समझना होगा, यही पुरुषार्थ है –

''बिना कुछ सोचे
उतर तो पड़े हम नीचे
किरनो की तरह
मगर अब उठ नही पा रहे हैं ऊपर
किरनों की तरह।''[4]

सुख–दुःख की लहरे हवा, प्रकाश, पानी, छन्द, गन्ध वाणी रुप आदि सब ईश्वर द्वारा प्रदत्त है। सुख दुःख की अनुभूति लेकर व्यक्ति इस संसार में आता है। सुख की अनुभूति पर

1. दूसरा सप्तक, पृ0सं0 23.
2. वही, पृ0सं0 24.
3. वही, पृ0सं0 21.
4. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 49.

हँसता है, दुःख में रोता है। क्या पाया, इसका कोई विचार नही, क्या खोया, इसका गम नही। हँसी और आँसू दोनों से मन बहलता रहता है। बच्चों की तरह यही खलिस सुख और खालिस दुःख कवि की धरोहर है। कभी कल्पनाओं और सपनों में कवि डूब जाता है, कभी अपने अनुकूल स्थिति के अभाव में तिलमिला जाता है –

" बच्चों की तरह हँसे
और जब रोये तो बच्चों की तरह
खालिस सुख खालिस दुःख
न उसमें ख्याल कुछ पाने का
न मलाल इसमें कुछ खोने का
सुनहली हँसी और आँसू रुपहले
दोनो ऐसे कि मन बहला
उससे भी इससे भी।"[1]

आवाजों की सार्थकता आपस में जुड़ने से है, विच्छेद की स्थिति में नही। जो आवाजें आपस में कोई तारतम्य नही रखतीं, या कि आदान–प्रदान के रुप में नही होती, उन्हें सहन करना कवि को बहुत मुश्किल और भारी मालूम देता हैं, जो आपस में नही बोल रही होती सिर्फ बोल रही होती है। कवि आन्तरिक एक रुपता का सार्थक है। वह सृजन के क्षणों में निर्लिप्त, निर्विकार और निर्विशेष की स्थिति में पहुँचकर मन के बौने, स्वार्थी और तरह–तरह की लालसाओं को लाँधकर उन्मुक्त स्थिति में पहुँच जाता है। मन की सारी ज्वालाएँ और प्यासे बुझ जाती हैं और कवि के शब्द समय को लाँधकर सर्वत्र छिटक जाते है। यह है कवि मिश्र की आन्तरिक साधना और व्यक्तित्व की विशिष्टता –

" दब जाता है तब मेरे मन का अदम्य मन
बुझ जाती है उसकी प्यासे ज्वालाएँ उसकी
कविता–भर दहकती तब
दब जाता है मन।"[2]

पारिवारिक स्मृतियाँ :-

मिश्र जी की अनेक रचनाएँ पारिवारिक स्नेहिल दृश्यों के सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। ये स्मृति–चित्र बहुत मार्मिक है। रुप वैयक्तिक होते हुए भी इन कविताओं में एक ऐसा भाव मीना स्पर्श है, जो उसे सार्वजनिक बना देता है। गीत फरोश संग्रह की कुछ रचनाएँ इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। कवि घर से बाहर है। होली की धूम हर्ष की बाढ़, फागुन के रंगे

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 7.
2. वही, पृ0सं0 92.

दिवस और लाल आँगन देखकर उसका मन मसोस उठता है। त्यौहार पर माँ ने याद किया होगा। बिना मंझले के घर सूना होगा। अतः कवि अन्यमनस्क होकर अपना दुःख मापने लगता है। आँखें मर आती है और हृदय में शून्य छा जाता है। घर की याद आज के विघटित परिवारों के लिए एक आदर्श है जो अपनत्व, ममता और सौहार्द्र का जीता–जागता चित्र है। भाई–बहनों की भाव भीनी याद, बिना पढ़ी अमय–दात्री ममतामयी माँ की स्नेह–घार, कर्मठ पिता का स्मरण कवि की यादों में अनायास अश्रु–धारा कर देता है। कवि कभी बादलों की तरफ देखता है, कभी टूटे पत्तों औश्र चहचहाते पक्षियों की तरफ, क्योकि परिवार की स्नेहहिल–दृश्यों की कोई न कोई कक्षा इन सबसे जुड़ी है। कवि सजीले सावन की बहती हवा से निवेदन करता है कि वह घर के सब सदस्यों को इतना धैर्य दे कि वे घर से बाहर गये सदस्य के अभाव में रोने न पाये –

" हे सजीले हरे सावन
हे कि मेरे पुष्य पावन
तुल बरस लो वे न बरसें
पाँचवे को वे न तरसें।"[1]

मिश्र जी कुछ कविताओं में रोमांटिक संवेदन भी यत्र–तत्र अभिव्यक्त होते देखें जा सकते है। लेकिन वैयक्तिक प्रेमपरक संवेदनाएँ उदान्त भाव भूति पर अवस्थित है, क्योकि सामाजिक चेतना और कवि–दायित्व उनके साथ है। उदान्त प्रेम की स्निग्धता और पारिवारिक प्रणय के मोहक चित्र उनकी कविताओं का अभिन्न अंग बनकर प्रस्तुत हुए है। यादों में खोया कवि कहता है– अविस्मरणीय तुम्हारी कजारारी स्मृति का क्या करूँ? मादक सुधियों में आत्मविस्मृत होकर वह आँखों से सावन बरसाता है। वह मधुर स्मृति ही उसकी चेतना जिन्दगी का आधार है, प्राणों के आकाश में फहराती ह ध्वाजा है, साहस और सौन्दर्य का उद्‌गम हे। स्वकीया के प्रेम की छाया कवि के जलते पक्ष का अवलम्बन है। जब राह न सूझे, सड़क सुनसान और अपरिचित हो, साँसे खोई सी हों तब यह स्मृति ही निरन्तर बढते रहने की प्रेरणा देती है और भटके राही को लगता है जैसे सब जाना और पहचाना है। जीवन की एकाकार शून्यता में भाल पर लगे हुए कुंकुम की स्मृति कवि को सँभाल लेती है–

" इस एककार शून्यता में
तुम भर दिखती हो
गिरस्ती समेटे
बचाये कुंकुभ
जलते हुए भाल पर

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 92.

सम्हाले है मुझे यह
जलता हुआ भाल
न दिशा न आकाश
न अवकाश, न काल।"[1]

भवानी प्रसाद मिश्र के पवित्र पारिवारिक प्रणय–चित्र बड़ी शालीनता के साथ प्रस्तुत हुए है। ये चित्र व्यक्तिगत होकर भी हम सब के हास–उल्लास , स्नेह और सांसारिक जीवन की सरलताओं से जुड़े हे। साथ ही उनकी ऐसी सभी रचनाओं में जन–मानस का विस्तृत आधार दिखाई देता है।

गाँव से लगाव :-

सुदीर्घ अन्तराल तक शहरों – हैदराबाद बम्बई, दिल्ली आदि जैसे महानगरों में रहने के बावजूद भवानी प्रसाद मिश्र तथा कथित 'शहरी', नही बन पाये। गाँव उन्हें लगातार अपनी ओर खीचंता रहा, वापस बुलाता रहा। गाँव में जाकर रहने तथा अकाण्ठ दुःख भज्जित किसान को धीरज बाँधने की लालसा उन्हें लगातार प्रेरित करती रही। अपनी इस लालसा को लिपिबद्ध करते हुए वे कहते है –

(1)" घँसों गाँव में बैठो जाकर/एक जरा सी कुटिया छाकर।
गले–गले तक दुःख में डूबा/है किसान जीवन से ऊबा।"
धीरज उसकों जश बँधाओं/अगर भाग से बाहर जाओं।[2]

(2)" हमें कुछ दिन बड़ी बातों का/ लालच छोड़ना होगा।
कि भीतर जाके गॉवों का/अखाड़ा गोड़ना होगा।"[3]

गॉव मजदूर और किसान के प्रति कवि की संवेदन एवं सहानुभूति किसी किताबी नसीहत एवं सिद्धान्त के कारण नही है, अपितु उसके साथ जुड़ाव के कारण है। गॉव में पैदा हुआ कवि गॉव की बेबसी को विधिवत् जानता–समझता है। इस लिए उसकी ये पंक्तियों गॉव की विवशता को बिम्बित कर देती है–

"गॉव तो पीढ़ी/उनके बधुआ मजदूर है।
लाते खायेगे/और खिलायेगें शहर वालों को।
अपने खून–पसीने से पैदा किये गये।
सोने–जैसे चमकते दाने।"[4]

---

1. गीत फरोश, पृ0सं0 146.
2. वही, पृ0सं0 145.
3. वही, पृ0सं0 148.
4. नीली रेखा तक, पृ0सं0 101

गॉव वालों की इस टीसने वाली, दयनीय स्थिति को कवि की सहजता क्रोध मुद्रा में बदल जाती है। गाँव वालों की चेतना को जगाते हुए उनमें क्रान्ति का स्वर फूँकने लगता है–

"गाँव वालों से अपना जीवन/चुपचाप क्यों/जिया जा रहा है।
खड़े क्यों नही होते ये/तन कर क्रोध में।
शहरी/इस संस्कृति कहलाने वाली विकृति के विरोध में।"[1]

सरल स्वभाव वाला कवि ऐसा इस लिए लिखता है क्योंकि उसे इस बात का बोध है कि उस को जीवन समाज में परिर्वतन लाने के लिए ही मिला है –

" मै यहाँ बदलाव के लिए। भेजा गया था।
लगता है सात–सात। दिल के दौरों के बाद भी।
मै हक नाहक–नहीं। सहेजा गया था।"[2]

"भवानी प्रसाद मिश्र एक साथ ऋषि एवं कृषि–संस्कृति में उन्नायक है। उनकी निम्नांकित पंक्तियाँ इस बात का प्रमाण है –

" कवि की तरह दिखने। अच्छा मानता हूँ मैं किसी का भी।
किसान या बुनकर दिखना। गीत लिखने से अच्छा मानता हूँ।
लिखना फसले जमीन के। टुकड़ों पर।"[3]

शहरी सभ्यता–संस्कृति, आहार–व्यवहार एवं बनावट को उन्होनें कभी भी नही किया से सदैव गॉव के आत्मीय एवं निपूछल व्यवहार को शहरी संस्कृति एवं आचरण से श्रेष्ठ मानते रहे। तभी तो वे लिखते है –

" भली है मेरे गाँव की सारी गली
जहाँ लोग मिलते है एक दूसरे से
तो कहते हैं भैया राम–राम।"[4]

गाँधी-दर्शन का प्रभाव :-

भवानी प्रसाद मिर की जीवन–दृष्टि और काव्य–चिंतन पर सर्वाधिक गहरा प्रभाव 'महात्मा गांधी का है। गांधी 'जन्मशती' पर प्रकाशित " गांधी पंचशती' कविता संग्रह को पढ़कर राष्ट्रकवि दिनकर की टिप्पणी थी– गांधी पंचशती' से मेरी यह धारणा पुष्ट हो गयी कि भवानी प्रसाद जी शुद्ध गांधीवादी कवि है। " इसी काव्य–कृति के विशेष सन्दर्भ में डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक का अभिकथन है–आव और विचार के क्षेत्र में गांधी वादी विचार को स्वीकार करने वाले श्रद्धालुओं के साथ भावना और कल्पना–लोक में गांधी जी के जीवन की

1. अनाम तुम आते हो, पृ0सं0 108.
2. अनाम तुम आते हो, पृ0सं0 42.
3. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 72.
4. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 30.

गौरव गाथा को काव्य में अंकित करने का श्रेय भवानी भाई को ही प्राप्त हुआ है .... मुझे विश्वास है कि गांधी–युग का समूचा वातावरण और परिवेश यदि हिन्दी में कही कविता के माध्यम से उद्घाटित हुआ है तो वह "गांधी पंचशती' में ही हुआ है।"

कवि भवानी भाई की दृष्टि में गांधी प्रभु–रुप है।' सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) की श्रृंखला ने मुक्तिदूत है –

"तुम सिद्धार्थ–श्रृंखला में आबद्ध मुक्ति के नव स्वरुप हो
आदिकाल से अब तक के रत्नों में तुम अभिनव अनूप हो।"[1]

उनके लिए गांधी व्यक्ति नही प्रतीक है भवानी है, चेतना है, और है एक ज्वलन्त विचार। कविताओं में भाव बनकर तथा विचारों में आलोक–किरण से उभर कर।" गांधी पंचशती में गांधी जी स्थूल रुप में न रहकर सूक्ष्म रुप में सर्वत्र विराजमान है। स्वयं कवि के शब्दों में, गांधी पंचशती ' मे मैनें गांधी पर कम, गांधी के विचार पर ज्यादा कविताएँ लिखी है। गांधी के विचार मेरे विचार बनकर कविता में उतरे है, जो एक बड़ी बात है।" कवि मिश्र जी की दृष्टि में गांधी क्या है? उनका सच्चा रुप 'विश्वात्मा' कविता में देखा जा सकता है–

" दुःख में जो आर पार देखता है और शान्त रहता है
जितना वह सहता है, उतना सहना चाहिए।
जीवित ऐसे ही आदमी को कहना चाहिए
गांधी ऐसा ही आदमी था और इस लिए
न रहकर शरीर में आत्मा ही आत्मा हो गया है
शरीर उसका खो गया है मगर वह नित्य वर्धमान है।"[2]

उनका अटूट विश्वास है कि जब तक साधनों का प्रयोग गांधी–दर्शन के अनुरुप नही होगा, तब तक श्रेष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति संभव नही होगी। इस देश में का कल्याण तथा यहाँ की प्रत्येक समस्या का समाधान गांधी द्वारा बताये हुए मार्ग पर ही संभव है –

" और होगा वह गांधी को समझने से
उसके रहने और करने के ढंग से अपनान से
उससे हटकर कदापि नही होगा कुछ
जो कुछ होगा सो होगा उसके पास जाने से।

X X X

और उत्स जो पड़ा है लगभग खुला गांधी के विचारो का
उस पर पड़ी एक चट्टान को थोड़ी–सी शक्ति लगाकर

---

1. गांधी पंचशती, पृ0सं0 12.
2. वही, पृ0सं0 10.

खिसका भर देना है बस
कल–कल छल–छल हो जायेगा सब
हरी–भरी उपत्यकाओं में
बदल जायेगें हमारे देश के बंजर–विस्तार।''[1]

उनका यह भी विश्वास है कि सत्य, अहिंसा, प्रेम के मार्ग से होकर आयी हुई शान्ती ही स्थायी हो सकती है –

''शान्ति अगर आयी पृथ्वी पर, बिना बात गांधी की माने,
तो कितने दिन की होगी वह, कौन कहे कोई क्या जाने।''[2]

गांधी–दर्शन के प्रति कवि–मन में जो आस्था–विश्वास है, उसका कारण यह है कि कवि ने देखा है –

'' माटी के पुतलों को तुमने शेर कर दिया है
बड़े–बड़े शेरों को तुमने ढ़ेर कर दिया है।''[3]

कवि मिश्र गांधी जी की तरह ''सघर्ष'' और 'अहिंसा' को मूल्य के रुप में प्रतिष्ठित करते है। ''गांधी पंचशती' के प्रणेता भवानी प्रसाद मिश्र संघर्ष और अहिंसा के घोर पुजारी है, जबरदस्त समर्थक है। उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

'कि यह टूटना बिखरना। कुछ नही हैं।
झमेले में पड़ी। जीवन संघर्ष है। लड़ो।।

यहाँ सघर्ष करने और लड़ने का अर्थ हिंसा नही है। वे साफ–साफ लिखते हैं–

'' गांधी के देश के बेटो
यह मौका है, हिंसा को नंगा करो
मेरी समझ में तुम मारो मत, मरो।

फिर, यहाँ मरो–मारो का मतलब जीवन लेना–देना, नही अपितु जूझने से है, कर्तव्य करने कर्मण्य बनने से है –

(1)'' किसी से मत डरो का मतलब बेघड़क चोरी नहीं है
करो या मरो का मतलब मारो या मरो नही है।''
(2) '' खून को रंगों में काम बनकर दौड़ना राश आ जाये।
तो बेशक बंजर, हर इंच धरती पर, चट्टान पर, बरती पर
मधुमास आ जाये।

---

1. गांधी पंचशती, पृ0सं0 5.
2. वही, पृ0सं0 42.
3. वही, पृ0सं0 33

गांधी जी के विचारो में आस्था होने का कारण ही स्वतन्त्रता–प्राप्ति के अनन्तर गांधी के अनुदायियों द्वारा गांधी जी के सिद्धान्तों का जो न खौल उड़ाया गया, उनकी भावनाओं की बेकद्री की गयी, उससे जितना मानसिक क्लेश स्वतन्त्रत–सेनानियों को हुई उनसे कुछ ज्यादा ही पीड़ा इस कवि को हुई। कवि की बेचैनी और वेदना उसकी कविता 'अब क्या करुँ में साफ–साफ लक्षित है –

" गांधी के देश में। उसके ही अनुदायियों के द्वारा।
उसकी एक–एक इच्छा का खून
देश की गरीबी को भूलकर पालना
खोखले प्रजातन्त्र का सफेद हाथी

छोटी–सी बात मद्यनिषेध तक पर
एक मत नही हो सके गांधी के अनुयायी
बैठकर खादी की गादी पर ढलती है प्यालियाँ
और जब चढ़ जाता है नशा भाषण होते है अगरेजी में गांधी पर
जोर–जोर से है बजती है तालियाँ।[1]

अस्तु गांधी से प्रभावित भवानी प्रसाद मिश्र का जीवन–दर्शन रेशम का नही, खादी का है। वे खादी को राष्ट्रीयता का नही, मानवीयता का प्रतीक मानते है। उन्ही के शब्दों में – "सन् 1933 तक मिल का कपड़ा पहनता था। उसके बाद खादी पहनने लगा। वर्धा जाने के बाद तो मेरा सारा परिवार ही खादी पहनने लगा था। .... खादी के प्रति मेरी दृष्टि स्नेह–बन्धन की है। में उसके साथ बुद्धि और भावना दोनों से बँधा हूँ। " गांधी के व्यक्तित्व एवं विचार–दर्शन से वे इतना से वे प्रभावित है कि वे बरदान भी माँगते है। तो " गांधी की भक्ति मांगते है। सत्य की मिसाल के तौर पर उन्हें सत्यवादी 'हरिश्चन्द्र की जगह याद आता है गांधी।"

" मगर तब तक के लिए रुक नही रहा हूँ मै। शुरु कर रहा हूँ।
जितना बन सकता है मुझसे उतना छोटा एक काम
लेकर समूची मानवता की परम्परा में
अब तक के सीधे–सीधे निर्भय और स्नेही आदमी
गांधी का नाम।

गांधी की प्रेरणा ने ही उन्हे वह सच बोलने–कहने और लिखने की शक्ति दी जिससे

---

1. गांधी पंचशती, पृ0सं0 336.

उन्होनें आपात्काल के नायक–नायिकाओं को बेपर्दा करने वाली कविताएँ लिखी, जो 'भिकाल सन्ध्या' में जीवन्त है।

प्रकृति-प्रेम :-

भवानी प्रसाद मिश्र की बहुत–सारी कविताएँ 'प्रकृति के रमणीय वैभव से अभिमंडित है।'' हरे–भरे मैदान, जंगल या पहाड़, झरने और नदियाँ, जीवन–पर्यान्त ये सब उन्हे आकर्षित करते रहे। इसमें भी, नदियों में नर्मदा, पहाड़ो में सतपुड़ा, जंगलों में सतपुड़ा के घने जंगल तथा ऋतुओं में बसन्त उन्हें सर्वाधिक प्रिय–पसन्द रहा है। ''फूल उन्हें पसन्द नही है। उनकी कविताओं में फूलों का उल्लेख प्रायः नही के बराबर है। फूल जहां आते भी है, वहाँ वे समूह बोधक ही है, विशिष्ट नही। ....यदि कहीं कोई विशिष्ट फूल है भी तो वह प्रतीक अधिक है फूल कम।' जैसे–

फूल लाया हूँ कमल के। क्या करु इनका?
पसारें आप आँचल। छोड़ दूँ। हो जाये जी हलका
ये कमल के फूल। लेकिन मानसर के हैं
इन्हें–हूँ बीच से लाया। न समझो तीर परके है।''

प्रकृति के उपादानों से उन्होनें बहुत कुछ लिया है और जो लिया है, उसे अपने शब्दो में सींच कर बरसाना चाहते हैं–

''जितना लिया है मेरे मन ने
पंछी से, वृक्ष से, बादल से, नदी से वन से
वाणी का ऐसा ऐश्वर्य
शब्दो के अर्थो से सिंचकर बरसे
तो सर से कम से कम
मेरे मन का बंजर–विस्तार।''

जन्म–मरण सुख–दुख, हास–अश्रु के नैसर्गिक द्बन्द्ब के मध्य हँसते–रोते, खिलखिलाते रीझते भवानी मिश्र ने प्रकृति की विविध वर्णच्छटाओं, भंगिभाओं और रुपछवियों से कदम–कदम पर साक्षात्कार किया है। प्रकृति ने भी भवानी प्रसाद मिश्र को जी भरकर रिझाया है, मन भर कर लुभाया है। नर्मदा के किनारे रेवातट पर बसे प्राकृतिक सौन्दर्य से अभिमंडित टिगरिया गॉव में आखें खोल, सतपुड़ा की घनी–घनी झाड़ियों को देखते–देखते विन्ध्याचल की गगन चुम्बी पहाड़ियों के मध्य मंथर गति से बहती नर्मदा की कल–कल को सुनते–सुनते भवानी मिश्र प्रकृति के चिर सहचर बन गये। बस फिर क्या था, उन्हे सूरज मिश्र की तरह जगाने लगा।

''सुबह सूरज आता हे

मिश्र की तरह

मुझे दस्तक देकर

जगाता है।''[1]

जिससे लगाव होता है आदमी उसी से उसका कुशल–क्षेम पूछता है। अपने इसी लगाव के कारण वे प्रकृति से कुशल–क्षेम पूछते रहते हैं–

'' कुशल प्रश्न पूछता रहता हूँ

नदी से, पहाड़ से

पेड़ से पौधे से घास से।''[2]

प्रकृति के इन–ऐसे ही उपादानों के प्रति कवि की गहन आत्मीयता एवं लगाव को लक्ष्य कर डॉ0 शान्ति स्वरुप गुप्त अपना अभिमत देते है कि '' प्रकृति के विभिन्न उपादान कवि के चिर परिचित सहचर है और वह उनकी विभिन्न गतिविधियों के साथ बाल्य सखा–जैसा आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करते हुए सारे दुराधों को हटाकर उनमें मर्म को पकड़ लेता है।''

कवि की इसी मर्मी पकड़ के कारण 'भोर की किरनों का कलियों को चटकाना, बादल का दौड़–दौड़कर धनीभूत होना, चाँद का डूबना, सूरज का अबाकू होकर झाँकना, बसन्तागम पर पन्तों का हिलना, फूलों का खिलना, भैरों का गुनगुन ही नही गांव की उड़ती हुई घूल, विन्ध्य की पहाड़ियों और पुड़ा के धनें जंगल सभी उनकी रचनाओं में चित्रोपम्, भावोपम और रसोपम होकर पाठक को सम्मोहित करते हैं।

धना जंगल डरावना होता है। किन्तु भवानी प्रसाद मिश्र का कवि सतपुड़ा के घने जंगलों में भी आत्मीय सौन्दर्य का दर्शन करते हुए उनमें निर्भय–भाव से घँसने–घुसने घूमने–फिरने का निमन्त्रण देता है। इतना ही नही जंगलों के बीच प्रकृति की सारी छटा चल चित्र की भॉति देखा देता है। सॉप–सी काली उलझी लताएँ, शेर की गर्जना से गुंजाएमान झुरमुट, घास–काश, शाल–पलाश मुर्ग–तीतर, हीरण, निर्झ–नाले–प्रकृति का सब कुछ उनकी एक कविता में साकार हो उठा है –

'' सतपुड़ा के घने जंगल

नींद में डूबे हुए से। ऊँघते अनमने जंगल।

घँसों इनमें डर नहीं है। कल–कथा कहते अनेकों।

नदी, निर्झर और नाले। इन वनों ने गोद पाले।

---

1. व्यक्ति, पृ0सं0 1.
2. परिवर्तन जिए, पृ0सं0 123.

हरित दूर्वा रक्त किसलय।पूत पावन और रसमय।
सतपुड़ा के घने जंगल। लताओं के बने जंगल।
X X X
झाड़ ऊँचे और नीचे। चुप खड़े है आँख मीचें।
घास चुप है, काश चुप है। मूक शाल, पलाश चुप है।
बन सके तो धँसो इनमें।''[1]

अपने मूल परिवेश से दूर शहर में रहते हुए भी कल–कल निनादिनी नर्मदा की स्मृमि कवि–मन में तड़प के साथ कौंधती रहती है–

'' आज भी मेरी छोटी नदी उमड़ कर बहती होगी वहाँ
और वह कल–कल करती हुई कथा–सी कहती होगी वहाँ।''[2]

यही नहीं, अपने बचपन में देखों विन्ध्य के वनों और सतपुड़ा के जंगलों को वे आजीवन अपने भीतर–ही–भीतर महसूस रहे –

''महसूस करता हूँ एक खंडहर। अपने भीतर–भीतर
बहती है जिससे हर–हर हवा। और हिलते है उस हवा मे।
खण्हर केछत से टाँगे। जीर्ण और घूल से मरे झाड़ और फानूस नहीं।
बचपन में मेरे देखे हुए। विन्ध्य के वे वन।''[3]

मिश्र जी प्रकृति के चतुर चितेरे है और प्रकृति की हर वस्तु उनकी आत्मीय है। प्रकृति उन्हें वैचारिक भूमि प्रदान करती है। उनका प्राकृतिक दृश्यों का चित्रांकन रमणीक, अनुभूति परक और सूक्ष्म है। कवि नर्मदा ने हू–बहू चित्र उतारता है। टेढ–मेढी रेवा आँखों को स्वास्थ्य देती है। आस पास के सधन वृक्ष, आकाश के काले बादल, घाटो से थोड़ी दूर हरी घास, लहरों पर तिरती नावें, घने कुहरे में सुर्ख केसरिया रंग मोर की मोनी भीनी–भीनी वायु सारे दृश्य कवि को मोहित कर लेते है। शिशिर की ठण्डी डाकिन हवा उस वन्य प्रदेश के पथरीले भाग को अपनी चुमन से कँपा देती है। सन्ध्या समय निस्तब्ध घाट पर मछली का उछलना, आकाश में दूज के चाँद का जल पर प्रति बिम्बित होना– निश्चित ही कवि–मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ने वाले दृश्य है। उस युवती रेवा के सौन्दर्य को और आस–पास के मोहक दृश्यों के हरअंश को कवि अपलक देखने का आकाँक्षी है, क्योंकि जहाँ यौवन और सौन्दर्य होता है, वहाँ निरन्तर सामीप्य की लालसा होती है, क्षणिक या अंश–भाव से शान्ति नही मिलती –

'' यौवन और सौन्दर्य जहाँ यह बात हो
वहाँ सभी कुछ चाहा जाता है कि हाँ,

---

1. गीतफरोश, पृ0सं0 62–63.
2. वही, पृ0सं0 66.
3. गीत फरोश, पृ0सं0 79.

वहाँ तनिक से शान्ति नहीं मिलती कभी
वहाँ मांग का अन्त नही देखा गया।''[1]

प्रकृति का रंग–रुप उसका सहज आकर्षण कवि मिश्र को अपनी ओर खीच लेता है। प्रकृति की राशि–राशि दृश्यावालियाँ, हवा के गंधित झोके, शबनम की पारदर्शी तरलता, आकाश का नीलापन, किरणों का सुनहलापन, सिहरती–पुल–कती दूब घाटी में प्रति ध्वनित गीत, भटकती सरिता– सब कवि को गुग्ध कर लेती है। यही नही प्रकृति के इस व्यापार को कवि इस दृष्टि से देखता है –

'' लहरे हवा और पानी की
बह रही है
कुछ ऐसी गीत साधकर
कि लगती है अलग–अलग
नही बह रही है वे............
X X X
गाढ़ा नीला आसमान
तेज़ चमकीला सूरज
तरल पानी
सरल हवा
ठोस घरती
हम पाँचों
काल को जानते हैं
और काल जानता है हमें।''[2]

वर्षा के दिन किसी आँखों में उछाह, प्राणों में प्रवाह और शरीर में रोमांच पैदा नही करते। सन्ध्या–समय सारे आकाश को काले बादलो ने घेरा, मनों आकाश में आषाढ़ के काले बादलों ने घने अंधकार में अपना वितान ताना हो। झंझा झकोर के साथ नव वर्षा के जल–कण कवि को स्पर्श कर गए, एक सिहरन, एक गुदगुदी और फिर सुदूर में प्रथम वर्षा के अवसर पर किसान की आह्लादमयी तान, मानो मयूरो का उल्लास उसकी अट्पटी वाणी में समाया हो। बादलों का गर्जन जैसे विवाह के उत्सव की स्थिति हो और वर्षा की सुखद अनुभूति जैसे किसान को पुत्र–जन्म की अतुलनीय प्रसन्नता हो –

---

1. गीत फरोश, पृ0सं0 28.
2. तूस की आग, पृ0सं0 79–75.

" तब दृष्टि हुई,
वातायन से झंझा–झकोर भीतर आया,
लाया जल–कण नव–वर्षा के छू गई सुदूर में एक तान,
वह था किसान, जिसने अपने छोटे से धरती के टुकडे को
किया सुलहला, लगा धान
उसकी अटपटी–सी भाषा में उल्लास मूयरों का उमड़ा
धन गर्जन था उसका विवाह , वर्षा श्री उसकों पुत्र–जन्म।"[1]

उनकी "आषाढ" नामक कविता सुन्दर भावनाओं और उदान्त कल्पनाओं से परिपूर्ण है। अनेक उपभाओं रुपकों से कवि ने उसे सम्बोधित किया है। मेघ पुंजीभूत, पथिक के दूत, मन्त के की के मधुर बोल, यक्ष की सन्देश–वाहक आस, कवि के निरन्तर पर्व आदि। वास्तव में आषाढ़ कृषक का आनन्दमय संगीत है, विरह में कसक पैदा करने वाला है। इस रचना मैं कवि मिश्र ने प्रकृति का बड़ा ही आह्वामय स्वरुप प्रस्तुत करते हुए समय संसार के लिए एक मंगल कामना की है – उसे ऐसा साहस मिले कि उसके गीत संसार के अन्दर प्रसन्नता सुख–शान्ति और स्नेह को जन्म दे सके, बादलों की तरह बार कर हरियाली दे सकें। कवि की एक विशेषता यह है कि प्रकृति के चित्र उसकों सामाजिक और मानवीय धरातल पर खींच लाते है –

" जहाँ बरसूँ, एक हरियाली जगे।"[2]

कवि पावस का गायक है। अतः सावन पर उसकी दृष्टि विशेष रुप से टिकी बिना इन्द्र धनुष से सावन अधूरा है, क्यों कि सूर चाप ही तो उसकी छाप है। अतः वह उसके अभाव में सावन की अभ्यर्थना को स्वीकार नही कर सकता जैसे तुलसी राम का हाथ–धनु सायक लेकर ही देखना चाहते थे। बादलों के बदलते रंग, किलकते मचलते युवक, धानों के खेत– ये सब कवि को मोहित कर लेते है। यहाँ तक कि धनों का भीमाकार रुद्र गर्जन, आधी रात की धन घोर वर्षा अलोकमय चंचलता औ प्राणों की सिहरन उसके हास–उल्लास का कारण बन जाता है– ' गा इन्हे वाणी यही है गेय' किन्तु जल की तेज धारा में बहती झोपड़ी का हाहाकार चीत्कार कवि को क्षुब्ध कर देता है और उसके हृदय के घाव हरे हो जाते है। फिर भी आशावादी चेतना उसको प्रेरणा देती है है, नई आकाँक्षाओं, नये सपनों और नये संगीत को श्रम के उल्लास के साथ जगाने के लिए –

" इस लिए हम चलें
सावन के सम्हालें खेत अपने

---

1. गीत फरोश पृ0सं0 32.
2. वही, पृ0सं0 39.

बखेर दें, बो दें, उगा दें
आज उनमें नये सपने
ये कि जब फागुन सजीला
फूल से सपने खिलादे,
गा उठें इस जोर से
आवाज जगती को गुँजा दे।[1]

'मेघदूत' कविता में कवि मेघों को अपना हार्दिक स्नेह अर्पित करता है, जो प्यासी झील के प्राणों को भरते है, उन्नत विंध्या पर चढ़ते है, नर्मदा की लहरों पर बढ़ते हैं और हृदय को रस–मग्न करते है। यक्ष का यह गीत विरह के अभिशाप को भी वरदान बना देता है–

" हो गया वरदान कवि से स्पर्श से,
भर गये सर–सरित–वन सब हर्ष से,
लेखनी मेंले युगों का ज्ञान रे
झूमते थे विश्व–कवि के प्राण रे,
पड़ गई हृदय पर छाप,
हो गया वरदान वह अभिशाप।"[2]

भवानी प्रसाद मिश्र ने प्रकृति के अंचल–विशेष को बड़ी यथार्थता के साथ रुपायित किया है। सब छोटी–मोटी, सुन्दर–असुन्दर, वस्तुओं का वर्णन करता हुआ कवि अपनी पंक्तियों के सहज प्रवाह में मानों हमें सतपुड़ा के जंगलों के बीच सारी दृश्यावली दिखा रहा हो। उलझी साँप सी काली लताएँ, अजगरो से भरे जंगल, शेर की गर्जना के झुरमुट और काँस, शाल, पलास के पेड़, मुर्गे तीतर, पक्षी, हरिण, निर्झर नाले– सब कवि की लेखनी से साकार हो उठे है। शब्दों की पुनरुक्ति कविता को गीतात्मकता प्रदान करती है–

" झाड़ ऊँचे और नीचे
चुप खड़े हैं आँखे मींचे
घास चुप है, काशचुप है
मूकशाल, पलास चुप है।
बन सके तो घँसों इनमें
सतपुड़ा के धने जंगल,
नींद में डूबे हुए–से
ऊँघते, अनमने जंगल।"[3]

---

1. गीत फरोश, पृ0सं0 73.
2. वही, पृ0सं0 42.
3. दूसरा सप्तक, पृ0सं0 10.

भवानी प्रसाद मिश्र प्राकृतिक दुनिया के साथ भीतरी दुनिया का तादात्म्य कर सके है। यह उनकी अपनी विशेषता है। चाहे कमल के पत्तों के बीच सिंर उठा सरसों के पीले फूल हो, चाहे फुदकती हुई चिड़िया, चाहे आँगन का पीपल हो या गिलहरी का खेल– सब उपादान उनकों रसमयता प्रदान करते है। वे अपने गीतों में दर्द की ऐसी तस्वीर खींचना चाहते है, जो पत्थर के हृदय को भी पिघला सके। यदि वह अपने गीतों संसार के दुःख का लघुतम अंश भी कम कर सका तो उसके जीवन की सार्थकता होगी –

" एक कण भी दुख का यदि मै जगत् से खो सका रे,
एक क्षण भी यदि किसी की सांत्वना मैं हो सका रे,
तो सफल यह रात, यह तारे तंरगों की रवानी,
वायु की हलचल सुरभि की गति सधन वन की कहानी
तो सफल तब गीत पीड़ामय सफल अस्तित्व मेरा,
जा रहा हूँ स्वर भरो तुम, मै लिखूँगा गीत तेरा।"[1]

कवि की संवेदनशीलता यहाँ बढ़ गयी है कि सुबह टहरते हुए हरी–भरी दूब पर पैर पड़नें से उसे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे किसी सोते हुए आदमी के शरीर पर पैर पड गया हो। उसके मन में एक सिहरन–सी उठती है, वह चाहता हे कि 'यह बोध–चेतना बन जाए' चाहे इसे हम 'आदमी का प्रकृति करण' कहे या यो समझें कि प्रकृति कवि के लिए इन्सानी दुनिया की एवजी में हे। कवि का लक्ष्य निर्द्वन्द्व होकर स्नेह वर्षण से समस्त मानवता को उल्लसित और हरा–भरा बनाता है– हरा कर दे जगत् को तत्व ऐसा गान में हो।"

एकता और शांति :-

गांधी ने पशुता को भगाकर नव शुचिता जाग्रत कर, मस्जिद मन्दिर गुरुद्वारा को एक कर दिया। इसी एकता के आधार पर बिना युद्ध और रक्त पात के हमको आजादी मिली, जो विश्व–इतिहास में अनोखी मिसाल है। उन्होनें सामाज्य वादी प्रबल सत्ता को चुनौती दे दी–

" माँटी के पुतलों को तुमनें शेर कर दिया,
बड़े–बड़े शेरों को तुमनें ढेर कर दिया।"[2]

एक सब की जाति होगी भाइयों कहकर उन्होनें हिन्दु मुसलमान, उच्च्व एवं नीच सभी जातियों और वर्गो को एकता के सूत्र में बांधा। गांधी सत्य का आग्रह लेकर आए मानों एक नया वर्चस्व पैदा हुआ हो। भारत छोड़ों आन्दोलन में कवि को ऐसा प्रतीत हुआ मानो लोहे की तलवार पारस पर चली और यह लौह कहानी नष्ट हो गई। आजादी का स्वर्ण–शिखर चारों ओर जगमगा उठा। यही कारण है कि कवि मिश्र यदि कुछ चाहते है तो वरदान के रुप में

---

1. गीत फरोश, पृ0सं0 82.
2. गांधी पंचशती, पृ0सं0 33.

भक्ति गांधी की। गांधी के प्रति इतना समर्पण मानवीय आदशों के प्रति निष्ठा ही तो है, जो हमें सामर्थ्य प्रदान करती है। जहॉ–जहॉ सत्यवादी की चर्चा चलती है – हरिश्चन्द्र की जगद याद आता है गांधी। कवि मिश्र को यह आशंका बराबर बनी रहती है कि शस्त्र–बल पर यदि शांन्ति कायम की गई तो न जाने कब फिर हिंसा भड़क उठे और तूफान आ जाये। अतः गांधी के सत्य, अहिंसा और प्रेम पर ही शांन्ति स्थायी हो सकती है।

" शान्ति अगर आई पृथ्वी पर बिना बात गांधी की माने,
तो कितने दिन की होगी वह, कौन कहे कोई क्या जाने।"[1]

इस लिए कवि ने कामना की है कि मैं सब का बनूँ और सब मेरे बन सकें। जैसे लिखा हुआ महकता फूल सब के उल्लास का कारण बनता है, उसी तरह हृदय का मानवीय प्रेम सबके लिए उन्मुक्त हो। यही गांधी के स्नेह का साम्राज्य है जिसके प्रभाव स्वरुप हर हृदय का दुःख हो जाता है और व्यक्तिगत सुख दुःख से परे लोक–धर्म की व्यापक भूमि में खो जाते है। यह है वैष्णव जन की पराई पीर की अनुभूमि –

" बसे वह प्यार की बस्ती
कि जिसमें हर किसी का दुःख मेरा शुल हो जाए
मुझे तिरसूल भी मारे कोई यदि दूर करने में उसे
तो फूल हो जाये।"[2]

शांन्ति की खोज बाहर नही भीतर होती है। शांन्ति हृदय की भीतरी भावना है जिसे सहेजना पड़ता है, तब कही निर्बलों को शक्ति और अमय प्राप्त होता है। शांन्ति पोछती है हमारी तपन को, जैसे चॅदनी धरती की तपन को शान्त करती है। अतः जब तक भीतर से हृदय को सँवारा जाएगा, तब तक क्लान्ति ही मिलेगी। अतः कवि ने अपने अनुभूत सत्य के व्यक्त करते हुए कहा है–'शांन्ति भीतर है, उसे पहले सहेजो, बिना उसके कुछ बाहर बनेगा।" हमें अहंकार को जीतना होगा, यह अहं चाहे हमारी जीत का हो या देश का। शस्त्रों से शांन्ति को कोई सम्बन्ध नही। शान्ति एक साधना है मुफ्त में मिली धरोहर नही। जब तक हृदय में अभियान सालता रहेगा तब तक दमन और हिंसा से मुक्ति संभव नही। अतः शान्ति की उपलब्धि–हेतु भीतरी और बाहरी दोनों पक्षों में नियन्त्रण और संयम रखना अनिवार्य है।

अहं के विगलित होने के बाद ही निश्छ्ल उच्छ्वासों से उसका बाह्म प्रसार होता है–

"शान्ति किसी राहगीर की जेब से गिरा
रुपयों का बटुआ नही है
कि किसी दूसरे लापरवाह राहगीर को

---

1. गांधी पंचशती, पृ0सं0 42.
2. गांधी पंचशती, पृ0सं0 43.

चलते–चलते ठोकर से छूकर मिल जाये,
न शान्ति किसी चाँदनी रात में
किसी लता पर की कली है
कि आये कोई ठीक झोंका और वह खिल जाये
इसे अपने भीतर से बाहर तक आ जाकर बार–बार
पाना होगा
और तब इस उपलब्धि पर प्राण–मन चढ़ाकर
उसे फैलाना होगा।"[1]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कवि भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य–संसार बहुत व्यापक और गहन है। जीवन के प्रायः प्रत्येक फलक को उन्होनें अपनी काव्य–वस्तु के लिए हे। इस लिए उन्हें किसी वस्तु– विशेष का कवि न कहकर सर्वविज्ञ कवि कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। उनके काव्य में इन सब फलकों की अभिव्यक्ति उनके प्रगाढ़ चिन्तन की देन है। जो जिया, सो उन्होने लिखा है, जिस तरह सोचा है वैसे लिखा है। वे स्थितियों को भाव और विचार के स्तर पर खूब जीकर लिखने वाले कवि है। यही कारण है कि काव्य–चेतना गहन और व्यापक है।

---

1. गांधी पंचशती, पृ0सं0 210.

चतुर्थ-अध्याय

अध्याय–4
भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में यथार्थवाद

यथार्थवाद एक व्यापक क्षेत्रीय विचार धारा है। इसका सम्बन्ध वाड्.मय की अनेक विधाओं से है। साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद मानव–जीवन के उस रूप के चित्रण पर बल देता है जो वास्तविक सत्ता से युक्त हो। व्यावहारिक दृष्टिकोण से साहित्य में मानव–जीवन और मानव समाज का रूपात्मक चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। एक यथार्थवादी साहित्यकार मानव–जीवन और मानव समाज के आदर्श–परक और कल्पित स्वरूप की उपेक्षा करके अपनी रचनाओं में केवल यथार्थ चित्रण पर ही बल देता है। भले ही वह यथार्थ कुरूप और हीन हो तथा पाठक के हृदय पर उसको पढ़कर कोई सद्भावना न जाग्रत हो। इस दृष्टि से यथार्थ वादी साहित्य किसी सीमा तक भौतिक वादी साहित्य कहा जा सकता है, क्यों कि वह मानव–जीवन और मानव समाज की भावनात्मक और कल्पनात्मक सत्ता से पृथक उसकी वास्तविक सत्ता का बोध कराता है। एक साहित्यकार के अतिरिक्त एक चित्रकार अथवा विचारक भी यथार्थ वादी दृष्टिकोण का अनुगामी हो सकता है परन्तु उसके यथार्थ चित्रण का भिन्न हो जाता है। साहित्य में जिस यथार्थवाद का चित्रण किया जाता है वह मुख्यरूप से वस्तु जगत् और भाव जगत का पूरी ईमानदारी के साथ यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि कोण से साहित्य के क्षेत्र में जो प्रमुख विचार–धाराएँ प्रमुख है उसमें यथार्थवाद भी एक है। यथार्थ वादी साहित्य आदर्श वादी साहित्य की भॉति केवल कल्पना और आदर्श पर ही आधारित नहीं होता वरन् वास्तविक जगत को उसका सम्पूर्णता के साथ चित्रित करता है।

यथार्थवाद की परिभाषा : पाश्चात्य धारणाएँ

साहित्य की एक विशिष्ट विचारधारा के रूप में यथार्थवाद जीवन के यथार्थ अकंन पर बल देता है। यथार्थवाद की परिभाषा करते हुए विभिन्न आलोचकों ने इसके विभिन्न पक्षों की व्याख्या की है। प्रसिद्ध योरोपीय साहित्यिक इतिहास कार कजामियाँ ने यथार्थ के विषय में अपने इस मन्तव्य का प्रतिपादन किया है कि यथार्थवाद साहित्य में कोई विशिष्ट शैली नहीं है, वरन् एक विचार धारा अथवा प्रवृत्ति है। यहॉ पर कजामियां के इस मन्तव्य के सन्दर्भ में इस तथ्य का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि योरोप में जोला तथा मोदासां जैसे कथा कारों ने भी यथार्थ वादी आन्दोलन के विकास में जो योग दिया है वह उसकी इसी प्रवृत्तिगत विशिष्टता के कारण है। राबर्ट लुई स्टीवेन्सन जैसे विचारको का यह मत है कि यथार्थवाद साहित्य में अभिव्यंजित यथार्थ से विशेष सम्बन्ध नहीं रखता, वरन् केवल उसकी शैली से सम्बन्ध होता है। जार्ज ल्यूकस जैसे विद्वानों ने योरोपीय साहित्य में यथार्थवाद का अध्ययन करते हुए यह प्रतिपादत किया है कि वास्तविक अर्थ में यथार्थवादी साहित्य नही होगा,

जिसमें का वरार्य विषय यथा तथ्य चित्रण है। यथार्थवाद के अन्य पाश्चात्य व्याख्याताओं में हार्वर्ड फास्ट का उल्लेख करना भी आवश्यक है। उसने यथार्थ चित्रण की समस्या पर विचार करते हुए यह कहा है कि साहित्य की आभ्यांतरिक प्रक्रिया किसी पूर्व निर्धारित क्रम पर निर्भर नहीं करती और न ही वह उससे निर्दिष्ट होती है। इसके विपरीत वह केवल संयोग पर आध ारित होती है और इस दृष्टि से एक साहित्य कार का उद्देश्य यथार्थ का यथा तथ्य चित्रण करना नहीं होता वरन् यथार्थ के उपयुक्त रूप का चयन करना होता है। यही नहीं वह इस बात पर भी बल देता है। कि यथार्थ का स्वरूप एकात्मक होता है द्वयात्मक नहीं इसी लिए यथार्थ परक साहित्य कार के समक्ष कोई धर्म संकट नहीं होता और वह सरलता पूर्वक उसके चिंतन में प्रवृत्त हो सकता है। प्रसिद्ध अग्रेंजी कथाकार और आलोचक हेनरी जेम्स ने कथात्मक विधाओं में यथार्थ चित्रण पर विशेष बल दिया है। उसका निश्चित मत यह है कि कोई भी लेखक तब तक किसी उत्कृष्ठ तथा कृति की रचना नही कर सकता जब तक उसमें सत्य का विवेक न हो। परन्तु इसके साथ ही वह यह भी कहता है कि यह एक कठिन कार्य है। वह यह निर्देश करता है। कि कथाकार को यथार्थ की खोज अपने विशद क्षेत्रीय जीवन में करनी चाहिए यह यथार्थ को एकात्मक अथवा एक पक्षीय नही मानता। इसके विपरीत वह यथार्थ को बहुरूपी स्वीकार करता है। कथा साहित्य के समग्र स्वरूप पर विचार करते हुए वह यह भी कहता है कि यथार्थता का वातावरण किसी कथाकृति का एक ऐसा केन्द्रीय गुण है जिस पर अन्य सभी गुण निर्भर करते है।

यथार्थवाद की परिभाषा : भारतीय धारणाएँ :-

यथार्थवाद की परिभाषा करते हुए हिन्दी के अनेक साहित्य कारों ने अपने विभिन्न मत प्रकट किये है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार मुंशी प्रेमचन्द्र ने बताया है कि यथार्थ का साहित्य में अत्यधिक महत्व होता है। उन्होनें यथार्थ को साहित्य की एक कसौटी मानते हुए अनुभूति की यथार्थता पर बल दिया है। उनके विचार से "साहित्य उसी रचना को कहेगें जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने पर गुण हो। और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप में उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयां और अनुभूतियां व्यक्त की गयी हो।" इसी सन्दर्भ में यथार्थवाद की परिभाषा और स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होनें यह भी लिखा है कि " यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विशेषताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्रण होता है और इस तरह यथार्थवादी हमको निराशावादी बना देता है, मानव–चित्रण पर से हमारा विश्वास उठ जाता है। हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है।"[1] प्रेमचन्द्र युग के दूसरे उल्लेखनीय कथाकार जयशंकर प्रसाद' ने भी यथार्थवाद की परिभाषा और स्वरूप स्पष्ट करते हुए अपने विचार प्रकट किये है। उन्होनें

1. 'कुछ विचार', मुंशी प्रेमचन्द्र, सन् 1961, पृ0 49.

यथार्थवाद को एक विशिष्ट साहित्यिक दृष्टिकोण माना है। उनका मत है कि यथार्थवाद कि विशेषताओं में प्रधान है लघुता कि और साहित्यिक दृष्टिपात उसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और बेदना की अनुभूति आवश्यक है। लघुता से मेरा तात्पर्य है। साहित्य के माने हुए सिद्धान्त के अनुसार महन्ता के कल्पनिक चित्रण के अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुःख और अभावों का वास्तविक उल्लेख जय शंकर प्रसाद ने आगे चल कर यथार्थवाद के बहुपक्षीय स्वरूप का प्रतिपादन किया है। कि यथार्थ कभी भी एक पक्षीय अथवा एकांगी नहीं होता इसके विपरीत वह सदैव अनेक रूपों वाला होता है। लेखक की दृष्टि और वरार्द विषय के वैशिष्टय के अनुसार यथार्थ का स्वरूप साहित्य में सदैव परिवर्तित होता रहता है। उन्होनें इस विवेचन के सन्दर्भ में लिखा है। कि यथार्थवाद क्षुद्रों का ही नही अपितु महानों का भी है। वस्तुतः यथार्थवाद का मूलभाव है वेदना। जब सामूहिक चेतना चेतना छिन्न–भिन्न होकर पीड़ित होने लगती है तब वेदना कि विवृति आवश्यक हो जाती है।''[1]

हिन्दी के प्रसिद्ध शास्त्रीय समीक्षक डॉ0 श्याम सुन्दर दास ने गद्य काव्य के विवेचन के सन्दर्भ में कथा साहित्य में सत्यता की व्याख्या की है। उनका मत है कि इस प्रकार के साहित्य में सर्वप्रथम तत्व यथार्थता ही है। जिसका प्ररीक्षण किया जाना चाहिए। इसके साथ ही उन्होनें ने यह भी कहा है कि कथा साहित्य का सत्य वैज्ञानिक सत्य से सर्वथा भिन्न होता है। परन्तु इतना होने पर भी उसमें गूढ़ और व्यापक सत्यता अन्त निर्हित रहती है जो अधिक प्रभाव शालिनी और शिक्षा प्रद होती है। यथार्थवाद का साहित्य और कला में स्वरूप निधारित करते समय डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बताया है कि ''कला क्षेत्र में यथार्थवाद एक ऐसी मानसिक प्रवृत्ति है जो निरन्तर अवस्था के अनुकूल परिवर्तित और रूपायित होती रहती है।'' द्विवेदी जी ने यथार्थवाद के स्वरूप से सम्बन्धित भ्रमों का उल्लेख करते हुए इस प्रसंग में एक अन्य स्थल पर लिखा है कि यथार्थ वाद शब्द बहुत गलतफहमी का शिकार बन गया है। साहित्य में यथार्थ शब्द का प्रयोग नए सिरे से होने लगा है। यह अंग्रेजी साहित्य के 'रियलिज्म' के तौल पर गढ़ लिया गया है। यथार्थवाद का मूल सिद्धान्त है वस्तु को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करना। न तो उसको कल्पना के द्वारा विचित्र रंगों से अनुरंजित करना और न किसी धार्मिक या नैतिक आदर्श के लिए उसे काट–छाँट उपस्थित करना।[2] इस लिए द्विवेदी जी ने यह संकेत किया है कि यथार्थ वाद साहित्य में एक ऐसी विचारधारा के रूप में ग्राह्य होना चाहिए जिसमें लोगों की आस्था हो क्यों कि उसके अभाव में यथार्थवाद का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता। उन्होनें इस सम्बन्ध में अपनी यह धारणा भी व्यक्त की है यथार्थवाद को जैसे हमारे लेखकों ने विश्वास के रूप में नही बल्कि आज तक को आवश्यक साधन के रूप में ग्रहण कर लिया है, यानी हर व्यक्ति में कुछ ढुलमुल पन और कुछ पतन स्खलन दिखा देने का नाम ही यथार्थ वाद हो और आधुनिक बनने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हो, छोड़ा ही न जा सकता हो।''

---

1. काव्य और कला तथा अन्य निबंध, श्री जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ 121.
2. 'हिन्दी साहित्य', डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 27.

हिन्दी के प्रगतिशील समीक्षक श्री शिवदान सिंह चौहान ने साहित्य में यथार्थवाद का अन्यतम महत्व प्रतिपादित किया है। उनकी यह धारणा है कि उत्कृष्ट साहित्य का सृजन सत्य के अभाव में नही हो सकता। इस दृष्टि कोण से उन्होनें यथार्थवाद को ही साहित्य का प्रधान मानदंड माना है। उनके विचार से "महान साहित्य और कला सदा निर्विकल्प रूप से जीवन की वास्तविकता को ही प्रतिबिम्बित करती है अतः उसकी एक मात्र कसौटी भी उसका यथार्थवाद है।" यथार्थवाद परिभाषा करते हुए आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने लिखा है। कि "यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक् सत्ता का समर्थक है; वह समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की ओर अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का सम्बन्ध प्रत्यक्ष वस्तु जगत् से है।[1]

बाजपेयी जी ने यथार्थ के नाम पर कुरूचिपूर्ण साहित्य के प्रस्तुती करण का विरोध किया है। एक अन्य समीक्षक डॉ0 श्री कृष्ण लाल ने यथार्थवाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि " यथार्थवाद आधुनिक विज्ञान युग की देन है। यो तो जीवन सर्वदा से ही प्रायः एक ही प्रकार का चला आ रहा है, परन्तु उसको निकट से देखने की दृष्टि विज्ञान ने ही पहले पहल दी। पानी हम सदा पीते रहे हैं और उसका प्रयास यही रहा करता है कि स्वच्छ और निर्मल जल पान करें। प्रसिद्ध भी यही है " पानी पी छान कर।" परन्तु आज कपड़े से छानने से भी जल स्वच्छ नहीं हो जाता हाँ स्थूल चर्म चक्षुओं से चाहे वह जितना भी स्वच्छ जान पड़े। कारण यह है कि विज्ञान ने हमें लघुवीक्षण यंत्र द्वारा दिखा दिया है। यही लघुवीक्षण यथार्थ दृष्टि है।[2]

यथार्थवादी विचारधारा का उद्‌भव

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यथार्थवादी विचारधारा का उद्भव सर्वप्रथम यूनान में हुआ था। दर्शन शास्त्र के इतिहास के अन्तर्गत इस तथ्य के संकेत मिलते है कि पॉचवी शताब्दी ईसवी पूर्व के लगभग यथार्थवादी दर्शन का प्रसाायन वहॉ हुआ था। उस समय से लेकर आज तक दर्शन शास्त्र तथा साहित्य के क्षेत्रों में यथार्थवादी विचारधारा किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। कई सहस्त्र वर्षो के सुदीर्घ काल में इस विचार धारा को अन्य अनेक मत वादों का समर्थन और सहयोग प्राप्त हुआ। दार्शनिक क्षेत्र में यथार्थवाद का मूल तत्व मानव की सहज ज्ञान की शक्तियों के वातावरण को समझने तथा अध्ययन करने की क्रिया है। वह संसार में मनुष्य ऐसी बहुत–सी वस्तुएँ देखता है जो उसके द्वारा निर्मित नहीं है। वह उनके बारे में तभी कुछ समझ सकता है, जब उसका उससे सम्बन्धित ज्ञान संयत और सुनियोजित रूप में हो। यह ज्ञान वह इस लिए भी प्राप्त करना चाहता है क्योंकि इसके मूल में रक्षा की

---

1. आधुनिक साहित्य, आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी।
2. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद डा0 त्रिभुवन सिंह, सं0 2012. डा0 श्री कृष्ण लाल लिखित भूमिका, पृष्ठ 4.

प्रवृत्ति कार्यशील रहती है। इस प्रकार से दर्शन के क्षेत्र में यथार्थवाद के सन्दर्भ कतिपय मान्यताएँ प्रचलित हैं। उनके अनुसार "मानव मूल रूप से यह विश्वास करता है। कि (1) मानव के चारों ओर यथार्थ स्थिति रखने वाला संसार या वातावरण है, जिसके बनाने, बिगाड़ने तथा परिवर्तित करने में उसका कोई हाथ नहीं है। (2) इस यथार्थ वस्तु स्थिति को केवल समझा ही जा सकता है। यह समझना तभी सम्भव है। जब कि उस वातावरण का वैज्ञानिक तथा निरपेक्ष अध्ययन किया जाए, यह मानव बुद्धि द्वारा सम्भव है। तथा (3) बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान ही मनुष्य की वातावरण के प्रति की गई समस्त प्रति क्रियाओं में चाहे वे व्यक्तिगत रूप से की गई हो या सामूहिक रूप से सहायक है। मानव के ये मूलभूत विश्वास ही यथार्थ के आधार स्तम्भ है।

यथार्थवादी विचारधारा का विकास :-

साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवादी विचारधारा को व्यापक रूप में मान्यता मिली है। इसे विशिष्ट चिन्तकों का समर्थन भी प्राप्त हुआ है। सिद्धान्ततः यथार्थवादी विचारधारा साहित्य और कला में जीवन के रूप के अंकन पर बल देती है जिसका आधार यथार्थ परक हो। यथार्थवाद को अनेक मनीषियों ने विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं व परिस्थितियों में रखकर कसा, समझा व परखा है। इस लिए यह विश्व–साहित्य में विभिन्न कालों में विद्यमान रहा है। वस्तुतः यथार्थवाद सुधारक साहित्य का प्रथम चरण है। कोई भी साहित्यकार जब सामाजिक स्थिति का चित्र उपस्थित करता है तब उसका दृष्टिकोण यथार्थ परक ही रहता ह। उसका उद्‌देश्य जन मानस में उस आक्रोश को जन्म देना रहता है जिसके बिना किसी भी सुधारक, परिवर्तन अथवा क्रान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मध्यकालीन साहित्य में ही यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ अंशतः दिखाई पड़ती है।

आधुनिक पाश्चात्य साहित्य में यथार्थवादी विचारधारा के विकास में कार्लमार्क्स के सिद्धान्तों ने भी योग दिया। इस सम्बन्ध में काडबेल जैसे समीक्षकों ने विस्तार से विवेचन किया है। उसने मार्क्स के आधार भूत सिद्धान्तों को साहित्यिक परिणाति भी निर्दिष्ट की है। रचनात्मक साहित्य के क्षेत्र में फ्लोवेयर, जोला तथा मोपासां आदि विचारकों ने भी इसके विकास में योग दिया है। उन्होनें यथार्थवाद को एक प्रवृत्ति के रूप में स्वीकृति दी जिसके मूल में वस्तुओं के यथास्वस्थ वर्णन की प्रवृत्ति है। इस रूप में इस विचार धारा का जो विकास हुआ उसे अन्य नवीन नाम भी दिए गए जिनमें यथार्थवाद, अति यथार्थवाद तथा प्रकृतवाद आदि है। आधुनिक युग में यूरोपीय साहित्य के अन्तर्गत यथार्थवाद का महत्व इस लिए है क्योंकि अनेक प्रबुद्ध विचारकों की यह धारणा है कि यथार्थवाद ने साहित्य को एक नई दृष्टि दी है। एक विशिष्ट वाद के रूप में साहित्य के क्षेत्र में इसकी चर्चा प्रथम महायुद्ध के पश्चात से अधिक होने लगी। द्वितीय महायुद्ध तक पाश्चात्य साहित्य के क्षेत्र में इसका प्रचलन बहुत

अधिक हुआ। वास्तव में प्रथम विश्व युद्ध में जो भयानक नरसंहार हुआ था, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप हीनता, निराशा और आश्रय हीनता की अनुभूति ने यथार्थवाद के भावी विकास की वह भूमिका प्रस्तुत की जो आक्रोश और विद्रोह से युक्त थी।

यथार्थवाद और अतियथार्थवाद :-

अतियथार्थ को यथार्थ की परवर्ती विचारधारा के रूप में मान्यता दी गई है। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, साहित्य के क्षेत्र में यह मान्यता है कि यथार्थवाद ने यदि साहित्य को एक नई दृष्टि दी है तो अति यथार्थवाद ने व्यावहारिक क्षेत्र में उसके आरोपण की सम्भावनाएँ उपस्थित की है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अतियथार्थ का प्रादुर्भाव बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्याशं में फ्रास में हुआ। इसकी पृष्ठभूमि में विगत शताब्दी की साहित्यिक परम्परा थी। उन्नीसवीं शताब्दी में कतिपय साहित्यकार ऐसे हो चुके थे जिन्होनें इसका प्रारम्भिक स्वरूप निदर्शन किया था। इस दृष्टि कोण से जिन साहित्यकारों ने इसके भावी विकास की सुस्पष्ट आधार भूमि निर्धारित की उनमें चार्ल्स वोदेलयर, हाब्रीमान, आर्थर रिम्बों तथा में लार्मे आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

अति यथार्थवाद का एक साहित्यिक आन्दोलन के रूप में आरम्भ प्रति क्रियात्मक रूप में हुआ। इसके प्रारम्भिक संकेत प्रथम महायुद्ध के परवर्ती फ्रान्सी सी साहित्य में दृष्टिगत होते है। इसकी प्रतिक्रिया वस्तुतः मानसिक और सांकेतिक थी जिसने विद्रोहात्मक रूप धारण करके एक आन्दोलन की संज्ञा प्राप्त की थी। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात लगभग सन् 1920 से यथार्थवाद की चर्चा एक विशिष्ट वाद के रूप में आरम्भ हुई। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अतियथार्थवाद का अर्थ उस सत्ता से समझा गया जो यथार्थ होते हुये भी दृष्टिगत न हो। इस अर्थ विशेष का परिवर्तन आन्द्रेव्रेतन ने किया और उसे अनेक समकालीन विचारकों का सहयोग भी प्राप्त हुआ। उसने दो घोषणा—पत्र क्रमशः सन् 1924 तथ 1930 में प्रकाशित किये, जिनमें इस विशिष्ट विचारधारा के उद्देश्यों और साहित्यिक विशेषताओं का स्पष्टीकरण किया गया। सन् 1930 के पश्चात से अतियथार्थ वादी विचारान्दोलन क्रान्ति सी साहित्य और कला में अभिव्यक्ति की दृष्टि से व्यापक होता गया और आगे चलकर इसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता की गई।

अतियथार्थ वादी विचारधारा के अनुसार साहित्य अथवा कला की पूर्ण रूपेण बौद्धिक नहीं होना चाहिए क्योंकि यदि साहित्य अथवा कला पूर्णतः बौद्धिक हो जायेगी तो उसमें मनुष्य की वैयक्ति अनुभूतियों के अन्त विरोध का चित्रण न हो सकेगा। इसके साथ ही अति यथार्थवादी विचारकों ने नीति विषयक कतिपय मान्यताएँ भी प्रस्तुत की है। इस विचारधारा के पोषको का यह मत है कि आधुनिक सभ्य, शिक्षित और संस्कृत समाज में जो नैतिक दृष्टिकोण आदर्श समझा जाता है वह वस्तुतः अर्थहीन है। अपनी इसी मान्यता के कारण अति

यथार्थ वादी विचारक आधुनिक नीति विषयक मान्यताओं का विरोध करते है। यहॉ पर इस तथ्य की ओर संकेत करना अप्रासंगिक न होगा कि अति यथार्थ वादियों द्वारा आधुनिक नैतिक मान्यताओं के विरोध के कारण ही इसके विरोधी चिन्तक अति यथार्थ वादियों के प्रति यह आक्षेप करते है कि वे चूंकि कोई नैतिक बन्धन नहीं स्वीकार करना चाहते इस लिये वे स्वच्छंदता वाद के समर्थक है। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान में रखना चाहियें इस मत का समर्थन उन समीक्षकों ने भी किया है जो अति यथार्थवाद को किसी नवीन विचारधारा के रूप में मान्यता नहीं देते वरन् उसे उन्नीसवी शताब्दी के स्वछन्दतावादी आन्दोलन का ही बीसवीं शताब्दी में परिवर्तित और विकसित रूप मानते है। अति यथार्थवादी आन्दोलन के आरम्भ और विकास का अध्ययन करने पर इस तथ्य की अब गति होती होती है कि यद्यपि फ्रान्स के आरम्भ होने के पश्चात इस आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हुई, परन्तु इसका केन्द्र फिर भी फ्रान्स ही बना रहा। फ्रान्स के अतिरिक्त इंग्लैण्ड, जर्मनी, स्पेन और अमेरिका में इसे विशेष समर्थन प्राप्त हुआ। एक प्रमुख साहित्यिक आन्दोलन के रूप में अति यथार्थवाद का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया जाता है। इस का आशय वास्तव मं उस सत्ता से समझा जाता है जो दृष्टि यथार्थता से पूरे हो।

अति यथार्थवाद के पोषकों और व्याख्याताओं में हर्बर्टरीड का उल्लेखनीय स्थान है। उसने इस आन्दोलन को संगठनात्मक दृष्टि से प्रभाशाली बनाया और वैचारिक सभ्यता प्रदान की। उसने इस मन्तव्य का प्रति पादन किया कि अति यथार्थ वादी आन्दोलन के प्रचार व प्रसार की पृष्ठ भूमि के एक विशेष उद्देश्य है और एक ऐसे विचारक का इस आन्दोलन से कोई विरोध नही हो सकता जो इस उद्देश्य को समझता है। इसके विपरीत जो इस उदेश्य को नही समझते वे सामान्य और हल्की पत्रकारिता के प्रचारत्मक स्तर पर ही इसका विरोध करते है, यद्यपि उनके पास इस आन्दोलन का विरोध करने का कोई सैद्धान्तिक कारण नहीं है। यथार्थ वाद, अति यथार्थवाद और स्वच्छंदता वाद की विस्तुत व्याख्या करते हुए हरबर्ट रीड ने इसका पारस्परिक अन्तर भी स्पष्ट किया है। उसने बताया है कि स्वच्छन्दतावाद स्वभावतः अतियथार्थवाद की ओर अग्रसर होता है। यहॉ पर इस तथ्य की ओर भी संकेत किया जा सकता है अन्य अनेक विचारकों ने अति यथार्थवाद को स्वच्छन्तावाद का विकसित रूप बताया है यद्यपि इन दोनों की विशेषताए सामान्य है। संक्षेप में अति यथार्थवाद और स्वच्छन्दतावाद दोनों ही समता के स्थान पर विषमता को प्रश्रय देते है। इसके साथ ही यह दोनों विचार धाराए बौद्धिकता के प्रति अविश्वास रखती है। और इन दोनों में ही मध्यवर्ग में चौंका देने की प्रवृत्ति विद्यमान है परन्तु इसके साथ ही यहॉ पर यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि अति यथार्थवाद किसी अर्थ में स्वच्छन्दतावाद का प्रतिनिधित्व करता है। तो यह उस स्वच्छतावादी आत्मा का प्रतिनिधि है जिसका जन्म प्रथम महायुद्ध के उपरान्त मूल्यों के विघटन पर हुआ था। और यह वह समय था जबकि विश्व युद्ध के पश्चात आपेक्षित विज्ञानों

द्वारा घोषित बुद्धिवाद के प्रति अनास्था और अविश्वास संयुक्त विद्रोह ने जन्म लिया था। जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है अति यथार्थवाद तार्किकता और बौद्धिकता के विरूद्ध है। परन्तु इस कथन का यह आशय नहीं है कि वह भावुकता का समर्थन करता है। वास्तव में वह मूल रूप से मनोविज्ञान से सम्बन्धित है। इस दृष्टि से अति यथार्थ वाद के आधार रूप में लगभग वें ही भावनाएँ और सिद्धान्त कार्यशील है। जो फ्रायड, एडलर, युन्ग, गेस्टाल्ट तथा वाटसन आदि ने अपने मनोंविश्लेषण शास्त्र में विवेचित किए हैं जिनका सम्बन्ध चेतन–अवचेतन, असंगति और असंतुलन आदि से है। इस दृष्टि से अतियथार्थवाद थोथे आदर्शो का विरोध करता है और रूढ़वादी परम्पराओं का खंडन। डॉ0 सुरेश सिन्हा ने अति यथार्थवाद को अवचेतन से सम्बन्धित बताया है। उनके विचार से अति यथार्थवाद ने असंतुलन एंव असंगति के ऐसे वीभत्स एंव घृणास्पद चित्र उपस्थित किए कि मानव मात्र विकृतियों का पुतला बन गया। फलस्वरूप अति यथार्थवादी स्कूल पर अनेक दोषारोपण किये जाने लगे और उनके उत्तर भी दिये गए। पर सब से भीषण आरोप यह किया गया कि अति यथार्थवाद हिंसा और न्युरोमांटिक प्रवृत्तियों को प्रश्रय देता है। वह वर्तमान नैतिकता को तिरस्कृत करता है, क्योंकि उसके विचार से वह रूढ़ और आडम्बर युक्त है। वह प्रेम और स्वतन्त्रता पर आधारित नैतिकता प्रमुखता प्रदान करता है।'' इसी प्रंसग में आगे चलकर डॉ0 सुरेश सिन्हा ने अति यथार्थवाद की मनो वैज्ञानिक का विश्लेषण करते हुए लिखा है। कि ''अति यथार्थवाद किसी भावुक मानवता वाद से सम्बन्धित नहीं है। वह अत्यन्त कठोर ढंग से नियन्यत मनो वैज्ञानिक है। और यदि वह प्रेम और सहानुभूति जैसे शब्दों का प्रयोग करता है। तो इसी लिए कि व्यक्ति के आर्थिक एवं वासनात्मक जीवन को उसके विश्लेषण ने उसे इन शब्दों के सामीनता पूर्वक प्रयोग करने का अधिकार दिया है। और इस प्रयोग में किचित मात्र भी भावुकता का स्थान नहीं होता अति यथार्थवाद जो ज्ञान की एक प्ररगाली है फलस्वरूप विजय और सुरक्षा की भी प्ररगाली है मनुष्य की वेतनशीलता का रहस्योद्घाटन करता है। अति यथार्थवाद यह स्वीकार करता है कि सभी व्यक्तियों में विचारों की सामान्यत होती है और मनुष्य मनुष्य के मध्य व्यवधान को सामाप्त करने का प्रयत्न करता है। भेद भाव या कार्यरता की किसी सीमा को वह नहीं मानता कि उसका विचार है मनुष्य अपने आप का अन्वेषण करे अपने स्वत्व को पहचाने और तभी वह उन सभी निधियों को प्राप्त कर एक में क्षमता प्राप्त कर सकेगा। जिससे उसे वंचित कर दिया गया है और जिसका संचय वह प्रत्येक काल में करता है। अति यथार्थवाद अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पूरर्ग बल देता है और उसे भी व्यापक बनाने का प्रयत्न करता है। वह मानता है कि मानव और उसकी कार्य प्रक्रिया अलग नही किये जा सकते। वह मनुष्य की स्वतंत्रता में विश्वास रखता है और अपने पूरर्ग सामर्थ्य से इस उद्देश्य प्राप्ति का प्रयत्न करता है। वह इस प्रक्रिया में पराजय वाद गुमराह करने वाली प्रवृत्ति और शोषरग का विरोध करता है।

अतियथार्थवादी साहित्य में विशेष रूप से मानव मन की अचेतन सत्ता की अभिव्यक्ति की जाती है। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुकी है; फ्रायड तथा अन्य मनो विश्लेषण शास्त्रियों ने मानव मन की जो व्याख्या की है वह अति यथार्थ वादियों के लिए साहित्य में अरोपण का विषय बनी। अन्तर केवल इतना ही है कि आदर्शवादी लेखकों के विपरीत अति यथार्थवादी लेखक अब चेतन मन की सत्ता की निरूपक विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण अवंछनीय नहीं समझता, भले ही उस पर अनैतिकता आदि से सम्बन्धित आरोप किये जाय। डॉ0 त्रिभुवन सिंह के विचार से'' अतियथार्थवादी साहित्यकार गोपनीय एवं मन के गहन प्रदेशों का यथातथ्य चित्रण अनावृत रूप में पाठकों के सामने उपस्थित करने का प्रयत्न करता है, जिससे उसकी जिज्ञासाये शान्त हो जायं और वह नारी को केवल विलास एवं आकर्षण की ही वस्तु न समझे। मनुष्यों के अतिरिक्त आज भी अनेक जीव धारी है जिनके अन्दर परस्पर कोई दुराव–छिपाव नहीं है, उन्हे जब भूख लगी भोजन कर लिया और भोग की ईच्छा हुई तो अपनी वासना की तृप्ति कर ली इसके लिये उन्हे उलझने तथा मानसिक संसार में एक संघर्ष उपस्थित कर लेने की कोई भी आवश्यकता नहीं होता है। अति यथार्थवादी मनुष्य की ऐसी ही स्थिति का समर्थक है। अतियथार्थवादी और मनो विश्लेषणात्मक के सिद्धान्तो का कहीं–कहीं स्थानों पर भेद करना कठिन हो जाता है। मनो विश्लेषणात्मक यथार्थवाद के अन्दर मनुष्य के स्वाभाविक अब गुणों को चित्रित करके उनसे घृणा उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है परन्तु अति यथार्थ वाद के अन्दर गोपनीय एवं रहस्य पूर्ण स्थलों को चित्र द्वारा सामने लाकर मानव की जिज्ञासाओं का निर्भूल रहने का प्रयत्न किया जाता है।'' इस प्रकार के मंतव्यों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि यथार्थवाद का मूल भावना ही अति यथार्थ वादी विचारधारा की पृष्ठ भूमि में विद्यमान रही है।

यथार्थवाद और आदर्शवाद :-

यथार्थवाद और आदर्शवाद सामान्य रूप से दो परस्पर विरोधी विचार धाराएं मानी जाती है। साहित्य में भी यथार्थवाद को आदर्शवाद विरोधी कहा गया परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। यथार्थवाद की भांति ही आदर्शवाद भी एक बहुत प्राचीन विचार धारा है। इसे 'विचार वाद' नाम भी दिया जाता हैं। क्योंकि इसका सम्बन्ध 'आइडिया' या विचार से है। यथार्थवाद की भांति ही आदर्श का समावेश भी साहित्य रचना के सभी क्षेत्रों में होता है। प्राथमिक रूप में यथार्थवाद और आदर्शवाद में यह अन्तर है कि यथार्थ चित्रण में बहुधा आदर्श का अभाव भी हो सकता है जब कि आदर्श प्रत्येक परिस्थिति में आदर्श रहता है। इसी लिए यथार्थवाद का सम्बन्ध भौतिकता से और आदर्शवाद का आध्यत्मिकता से माना जा सकता है। मानव–जीवन को उदान्त शील बनाने वाली यह विचार धारा मूल रूप से अन्तर्मुखी मानी जाती है। इस दृष्टिकोण से आदर्शवाद के अन्तर्गत उसी साहित्य को रखा जाना चाहिए जो अन्तर्मुखी वृति और आध्यात्मिक मूल्यों शाश्चत रूप में प्रस्तुत कर सके। व्यावहारिक दृष्टिकोण से आदर्शवाद

साहित्य में उस यथार्थवाद के चित्रण का विरोधी होता है, जो आदर्श नहीं होता और उसके चित्रण से पाठक को किसी आदर्श की प्रेरणा नही मिलती।

यथार्थवाद की ही भांति आदर्शवाद भी एक व्यापक क्षेत्रीय विचारधारा है। इसका प्रसार साहित्य की समस्त विधाओं के क्षेत्र में तो है ही, विभिन्न शास्त्रों और विज्ञानों में भी इसकी निहित मिलती है। डॉ0 प्रेमशंकर के शब्दा में आदर्शवाद का प्रयोग अनेक रूपों में किया जाता है। दर्शन, राजनीति, साहित्य और कला के क्षेत्र में आदर्शवाद की विस्तृत विवेचना प्राप्त होती है। आदर्शवाद एक प्रकार का दृष्टिकोण है, जिसकी सहायता से संसार का मूल्याकन किया जाता है। यह एक विवेचन प्रणाली है। यथार्थ के जो मूल तत्व होता है, उनके अतिरिक्त भी कोई चेतन सत्ता है; विचारण है; इसी आधार पर आदर्शवाद अपने चिन्तन में अग्रसर होता है। इस विचारधारा में विषय वस्तु तथा भौतिक पदार्थो की अपेक्षा मूलसत्य को अधिक महत्ता प्राप्त होती है। आदर्शवाद की दृष्टि बौद्धिक है, किन्तु वह जीवन के सूक्ष्म मूल्यों को अधिकतर महत्व देता है और इस दृष्टि से वह आध्यात्मिक है।'' साहित्य क क्षेत्र में यथार्थवाद की भांति ही आदर्शवाद का अपना मूल्यगत आग्रह रहता है। आदर्श साहित्य में प्रायः भौतिकवादी मूल्यों का विरोध करता है है क्योकि भौतिकवादी दृष्टिकोण मनुष्य और पशु में समान रूप से विद्यमान रहता है। विवेक और चिन्तन की शक्ति के कारण मनुष्य अपने जीवन को साधारण पशु जीवन से विकासशील बनाकर उसे एक नया अर्थ देता है। ऐसा तब सम्भव हो पाता है जब वह आत्मिक स्तर पर किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होता है। इसी कारण आदर्शवादी विचारधारा का प्रसार मानव–जीवन की व्याख्या करने वाले सभी क्षेत्रों में है। दर्शन शास्त्र, धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र और साहित्य शास्त्र आदि के क्षेत्रों में इसके अपने मानदंड है। इन सभी क्षेत्रों में आदर्शवाद उन मूल्यों के समावेश पर बल देता हैजो उदान्त जीवन के प्रतीक होते है। इस दृष्टि से साहित्य के क्षेत्र में भी आदर्शवाद जिन मूल्यों का स्थापन करता है वे न केवल जीवन की यथार्थता पर आधारित होते है वरन् उसी की ओर उन्मुख भी होते हे।

यथार्थवाद और आदर्श को परस्पर विरोधी विचार धारा मानने वाले आलोचक आदर्शवाद के विरूद्ध यह आरोप लगाते है। कि आदर्शवाद यथार्थ जीवन से विमुख होता है और भावनात्मक तथा कल्पनात्मक तत्वों पर आधारित होता हे। वास्तव में यह बात तर्क संगत नहीं है क्यों कि आदर्श का स्थापना यथार्थ की नीवं पर ही होती है। यही कारण है कि साहित्य के क्षेत्र. में जो आदर्श वादी रचनाएं है, उनमें तो आदर्श की निहिति रहती है उनके साथ उन रचनाओं में भी आदर्श का समावेश होता है। जो यथार्थवादी होती है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु युगीन कहानी साहित्य आदर्श वादी कहानियों में प्रथम वर्ग में आता है और प्रेम चन्दोत्तर युगीन यथार्थवादी कहानियों में निहित आदर्शवाद द्वितीय कोटि में। इसका कारण यह है कि आधुनिक जीवन में यांत्रिकता और भौतिकता प्रधान दृष्टिकोण के समानान्तर यथार्थ वाद का तो विकास हुआ ही है, आदर्श वाद की परम्परा भी अक्षुण्ण रही

है। इस दृष्टिकोण से यथार्थवाद और आर्शीवाद का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध भी माना जा सकता है। कहानी साहित्य के क्षेत्र में आदर्शवाद प्राचीनतम विचार धारा रही है। प्राचीन काल में विभिन्न भाषाओं में जो भी कथा साहित्य उपलब्ध होता है वह आदर्श से आनुप्राणित है। उसका कारण यह है कि लोक प्रचलित और रोचक विधा होने से कारण कहानी में नैतिक और धार्मिक उपदेशों के रूप में आदर्श की प्रतिष्ठा अपेक्षाकृत सुगम होती है। वास्तव में आदर्श का सम्बन्ध कल्पना से होता है और इस लिए वह स्वभावतः यथार्थ से भिन्न होता है। परन्तु बहुधा कहानी साहित्य में यथार्थ चित्रण के माध्यम से आदर्श की योजना की जाती है। इस दृष्टि से यथार्थवाद और आदर्शवाद दोनों ही अधिकांश साहित्यिक कृतियों में अनिवार्य रूप से समन्वित रूप में उपलब्ध होते है क्योंकि आदर्श परोक्ष रूप में यथार्थ जीवन में अनुकरण किये जाने के उद्‌देश्य से प्रस्तुत किया जाता है और यथार्थ किसी आदर्श की प्रतिष्ठा के लिये चित्रित किया जाता है।

यथार्थवाद के प्रमुख रूप

साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवादी विचारधारा का विकास एक व्यापक पृष्ठभूमि में हुआ है। इस दृष्टि से साहित्य की विविध विधाओं में इसके अनेक रूप उपलब्ध होते है। इनमें ऐतिहासिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद से आशय उस यथार्थ वाद प्रमुख है। सामान्यतः ऐतिहासिक यथार्थवाद से आशय उस यथार्थ से समझा जाता है जिसका सम्बन्ध अतीत कालीन मानव जीवन से होता है। वह विभिन्न युगों की वास्तविकता का बोध पाठक को कराता है। इस लिए ऐतिहासिक यथार्थवाद को की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। मनोवैज्ञानिक यथार्थ का विकास साहित्य के क्षेत्र में मनो विश्लेषणात्मक, विचारधारा के समानान्तर हुआ है और इसके अन्तर्गत साहित्य में चित्रित मानव मन, चेतन, उपचेतन तथा अब चेतन मन में रहस्यों की विवृति की जाती है। समाजवादी यथार्थवाद वस्तुतः साहित्य के प्रति एक उपयोगिता वादी दृष्टिकोण का परिचायक है और इसकी पृष्ठ भूमि में समाजवाद के विकास का उद्‌देश्य निहित है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद साहित्य में यथार्थ तत्व पर अवश्य बल देता है परन्तु उसके आधार पर वह किसी आदर्श का अनुमोदन करता है। यहाँ पर संक्षेप में यथार्थवाद के इन प्रमुख रूपों की परिचयात्मक आख्या प्रस्तुत की जा रही है।

(1) ऐतिहासिक यथार्थवाद :-

साहित्यिक दृष्टि कोण से यथार्थवाद व ऐतिहासिक यथार्थवाद में कोई मौलिक भेद नहीं है। देश काल के परिवर्तन से ही यथार्थवाद ऐतिहासिक यथार्थवाद हो जाता है। उदाहरण स्वरूप कल जो यथार्थ था वही आज परिस्थितियों में अन्तर पड़ जाने से ऐतिहासिक यथार्थ हो जायगा। इसी प्रकार से आज जो यथार्थ है इसी अन्तर के आने से कल ऐतिहासिक यथार्थ हो जायेगा। इस प्रकार से हम कह सकते है कि ऐतिहासिक यथार्थवाद

प्रकार से आज जो यथार्थ है इसी अन्तर के आने से कल के आने से कल ऐतिहासिक यथार्थ हो जायेगा। इस प्रकार से हम कह सकते है कि ऐतिहासिक यथार्थवाद में भूतकाल की सामाजिक एंव राष्ट्रीय परिस्थितियों का ही स्वाभाविक चित्रण होता है। इतिहास शब्द से ऐतिहासिक यथार्थवाद की व्याख्या नहीं होती वरन् इन दोनों में पर्याप्त अन्तर विद्यमान है। इतिहास में तिथियों घटनाओं तथा परिणामों का सही विवरण होता है परन्तु ऐतिहासिक यथार्थवाद में सामाजिक, राष्ट्रीय एवं धार्मिक परिस्थितियों के चित्रण पर भी बल दिया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि यथार्थवादी साहित्य वह होता है जिससे वर्तमान समाज प्रेरणा ले सके तथा उसके परिणामों को देखकर वर्तमान समाज के दोषों में सुधार कर सके। इस प्रकार से ऐतिहासिक यथार्थवाद साभिप्राय यथार्थ की रचना करता है। इसी लिए ऐतिहासिक यथार्थवाद में सत्यता के साथ राष्ट्रीय जीवनके महान आन्दोलनों का चित्रण होता है तथा वर्तमान समस्याओं का इतिहास द्वारा हल प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु इस कथन का अभिप्राय यह कदापि नहीं हैं कि हम उसका अन्धानुकरण करने लगे। वस्तुतः ऐतिहासिक यथार्थवाद में तत्कालीन समाज एवं राष्ट्र का संजीव चित्रण होने के साथ ही कल्पनात्मक तत्वों द्वारा समस्याओं का समाधान भी होता है।

ऐतिहासिक यथार्थ यथार्थवाद का एक ऐसा रूप है जो प्रत्येक युग की वास्तविकता का बोध कराता है। जिस साहित्य में युग का सत्य चित्रण होता है। वही श्रेष्ठ साहित्य बन सकता है। वेद उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वेदों की ऋचाओं में तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण हुआ है भले ही वह आदर्श न हों। इस लिए आज तक समाज में उनका अपना महत्व बना हुआ है। इसी भॉति ''रामायण' और ''महाभारत'' में जटिल मानव जीवन की समस्याओं को सुलझे हुए रूप में चित्रत किया गया है। कालिदास के साहित्य में नारी के अधिकारों के लिये मार्मिक वेदना दृष्टि गत होती है। इस प्रकार से आदि काल से हो ऐतिहासिक यथार्थ का महत्वपूर्ण स्थान है। आदि कालीन रचनाओं में भी ऐतिहासिक यथार्थवाद दृष्टिगत होता है। परन्तु ऐतिहासिक यथार्थ के चित्रण के लिये साहित्यकार को निष्पक्ष होना चाहिए। यदि वह अपनी रचनाओं में वैयक्तिक आग्रहों का पालन करता है तो उसकी कृतियों में ऐतिहासिक यथार्थ नहीं आ पायेगा।

(2) मनो वैज्ञानिक यथार्थवाद :

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, यथार्थवाद का यह रूप है जिसका विकास आधुनिक हिन्दी साहित्य में मनो विश्लेषणात्मक विचारधारा के समानान्तर हुआ है। स्थूल रूप में मनो वैज्ञानिक यथार्थ वाद समाजवादी यथार्थवाद के विपरीत मनुष्य की वेयक्तिक चेतना की विवृति करता है। वह उसके समष्टिगत महत्व और मूल्यों को अस्वीकारता नहीं फिर भी वह बाह्रय सत्ता के विश्लेषण करने के स्थान पर उसके अचेतन, उपचेतन तथा अवचेतन मन के रहस्यों को उद्घाटित करता हे। मनो वैज्ञानिक यथार्थवादी दृष्टिकोण से आधुनिक जीवन का स्वरूप

कुछ इस प्रकार है कि अधिकांश अतृप्त कामनाएँ एवं कुठाएँ किसी न किसी रूप में आर्थिक हीनता और निषेध का परिणाम होती है तथा इसी मुक्ति में आर्थिक हीनता और निषेध का परिणाम होती है तथा इसकी मुक्ति के लिये आर्थिक समानता व संयुक्त परिवार अनिवार्य है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मनो वैज्ञानिक यथार्थवाद या सुस्पष्ट रूप में समावेश प्रेमचन्द्र युग से हुआ।

(3) समाजवादी यथार्थवाद :

समाजवादी यथार्थवादी वास्तव में साहित्य के प्रति एक उपयोगिता वादी दृष्टिकोण है। इसको पृष्ठभूमि में पूंजीवाद के विनाश और समाजवाद के विकास का उद्देश्य निहित है। इसी लिये इस विचारधारा में आस्था रखने वाला लेखक की उन शक्तियों का आवहन करता है जो यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आर्थिक समानता के निदर्शक वर्ग हीन समाज की स्थापना के लिये संघर्ष कर सके। प्रो0 विजय शंकर मल्ल के विचार से यह स्पष्ट है–कि समाज वादी यथार्थ पहले समाजवादी और तब यथार्थवादी। वह अर्थ को समाजवादी दृष्टि से देखता है। वह प्रकृत् वादियों (नेचुरलिस्ट) की तरह सम्पूर्ण ब्राह्म जगत् को ज्यों का त्यों स्वीकार करके जीवन की ऊपरी सतह पर दिखाई देने वाली स्थूल व्यवस्थाओं को चित्रित मात्र नहीं बल्कि द्वन्दात्मक भौतिकवाद के आधार पर जीवन और जगत् की परिस्थितियों का विश्लेषण करके समाज के भीतर छिपी भविष्य की नियामत शक्तियों की अभिव्यक्ति करने वाली सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण करता है।'' समाजवादी यथार्थवादी के आविभार्व और विकास पर यदि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि इसका उद्भव रूसी सहित के क्षेत्र में क्रान्ति के परवर्ती काल में हुआ था। उस समय साहित्य में निम्न वर्गो के जीवन का व्यापक चित्रण होने लगा था और उनके संघर्ष को प्रधानता दी जा रही थी। इस प्रकार का साहित्य मार्क्सवाद के सिद्धान्तों से विशेष प्रभावित था और इसे वहॉ समाजवादी यथार्थ की संज्ञा दी गई थी। मार्क्सवादी सिद्धान्तों के सन्दर्भ में यदि साहित्य और समा लोचना पर विचार किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि इनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती वरन् वे समकालीन राज्य सत्ता से नियंत्रित होते है। जैसा कि अत्यन्त्र संकेत किया जा चुका है, काडबेल भी साहित्य का मूल आधार आर्थिक ही मानता है।

कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों के विषय में ऊपर संकेत किया जा चुका है कि वे यथार्थवाद के विकास में आधार भूमि सिद्ध हुए। उन्होनें साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया। फलतः पाश्चात्य साहित्य के क्षेत्र में विचारको एक दल ऐसा संगठित हुआ जिसमें मार्क्स की मान्यताओं का व्यावहारिक आरोपण साहित्य में किया। कार्ल मार्क्स अपनी व्यापक वैचारिक मान्यताओं के सन्दर्भ में साहित्य का आधार मूलतः आर्थिक ही मानता है। मार्क्स का यथार्थवाद यह स्पष्ट मान्यता प्रस्तुत करता है कि सम्पूर्ण समाज शोषक और शोषित वर्गो के संयोग संगठित होता है। इनमें शोषित वर्ग को यह सर्वहारा वर्ग कहता है और यथार्थवादी

साहित्य के रूप में केवल उसी साहित्य को मान्यता देता है जिसमें सर्वहारा वर्ग की समस्याओं और परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया जाय। इस दृष्टिकोण से समाजवादी यथार्थवाद का आधार की उपर्युक्त मान्यतायें ही है। समाजवादी यथार्थवाद का चित्रण करने वाला साहित्य व्याष्टि से समष्टि का एक अनिवार्य और महत्वपूर्ण अंग मानते हुये उनके समग्र स्वरूप को रूपायित करने पर बल देता है। स्वभावतः व्यक्ति और समाज की समस्यायें समान रूप से महत्व रखती है।

सामाजिक यथार्थ :

मूलतः सामाजिक यथार्थवाद पूंजीवाद के विरूद्ध विकसित मार्क्सवाद के चिंतन की आगे आने वाली दशा है। वस्तुतः मार्क्सवाद में जिस सर्वहारा वर्ग की दशा का सरकार की ओर से प्राप्त होती है, इसका वास्तविक चित्रण समाजवाद है। भवानी प्रसाद मिश्र मार्क्सवादी चिंतन के विपरीत गांधीवादी विचारधारा के कवि है जिसमें सामाजिक यथार्थ की जगह समर सता और बंधुत्व प्रेम की उदात्त भावना सामाजिक व्यक्ति–व्यक्ति के माध्यम से समाज में प्राप्त होती है। कार्लमार्क्स के सामाजिक यथार्थवाद और गांधीवाद के रामराज्य में यही मूलभूत अन्तर है। कि साम्यवाद बलात् विद्रोह कर पूंजीवादियों को नष्टकर उनकी सम्पत्ति का वितरण सरकार द्वारा सामान्य जनता में किया जाता है जबकि गांधीवाद में सत्याग्रह, प्रेम और बंधुत्व के द्वारा यह बात अन्तः प्रेरणा से होती है। भवानी प्रसाद मिश्र के साहित्य में जिस सामाजिक यथार्थवाद का चित्रण मिलता है उसमें एक ओर गरीब और गरीबी है, असहाय और निरक्षित आबाल बृद्ध नर–नारी है किन्तु इनके विनाश की परिकल्पना उनके काव्य में नहीं है। इसे हम एक प्रकार का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते है। वस्तुतः यह गांधी की अपनी परिकल्पना है कि उसका व्यवहारिक रूप क्रांति या सर्वनाश द्वारा नहीं अपितु सत्याग्रह या आत्मभुद्वि द्वारा दिखाई जाए। बुनी हुई रस्सी, खुशबू के शिलालेख, तूस की आग, इत्यादि संग्रह के शीर्षक स्वयं प्रतीकात्मक होते हुए इसी विचार धाराके पोषक है। कालजयी में जिस हिंसा के विरूद्ध अहिंसा का व्यापक प्रभाव दिखाया गया है, क्रूर, निर्दय, शासक, मार्मिक पुकार सुन द्राक्षारस की भांति द्रवित होकर जिस शासन तंत्र का परिचालक बना यही तो गांधीवाद के रामराज्य की मूल कल्पना है। यहाँ यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि भले ही भवानीप्रसाद मिश्र की रचनाओं में बूर्जुवा, सर्वहारा, क्रांति जैसे शब्दों का प्रयोग न किया गया हो कितु उनकी सूक्ष्म निरीक्षण क्षमता से यह छूट नहीं गया कि हमारा समाज घोर गरीबी में डूबा है, दरिद्रता के अनेक चित्र यहाँ दिखाई पड़ते है, स्त्री, बच्चे सामाजिक सम्बन्ध ी में आयी कटुता का चित्रण तो उन्होनें किया ही है साथ ही काम, प्रेम, सौन्दर्य, समाज समाज को परिचालित करने वाले इस मूल तत्वों का भी यर्थाथ परक अभिव्यंजन उनकी रचनाओं में मिलता है।

स्त्री दशा :-

नारी आज आधी दुनिया कहलाती है, पश्चिम में नारी मुक्ति के अनेक आन्दोलन चले है जो मात्र शरीर के भूगोल तक ही सीमित है जबकि भारत में नारी स्वातन्त्रय दशा और दिशा के आगे गरीबी, अशिक्षा, शोषण, पर्दा समानता के अधिकार ऐसी बहुत सी समस्याएँ है जिन्हे प्राप्त करने के लिए नारियों को तो संघर्ष करना ही पड़ेगा पुरूषो को भी उसमें अपनी सहभागिता स्वस्थ्य रूप से देनी होगी जिससे नारी की आस्मिता सुरक्षित रहे।

कवि ने इन्ही पाबंदियों, बंधनों, लक्ष्मण रेखाओं का संकेत प्रतीकात्मक ढंग से किया है जिसमें नारी संघर्ष उसे एक व्यापक और नया आयाम देता है। वस्तुतः भारतीय पुरूष अहंमभवाद और हठ धार्मिता का शिकार है इस कारण नारियों को अपना संघर्ष एकजुट होकर करना पड़ेगा–

कितने तरह की धेरे बंदियां
आदमी और औरत की
भाषा की और भेस की
धरम की और देश की
तुम अपने सारे धेरे जानते हो
और मन ही मन
उनकी खराबियाँ मानते हो
मगर तुम ठहरे मनुष्य और
हम प्रकृति
तुम्हे सोंचना आता है[1]

प्रेम :

सामाजिक यथार्थ का स्वरूप चित्रित करते हुए पहले कहा जा चुका है कि नर–नारी परस्पर विरोधी न होकर समान धुरी में लगे दो पहिये है जो प्रेम और सहयोग के साथ हर्ष–विषाद, सुख–दुख, में एक साथ खड़े दिखाई दे। यहाँ तो कहा यह जाता रहा है कि जहाँ नारी का सम्मान होता है वही देवता वास करते है किन्तु यहाँ स्थिति इतनी भयावह हो गयी है कि साथ–साथ रहते सुख–दुख को सहते हुए भी नारी के स्वतंत्र अस्तित्व का अधिकार कम पुरूष ही दे पाते है। वस्तुतः प्रेम वह सूत्र है जिसमें त्याग, सेवा, सीमेण्ट का कार्य करती है और पारिवारिक इकाई सुद्रढ़ भिप्ति के रूप में दिखाई देती है।

---

1. तूस की आग, पृष्ठ 76.

कवि ने आरंभिक में दाम्पत्य प्रेम के इसी रूप का चित्रांकन किया है कि साठ–वर्ष तक साथ–साथ रहते, सुख–दुख भोगते, चाहे अनचाहे सामाजिक बंधन में भारतीय पति बंधा रहता है जबकि विदेश में नारी मुक्ति में ऐसे उदाहरण विरले मिलेगें।

संग–साथ
और प्रतिरोध में
रह लिया
याने मैनें काफी दुःख
काफी हर्ष काफ़ी स्नेह
काफी क्रोध संग–साथ[1]

सामाजिक चिंतको द्वारा बनाई गयी विभिन्न स्मृतियों में प्राप्त संस्कारों के कारण भारतीय दाम्पत्य का यह सामाजिक यथार्थ अपने श्रेष्ठ और यथार्थरूप में दिखाई पड़ता है कि पति पत्नी में विरोध चाहे कितना हो किन्तु अलगाव विच्छेद या तलाक की परिकल्पनायें दूर–दूर तक नहीं दिखाई देती, उसका कारण है कि पुरूष और स्त्री दोनों सामाजिक संस्कारों से ऐसा बंधा है कि पर स्त्री से प्रेम करने की घोषणा का साहस उसमें नहीं होता वे प्राकृतिक दृश्यों को देखकर अपने मूल भूम्रोभावों को भूल जाते है–

मैं रोज जाने लगा हूँ वहाँ
तुभी भी किसी रोज आओं
दूर नहीं है जगह मेरे घर से
घर आ जाना पहलें;
या दूर नहीं है वह तुम्हारें भी घर से
सीधे वहीं से निकल आना[2]

कवि को विश्वास है कि बाहर संघर्ष उनके जीवन में चाहे जितने झंझावात लाये किन्तु साथ–साथ रहने से जो श्रेष्ठ शारीरिक स्तर से परे मजीण्ठ राग की जड़े परस्पर इतनी गहरी और मजबूत हो जाती है कि वे प्रेम रस को अतल गहराई से खींचकर संघर्षो, विवादों, मान, अपमान की आंधियों के समक्ष दृढ़ता से खड़ा रहकर अपनी हरियाली बिखेरता रहता है–

अपना सब कुछ
किसी आशा से नहीं
प्यार से दिया था
और जिसने डालकर

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ–09.
2. वही, पृष्ठ 114.

अपने प्राणों की जड़े हमारे भीतर[1]

कवि की धारणा है कि जीवन कोई व्यापार नही यह समाज कोई बनिए की दुकान नहीं मात्र व्यवसायिकता का आधिक्य है स्नेह, प्रेम, सौहार्द, परस्पर साहचर्य के आगे इस जीवन को नापा और तौला नहीं जा सकता है यही बात भारतीय समाज के यथार्थ स्वरूप को अभिव्यंजित करता है

हर चीज तुम्हें
नाप और तौल के
हिसाब से
याद है
तुम नापों और तौलो
चाहो तो मुझे भी
मगर
उदास मत हो जाना अगर[2]

कवि ने प्रेम के स्नेहिल और भावुक कोमल क्षीण तंतु की बड़ी मार्मिक और अच्छी व्याख्या की है कि प्रिया की पुकार को सुनकर आहत और कुंठित मन भी उद्वेलित हो जाता है शर्त यह है कि पुराने वाली की आत्मीयता और उस पुकार में अन्तस्तल की ऊष्मा और मिठास कितनी है। इस पुकार को सुनकर प्रेमी, कवि, निरूद्विग्न नहीं रह सकता। ऐसी ऊष्मा क्षणिक रूप में तो सर्वत्र मिलेगी किंतु भारतीय समाज दृष्टि और उसके ऐतिहासिक उदाहरण भिन्न ही व्याख्या करते है–

नाम से पुकारा किसी ने
आवाज
जानी हुई ही नहीं
शायद
जीवन की सबसे अधिक
आत्मीय आवाज थी[3]

इस प्रेम में जब नया पन होता है तो एक तरफ ऊष्मता, उद्दमता का बाहुल्य होता है तो दूसरी तरफ हर्ष उदधि असीमित भावनाओं के तंरगाघाट से आप्यायित रहता है। चांदनी रात में प्रिय का उपहार प्रेमी को कितना रोमांचित कर देगा कि कभी–कभी तो संकोच से वह क्षणभर के लिए स्तब्ध रह जाएगा–

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ 125.
2. तूस की आग, पृष्ठ 023.
3. वही, पृष्ठ 38.

चार के बीच वह उपहार
तुमने निस्संकोच दिया
मगर मैं सकुचा गया
लगा लोग बिना कुछ सोचें
पूछने लगेंगे[1]

प्रायः पुरूष की साहसिकता से नारी आकृष्ट हो जाती है अथवा विपत्ति में पड़ी नारी का उद्धार करते समय जो स्नेह सूत्र अंकुरित होता उसमें कहीं न कहीं दया और करूणा ा अंश मिला होता है। यह दया दंभ में पर्यवसित न हो जाये इसलिए साहित्यकार उसे प्रेम का स्वरूप देते है। दया में तो अपने पौरूष के प्रदर्शन के बल पर नारी की रक्षा का दंभ रहता है जबकि नारी के मन में उसके प्रति श्रद्धा का भाव जागरित होता है। कालान्तर में यही दया प्रेम में परिवर्तित हो जाती है इसी भाव को कवि ने यहा निरूपित किया है–

इसलिए मैनें
दया से अपने को बचाया है
प्रेम को चुना है
दया को मैंने
दूर खड़े होकर
देख–समझ लिया है सरापा
और सुना है प्रेम को
हर क्षण अपने भीतर
बजते गाते और
गुनगुनाते[2]

सामाजिक यथार्थ के चित्रण में काम और प्रेम के बहुविधि रूपों का निरूपण कवि ने किया है कहीं यह उपदेश, कहीं नीति कथन, तो कहीं व्यवहारिक रूप में चित्रित किया गया है। प्रेम का प्रथम आवेग कवि को एक ज्वर की तरह लगता है जिससे बचने के लिए कवि ने विगत ज्वर का उल्लेख किया है स्मरणीय है कि गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने विगत ज्वर उस स्वस्थ्य व्यक्ति को कहा है जिसमें दया, दाक्षिण्य, और प्रेम की प्रधानता है और यह प्रेम प्राणी मात्र के प्रति है–

हम सब
किसी बुखार के

---

1. तूस की आग, पृष्ठ 58.
2. वही, पृष्ठ 80.

मारे हुए है

हमें विगत ज्वर होना है

करूणा के बजाये हमें

प्रेम का स्वर होना है[1]

प्रेम की यह विडम्बना है कि नैतिक रूप से समाज में इसकी बड़ी प्रशंसा की जाती है किंतु व्यक्तिगत प्रेम को कुचलने के लिए वही समाज के ठेकेदार आगे आ जातें है। कवि ने बड़े सरल और स्वाभाविक ढंग से रूपक के माध्यम से प्रेमी–प्रेमिका के बीच पनपे या अंकुरित नये प्रेम को कुचलने के लिए कितने निर्गम हो जाते है। कवि को सबसे बड़ा यही आश्चर्य है–

तकलीफों का

कितना बड़ा रेला

मुझे हर प्यारी चीज से

छुड़ाने के लिए

कितना बड़ा तूफान

और कैसी–कैसी लहरे

सिर्फ एक आदमी को

डुबाने के लिये[2]

ऊपर लिखा जा चुका है कि भवानी प्रसाद मिश्र ने प्रेम के अनेक रूपों का चित्रांकन किया है। नये–नये अंकुरित प्रेम में मौन–वार्तालाप, स्पर्श से अपनी अनुभूतियों की अभिव्यंजना अपने नये अर्थ को अभिव्यक्त करती है। प्रेमी को लगता है कि वह प्रेमिका का क्षणिक स्पर्श उसके समूचे अन्तस की भावनाओं को व्यंजित कर देता है। यह व्यावहारिक जगत में भले ही सत्य नहों कितु प्रेम के क्षेत्र में यह नितांत सत्य और व्यावहारिक है–

देकर अनजाने में उसे

अपना समूचापन

कुछ कह देता हूँ

और मेरा वह समूचापन

छूकर उसे

कितना बदल जाता है[3]

---

1. तूस की आग, पृष्ठ 82.
2. वही, पृष्ठ 84.
3. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ 27.

इस प्यार का एक रूप वह है जिसमें गहरी आसक्ति है तो समाज में इसके उस रूप को भी देखा जाता है जिसमें इसे महज एक भूल कहा जाता है। पीढ़ियों के अन्तराल से यह बात आसानी से समझ में आती है जिसकी तुलना कवि ने फूल से की है कि भूल से ही क्यों न हो प्रेम, प्रणय के पुष्प जब मन में खिलते है तो अपनी सुंगध अनन्त काल तक बिखेर जाते है। कवि ने इसी शाश्वत प्रेम की बात निम्न पंक्तियों में कही है–

प्यार
जो
ज्यादा जीता है फूल से
धरती पर
आता है
भूल से
और जीकर
धरती पर
फूल से ज्यादा
बिखर जाता है
धरती पर
भूल से ज्यादा।[1]

बुनी हुई रस्सी मन की भावनाओं का प्रतीक है, रेशे–रेशे से लिपटकर बुनी हुई रस्सी जब देशों को उलटाया जाता है तो ये रेशे मन की परत या गाठों की भांति खुल जाते है। इस प्रकार कवि ने इस संग्रह में मन की चाहे अनचाहे परत–दर–परत खुलने वाली गाठों का उद्‌घाटन किया है जिसमें एक गॉठ प्रेम की भी है। जिसके अन्तस में वास्तविक प्रेम की आग प्रज्जवलित हो उठेगी उसका अन्तर तो प्रकाशित ही होगा साथ ही बाहरी दुनिया भी इन्द्र धनुषीय हो जाती है–

प्यार जिसे लोग भीतर की आग
और भीतर का प्रकाश कहते है
तमाम लोग जिसकी धुन में
और धारा में बहते है
और सहते है थपेड़े
अनजाने और तेज तूफानों के
बैठा है घुटने टेक कर[2]

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ 37.
2. वही, पृष्ठ 59.

प्रेमी और प्रेमिका भले ही शाहजहाँ की तरह अपने प्रिय का स्मारक न बनवा सके किन्तु अपने प्रेम को अमरत्व देने की चाह उनके मन में होती ही है अतः प्रेमी और प्रेमिका चट्टानों में अपने नाम को लिख देते है ताकि वर्षा, आंधी, शीत, और ताप में उनका नाम अमिट बना रहे–

टांक आये थे एक बार हम
चट्टानों पर अपने नाम
वहीं होगें तब से वे
ले देकर वर्षा आंधी शीत धाम[1]

इस प्रेम की ऐसी स्थितियों का चित्रांकन भवानी प्रसाद मिश्र ने बड़ी सहजता से किया है जो हर–प्रेमी–प्रेमिका का काम्य है। प्रिय की यह चाहत होती है कि अपनी प्रेमिका के गोद में सिर रख दे ऐसे मादक क्षणों में उसे मृत्यु भी स्वीकार है। ऐसी ही अभिलाषाएँ प्रेमी के जीवन को तंरगित कर उसमें जिजीविषा की वृद्धि करती रहती है। अंधेरी कविताएँ लिखते समय कवि भवानी प्रसाद मिश्र की अवस्था वृद्ध हो गई होगी किन्तु उनके अन्तस में छिपा किशोर मन सामाजिक यथार्थ के रूप में प्रेम के विविध चित्र अंकित किये है–

मैं तुम्हारी गोद में
सिर रख कर
स्नेही उन सॉपों को धन्यवाद दूंगा
जिन्होनें एक अवधि तक
प्रतिपल
मुझे जीवन की प्यास दी[2]

इदं न मम में प्रतीकात्मता निहित है, प्रेम के पक्ष में ले तो प्रिय का समर्पण से इसकी व्याख्या की जा सकती है कि यह मेरा नहीं है। प्रेम में अनन्यता और समर्पण की महत्ता का गायन कवि ने बड़े सरल और सहज ढंग से किया है। आलिंगन बद्ध युगनत्थ प्रिय पूंछता है कि क्या हम कल पुनः मिल सकेगें में जो उद्दयता, बिहवलता, तीव्रता, और प्रतीक्षा की क्षमता व्यंजित है इसे वही जान सकता है जिसे अपने प्रिय का क्षणिक सनिध्य प्राप्त हुआ हो–

जो लगाता है हमें छाती से
और पूंछता है लगाये–लगाये छाती से
क्या कल फिर आ सकोगे
क्या कल फिर थोड़ी देर

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ 72.
2. अंधेरी कविताएं, पृष्ठ 57.

मेरे पास बैठकर

मेरे ख्याल से गा सकोगे[1]

कवि ने पारम्परिक रूप में पृथ्वी और सूरज के प्रेम को पुर्न परिभाषित किया है। सूर्य जो पृथ्वी को अपनी असहय ताप से उत्तप्त करता है तो अपनी फुहार से उसे शीतल नहीं आप्यायित भी करता है। प्रतीकात्मक रूप से कवि ने तप्त मन के संतृप्त होने की भावना का चित्रांकन किया है–

नहीं

प्यार से भरे मन को

इतना तपने के बाद

यों नहीं लौटा देना चाहिए

पृथ्वी को

एकाध–बार तो

रहना ही चाहिए

सूरज के साथ

रात–भर[2]

प्रेम की विविध छवियों में आशंका सदैव रहती है कि प्रिय उसके वियोग में कहीं उसे विस्मृत तो नहीं कर बैठेगा प्रेम का यह डर प्रेमी को आशंकित किये रहता है क्योंकि संयोग के समय बिछुड़न का भय और वियोग के समय मिलने की तीव्र अभिलाषा के झूले में वह झूलता है ऐसी मान्यता पाश्चात्य मानस शस्त्रियो की है–

प्यार में

डर होता है कि नहीं होता

पुरानी पड़ चुकी छवियां

मन में नाचती है कि नहीं नाचती

डूबकर किरने[3]

कवि ने प्रिय की आकाँक्षा का उत्तम, श्रेष्ठ, और वरेण्य रूप प्रस्तुत किया है कि सात्विक प्रेम शरीर निरपेक्ष होता है, आकाँक्षाएँ प्रिय से प्राप्त करने के लिए नहीं अपितु समपर्ण की होती है किन्तु प्रिय की मौन स्वीकृति हस्त स्पर्श से जब होती है तो उसे लगता है कि उसने समस्त दुनिया को हस्तगत कर लिया है। उन्मत्त हर मन जिस सुख की परिकल्पना करता है वह अर्निवचनीय है उसे लगता है कि प्रिय के स्पर्श को मुट्ठी में बांधकर और वह

1. इदं न मम, पृष्ठ 52.
2. वही, पृष्ठ 72.
3. इदं न मम, पृष्ठ 79.

विस्तृत दुनिया में धूम–धूमकर उद्धोषित करे कि उनको अमूल्य वस्तु प्राप्त हो।

मैनें

हाथ

इस भाव से

नहीं पसारा था

बस

पसार दिया था

तुमने

जाने क्या सोचकर

मेरे हाथ में

ब्राह्मण्ड रख दिया

अब

कहाँ धूमूँ मैं

इसे

मुट्ठी में बांधे–बांधे।[1]

प्रेम हृदय व्यापार से धनत्व जुड़ाव लिये रहता है, कभी–कभी मौन रहकर के भारी भावनायें व्यक्त कर दी जाती है, जिन्हें चाहकर के भी प्रेमी या प्रेयषी अभिव्यक्त नहीं करत पाते। प्रेम की यह मूल ध्वनि मन मस्तिष्क से शनैः–शनैः उतरकर हृदय में जा बैठती है। अन्तस में बैठा हुआ प्रेम इतना गहरा होता है कि न कुछ कहने के बाद भी सब कुछ वह व्यक्त कर देता है और एक चिर स्थाई रूप ले लेता है–

हमने

नेह–भरकर

गॉव–गलियों में

जला–जलाकर

छोटे–छोटे दीपक धरने का

तो नाम नहीं लिया[2]

ईश्वर ने प्रेम जैसी सौगात मानव को दी है, जिससे वह भौतिक झंझावतो से संघर्ष करता हुआ वह निरन्तर आगे बढ़ता है। कवि भवानी प्रसाद जी की भावना है कि उनके हृदय में, मस्तिष्क में ईश्वर इतनी क्षमता प्रदान करे कि वह सहजता से किसी के दुखों को दूर कर

---

1. इदं न मम, पृष्ठ 119.
2. परिवर्तन जिये, पृष्ठ 101.

उसकी विकृतियों का निवारण कर सके। जो प्रेम के जल में आकष्ठ डूबा रहता है वह भूल को भी फूल बना देने की क्षमता रखता है–

बसे वह प्यार की बस्ती
कि जिसमें हर किसी का दुःख मेरा भूल हो जाये
मुझे तिरसूल भी मारे कोई यदि दूर करने में उसे
तो फूल हो जाये।[1]

प्रेम का व्यापक अर्थ, उसे देश प्रेम के रूप में भी देखा जा सकता है, परतंत्रता की कारा को तोड़ने के लिए गांधी जैसे महामानव का जन्म हुआ जिन्होनें सत्य अहिंसा आंदोलन द्वारा मानवता को प्रचारित किया। उन्होनें बताया कि यदि जनता गौरांग का विरोध नहीं कर सकती तो प्रजातंत्र की स्वतंत्रता की परिकल्पना करना ही व्यर्थ है। ये सारी की सारी बाते थोथी है, हास्यास्पद है निरर्थक है ये तभी सार्थक होगी जब जनता सहयोग करेगी तभी देश में स्वतंत्रता का परचम फहरायेगा–

देश प्रेम का यही अर्थ है यही अर्थ है मानवता का
सत्ता के मद का विरोध यदि नहीं कहीं जनता कर सकती
तो सत्ता का युद्ध विरोधी बाते करना
शुद्ध–व्यंग्य है हास्यास्पद है, निपट व्यर्थ है
युद्ध विरोध सफल तब होगा तब जनता कह सके[2]

3. युवा वर्ग की मानसिकता :-

स्वतंत्रता के पश्चात् मानवीय मूल्यों में, सभ्यता और संस्कृति में तेजी से बदलाव आया, लोग पश्चिमी सम्यता की ओर आकृण्ट भी हुए, रिश्तो की बात खोखली लगने लगी, रूपया ईमान बनने लगा, भौतिकता का आग्रह इतना तेजी से बढा कि लोगों को, नवयुवकों को ईमानदारी निष्ठा, त्याग, बलिदान, परोपकार पर विश्वास ही नहीं रहा। इसका मूल कारण यह था कि ईमानदार जननायक विलुप्त हो चुके थे। वर्तमान जन नायक राष्ट्र के नहीं अपनी जाति की सेवा में जुटे है। भाई भतीजावाद तेजी से पनपा नेताओं ने प्रगति की अपनी, वे भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूब गये जिसका पुष्परिणाम यह हुआ कि आज की युवा पीढ़ी को सही मार्ग निर्देशित करने वाला कोई बचा ही नहीं। वे अतिशय कुंठित होकर बेरोजगारी की स्थिति में लूटपाट करने लगे और यदि प्रतिभावान हुये तो भारत छोड़कर अन्य जगह पलायित कर गये। सदासयता और उदारचेता की भावना उनके मन मस्तिष्क से परे गई जिसका कि दुष्परिणाम यह हुआ कि देश की भावी पीढी, दिशा विहीन हो गयी। जब वे निरंकुश और

---

1. गांधी पंचशती, पृष्ठ 43.
2. वही, पृष्ठ 219.

स्वच्छंद हो गये तब फिर कहने को कुछ शेष रहा नहीं—

एक रोटी बेलता है, एक रोटी सेकता है, एक रोटी से खेलता है, यह खेलने वाला कौन है, मेरे देश की संसद मौन है, वास्तव में ये पंक्तियाँ सटीक और सार्थक है क्योकि आज का नवयुवक अतिशय कुंठित है, निराश्रय है उसके सामने कुहासा धना जो छटने का नाम ही नहीं के रहा। परिणाम स्वरूप अतिशय हताशा होकर दीनहीन होकर वह किकर्तव्य विमूद दिखाई पड़ता है—

सोचतें है तब बे बेचारे बैठे—बैठे
कि कहाँ—कहाँ गये थे हम और
क्या—क्या किया था हमने
या क्या—क्या
हुआ था हमारे साथ
और हमारे सामने[1]

आज का नवयुवक एकाकी जिदंगी जी रहा है, निसहाय, निरूपाय, वह चाहता तो है कि राष्ट्र के लिए कुछ करे लेकिन जिंदगी की भवंरजाल इतनी गहरी है कि उसको अपनी अस्मिता बचाने के ही लाले पड़े है, उसके अंदर उमंगे है, तंरगे है लेकिन संघर्षो के झंझावत के थपेड़े हर बार उसे लक्ष्य विहीन कर देते है फिर वह और भी एकाकी हो जाता है—

अकेले रहते—रहते अब नहीं रहा हूँ
याने उतरा रहा हूँ
जिदंगी के ऊपर—ऊपर
जिदंगी में डूब नहीं रहा हूँ
जिंदगी के महासागर का किनारा
चाहता हूँ अभी सूना रहे
लहरे आती जाती रहे केवल
तबियत का हाल पूछने वालों की तरह[2]

इस गुमनाम शहर में एक भी इंसान मिल पाना कठिन है, लोग तो मिलेगें लेकिन वे इंसान नहीं होगें, ये सब इतने स्वार्थाध है कि जैसे ही स्वार्थ की सम्पूर्ति होती है वैसे ही वे अपना रास्ता अलग चुन लेते है। परिणाम स्वरूप आज का नवयुवक समझौता वादी हो गया है। वह विवाह को भी समझौता मानता है लेकिन प्रश्न यह है कि समझौता की नाव कब तक

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ 43.
2. वही, पृष्ठ 82.

चलेगी एक दिन वह बिखर जाएगी ऐसी भायावहता के देखते हुए आज का नवयुवक चिंतित है–

गुलाम
अनुयायी
निरंकुश नेता
या विद्रोही
सारी से परिस्थितियाँ
स्वाभाविक नहीं है आदमी की
इसलिए मैनें जिंदगी से
शादी नहीं की
साथ वह रही मेरे
मैं उसके साथ रहा
उसने मुझे मैनें उसे सहा[1]

आज का नवयुवक जब अथक परिश्रम करके लक्ष्य के सन्निकर होता है तो वह पाता है कि जिस पद के वह पूर्वतः योग्य था उसे अयोग्य करार दिया गया और किसी जाति विशेष वर्ग विशेष अनुर्पक्त परिक्षार्थी का चयन हो जाता है तब आज के नवयुवक की निराशा का द्विगुणित हो जाना स्वाभाविक है। कवि भवानी प्रसाद मिश्र जी ने यह बात प्रतीकात्मकता से कही है कि फूल को देख तो सकते है लेकिन उसकी खुशबू व उसे तोड़ना वर्जित है क्योंकि यह पुष्प किसी और के लिए सुरक्षित तथा संरक्षित है–

मैं उदास हूँ/क्योंकि इस वक्त
एक फूल के बहुत पास हूँ
और उसे तोड़ नहीं सकता
बहुत प्यारे अपने/किसी दोस्त की तरह
उसे झिंझोड़ नही सकता
देखता भर खड़ा रह सकता हूँ/उसके पास
क्या काफी बड़ा/कारण नहीं है यह
काफी उदास हो जाने के लिए
फूल को अपने हाथ में/पाने के लिए[2]

आज राजनीतिज्ञों ने पद अपनों के लिए बनाये है, महत्वपूर्ण पदो पर उनके जाति के लोग, उनके रिश्तो के लोग सुशोभित होगें, जाति एतर व्यक्ति कितना है कुशल व सक्षम न

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ 91.
2. वही, पृष्ठ 104.

हो उसे उस लाभ से वंचित रखा जाएगा जिसका कि वह योग्यतम पात्र है। यदि राजनीतिज्ञों का वश चले तो वे हवा तक को अपने वश में कर ले, लोगों का जीना दूभर किये हुए है। जिसके परिणाम स्वरूप नवयुवको में विद्वेष की भावना बढ़ती ही चली जा रही है–

कौन देखता–समझता है हमें
इन–दो चार लोगों की तरह
जो हमें तांक रहे है
और कर नहीं पा रहे है
आपस में बाते[1]

एक साथ था जब यही तरूण परतंत्रता की कारा में जकड़े हुए देश को स्वतंत्र कराने में अग्रणी था। देश प्रेम की भावना से आप्लावित था, और भयाक्रांत वातावरण को निर्द्वन्द होकर निर्भीक बनाकर उत्सव सा खड़ा कर देते थे। आज इस भीड़तंत्र में उन बेचारों के लिए कोई स्थान नहीं है, सत्ता में उसकी भागीदारी भी नहीं है, उसकी आवाज को सुना नहीं जाता दबा दिया जाता–

एक वक्त हम/चुप्पी के स्वरो से
तोड़ते थे/सन्नाटे को/संगीत से जोड़ते थे
अब शोर को/किस चीज से तोड़े
भीड़ को जो सौ तरह की है
किस विचार या/भाव से जोड़े
चुप्पी समस्या नहीं थी/ एकाकीपन नहीं था
समस्या/शोर समस्या है/भीड़ समस्या है
और अपरम्पार है[2]

जिनके अंदर यह आशा थी कि स्वतंत्रता के बाद सुनहरे मोर का आगमन होगा। प्रेम सम्पन्नता की फसले लहलहाएंगी लेकिन सत्पासीनों ने उनकी भावनाओं से खिलवाड़ किया इतने पर से भी वे संतुष्ठ नहीं हुए उनकी भावनाओं तक को ही कुचल डाला–

कल एक दोस्त शिकायत करते थे
कि तुम्हारे स्वस्थ आशावादी स्वर को क्या हो गया है
भर्रायी हुई आवाजें निकालते हो अब तुम
निराशा से भरी अंधेरी कविताएं लिखते हो
ठीक नहीं है यह
तुम्ही से कुछ उम्मीद थी

---

1. तूस की आग, पृष्ठ 17.
2. वही, पृष्ठ 129.

सो तुम दिल के दो धक्कों में ऐसे हो गये

मैनें जवाब में कुछ कह कर मामला टाल दिया[1]

आज सम्बन्ध नये अर्थो की तलाश में है, हर जगह अविश्वास का ही वातावरण है। हर किसी का मन संशयात्मक है, संशय की भावना इतनी प्रबल है कि उससे परे कुछ कहना ही मुश्किल है। और जब व्यक्ति को व्यक्ति का ही विश्वास नहीं होगा तो वह कितना एकाकी होगा उसका जीवन कितना नीरस होगा उसकी महज कल्पना ही की जा सकती और कुछ नहीं—

नये अर्थ की प्यास में डूब गया शब्द

मन का गोताखोर डूब गया उभरकर

भंवर में अविश्वास में

हुआ ही कुछ तो यह हुआ कि

उमड़ लिए धारा के ऊपर—ऊपर

संदर्भो के धन और फिर वे भी

झंझावात में उड़ गये[2]

आज का नवयुवक चाहता है कि वह अतिशय उत्साहित हो, उमंगित हो, हर्षित हो, उदासी बहुत दूर—दूर तक दृष्टिगत न होती हो लेकिन परिस्थितियाँ कुछ इतनी जटिल है कि वह उमंगित हो भी तो कैसे। श्री मिश्र जी ने प्रतीकात्मकता से यह बात कही है कि पृथ्वी का आंगन टेढ़ा भी है और कंटककीड भी—

नाचें हम/वहाँ/टूटता हो जहाँ

हमारा दम/आगंन मन का[3]

आज हर व्यक्ति भयाक्रांत है उसका मुख्य कारण यह है कि कुछ ऐसी परिस्थतियाँ बन गई है कि वह सब कुछ सहन करने को विवश है, विवशता का मूल कारण यह है कि उसका निजीपन, एकाकीपन, और सूनापन। यह शून्यता चतुर्दिक इस कारण से है कि आज का मानव सभ्य होकर भी जंगली हो रहा है। वह अन्याय शोषण के विरूद्ध मुंह तक नहीं खोल सकता—

मैं चिल्लाना चाहता हूँ

मगर मेरी जीभ को जानें क्या हो गया है

शायद जीभ है नहीं मेरे मुँह में

मेरी तमाम बातों का ऐसा ही कुछ हो गया है

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ 20.
2. वही, पृष्ठ 85.
3. वही, पृष्ठ 87.

मैं बहुत कुछ करना चाहता हूँ
मगर कर नहीं पाता[1]

आज का व्यक्ति इतना एकाकी है कि जैसे जगता है अपने को नितान्त अकेला पाता है। यह अकेलापन इतना धना है कि वह व्यस्त रहने का नाटक भी करता है किन्तु रह नहीं पाता। किसी के पास आज इतना अवकाश कहाँ कि वह सुख–दुख में सहभागिता कर सके। सुखों में सहभागिता तो हो सकती है लेकिन महज एक दिखावा मात्र–

और भी ज्यादा फैले धने
अमावस के अपने हाथों बने
जीवित अंधेरे में/ताकत है उजाले में
खींच लेने की/अपने भीतर[2]

सब जगह चतुराई का ही खेल है। बोझिल होते सम्बन्धों को लोग ढो रहे है, प्रश्न यह उठता है कि आखिर ऐसे सम्बन्धों का निर्वाहन को कब तक निभाया जाएगा। आरोपित संबंध न कभी चले है और न चलेगें। इन सम्बन्धों में गहरे जुड़ाव की आवश्यकता है। और यह जुड़ाव आता है निःस्वार्थ भावना से जब स्वार्थ की भावना ही कूट–कूट कर भर गई हो तो मानवीय सम्बन्ध अपना अर्थ खो देते है। सम्बन्धों का भूगोल आज गोल है क्योंकि आज की दुनिया बड़ी अनमोल है–

एकाध को छोड़कर/ज्यादातर
मेरे जैसे ही सिद्ध हुए/याने केवल
स्नेह से विद्ध हुए/बंधे रहे हम आपस में
चतुर मुझे कुछ भी/कभी नहीं भाया
न औरत/न आदमी/ न कविता
सामान्यता ही को सदा
असामान्य मानकर
छाती से लगाया[3]

श्री भवानी प्रसाद मिश्र ने प्रतीकात्मकता के माध्यम से कहा है कि प्रकृति ने आनन्द तो दिया लेकिन उस आनन्द से हम आनंदित नहीं हो पा रहे। उस रस में आप्लवित नहीं हो रहे जब अभाव का जंजाल इतना धना हो, इतना तना हो कि व्यक्ति चाहकर भी उससे न निकल पाता है न तोड़ पाता है परिणाम स्वरूप वह नीरस जिंदगी जीता है, नीरवता को पीता

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ 120.
2. अंधेरी कविताएं, पृष्ठ 15.
3. वही, पृष्ठ 133.

है और नीरसता ही उसका उपांग बन गयी—

मैं इस बिना खीची/शराब को
पीता हूँ/मैं/इस बिना देखी
आब को जीता हूँ।[1]

लोगों के अंदर आज जिजविषा सामाप्त हो रही है उसका कारण है आशाओं की आपूर्ति न हो पाना, जब आशाओं की सम्पूर्ति नहीं होती तब व्यक्ति आशा करना ही छोड़ देता है और विद्रोह करने के लिए तत्पर होता है और विद्रोह करने के लिए व्यक्ति यह देखता है कि उसका हम दम, साथी है कौन, वह पाता है कि वह ऐसी भावनाओं के आकाश पर उड़ रहा था जिसका धरातल ही खिशक चुका था—

मेरा रोज
कुछ न कुछ खो जाता है
रोज मुझे कुछ न कुछ
नये सिरे से हो जाता है
जैसे आज मन
उतना नहीं है मेरे पास
जितना कल था।[2]

आज व्यक्ति का जीवन एक कांसे की तरह है जो निउर्द्देश्य है, र्निअभिप्राय है, उसके जीवन में अभाव ही अभाव है, परिणाम स्वरूप उसके भाव में शून्यता है, विचारों में कुंठा है, नीरवता है वह जिन आंकाक्षाओं को लेकर भावनाओं के धरातल पर उतरा था उसने यह पाया कि भावनायें मृतप्राय है, न उसे कोई सुनने वाला है और न सुनाने वाला है, उसके स्वर हवा में ही उड़ रहे है और उसे कामना है ऐसे व्यक्ति की तलास में जो सब कुछ ठीक—ठाक कर दे लेकिन ऐसा व्यक्तित्व उसे मिला ही नहीं—

मैं पानी का नहीं
किसी एक हवा का प्यासा हूँ
समूचा मैं/मानो एक कासा हूँ
रातों दिन तलाश उसकी है
जो प्राण भर देगा इस कांसे में
प्राण भी तो एक हवा ही है न एक
अनगिनती भ्रम/कासे में डाले जाते है[3]

---

1. इदं न मम पृष्ठ 12.
2. वही, पृष्ठ 33.
3. वही, पृष्ठ 73.

आज युवा पीढ़ी नहीं बल्कि बच्चे तक उदास है क्योंकि उनका बचपन छीना जा रहा है, नव निहालों की रूनाई भी हीन ली गयी है वो दाने–दाने को मोहताज़ है तभी तो मुझे कहना पड़ता है–

" आजादी होगी किसी नेता के भाषण में
अपनी तो राम कहानी हो जाएगी चंद मुट्ठी रासन में
सवा सेर गेहूं में जिंदगी है बिकनी
यही है मेरी करनी यही है मेरी भरनी"

इस यथार्थ के धरातल पर जी रहा है आदमी कितना एकांत अपने को पा रहा है आदमी–

मेरी वाणी
उन तूफानों को गायेगी
जो अभी उठे नहीं है
और जिन्हे उठना है
इसलिए कि/जड़ता नहीं
परिवर्तन जिए[1]

4. स्त्री-पुरूषों का सम्बन्ध :-

वैदिक युग में नारी को अति सम्मान प्राप्त था, वह जग्रित कार्य के अतिरिक्त शास्त्रार्थ में भी भाग लेती थी। पुरूष के साथ उसकी सम्पूर्ण सहःभागिता थी, शनैःशनैः युग परिवर्तन हुये, बोध और मूल्यों में परिवर्तन आया और उसे क्रीतदासी समझा जाने लगा। पुरूष वर्ग का प्राधान्य बढ़ा जो ग्रह स्वामिनी थी वह ग्रह सेविका बन गयी, घर की चाहार दीवारी के अन्दर उसे कैद कर दिया गया, शिक्षा–दीक्षा में पूर्ण पाबन्दी लगा दी गयी वह मात्र एक असहाय भोग्या थी, एक नव जागरण काल का आगमन हुआ, समाज सुधारकों के सत् प्रयासों से उसके सम्मान को संरक्षित करने का सत्प्रयास हुआ, बंद पिजंड़े में कैद मैना उन्मुक्त आकाश में पंख फड़फड़ाकर उन्मुक्त कंठ से कलरव गीत गाने लगी।

आज भौतिकता की आंधी में वह पुरूष के सामान्तर पंक्तिबद्ध होकर खड़ी है। कहीं–कहीं स्वतंत्रता अतिशय स्वच्छंदता में परिवर्तित हुई जिसके परिणाम स्वरूप ग्राह स्थिक जीवन की नीव हिलने लगी अलगाव, बिखराव की चरम स्थिति चिंता का आज कारण है। जहाँ अपनत्व और औदार्य था वहाँ सारा का सारा वातावरण विसाक्त और बोझिल हो गया।

श्री भवानी प्रसाद मिश्र भी नारी के समर्थक हैं उसे सहचरी, पथ प्रदर्शक, सहःधार्मिणी व सहः कर्मिणी मानते हैं इन्ही भावनाओं को लेकर उन्होनें ने जितनी काव्य रचनाएं की है स्त्री स्वातंत्र्य कह पक्षधर दिखाई देती है। पति चाहता है कि घर में सुख और शांति हो इन दोनों की प्रदायिका स्त्री है। पूरी तल्लीनता, समग्रता के साथ समर्पित भाव से कर्तव्यनिष्ठ होकर ग्रहस्थी की गाड़ी को सदासयता और उदारता से खीचतें है, पारिवारिक जीवन की गाड़ी के

1. परिवर्तन जिये, पृष्ठ 09.

दोनों पहिए जीवन भर सामान्तर चलते है जिससे कि घर में सुख वैभव का असीम समुद्र हमेशा लहराता हुआ द्रष्टिगत होता है–

औपान्सिकता/अछूता प्यार
घर में/खुशी का पारावार
देश में शांति/दोस्तो से सद्‌भावना
सारी ये चीजें
एकके वाद एक कल्पना और कामना
कामना और/कल्पना।[1]

कभी–कभी ऐसी विषम परिस्थितियों आ जाती है जो आकल्पित घटनायें देती है। रिश्तो के ग्रांथिबंधन कहीं खुलने लगते है। कवि का मानना है कि कभी भी ग्रंथिबंधन नहीं खुलने चाहिए अगर ये बंधन एक बार खुल गया तो जुड़ना आसम्मात्य हो जाएगा। तो ये खींचकर का ये जीवन एक बेमानी है, इसको स्वतंन्त्रता के साथ प्रगाढ़ता के साथ मजबूत करना होगा जिससे कि परिवार और मजबूत हो जाएगा–

नहीं हम एक दूसरे
नहीं जानते/मगर कोई जोड़ तो है
हमारे बीच/कितना मजबूत है
वह जोड़ या बंधन/खींचातानी करके इसे
आजमाने का जी नहीं है[2]

पति की हमेशा कामना रहती है कि पत्नी का सम्बल उसे हमेशा उसे प्राप्त होता रहे, जीवन की हर डोर मजबूती के साथ बंधी रहे, एक दूसरे के प्रति समग्रता के साथ समर्पित रहे–

तुम्हारी ओर से झिल्ली जो
मढ़ी गई है मेरे ऊपर
तन्तु जो तुम्हारा बांधे है मुझे
इच्छा जो अचल है तुमसे आच्छादित रहने की
आशा जो अविचल है मेरी
तुममे समा जाने की
कैसे उसे उतारू/कैसे उसे तोडू कैसे उसे छोडूं
जोडू कैसे अब इन सबको

---

1. तूस की आग, पृष्ठ 26.
2. वही, पृष्ठ 87.

अपने या पराये किसी छोर से[1]

जब जीवन की सांध्यबेला आती है तो पति पत्नी में से किसी एक को पहले जाना होता है, यही नियति का नियम है। कवि भवानी प्रसाद मिश्र की कामना है कि मरने के पूर्व उन गीतों को फिर से दोहराया जाये जो कभी गुनगुनाये गये थे। जिन्दगी तो हंस की जी और ध्रुव सत्य मृत्यु का सामना भी हंसी के साथ किया जाये –

आओ / एक बार हम सब
कम से कम अब / जब आ गई है
हमारे मरने की घड़ी / खुले कंठ से
खुले मन से दर्द से घुले
स्वच्छ और चमकदार
एक दो गीत गा ले[2]

प्रेमी और प्रेयषी एक दूसरे के ऊपर समर्पित तो रहते है लेकिन भारतीय समाज उसे मिलता का नाम दे पाने में अक्षम है। भारतीय समाज से ये ही चाहता रहा है कि स्त्री–पुरुष को एक नाम दिया जाये– माता, पत्नी, बहन, बेटी इस नामकरण से ही सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आती है –

उसे क्या नाम दूं जिसे मैंने
अपनी बुद्धि के अंधेरे में देखा नहीं / छुआ
जिसने मेरे छूने का जवाब छूने से दिया
और जिसने मेरी चुप्पी पर
अपनी चुप्पी की मोहर लगाई
जिसने मेरी बुद्धि के अंधेरी पर
मेरे मन की अंधेरी की
तहो पर तहें जमाई

कवि ने ये माना है कि जिस तरह प्राणी को हवा की आवश्यकता है पानी की आवश्यकता है, उसी तरह से उसे पत्नी के सम्बन्ध की आवश्यकता है क्योंकि वह जीवन का एक ठहराव है, जीवन की स्लेट पर स्त्री पुरुष के सम्बन्ध इतने गहरे शब्दों में अंकित किये जाते है जो हमेशा अमित रहते है–

तुमने मुझे जो दिया है वह सब
हवा है, प्रकाश है, पानी है
छन्द है, गंध है, वाणी है
उसी के बल पर लहराता हूँ

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ 39.
2. वही, पृष्ठ 46.

ठहराता हूँ बहता हूँ झूमता हूँ

चूमता हूँ जग–जग के काटें[1]

जीवन की रिक्तता सम्पूर्णता व समग्रता में तभी परिवर्तित होती है जब पत्नी की सहभागिता होती है, हर पीड़ा की चुभन एक मीठी हुस्न छुअन की भाँति परिवर्तित हो जाती है और यह आदृश्य शक्ति उसे असीम सत्ता से मिली है–

इन दोनों में से/कोई भी एक हो

तो घड़ियाँ/पीड़ा में भी सुखी

सद्यः पुत्रवती किसी सुहागिन–सी

मेरी छाती पर/सिर धर देती है[2]

पति और पत्नी एक साथ हो तो पति के अंदर असीम शौर्य, अहर्निश रहता है। और सूरज भी कहीं लुढ़कने लगता है तो मजबूत स्कंध को टिकाकर वह उसे वहीं रोक देता है सूरज कहीं नहीं जाने पाता उसे रहना पड़ता उनके स्वप्नों में, विचारों में और अधबुने ने ख्यालों में–

तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेकर

मैं सब जगह जाना चाहता हूँ

दो अपना हाथ मेरे हाथ में

नये छितिजों तक चलेंगे

साथ–साथ सूरज से मिलेंगे।[3]

पत्नी वह शक्ति है, जो विमल भावनाओं से परिपूर्ण है, आसन्न संकटों के प्रति सचेष्ठ होकर पहले तो वह स्वयं उनको दूर करने की चेष्टा करती है और यदि वह कहीं असफल रही तो पति इतनी प्राणवत्ता गुणवत्ता, शक्तिवत्ता देती है कि दुर्दिन का कुहासा स्वतः ही विराम ले लेता है–

तुम प्रबल/मन में भरो सुख विमल चाहों तो

तुम विमल/मन में भरो दुःख प्रबल चाहो तो

तुम सरल चाहे तरलता दो

तुम तरल चाहे सरलता दो

सोंचकर मेरी जरूरत

दो तुम्हें जो चाहिए[4]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ 67.
2. वही, पृष्ठ 90.
3. वही, पृष्ठ 99.
4. वही, पृष्ठ 112.

गाड़ी का एक पहिया जब कहीं निष्क्रिय होने लगता है तो दूसरा उसे सम्बल देता है, उसे चैतन्य सचेष्ठ करता है। परिश्रम की आग में गला कर उसे लौह पुरूष बनाने की क्षमता रहती है। इतिहास और साहित्य दोनों ही इस बात के साक्षी है कि जब भी कोई आदमी उन्नति के सोपान चढ़ा है तो उसकी पत्नी ने ही उसे गढ़ा है–

इस सुंदरता की मुझे/तो कभी पलकें
साढ़िम ओर लचीली/बंधती नहीं है वह
मेरी बाहों में/मगर झलके ज्यादा–ज्यादा
मिलती है इसकी अब/पहले से/मैं खुला बैठा हूँ
हवा में और आग में/सपना नहीं था
कि ऐसी जबर्दस्त निष्क्रियता /भी लिखी है भाग में/किसका ख्याल करूँ[1]

भवानी प्रसाद मिश्र ने पत्नी नहीं बहनों कर भी चर्चा–परिचर्चा की है उनकी प्रसिद्धकृति गीतफरोश में घर की याद शीर्षक कविता बहनों सम्बल की चर्चा की है और लिखा है कि भुजा भाई प्यार बहने इन्ही भावनाओं को इस कविता में भी अभिव्यक्त किया गया है। भाई–बहन में इतना प्रगाढ़ सम्बन्ध है जिसको कभी अन्य किसी फ्रेम में बांधा नहीं जा सकता उसका रक्षा सूत्र उसे सम्बल प्रदान करता है–

बता सकती हो तुम/मेरी बहन आत्मा
खुशी का खून से/क्या सम्बन्ध है
क्यों मना करने पर भी/जाती है वह
उसे बताने/अपना दुःख[2]

पत्नी, प्राणवत्ता, गुणवत्ता, संजीवनी शक्ति अपने पति को देती है यह पति के लिए अति आवश्यक हो जाता है कि उसकी भावनाओं का सम्मान करें। भवानी प्रसाद मिश्र जी ने कहा है कि गीत हो मैंने लिख दिये लेकिन उन गीतों की मूल प्रेरणा तुम हो अगर तुम उन गीतों को गुन–गुनाओगें तो गीत बिखरेगें नही शाश्वत हो जाएगें–

मैं तुमसे कह रहा हूँ/और कहना
कविता में चल रहा है/कहना शुरू कर दिया है
तौला नहीं है इसका छंद/सिर्फ खोलकर हवा में
प्राण भर दिया है/मैं कह रहा हूँ/तुम्हें सुनना चाहिए
फूल जो तुम्हारे लिए/खिलाये जा रहे रहे है उन में से तुम्हे
कुछ न कुछ चुनना चाहिए[3]

---

1. अंधेरी कविताएं, पृष्ठ 07.
2. वही, पृष्ठ 26.
3. वही, पृष्ठ 28.

पत्नी भी समर्पित है तो समर्पण की भावना पति में भी होती है। पारिवारिक ग्रहस्थी के चलते तमाम छोटे अपराध या कुटिया दोनों पक्षों से होती है प्रथम द्रष्टया उन दोनों का कर्तव्य होता है कि उन त्रुटियों की पुरानवृत्ति न होने पाये। जीवन की नाव भले ही मंदिम गति से ही सही जीवन सागर में प्रवाहित होती जाये तभी दोनों दाम्पत्य जीवन सार्थक कहलायेगा–

जो घुमड़ कर भीतर से उठते है

काटते हुए तुम्हारें ही किनारे

सो भी तुम्ही से उठते है/और तुम्ही में उठते है

और सर्वशक्तिमान रहे/अपराध माना है क्या तुमने

सपनो के देखने में/तो सपने उठाता कौन है भीतर[1]

मौसम सुहाना हो जीवन साथी अनुकूल हो तो अनगिनत समस्याओं का हल समाज में स्वतः ही हो जाता है या मिल जाता है। आवश्यकता होती है असीम धैर्य व बलिदान की त्याग की, इस त्याग की भावना के द्वारा ही वे एक दूसरे का तन–मन जीतते है। नई–नई कल्पनाओं को आकार देते हुए साकार करते है–

क्या चाहती हो तुम/मुझसे/भई, पुरानी यादों

आलम ठंढ़ का है/और चुप कर दिया है/सख्त सरदी ने

गाते हुए अबाबील को/शलाका पंछी का स्वर/बुझ गया है

और सीमांशु सूर्य के अब/वैसे प्राण दायक नहीं लगते[2]

मूल प्रश्न उस समय उठ खड़ा होता है जबकि पत्नी घर में प्रेयषी मन में। कितना ही भौतिकतावदी युग क्यों न हो दोनों ही पक्ष किसी तीसरे की उपस्थिति को स्वीकार नहीं कर पाते यदि किन्ही कारण से ऐसा हो गया तो विश्वास का धागा एक चटक के साथ टूट जाता है। श्री मिश्र जी ने ऐसी परिस्थितियों का बहुत ही सरल लेकिन ढंग से चित्रण किया है–

मेरी और सरला की तरह/यह क्या चाहती हो

मुझसे भई पुरानी यादों/आखिर

मीज़ान ही तो होता है अंत/अथ सें अब तक का[3]

जिस तरह अज्ञेय ने लिखा है कि अब तक स्त्रियो को दिये गये उपमान सभी मैले हो चुके है अब उसके लिए नये उपमानों की आवश्यकता है जो उसकी सुन्दरता नहीं उसके असीम त्याग, उदारता, सदाहयता, परोपकार की अभिव्यक्ति करते हो और जिस धैर्यपूर्वक वह

---

1. अंधेरी कविताएं, पृष्ठ 44.
2. वही, पृष्ठ 74.
3. वही, पृष्ठ 81.

ग्रहस्थी की गाड़ी चलाती है उसकी प्रसंशा होनी चाहिए। वह वास्तव में स्तुत्व है जितनी प्रसंशा की जाये वह कम है–

मैं नहीं करूंगा तुम्हारा
आलिंगन/जिस तरह सब करते है
किसी सजे सजाये कमरे में/धिरकर
किसी सुंगध/या कोमलता से[1]

आलंकरिक शैली का प्रयोग करते हुए भवानी प्रसाद मिश्र जी ने सहः धर्मिणी को पुस्तवत माना है। समय की शिलालेख पर वह ऐसी सशक्त हस्ताक्षर है जो सदैव टंकित रहते है उसके आने से जीवन ही मलयज हो उठता है। वर्तमान तो ठीक हो जाता है भविष्य भी ठीक होगा इसकी सहज परिकल्पना की जा सकती है–

तुमसे मिलकर/ऐसा लगा जैसें
कोई पुरानी और प्रिय किताब
एकाएक फिर हाथ लग गयी हो/या फिर पहुँच गया हूँ मैं
किसी पुराने ग्रंथागार में/समय की खुशबू/प्राणों में भर गयी
उतर आया भीतर/अतीत का चेहरा/बदल गया वर्तमान/शायद
भविष्य भी।[2]

पति को यदि जीवन में स्थायित्व मिला है तो पत्नी द्वारा प्रदत्त सम्बल द्वारा पति का अन्तस यदि टूटता है तो उसे जोड़ने का काम पत्नी की ओजस्य वाणी करती है। वह उसके अन्दर वह जिजीविषा भर देती है जो कभी नहीं खत्म होती। उसका सम्बल प्राप्त कर वह पुनः जीवित हो उठता है और चल पड़ता है अनथक परिश्रम करने के लिए पूर्ववत–

तीर–तीर/थका शरीर लेकर चलता हूँ
रूक जाता हूँ शाम को/नाय का सहारा
काट देता है रातें/और फिर पौ फटते ही
उतर पड़ता हूँ पानी में/वाणी में धोलकर विश्वास
कि पहुँच रहा हूँ ठॉव पर[3]

पत्नी की अपनत्व भरी छुअन पति के अन्दर इतनी ऊष्मा, ऊर्जा भर देती है कि सारा उसका बोझ सामाप्त हो जाता है और वह अपने को धन्य मान लेता है–

तुमने कानों के पास/जैसे हल्की चुटकी बजाई
किरन भी मुझ तक/हल्की–हल्की ही आई

---

1. अंधेरी कविताएं, पृष्ठ 89.
2. इदं न मम, पृष्ठ 18.
3. वही, पृष्ठ 19.

मेरी आँख खुली/मैं धन्य हो गया
लगभग अनन्य हो गया[1]

पत्नी एक वट वृक्ष की तरह है जो हर शाखा के प्रति, शाखा ही नही, एक–एक पत्ते के प्रति सचेष्ठ रहती है कि कहीं कोई डाली झुक न जाये कहीं कोई पत्ता टूट न जाये। परिवार में होने वाले विघटन को वह यथा सम्भव शक्ति के द्वारा रोकने का प्रयास करते है। वह एक धुरी है जिसके चतुर्दिक परिवार के सारे धूमते है आनन्द से रहते है–

तुम्हारे शब्दों की धारा/की जगह भी/
किसी दिन/सूना तट रह जायेगा/इसलिए/
तट पर/एकाधवट भी उगालो/कि आये कोई/
तो तापित का/तापित ही न रह जाये[2]

व्यक्ति जब इस संसार में आता है, जन्मा तो वह शिशु के रूप में अन्त हुआ वृद्ध के रूप में। वह जीवन पर्यन्त किसी न किसी रिश्ते की डोर से बंधा रहता है। ये रिश्ते ही सच्चे अर्थो में उसे इंसान बनाते है–

तुम रिश्तो से इनकार नहीं कर सकते
रिश्ते तुम्हारे जन्म और जीवन से जुड़े जो है
क्या तुम कह सकते हो/कि मैं अशरीरी और अजन्मा हूँ
किसी धरती पर पड़े नहीं है मेरे पॉव/कोई गॉव या देश
मुझे अपना नहीं कह सकता/और न कोई व्यक्ति
मुझे अपना भाई या दोस्त/नहीं तुम इन धरती के रिश्तो से
इनकार नहीं कर सकते[3]

(5) बच्चो की दशा :-

प्रयोगवादी कवियों ने समाज के हर पहलू को हुआ है, देखा है, भोगा है, और तब लिखा है। शब्द या शिल्प भले ही प्रयोगधर्मी हो लेकिन कहीं भावनाओं का एकदम नूतन प्रयोग हो ऐसा कम है। प्रगतिवाद में जिन अनाथ बच्चों की चर्चायें हुई उन बच्चों की गरीबी का स्वाभाविक चित्रण तो हुआ कवियों में बंद कमरों में बैठकर ही इन सब की परिकल्पना की है। प्रयोगधर्मी कवियां ने यह पाया कि इस देश में बच्चों के बीच भी सीमा रेखांकित है जो अपने और परायें के ज्ञान से बिल्कुल परे है उसका ही सीमाकंन। गरीब का बच्चा अभावों से जूझते हुए दाने–दाने को मोहताज़ है शिक्षा से बहुत दूर है उसका शैशव ही उससे छीन लिया

---

1. इदं न मम पृष्ठ 91.
2. वही, पृष्ठ 95.
3. परिवर्तन जिए, पृष्ठ 120.

गया जबकि इसके ठीक विपरीत अमीरों के बच्चे वैभव की जिदंगी जीते हुए विभिन्न सुविधाओं को पाते हुए शनैः–शनैः बढ़ते है। इस भारतीय समाज की कितनी बड़ी विडम्बना है कि बच्चों के साथ भी दुराव आर छिपाव जबकि होना यह चाहिए था कि बच्चे तो बस बच्चे ही है अपने हो या पराये फिर इतना बड़ा दुराव क्यों, समाज के इस ढाचें में परिवर्तन करना होगा तभी समाज प्रगति सोपान पर चढ़ेगा अन्यथा विकास की परिकल्पना महज एक कल्पना बनकर ही रह जाएगी वह कभी साकार होगी ही नहीं।

बच्चे न अमीरी देखते है न गरीबी बस उन्हे उन्मुक्त वातावरण मिला छलांगे भरते हुए जा पहुचें उछलने कूदने के लिए, वृक्षो पर झूलने के लिए, नाचने के लिए जबकि अमीर वर्ग के लोग अपने बच्चो को ऐसा करने से रोकते है उससे उन्मुक्त वातावरण में सांस भी नहीं लेने देते और वे चाहते है कि उनका बच्चा यह समझे कि वह अभिजात वर्ग का है, गरीब बच्चो से उसने अलग जन्म लिया है–

चिकना और काला
डालकर उसमें बाहें
नाचते रहते है बच्चे
बहुत मोंटा जो नहीं है इसका तना[1]

प्रस्तुत कविता में भी भवानी मिश्र जी ने अमीर व गरीब बच्चों का रेखाकंन किया है। अबोध शिशु ये नही जानते कि एक बगीचे में व एक लॉन में नाचने का आनन्द क्या अलग है। समाज के अभिजात्य वर्ग के लोग ही इस भावना को भरते है कि अन्य बच्चों से अलग है उन्हें अलग तरीकों से खेलना कूदना चाहिए–

पकड़कर एक दूसरे का हाथ
नाच रही है गोल–गोल/मेरे सामने के लॉन में
या वह जो एक लड़का/आस पास कोई नहीं है तो भी
कह रहा है कुछ/दूसरे लड़के के कान में
डालकर गले में उसके हाथ[2]

अपने जीवन के यथार्थ पहलू को देखते हुए मिश्र जी ने लिखा है कि बचपन में जब वे एकाकी अंधेरे में चलते थे तो कुत्तों से बेहद डरते थे। भले ही आज परिस्थिति बदल गई है। गरीब बच्चो को डर लगता है तो भूख से, अभाव से सिर को छत न देने वाली भूमि से–

मैं जैसे बचपन में/अंधेरा हो जाने पर डर कर
बढ़ा देता था अपनी चाल
चारो तरफ भौकते हुए कुत्तो के बीच[3]

खा का अर्थ होता है इंद्रिया, इंद्रिया जहाँ अच्छा अनुभूत करती है उसे हम सुख के नाम जानते है और इद्रिंया जहाँ बुरा अनुभूत करती है उसे हम दुःख के नाम अभिहित करते है। अन्तर केवल अनुभूति का है। कवि की कल्पना है कि बच्चों की हंसी व रूदन में कोई

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ 27.
2. वही, पृष्ठ 153.
3. तूस की आग, पृष्ठ 42.

विशेष अन्तर नहीं होता, एक क्षण रूदन तो दूसरे क्षण हंसी ऐसे ही क्षणों को मानव को अंगीकार करना चाहिए जहाँ सुख कोई अर्थ न रखता हो दु:ख भी कोई बहुत बड़ा अर्थ न रखता हो–

बच्चे की तरह हँसे/और जब रोये तो बच्चों की तरह
खलिस सुख खालिस दु:ख/न उसमें ख्याल कुछ पाने का
सुनहली हँसी और आंसू रूपहले/दोनों ऐसे कि मन बहला
उससे भी इससे भी[1]

मिश्र जी ने यथार्थपरम चित्रण करते हुए चित्रित किया है जिन्हे इन शब्दों में कहा जा सकता है कि– ' कितना लाचार है ये आदमी/कब्र अपनी खोदकर/रह रहा है आदमी' बिल्कुल इन्ही भावनाओं का प्रस्तीकरण कवि ने किया है कि गरीबों के बच्चे अभावों से जूझते हुए कुंठित, त्रसित होकर अपनी कब्र खोद रहे है उन्हें नहीं मालूम कि अभावों के कारण मृत्यु उन्हे कब आगोश में ले लेगी। शहरी लोग उनके खेल को एक तमासा बनाकर देख रहे है उनकी मासूमियत के प्रति न तो चिंत्रित है और न नहीं गंभीर–

बच्चे अपनी कब्र खोद रहे है
और बैठ रहे है जा–जाकर
अपनी खोदी हुई कब्रो में
अपनी ही खोदी हुई मिट्टी
अपने ऊपर समेट रहे है
और फिर उनमें लेट रहे है
मुंह भर उनके खुले है
सायं–सन्न हवा के हाथ
उन्हे भी ढांकने पर तुले है[2]

(6) पारिवारिक त्रासदी :-

व्यक्ति जब जनता तो मात्र पशु था। पशुओं की तरह जीवन जीता था। और नितांत एकाकी था। उसका जीवन उद्देश्य स्वांत: सुखाय था। हिंसक पशुओं के भय ने उसके मन में मकान बनाने की कल्पना को जन्म दिया, दो–चार टेढ़ी–मेढ़ी लड़कियों को रखकर उसने घर बनाया और यह धर उसके लिये अनिवार्य शर्त बना। शिकार करके हारा–थका जब घर लौटता था तो दिन भर की थकान मिटाने के लिए बच्चों के बीच में दिन भर की कहानी में नमक मिर्च लगाकर सुनाता और यहीं से परिवार का जन्म हुआ। मिट्टी के ऊर्ध्वगामी जलते

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ 68.
2. वही, पृष्ठ 116.

हुये दीपक ने उसे नाचने गानें के लिए विवश किया। सच मानियें यहीं से आविष्कारों का सिलसिला शुरू हुआ जो आज तक खत्म नहीं हुआ। लेकिन खेद का विषय है कि सभ्य होकर आदमी असभ्य हो रहा है वह जंगल की ओर मुड़ रहा है उसे रहने के लिए घर की ही नहीं समाज की आवश्यकता है। आज वह सुविधा सम्पन्न होते हुए भौतिकता की आंधी से त्रसित है अपनों से दूर है एकाकी है। उसका आचरण भी पशुवत है।

'एक किरन अधिक मूल' नामक कविता में कवि ने वर्तमान जीवन की प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियों तथा उनसे उत्पन्न भौतिकतावाद की स्थिति का अंकन इस प्रकार किया है जिसमें प्रतिस्पर्धा के चलते मनुष्य आज आराम करने को तरस गया है उसकी पत्नी और बच्चे इसी स्पर्धा की दौड़ में शामिल होकर अत्याधिक सीमा में भौतिकवादी हो गये है–

कुछ दूसरी जिंदगियाँ भी
खराब होती है इस तरह/मसलन मेरे बच्चे
स्पर्धा में पड़े हुए आदमी के बच्चे होते
और मेरी पत्नी
स्पर्धा में पड़े हुए आदमी की पत्नी होती
मगर तब मैं होश संभाल चुका था
और समझ गया था कि अब[1]

यही स्पर्धा खतरनाक तब हो जाती है जब वह दूसरे का गला काटने के लिए तत्पर हो जाता है। श्रम यहाँ दूसरे स्थान पर आ जाता है जबकि सेन–केन प्रकारेण भौतिकता को प्राप्त करने हेतु मानव किसी प्रकार का संकोच नहीं करता जबकि यह स्पर्धा स्वस्थ रूप में प्रकाशित करने की क्षमता रखता है–

स्पर्धा में जो आगे निकल जाते है
वे श्रम थोड़े ही करते है/श्रम का स्पर्धा से
संबध ही क्या है/श्रम का उद्देश्य और स्वाभाव
और शील सब कुछ अलग है स्पर्धा से
जो आभास होता है स्पर्धा में
सो किसी मसरफ का नहीं होता
मगर मैं इस बहस में नहीं पड़ूंगा
मैं तो इतना ही कहना चाहता हूँ[2]

कवि ने प्रतीकात्मक ढंग से यह व्यंजित करने का प्रयास किया है कि समाज, परिवार, नैतिक मूल्य, एक साथ घुलमिलकर एक साथ दिखाई पड़े तो जीवन में प्रकाश ही प्रकाश

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ 46.
2. वही, पृष्ठ 47.

दिखाई देगा। अकेलापन अजनबीपन और संत्रास का अंधेरा इतना भयावह नहीं प्रतीत होगा–

घिर रहा है अंधेरा/जैसे कुहरा
उतरता आ रहा हो
और क्रमशः कम होते जा रहे हो
दूर के पेड़/फिर पास के धर
कल्पना के पर/नहीं लग रहे है आज
फर्क नहीं कर पा रहा हूँ मानों
धने कुहरे जैसे इस अंधेरे में
मैं मेरे और तेरे में[1]

समाज में सुख–दुख क्रमशः रात–दिन की तरह आते है, प्रकाश में तो हमें सब कुछ दिखता है किंतु अंधेरे में जब छाया भी हाथ देती है ऐसे समय में सामीप्य की अत्यधिक आवश्यकता होती है। धनी रात में दुःख और अधिक तीव्र हो उठता है इसीलिए कवि चाहता है कि कोई उसे इस अंधकार में पकड़कर रखे जिससे उसका अजनबीपन सामाप्त हो जाये–

किरण की आशा/नीड़ का ख्याल
हर चीज को कठिन बना देते है
इस लिए तुम सिर्फ मुझे/पकड़े रहो
मैं जो सिर्फ शून्य हूँ, अंधेरा हूँ
मैं जो न आकाश हूँ न नीड़
न आशा न निराशा/मैं जो धना हूँ
मैं/जो शुद्ध अंधेरे का बना हूँ
मुझे पकड़े हो[2]

वर्तमान त्रासदी यह है कि समाज में सुखों की सहःभागिता तो है लेकिन दुःख, विपत्ति, संकट में बिल्कुल नहीं, कितना ही समीपस्थ क्यों न हो अगर वह असहाय, निर्बल और गरीब है तो लोग उससे मुंह मोड़ लेगें और ठीक इसके विपरीत कितना ही दूरवर्ती क्यो न हो, सबल समर्थ और धनी है तो उसके अति आत्मिक बनने का नाटक करेगें। इस तरह की घटना व्यक्ति नहीं अनेकानेक व्यक्तियों से जुड़ी हुई है और जिसका परिणाम यह है कि समाज आज टूटकर बिखर गया है–

काँटें का रंग/और काँटे की ताजगी
पांव से निकले हुए/खून में है

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ 109.
2. अंधेरी कविताएं, पृष्ठ 41.

भीतर की बेचैनी और खुशी
आँख से टपकी/बूंद में हैं/मगर
न इसे देखता है/और न उसे कोई समझता[1]

दुःखो के का न व्यक्ति से, न जाति से, धर्म से सम्बन्ध है उसका सीधा सम्बन्ध है व्यक्ति से कब दीन हीन हो जाये कहा नहीं जा सकता, सामाजिक विडम्बना तो यह है कि इस तथ्य व सत्य को जानते तो सभी है लेकिन मानते नहीं—

बदलती या बनाती है/ध्वनियां
ध्वनियां खासकर/हवा की
पानी के पंछियों की/दुःख की/दुखियों की
फट रहे ज्वालामुखियों की
क्या जाने यह बिल्कुल गलत हो
मगर मुझे लगता है/ये जो रंग है फूलों में
आकार है वृक्षो के/और पहाड़ो के[2]

भवानी प्रसाद मिश्र ने यह किया है कि दुःख का सीधा सम्बन्ध दर्द से है। दुःख आने पर उसे उसी तरह अंगीकृत करना चाहिये जिस तरह सुख के प्रति हम उत्सुक रहते है। मूलभूत पीड़ा उस समय होती है जब दुःख देने वाले अपने होते है, समाज के कारक होते है जिनका कि निदान सम्भव है लेकिन करते नहीं है। जबकि दैवीय आपदा के आगे हम विवश हो जाते है वहाँ हमारा कोई वश नहीं होता है—

दुःख को/मालूम रहता है
कब आना चाहिए
दर्द को मालूम रहता है
कब गाना चाहिए/और
दुःख कब आयेगा/दर्द कब गायेगा
सो/मैं जानता हूँ।[3]

आज मानव दानव बन रहा है, दानवीय रूप को वह सभ्य रूप में परिवर्तित करके वह घरों में जा पहुँचता है और उनका हर तरह से शोषण करता है। शोषित व्यक्ति शर्मिंदगी के कारण मूल रह जाता है और मूल रहने की मनोवृत्ति ने ही ऐसे दानवों के दुस्साहस को और भी बढ़ा दिया है जबकि इसका डटकर के विरोध होना चाहिये। सामाजिक दरिंदो द्वारा आज कुकृत्य हो रहे है ये हमेशा हमेशा के लिये समाप्त हो जाते यदि हम जब इनका विरोध कर

---

1. इदं न मम, पृष्ठ 23.
2. वही, पृष्ठ 43.
3. वही, पृष्ठ 76.

पाते–

दरिंदा / आदमी की आवाज में
बोला / स्वागत में मैनें / अपना दरवाजा
खोला / और दरवाजा / खोलते ही समझा
कि देर हो गयी / मानवता / थोड़ी बहुत जितनी भी थी
देर हो गई।[1]

(7) गरीबी :-

तात्पर्य यह है कि कवि ने अपने समकालिक, परिवारिक, समस्याओं के जीवंत यथार्थ परक चित्रण अंकित किये है। दाम्पत्य जीवन के उतार चढ़ाव के साथ सुख दुख भय–भूख दरिद्रता के अनेक यथार्थवादी चित्र इनकी कविताओं में मिलते है। आर्थिक विषमता की स्थिति यह है कि नवजात तथा कुछ बड़े शिशु जिनका जीवन निश्चित होना चाहिए व पेट भरने के लिए भीख मांगते हुए चित्रित किये गये है। फुट पाथो पर छोटे–छोटे बच्चे दैनिक उपयोग की वस्तुओं को बेंचकर परिवारिक दायित्व का गुरूतर भार वहन करते दिखाई देते है।

मिली जुली ऐश्वर्य
और दरिद्रय की झाकियों के सिवा
यहाँ इसे देखकर कोई खुश / तक नहीं हुआ
जो घरो में है / उन्होनें खिड़कियाँ बंद कर ली है
कि भीतर न आ जाये इसकी ठंढ़ी ताजी हवा

खासतौर पर विवश दिख रहा है / भीख मांगता हुआ लड़का
भागते हुए लोगो से / क्या व्याखाकर भीख मागें वह / और ऐसे मे[2]

(8) आशा और निराशा :-

जीवन यापन करते हुए मनुष्य सदैव क्रियाशील रहता है। इस क्रियाशीलता में कभी उसे सफलता मिलती है तो कभी उसे विफलता, इसी द्वंद का नाम जीवन है। इन्ही द्वंदो में आशा और निराशा उसे उल्लसित और व्यथित करते है। कवि भी अपने रचित संसार में इन्ही दुःख द्वंदो का चित्रण करता है। भवानी प्रसाद मिश्र ने सामाजिक यथार्थ का चित्रण करते हुए इन द्वंदो का बहुविधि रूप, इनके कारक तत्व, और परिस्थितियों का चित्रांकन किया है। बात यह है कि मानव स्वभाव अपनी सतत् क्रियाशीलता के कारण इन द्वंदो से बच नहीं सकता इसीलिए कवि ने अपने पात्रों के मनोजगत का चित्रांकन बहुविधि रूप में किया है–

1. [illegible]
2. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ 117.

जवान हमारे उनमें उसी तरह
खपेंगे जैसे हम खपे थे
अपने जमाने में
ठीक आशा का स्वर बजेगा
उनके बीज बोते–बोते गाने में
और संभव है वे भी/पच्चीस से चौसठ तक
कई बार आशा तक जाये
और आशा रानी उनके हाथ न आयें
मगर वो अपना उठाया बोझ/नई पीढ़ी को सौपेंगे
और उठा लेगी उसे नई पीढ़ी[1]
X X X X X
कौन है/मैं हूँ निराशा/क्यों
कुछ नहीं यो ही चली आई
मुझे ऐसा लगा सांझ है तुम बेकार बैठे हो
मुझे ऐसा लगा
तुम सोचते ही नहीं हो लाचार बैठे हो
मुझे ऐसा लगा तुमको नहीं खलता[2]
X X X X X
टूटना निश्चित हुआ है, बड़ा खटका लग रहा है
आज आशाएं कभी की चूर होने जा रही है
और कलियां बिन खिले कुछ धूर होने जा रही है
आज इच्छा मन बिना आज हर बंधन बिना
इस दिशा से उस दिशा तक छूटने का सुख[3]
X X X X X
यों साधारणतया उदासी का समाँ
मेरे मन पर मुश्किल से ही है जमां
किंतु आज मन मेरा सहज उदास है
आज प्राण मेरा बिल्कुल हत्–हास है।
मुझको लगता है कि शुरू से अंत तक
पांव तले से लेकर दूर दिंगत तक

---

1. परिवर्तन जिए, पृष्ठ 68.
2. गांधी पंचशती, पृष्ठ 45.
3. गांधी पंचशती, पृष्ठ 73.

आज उदासी के कारण जुट गये है
हास हमारे होठों के लुट गये है[1]

(9) भुखमरी :-

प्रायः विश्व के सभी धार्मिक ग्रंथो, में राजनीतिक तंत्रों में यह परिकल्पना की गई है कि समाज में समानता न्याय बंधुत्व दिखाई पड़े किंतु आर्थिक विषमता दूसरे पर शासन करने की प्रवृत्ति सत्ता प्राप्त की लालसा दूसरे को अधीन बनाये रखने की प्रवृत्ति को जन्म देती है। सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया जैसा उच्च आदर्श तभी समाज में दिखाई देगा जब समाज में भय, भूख, गरीबी, आर्थिक शोषण न हो। मानव की यह मूल वृत्ति है कि वह अधिनायक वादी प्रवृत्ति का है अतः इस हेतु वह दूसरे को भूखा रखकर अपने आधीन करना चाहता है। यहीं से ही आर्थिक वैषम्य का सूत्रपात होता है इस कारण समाज में एक ओर नवकुबेर दिखाई देते है तो दूसरी ओर भूखे नंगे चार चने के लिये बिबलाते बच्चे अपने दैन्य प्रदर्शन की चरम सीमा में पहुंच कर भी कुछ कर नहीं सकते। क्षुधापूर्ति का अभाव उसे उसके आपराधिक कार्यो की ओर प्रेरित करते है यह समाज की घोर विडम्बना और सामाजिक यथार्थ का कटु रूप है। भवानी प्रसाद मिश्र ने दीन, हीन, निराश्रित, आवालवृद्ध नर, नारियों का कार्मिक चित्रण कर अपनी यथार्थवादी प्रवृत्ति का चित्रण किया है।

खासतौर पर विवश दिख रहा है
भीख मांगता हुआ लड़का
भागते हुए लोगों से
क्या खाकर भीख मांगे वह/और ऐसे में[2]
नाथ के साथ की साथरी
इसमें दरिद्रता का पयार्य/बन गयी है
मर रहे है लोग इसमें/भूखे या खा–खाकर
गमीं नियम बन गई है/खुशी अपवाद[3]
इसी से कह रहे है हम
कि ओ भाई गरीब के हामी
ओ भाई कोरे शब्दों के स्वामी
कुछ सच्चा भी कर
कुछ सच्चा भी कह
मत बाजारू बाजीगरों की तरह

---

1. गांधी पंचशती, पृष्ठ 179.
2. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ 117.
3. परिवर्तन जिए, पृष्ठ 13.

झूठे दो–दो फुट ऊँचे/आम के पेड़ उगा[1]

X X X X X

खीचते हुए रिक्शा/कई खुले खेतों में
धरती को/चीरते है हल से/सीते है अनाज से
और फल से/और/आदमी हैं ये सब
कब ऐसा होगा/कि हम सब/सचमुच के आदमी
हो जायेगें/सब कठिन श्रम करके/रोटी खायेगें
कब ऐसा दिन आयेगा/जब बैठा–ठाला आदमी
आदमी नहीं गिना जायेगा।[2]

X X X X X

गॉव इसमें झोपड़ी है धरती है
झोपड़ी के फटकियां है, दर नहीं है
धूल उड़ती है धुए से दम घुटा है
मानवों के हाथ से मानव लुटा है
रो रहे है शिशु कि मां चक्की लिए है
पेट पापी के लिए पक्का किए है, फट रही छाती[3]

राजनैतिक यथार्थ :-

आज का मनुष्य सामाजिक कम राजनीतिक प्राणी अधिक हो गया है क्योंकि सफलता आर्थिक सम्पन्नता का संक्षिप्त रास्ता राजनीति है। ऐसा आज के जीवन में दिखाई देता है। समाज सेवा के नाम पर नेता इस प्रकार की राजनीति करते है जिसमें एक ओर आर्थिक सम्पन्नता तो आती ही है, पारिवारवाद को प्रश्रय तो मिलता ही है, राजनीति के माध्यम से जनता का शोषण और उसका दोहन बड़ी आसानी से हो जाता है। स्वतत्रंता के पूर्व अंग्रेजों की जो कूट नीति थी उसके कारण देशी नरेश किसी भी प्रकार से एकता के सूत्र में नहीं बंध पा रहे थे किन्तु गांधी के नेतृत्व में जिस प्रकार का आंदोलन चला जनता का जो शारीरिक, आर्थिक, मानसिक, और नैतिक समर्थन उन्हें प्राप्त हुआ परिणाम स्वरूप स्वातंन्त्रय प्राप्त की अलख अत्यन्त तीव्र वेग से प्रज्जविलित होने लगी। गांधी पंचशती में गांधी के जीवन की उनके द्वारा प्रवृर्तित, सत्य, अहिंसा, सविनय आंदोलन, स्वदेशी प्रचार, अछूतो उद्धार, नारियों की दशा आदि शताधिक कार्यक्रम प्रवर्तित किये गये उनमें आवालवृद्ध नर नारीयों ने हिस्सा ही नहीं लिया, आत्मोत्सर्ग ही नहीं किया आगे की राजनीति का मार्ग भी प्रशस्त कर गये। स्वातंत्रय प्राप्ति के पश्चात देश में नयी सत्ता, नये लोगों के हाथों में आई देश को सवारनें की ललक, और उत्साह असीम था किन्तु अनेक पंचवर्षीय योजनाओं देश विकास के

1. परिवर्तन जिए, पृष्ठ संख्या 55.
2. वही, पृष्ठ 79.
3. गांधी पंचशती, पृष्ठ 24.

सपने, चीन और पाकिस्तान के आक्रमण से सामान्य जनता और साहित्यकारों का मोहभंग हुआ इस यथार्थ का सजीव चित्रांकन कारूणिक रूप में भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं में मिलता है। मंहगाई, जनता का शोषण, अमीरी–गरीबी के बीच अधिक अंतर, राजनीतिक भ्रष्टाचार की जो विभीषिका देश को लील रही थी नेता चरित्र से हीन, जनता, हताश और कुण्ठित, हो रही थी। अनेक परिस्थितियों का चित्रांकन कवि ने बड़ी ईमानदारी और प्रतिबद्ध रूप में किया है। यहॉ ध्यातव्य है कि इस प्रकार के समस्याओं का चित्रण प्रगतिवादी या मार्क्सवादी दृष्टि से कवि ने नहीं किया उसने बात को अत्यन्त सहज रूप में उसके यथार्थ रूप में ही चित्रित किया है। नीचे कुछ राजनीतिक यथार्थ के उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे है–

(1) नेता :-

राजनीतिक यथार्थ में शीर्ष नेतृत्व वर्ग प्रमुख होता है वह देश को प्रगति के मार्ग पर ले जाने वाला, अपने आचरण से जन सामान्य को प्रभावित कर देश विकास में योगदान करने के लिए उत्साहित करने वाला होता है किन्तु स्वतंत्रय भारत में इनका अध्ययन किस प्रकार हुआ जनता की करूण पुकार नक्कार खाने में तूती की आवाज ही सिद्ध हुई। ऐसे दुःख भरे त्रासद माहौल का अंकन भवानी प्रसाद ने इस प्रकार किया है–

जब इस पुकार पर/पुकार लगाने वाले
और कोलाहल के बीच में सही स्वर जगाने वाले
अनन्त लोगों के बीच फूटेगी सुबह की लाली
तब टूटेगी घृणा और क्रूरता और उपेक्षा
और अभाव और भय
और दब्बूपन की कड़ियाँ[1]

X X X X X

मगर तब तक के लिए क नहीं रहा हू मैं
शुरू कर रहा हूँ
जितना बन सकता है मुझझे उतना छोटा एक काम
लेकर समूची मानवता की परम्परा में
अब तक के सबसे सीधे–सादे निर्भय और स्नेही आदमी
गॉधी का नाम।[2]

X X X X X

गाँधी जी के पास नहीं है कोई सेना, शस्त्र सज्ज, ताकत है मन की
उनके पीछे तोप और तलवार नहीं ताकत जन–जन की

1. गांधी पंचशती पृष्ठ 06.
2. वही, पृष्ठ 07.

छूत–छात का भेद मिटे तो गांधी की ऐसी आशा है
दुनिया के तमाम भेदों की जड़े दिलेंगी
यह बसन्त की ऋतु यदि फैली
तो सारी दुनिया में समता के फूलों की फसल खिलेगी[1]

X X X X X X X

आज बहुत तो शहरी नेता दक्षिण उत्तर के मिल पाते
और अधूरे ढंग से अंग्रेजी में कुछ अपनी कह जाते
कितना छोटा अंश किंतु है, नेता या नौकर सरकारी;
प्रजा अगर उत्तर और दक्षिण की न ठीक मिल सकी हमारी
तो यह छोटा अंश किसी दिन स्वार्थ–विवश रस–विरस करेगा
पारस्परिक प्रेम के बदले क्रोध और प्रतिरोध भरेगा[2]

X X X X X X

गाँधी आज बंद है नेहरू आज बंद है
अस्त व्यस्त देश का बिखरा हुआ छंद है
और कुछ मसीहाओं का कहना है घुटने टेकों
मित्र देश जीतेगें क्योकि रूस साथ है
और यदि रूस जीता जीत गई मानवता
जग में समानता का नीर वह बहा देगा[3]

X X X X X X

शासन की सोची हुई और गांधी की सोची नही हुई
हमसे गाँधी के बारे में हर बार एक त्रुटि यही हुई
हम नेता उसे मानते है और करते है अपने मन की
हम सत्य सिंधु को छोड़ लगाये रहते है आशा कण की
हम बाहर जाये तो लोगों से यही स्नेह कहें सुनें
यदि छल पर विजयी होना है तो सरल सत्य का मार्ग चुनें[4]

X X X X X X

वर्ण–वर्ण जिनका रंगा था प्रकाशवान था
सुनने वाला ऐसा सावधान था
मानों जूहीं की कलियाँ चुन रहा था
क्योंकि वह शब्द नहीं समय की वाणी सुन रहा था[5]

---

1. गांधी पंचशती, पृष्ठ 15.
2. वही, पृष्ठ 19.
3. वही, पृष्ठ 57.
4. गांधी पंचशती, पृष्ठ 63.
5. वही, पृष्ठ 227.

शायद तुम इसे अपनी जीत मानों
मुमकिन है सोचों
तुम कि मार कर मार्टिन को तुमने मार डाली है आजादी की
इच्छा मगर देखों जरा आसमान की तरह वह
अपनी जगह से खिसक नहीं गया है और न तारे
उसमें निकलते चले आने से डर गये है; धरती
जैसी कि तैसी अविचल है अभी और पौधे अभी तक
खिला रहे है फूल दे रहे है अभी तक फल और हजार–हजार
लोग धरती के एक सिरे से दूसरे सिरे से गा रहे है[1]

(2) शासक वर्ग का चरित्र :-

शासक वर्ग जनतंत्र में जनता द्वारा निर्वाचित प्रजातंत्रात्मक प्रणाली से बनता है। अपने दलगत नीति से बंधकर वह स्वयं और देश को जिस दलदल में ले जाकर फसां देता है जहाँ से उबरना दूसरे दल को सत्ता सौपने के लिए विवश हो जाती है। और दुर्भाग्य यह है कि दूसरा दल भी पहले दल से अधिक भ्रष्ट, दमन और शोषणकारी सिद्ध होता है। सत्ता का शीर्ष पुरूष अपनी दलगत नीति के कारण कुछ भी नया करने को अक्षम दिखाई पड़ता है और जनता अगले चुनाव तक या तो मूक दर्शक रहती है या छिटपुट आंदोलन कर अपने गुवार को व्यक्ति ही कर पाती है। कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने परिवर्तन जिये, कालजयी, इदं न मम, बुनी हुई रस्सी और गांधी पंचशती में शासक वर्ग की इन्हीं विषम और यथार्थपरक परिस्थितियों का चित्राकंन किया है। आश्चर्य तो तब है कि अत्याचारों और शोषण की शिकार जनता त्रहि–त्रहि की पुकार लगाती हुई भी किसी समग्र क्रांति की ओर उन्मुख नहीं हो पाती। नेतृत्व वर्ग ने उसे ऐसा निर्वीर्य या नंपुषक बना रखा है। नीचें की कविता में नेतृत्व वर्ग के प्रति जनता का मनोभाव देखियें कितना स्वाभाविक लगता है–

राजा, तुम तो शक्तिवान हो
अपनी शक्ति दुखी तक मोड़ो
ऐसे करो उपाय बढ़े सुख
हर अभाव को गहरा गोड़ो/और भाव के बीज
देश से देशान्तर तक बो कर देखो
राजा तुम तो शक्तिवान हो/इस कलंक को धोकर देखो
इतना ही देखों दुःख क्या है

---

1. गांधी पंचशती, पृष्ठ 359.

दुख के स्रोत कहाँ से फूटे
दुःख दूर कैसे होता है
शांति समझ से क्यों हम छूटे
इतना जाना तो सब जाना
परा–ज्ञान यह, परा–दान है[1]
X X X X
यदि तुम अपने मन की पीड़ा
यदि तुम अपने मन की आशा
पत्थर की लकीर कर डालो
अंकित कर दो हर अभिलाषा
भारत–भर आसिंधु हिमाचल
शिलालेख प्रस्थापित कर दो
यदि निर्वाण क्षणों के सपने
जहाँ–तहाँ कण–कण में भर दो
तो वे कालातीत बनेंगें
किसी समय फिर से फूटेंगें
बुद्ध शिलाओं से निर्झर की तरह
कभी सहसा छूटेंगे
और भरेगी उनकी वाणी
कोलाहल से उठकर ऊपर[2]

शासननीति के मूल में जिस नीति, सत्य, न्याय, नैतिकता की आवश्यकता होती है उसकी आशा शब्दों में व्यक्त की है–

मैं सोंच रहा हूँ जानवरों की बीच
ख्याल अपने कुछ ऊचें होने का
हर रोज–रोज ढह सकता है
ये तो अपने ज्ञान और संयम, यम, नियम
सत्य, अस्तेय आदि के पालन की बातें सारी
ये अपने प्यार पहाड़–दया के सिंधु
महज कड़वी–खारी वे निधियाँ है
जो हम पर केवल वज़न दूसरो को फाँसी[3]

---

1. कालजयी कविताएं, पृष्ठ 99.
2. वही, पृष्ठ 100.
3. गांधी पंचशती, पृष्ठ 163.

किंतु असहाय जनता छिटपुट आंदलनों से अपना विरोध व्यक्त करती है किन्तु उसे सत्ता की क्रूरता का ही फल मिलता है। सामान्य निरीह जनता घुट–घुटकर जीने के लिए विवश ही है–

तुम्हारें देश में तो एक दुनियाँ तुम्हारें कारण घुटी–घुटी जी रही है
गम खा रही है ऑसू पी रही है और बोल नहीं सकती
क्योंकि तुमने जासूसों का और हिंसा का ऐसा डर वहाँ फैला रखा है
कि वर्णन उसका नहीं हो सकता
क्या जाने वहाँ कोई गांधी भी पैदा हो[1]

कवि को आशा है कि एक दिन तो ऐसा अवश्य होगा कि भय, भूख, और अत्याचार जब अपनी चरम सीमा में पहुंच जायेगें तो निश्चित ही ऐसे जनान्दोलन की आंधी आयेगी। पिछले कुछ दशकपूर्व जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में जिस समग्र क्रांति की आंधी आयी थी उसके बाद उसे दबाने के लिए आपात काल और तदोपरान्त सारे देश में सत्ता पक्ष का सफाया चित्रण कवि का अप्रत्यक्ष रूप में उद्देश्य रहा है। ऐसे परिवर्तन की आंधी के प्रति वह साम्यवादी दृष्टि न रखकर आशावादी दृष्टि से चित्रण करता है–

किंतु आंधियों का स्वभाव है
केवल कचरा नहीं उड़ाकर ले जाती वे
महल अटारी कलश मंदिरों के भी उनमें ढह जाते हैं
कभी–कभी सिर पर गिरते है गिरने वाले कलश बज्र की तरह
निरपराध बच्चे माताएँ, वृब्द्ध, उभरती हुई जवानी
नाहक उनमें पिस जाते है
किंतु तुम्हारा जाना फिर भी बहुत जरूरी है
इसलिए जब आज तुम्हारा दल जाता है[2]

भारतीय जीवन शैली उसका सांस्कृतिक दृष्टिकोण कुछ इस प्रकार विकसित हुआ है कि राजनीतिक हस्ताक्षेप के प्रति वह बहुत उत्सुक नहीं रहती किंतु दुःख सहन करने की एक सीमा होती है और कवि ने इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य का चित्रण नीचें की दो कविताओं में किया है कि जब शासक औरंगजेब हो जायेगा तो जनता के मध्य कोई न कोई शिवा कोई न कोई शक्ति अवश्य जन्म लेगी क्योंकि इसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में न दण्डो न दाण्डिकः की प्रवृत्ति वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक रही है–

किंतु जब संतान औरंगजेब हो जाती हैं
तब वरदान देने की शक्तियाँ खो जाती हैं

---

1. गांधी पंचशती, पृष्ठ 203.
2. वही, पृष्ठ 247.

और देने के लिए उठे हुए हाथों में तब
डाली जाती है हथकड़ियाँ
और युगों–युगों तक गलियाँ खाती है सन्तानें
जिन्हे पुरूषार्थ के लिए जना था माँ ने।[1]

X X X X X

हजारो बरस पहले नहीं थी आदमी की आदमी पर सत्ता
बेशक लोग मालिक थे अपनी मर्जी के
किसी राजा की प्रजा नहीं थीं तब कोई
न प्रजा का ही कहीं कोई तंत्र था
शायद सब राजा था उतने के जितना दिखता था उन्हे अपनी आँखों के आगे
किंतु फिर धिर आये बादल नयी–नयी जरूरतों के
लोगों को आपस में मदद की, बड़ी आवश्यकता पड़ी
और बंधन बांधे उन्होनें अपने पर
परम स्वतन्त्रता के सपने पर[2]

X X X X X

तुमने अपने मन को शायद मार डाला है, उसका भी खून किया है
और सारे बुरे कामों का बना कर एक शास्त्र
उसे एक व्यवस्थित कानून किया है
मन से हीन बुद्धि से अंधे
ऐसे वाद के आगा–पीछा नहीं होता
बस, एक मंसा होता है साफ और ठंडा
बन नहीं पा रहा है मुझसे
मगर चाहता हूँ फूट जाता तुम्हारें इस वाद का भंडा[3]

X X X X X X

सुना है अब वहाँ लोग पहले जैसे न बैठते है उठते है
न घूमते है न फिरते है
न एक दूसरे की बातों पर हसँते–हँसते मुंह के बल गिरते है
एक हैरानी भर घुसती है वहाँ सुबह
और निकल जाती है वही कई गुना होकर शाम को[4]

(3) शोषण :-

सत्ता नेतृत्व की यह आकांक्षा रहती है कि वह सदैव सत्ता का केन्द्र बिन्दु रहे उसकी ही जयजयकार हो उसे उसे सर्वाधिकार सम्पन्न माना जाये और इसकी प्रप्ति हेतु यह

---

1. गांधी पंचशती, पृष्ठ 247.
2. वही, पृष्ठ 273.
3. वही, पृष्ठ 276.

आवश्यक है कि वह जनता का दमन करे यह दमन सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, सभी दृष्टियों से किया जाता था क्योंकि शीर्ष पुरूष को सदैव सत्ता छिन जाने का भय सताता रहता है अतः वह जितना अधिक जनता को निरीह बना सके, लोभ, लालच, यश, धन, पद और प्रतिष्ठा के कुछ टुकड़े फेंककर इन्हीं शक्तियों द्वारा एक ओर वह अपना वर्चस्व बनाये रखता है, सत्ता को अपनी मुट्ठी में बन्द रखता है तो दूसरी ओर इसी वर्ग द्वारा नियम और कानून के माध्यम से वह जनता को शोषण का शिकार भी बनाता है। जनता और शीर्ष नेतृत्व के बीच में वह ऐसा वर्ग उत्पन्न कर देता है जिसे शोषण करने में तनिक भी हिचक नहीं और उसके सामने शोषण की कोई सीमा नही क्रूरता भी उसके सामने लज्जित हो उठे ऐसे अत्याचार के बहुविधि तरीके वह सोचता है जिसका चित्रण कवि ने निम्नलिखित कविताओं में किया है–

किसकी बात करे/कवि की
किसान की/शब्द की श्रम की
या पैसे की बाजार की
राजनीति की चालाकी की/सरासर झूठ की
डंडे के बल पर कराये जा रहे/श्रम की[1]
X X X X X
नोआर खाली फिर बिहार फिर पंजाबी ज्वाला
अंगों का वह ढेर और नरमुण्डो की वह माला
जिसकी महज़ कल्पना करना सबसे धनी वित्रृष्णा
उन कृत्यो की गंगा जमना सिंधु नर्मदा कृष्णा
भरते थे आ सिंधु–हिमाचल निष्करूणा के मेले
इस मेले में हाय खड़े थे बापू महज अकेले[2]
X X X X X
तीस जगती है नई–सी घाव में
हाय रे जैसा है वैसा मत रहे
आज की –सी नहीं कल की गत रहे
इसलिए लगता है हर बदलाव में
टीस होती एक मेरे घाव में
घाव अपने बोल देते दर्द सब
सुन जिसे जमाना होता जर्द सब
सर्द हो जाते जुलुम के प्राण रे[3]

---

1. तूस की आग, पृष्ठ 63.
2. गांधी पंचशती, 136.
3. वही, पृष्ठ 151.

क्रांति की भावना :-

सन् 1917 में समता, बंधुत्व और न्याय को लेकर रूस में जो क्रांति हुई थी उसका प्रभाव सम्पूर्ण विश्व में पड़ा था। भारत वर्ष में यह साम्यवादी विचारधारा पहले साहित्यकारों के माध्यम से आयी जिसे प्रगतिशील साहित्य कहा गया और बाद में साम्यवादी दल की विधिवत प्रतिष्ठा हुई। यद्यपि क्रांति की भावना भारत वर्ष में पहले से भी है, सुभाष चन्द्र बोस, चन्द्रशेखर आजाद, राजदेव, रामप्रसाद बिस्मल इत्यादि क्रांति के माध्यम से हिन्दुस्तान की सत्ता को बदलना चाहते थे किंतु ये प्रयास सामान्य जनता के गले के नीचे नहीं उतर सकी उसे इन नेताओं, क्रांतिकारियों पर सहानुभूति अवश्य थी किंतु रूसी जैसी क्रांति की भावना यहाँ पनप नही सकी यद्यपि गर्मदल की विचारधारा यहॉ तब भी अस्तित्व में थी। रूसी क्रांति का चित्रण भवानी प्रसाद मिश्र ने किया अवश्य है किंतु उनका दर्शन गांधीवादी विचारधारा पर आधारित है क्योंकि हिंसा से हिंसा ही उत्पन्न होती है। समस्याओं का निराकरण होता दिख नहीं रहा था–

क्योंकि रूस तब/हमारे यहाँ
आज से भी ज्यादा रहेगा
खून तब नदी के पानी से भी
कुछ ज्यादा सम और गहरा/बहेगा
बेशक समता की दिशा में
क्रांति के प्रभात से
पहले वाली निंशा में।[1]

X X X X X

कुछ उबल रहा है/और कुछ उफन रहा है
दूध का उबाल नहीं है यह
सिर्फ अपना ख्याल नहीं है यह/पीढ़ियों का है
वे तख्त तक पहुँचेंगी
जिन पर से उन सीढ़ियों का है
ये सीढ़ियाँ जानदार आदमियों की/हैं या होंगी
बिछेगें ये जानदार आदमी[2]

X X X X X

देखों ऑख खोलकर सूरज उत्सव का चढ़ आया है
वन पर्वत खेतों घर आंगन गॉव गली बढ़ आया है
प्राणदान की बिरिया आई, भेटों इसे भुजा–भर भाई

---

1. परिवर्तन जिए, पृष्ठ 11.
2. वही, पृष्ठ 22.

यह आया है आस लगाकर अपने भाई चारे पर

कान खोलकर सुनो निमंत्रण गूंजा है नक्कारे पर[1]

कवि की धारणा है कि जैसे सूरज उदित होता है वैसे ही नव वर्ग में क्रांति का उफान आयेगा उसकी हुंकार और गर्जना से पत्थर काँपने लगेगे, जनता में विप्लव होगा किंतु ऐसा राजनीतिक यथार्थ जीवन में कोरी कल्पना ही रही। जनता में ऐसा उबाल आया तो किंतु वह अहिंसा के रास्ते से चलकर हुआ–

हम बोले तो लगे कि सारी धरती बोल रही है

हम गरजे लगे कि सारी धरती डोल रही है

किंतु दिशा तक हमने निश्चित नहीं अभी की कोई

कितनी बार दिशा गांधी की हमने पकड़ी–खोई[2]

X X X X X

आग फैली है भले इस आग का स्वागत करे हम

आज यह ज्वाला कि इसको सांस में अपनी भरे हम

हम न बचने की करें कोशिश लपट खीचें लपेटें

आज यह पावक कि इसका पाप पर अपने समेंटे

आज यह पाप से भड़की इसे हम पुष्य माने

इस अशुभ से परे का उद्देश्य समझे उसे जाने[3]

कवि भावी पीढ़ी को इस खतरनाक, अराजक, क्रांति की भावना से बचने का उपदेश –सा करता है क्योंकि यदि जनता में अनियंत्रित क्रांति आ गई तो नर–संहार के अतिरिक्त और कुछ मिलता नहीं इसीलिए लेखक ऐसे यथार्थ राजनीतिक परिदृश्य की परिकल्पना करता है जिसका परिणाम रूस क तरह न हो जहॉ सर्वहारा वर्ग की सुरक्षा के लिए हजारों नहीं लाखों लोग प्रताणित किये गये जो कम से कम पूंजीपति तो नहीं थे। इस राजनीतिक व्यवस्था के दुष्परिणाम कवि जिस प्रकार सम्बोधित करता है वे समाजवादी, यथार्थवादी परम्परा के पक्षघर दिखाई देता है–

वह कल तक तो था क्रांति–मूर्ति पर आज

क्रांति का पहला दुश्मन कहकर मारा जाता है

यह मुझको तो इब्तिदा इश्क की लगती है

क्या जाने इसमें क्या होगा आगे–आगे

जो छोटे–छोटे देश तुम्हारा साम्यवाद अपनायेगें

---

1. गांधी पंचशती, पृष्ठ 34.
2. वही, पृष्ठ 93.
3. वही, पृष्ठ 99.

यदि वे न नचें रूसी भालू के इंगित पर[1]

X X X X X

कुछ लोग कह रहे थे तुम भी भिड़ जाओं उससे
यहाँ कमजोर हो तो दूसरे किसी मोर्चे पर
तुम भी भौहें चढ़ाओं दांत भीचों
तुम्हारें पास शस्त्र कम हो
तो दूसरे दे रहे है उनसे ले लो और फिर उन्हे खीचों
पशु के मुकाबलें में पशु होना पड़ता है
जो तुम्हारी राह में काटा बोता है
समझदारी राह में काटा बोता है
समझदारी के हिसाब से तो[2]

(5) भ्रष्टाचार :-

पहले कहा जा चुका है कि भारत वर्ष में मानव जन शक्ति के साथ प्राकृतिक संसाधनों की इतनी विविधता और बहुलता है कि यदि शुद्ध मन, चरित्र, और नीति से उसका उपयोग किया जाये तो भारत वर्ष आज भी सोने की चिड़िया से अभीत हो सकता है किंतु भ्रष्टाचार के कारण शासन नीतियों के परिणाम स्वरूप यहाँ अमीर और अमीर होते जा रहे है गरीब हो रहे है। कभी शुद्ध अन्तः करण से सत्ता के शीर्ष पुरूष ने यह स्वीकार किया था कि भ्रष्टाचार के कारण जनता के हित में निर्गत एक रुपयें में से मात्र पन्द्रह पैसें ही नीचें तक पहुँच पाता है वह कौन सा ऐसा वर्ग है जो इस पचासी पैसे का उपभोग कर जनता को सम्रद्ध नहीं होने दे रहा है। इस का उत्तर जन सामान्य भी जानता है। खुद तो कवि जनता के दिल की धड़कन होता है। उसे भली प्रकार ज्ञात है कि देश की प्रगति की धारा भ्रष्टाचार के अवरोध में ही रूककर गुप्त गोदावरी की भांति छिपकर क्षीणधारा के रूप में छनकर जनता तक पहुचता ही कवि ने इस भ्रष्टाचार के जिन रूपों का चित्रांकन किया है उसको समझने के लिए किसी बहुत बड़े ज्ञान की आवश्यकता नहीं क्योंकि यह राजनैतिक यथार्थ आम जनता का यथार्थ है।

(6) देश की स्थिति :-

सारा विश्व इस बात से भलीभांति अवगत है कि भारत वर्ष में सोने की पुष्कल मात्रा थी यहाँ की अकूद सम्पदा से सारा विश्व स्तब्ध, आश्चर्य चकित और आकृष्ट था। उसे लूटनें के लिए अनेक बर्बर जातियाँ आई और उन्होनें जिस निर्ममता से उसे लूटा इस पर शासन कर धन के स्रोत की धारा बाहर तक बहाई उससे देश का विकास रसातल में ही नहीं गया

1. गांधी पंचशती, पृष्ठ 149.
2. वही, पृष्ठ 305.

राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, दृष्टि से वह गुलाम ही नहीं हुआ अपितु वह भुखमरी के कगार पर खड़ा जिस दंश को झेल रहा था उसे सुनने की परवाह किसी को नहीं थी। फिर भी आज देश में ऐसी पीढ़ी उत्पन्न हो गई है जो मानसिक रूप से पूर्व शासकों की गुलाम है। अपनी सांस्कृतिक समृद्धता का गर्व उसे जरा भी नहीं है ऐसी दशा में युवाओं में दिशाहीनता तथा अकर्मण्यता, देशभक्ति का अभाव होना स्वाभाविक है–

हमने अपने पाँच हजार वर्षो से
अब तक के मानसिक विकास को गया बीता मान लिया
और मांगने लगे अपनी हर समस्या के हल/विदेशों से
रंग–रंग कर घुटनों और पेट के बल
विदेश बेचारे क्या करे हम मांग रहे है
और उनकी समझ में उनके पास कुछ हल है
उनके पास सौ पचास वर्षो में उगाये हुए/रक्त के कुछ फल है
वे इन्हे बॉट रहे है: और यहाँ तक
कि जो लेना नहीं चाहते इन रक्त फलों को[1]

X X X X X

हम फिर से बट जायें दलों मे/फिर भरती फौजों में होना परम धर्म हो
फिर से सेना ही सेना हो जाये हवा धरती और जल पर
फिर कोई मोटी गर्दन वाला शुभचिंतक देश–प्रेम का जहर
स्वरों में घोल–घोलकर हमें पिलाये/फौलादी तूफान चले हर तरफ[2]

X X X X X X

या रूस चीन के चक्कर–टक्कर संयोगों ने
तुम्हे देश की प्रतिभाओं से दूर कर दिया
तुम्हें बड़ी बातों का ज्यादा मोह हो गया
छोटी–छोटी बातों से सम्पर्क खो गया
धुनक–पींजकर कात–बीनकर अपनी चादर खुद न बनाई
बल्कि दूर से कर्जा लेकर गई मंगाई
और नतीजा चचा–भतीजा दोनों के कल्पनातीत है
यह कर्जे की चार जितनी ओढ़े। उतनी कड़ी शीत है।[3]

सारांश यह है कि यथार्थवाद ऐसी व्यापक विचारधारा है जो हमें अपने परिवेश के यथा स्थिति के चित्रण के लिए विवश करता है। साहित्यकार जनता की चित्तवृत्तियों का सम्वलित रूप में चित्रांकन करता है। एक श्रेष्ठ यथार्थ साहित्यकार मानव जीवन के वस्तुपरक और आदर्श परक कल्पित स्वरूप के बीच सेतु का कार्य कर पाठक को क्या है और कैसा होना

1. गांधी पंचशती, पृष्ठ 03.
2. वही, पृष्ठ 217.
3. वही, पृष्ठ 245.

चाहिए इसका बोध करता है। भारतीय पद्धति यदि आदर्शवादी रूप को लेकर चली है तो पाश्चात्य चिंतन यथार्थ से आगे चलकर अति यथार्थ को प्रश्रय देता रहा है भले ही व कितना ही क्रूर, अश्लील व वीभत्स क्यों न रहा हो।

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में यथार्थवाद का परिमार्जित रूप मिलता है उनके सामाजिक यथार्थ में समाज, सामाजिक सम्बन्धों की स्थिति, सामाजिक इकाइयों के कर्तव्य, मानव प्रेम, नैतिकता, सुख–दुख की अनुभूति, स्वतंत्रय इकाई के रूप में दाम्पत्य जीवन की यथा स्थिति के साथ आदर्श रूप का चित्रण भी मिलता है। युवा वर्ग के अन्तर्गत उत्पन्न पीढ़ीगत अन्तराल उनके आक्रोश नैतिक बन्धनों की टकराहट, पारिवारिक समस्याओं का चित्रण आदर्श और यथार्थ दोनो रूपों में किया है। जहाँ आदर्श रूप में दिखाई देते है न तो `कोरे आदर्श रूप में होते है न ही सामाजिक पुर्नुरूध्यान के लिए अतीत पुरूषो, परिस्थितियों और दशाओं का गौरवपूर्ण गायन है। वस्तुतः कवि ने उस परिस्थिति में आशा की परिकल्पना मानवता के प्रति दृढ़ आस्था और मानवीय सम्बन्धों के बहुपक्षीय रूप चित्रण को प्रश्रय दिया है। यद्यपि उसने समाज में व्याप्त भय, त्रास, विडम्बना, अलगाववाद के चित्रण के साथ छोटे वर्गो को महान न भी बनाकर उनकी कारूणिक दशा की विवृत्ति उचित ढंग से की है। नैतिक आदर्शो को कॉट–छॉटकर उसके वास्तविक स्वरूप को व्यक्त किया है। सामाजिक ढुलमुलपन, मानवता के प्रति स्खलन को ही यथार्थवाद का रूप न देकर इसकी अपेक्षा उसका वास्तविक रूप कैसा हो इस प्रकार का वस्तुपरक चित्रण भी किया है। इसी प्रकार राजनीतिक यथार्थवाद के अन्तर्गत अंग्रेजों द्वारा की गयी क्रूरताओं का निर्मम चित्रण कर महात्मा गांधी के राजनैतिक प्रयास, गर्मढल के नेताओं की आकॉक्षाओं के अनुरूप रूसी क्रांति के चित्रण और उसके कुपरिणामों का चित्रण किया अवश्य है किन्तु उसमें अति यथार्थवाद का आश्रय नहीं लिया गया। इतना अवश्य है कि विदेशी शासकों की क्रूरता स्वतंत्र भारतीय नेताओं की स्वार्थपरता जनता की आर्थिक विडम्बनाओं तथा इसके मूल भूत कारण स्वरूपों में शोषण, भ्रष्टाचार, सत्ता बनाये रखने की लोलुपता नेताओं के चरित्रिकपतन, सामान्य जनता का इनके प्रति मोह भंग, हतासा कुंठा और भ्रष्टाचार के कारण उत्पन्न नवकुबेरों की अनैतिकता उनके द्वारा किये जाने वाले दमन अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन, निरीह जनता का शोषण का चित्रण भवानी प्रसाद मिश्र नेएक साहित्यकार की दृष्टि से किया है वह न तो कैमरामैन है न ही चित्रकार है क्योंकि कैमरामैन वस्तु का अति यथार्थ रूप चित्रित करता है तो चित्रकार उसकी नोक–पलक मुद्रा में सुधार–संसोधन या ऐसे दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है कि कुरूपता भी सहजता लगने लगती है। इसके विपरीत भवानी प्रसाद मिश्र ने भावनाओं की अभिव्यक्ति को प्रमुखता देकर उसके यथार्थ रूप को चित्रित किया है जो हमे यह सोचने पर विवश करता है कि इस भयावह स्थिति से कैसे गुजरा जाये कवि ने इसका चित्रांकन समग्र क्रांति में ढूंढा

है रूसी क्रांति में नही जिसमें न तो मानवता न ही अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का स्थान है। कवि साम्यवादी दृष्टियों द्वारा चित्रित समाज की परम्परा से अपने को अलग रखा है जहाँ नारो पर ही समाज के बदलने का एक मात्र उपाय रहता है। कवि ने गांधीवादी दृष्टि अपनाई है चाहे वह सामाजिक यथार्थ की बात हो या राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रांकन हो ऐसे चित्रांकन साधारण व्यक्ति की दृष्टि से देखे गये है किसी मत या वाद के अतिरेक से उन्होनें अपने को बचाया है। कालजयी और गांधी पंचशती में घटनाओं का वास्तविक चित्रण है तो आन्तरिक ह्दय को उल्लसित करने वाले प्रेम के मधुमय किंतु काल्पनिक नहीं बल्कि यथार्थ प्रतिच्छवियाँ अंकित कर कवि ने एक नई दिशा एक नये आयाम का उद्‌घाटन किया है।

पंचम-अध्याय

अध्याय–5
आलोच्य कवि की काव्य–भाषा

आधुनिक युग में कवि मान्यता रही है कि प्रेषणीयता के क्षेत्र में प्रयोग आवश्यक थे, क्योंकि प्रयोगशीलता को ललकारने वाली प्रमुख समस्या यही थी किस प्रकार व्यक्ति की अनुभूति को उसकी सम्पूर्णता में समष्टि तथा पहुँचाया जाए। अतः शिल्प–विधान का प्रयोग वादियों के लिए विशेष महत्व था। शिल्प ही वह माध्यम था जिसके द्वारा कवि अपनी उलझी संवेदना पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सकते थे अभिव्यक्ति की पद्धतियाँ ही कवि वास्तविक प्रतिभा का ज्ञान कराती है। महान–कवि लीकों पर नही चलते वह तो स्वय ही लीकों के निर्माता होते है। अपनी भावनाओं को जैसे–तैसे तो सभी व्यक्त कर लेते है, किन्तु वास्तव में प्रतिभा सम्पन्न कवि वही होते है जो अभिव्यक्ति के माध्यम को बदल डालते है।

भवानी प्रसाद मिश्र प्रतिभा सम्पन्न कवि है। इनका प्रत्येक शिल्प नवीन सबल एवं सार्थक है। अनुकृति मिश्र को काव्य में अभीष्ट न थी। यही कारण है कि– मिश्र जी आधुनिक कवियों में अपनी अलग पहचान रखते है। इतना तो निर्विवाद है कि शिल्पगत नवीनता को मिश्र जी ने सहज अभिव्यक्ति के रूप में ही अपनाया है कि प्रयोगवादी और नई कविता का शिल्प भी तत्वतः आडम्बर और कृत्रिमता से छूटकारा पाने का ही प्रयास है, परन्तु इस नये शिल्प में जहाँ अन्य कवियों में जटिलता रहती है मिश्र की रचनाओं में सरल अभिव्यक्ति का है। उनकी अभिव्यक्ति सदैव ही अनुशासित रही है। इस अध्याय में कवि मिश्र के काव्य शिल्प का विशद विवेचन प्रस्तुत है–

भाषा :–

अभिव्यक्ति की प्राण–शक्ति का नाम भाषा है। मनुष्य स्वभावतः विचारशील एवं संवेदनशील है। वह सामाजिक जीवन के बीच रहते हुए एक साथ दो कार्य सम्पादित करता है। एक तो यह कि वह सबके बीच रह कर अनेक अनुभूतियों को भोगता–पचाता हुआ अपने मानस में स्थान देता जाता है और दूसरे यह कि परिवेश गत अनुभूतियों के विविधरंगो का जमाव उसके मानस में परत–दर परत इकट्ठा हो जाता है तब वह उसकी अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम तलाशता है, एक साधन अपनाया करता है। यह माध्यम, तलाशा हुआ साधन, भाषा के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

भाषा का स्वरूप सदैव एक–सा नही रहता। उसमें परिवर्तन की प्रक्रिया घटित होती रहती है और इस प्रक्रिया को कवि रूचि प्रति क्रियात्मक दृष्टि से बदलने का काम करती है।

कविता की भाषा पारस्परिक भाषा से एक भिन्न स्तर पर खड़ी दिखाई देती है। इस स्तर वैभिन्न के मूल में कोई एक कारण नही है। विषय और अनुभूति की अभिव्यक्ति में नवीनता की कामना, पहला कारण है, रूचि दूसरा कारण है। नये कवियों में मिश्र जी भाषा के सफल प्रयोक्ता के रूप में सामने आते है। उन्होनें भाषा में नया सांस्कृतिक बोध भरा है। यथार्थ परिवेश में उन्हें शब्दों के पहचानने की शक्ति दी है। वास्तव में शब्द तो अपने आप में निर्मूल्य है, किन्तु कवि ही है जो उसे सही अर्थ प्रदान करता है।

मिश्र की भाषा विषयक मान्यताएँ :-

भवानी प्रसाद मिश्र की भाषा विषयक मान्यताएँ उनके वक्तव्यों और उनकी रचनाओं दोनों में ही स्पष्टतः देखने को मिल जाती है। नये कवियों में भाषा के प्रति सर्वाधिक सचेत कवि मिश्र जी ही प्रतीत होते है। उनकी काव्य भाषा विषयक मान्यताओं को संक्षेप में इस प्रकार देखा जा सकता है–

1. वे शब्दों को नये सन्दर्भ देने के पक्षपाती है, उनकी मान्यता है, उनकी मान्यता है। कि सन्दर्भ नये और पुराने सभी तरह के हो सकते है और शब्द भी, किन्तु पुराने शब्दों से ही नये सन्दर्भ व्यक्त होने चाहिए–

> "सन्दर्भ पुराने हो सकते है
> नये हो सकते है
> यह संयोग है
> कि मन मेरा
> आज
> एक नया सन्दर्भ है
> मगर फिकनातों चाहिए
> पुराने ही शब्दो से
> नये इस सन्दर्भ की चिनगारी।"[1]

वे वर्डस्वर्थ की तरह कविता की भाषा को बोलचाल की भाषा के निकट रखने के पक्ष धर है, उन्होनें स्पष्ट रूप से कहा भी है कि "वर्डस्वर्थ की एक बात मुझे बहुत पटी कि कविता इस ख्याल के बिल्कुल दूसरे सिरे पर थी। तो मैने जाने–अनजाने कविता की भाषा सहज रखी। प्रायः प्रारम्भ की एक रचना में (कवि से) मैने बहुत–सी बाते की थी, दो लकीरें याद

---

1. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0 95–96

है–

"जिस तरह हम बोलते हैं
उस तरह तू लिख
और उसके बाद भी
हमसे बड़ा तू दिख।[1]

यही कारण है कि भवानी प्रसाद मिश्र की कविता भाषा में लिखी गई कविता नही है। यह बोलचाल की बोली में लिखी गई है। वह अपने कविता लिखने को अन्ततः बोलना ही मानते है। मै जो लिखता है उसे बोलकर देखता हूँ और बोली उसमें बजती नहीं है तो मैं पंक्तियों को हिलाता–डुलाता हूँ। बोलचाल हिन्दी की मेरी ताकत है। उन्हे शब्दों की ध्वनि से विशेष मोह है। एक बार वीरेन्द्र कुमार जैन से ईश्वर की सत्ता के सम्बन्ध में बातचीत करते हुए उन्होनें भाव–विभोर होकर कहा था–"देखो वीरेन, शब्दो से नही, अर्थो से नही, ध्वनि से उसको कहा जा सकता है– शरण मैने शुरू में भी शब्दो की नही ली थी ध्वनि की थी तब भी वह, जो खींच लाई थी मुझे शब्दों के किनारे। चालीस वर्ष से कुटिया डालकर ,शब्दों की प्रवाह मान धारा के किनारे बसा हूँ। लोग हँसते ही है मेरी मुर्खता पर, कभी–कभी मैं भी हँसती हूँ किन्तु देखी है मैने बैठे–बैठे अपने कुटिया के द्वारे से भी शब्दों की तरंगों वर्णो की छटा।" (आदिम सुगन्धों के गायक, वीरेन्द्र जैन, भवानी भाई)

4. भवानी प्रसाद मिश्र कविता में शब्दंसयम और शब्दों के सही प्रयोग पर जोर देते है। उसकी मान्यता है कि–

"शब्दो का सही उपयोग
योग है
और कल्याणकारी है
योग की तरह
उसका मनमाना उपयोग
भोग है
और विनाशकारी है भोग की तरह।[2]

कवि की उक्त मान्यताओं ये यह निष्कर्ष निकलता है कि भाषा जब सांस्कारिक बन

1. दूसरा सप्तक, पृ0सं0 6
2. भवानी भाई, पृ0सं0 8

कर आती है तभी वह काव्य–भाषा कहलाती है। सांस्कारिक भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जिसे कवि विशेष प्रयोजन के लिए दिशा विशेष की ओर उन्मुख करे। शब्दों की कोई न कोई अर्थ भाव–मंगिमा होती है, पुराने शब्दों में भी नया अर्थ भरा जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मिश्र जी की भाषा व्यावहारिक अर्थगर्मित नवीनता, प्रेषणीयता और सरलता व प्रवाह शीलता आदि गुणों से युक्त है।

शब्द-विधान -

मिश्र जी के काव्य में प्राप्त शब्द–विधान के तीन वर्गो में रखकर समझा जा सकता है– तत्सम शब्दावली, तद्भव शब्दावली और विदेशी शब्दावली। इनके अतिरिक्त कवि में शब्द मिश्रित प्रवृति भी पर्याप्त मात्रा में दिखाई देती है। प्रत्यय और उपसर्ग से शब्दों का निर्माण भी कर लिया गया है। तो कभी एक शब्द के सादृश्य पर या संज्ञा जैसे शब्दों का निर्माण भी कर लिया गया है। मिश्र का शब्द विधान निम्नांकित रूप में प्रस्तुत है –

तत्सम शब्दावली :-

तत्सम शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है तत्+सम् अर्थात् उसके सामने कहने का अभिप्राय यह है। कि जिन शब्दों को संस्कृत शब्दावली के रूप में ज्यो का त्यो प्रयोग किया जाता है, मिश्र जी ने काव्य–संग्रहों से यहाँ तत्सम शब्दावली प्रस्तुत की जा रही है।

विस्तृत शून्य, दिव्याकाश, तर्क, शुद्ध, उदान्त, समग्र, सुबुप्तियों, विश्वचित, निमित, लोकोपकार, वृत्ति जागृति उज्जवल प्रार्थित तमिस्त्रा, प्रक्रिया सम्बेत, सहनाववतु अरण्य, अस्त रसाल, सौम्य कीर्ति शिखरों विद्षक, निरपेक्ष तत्व, दगति, महिषासूर मर्दिनी, दुर्गा सृष्टि, अनुशासन, पूर्व निर्देशक, प्राणपण, द्धव्यस्त, सर्वव्यापी, प्रकृति, आलोक, अनुरिक्त, अबोध, निष्कम्प, प्रवहमान, प्रार्थीवता, स्निग्ध, उद्गम, प्रतिबिम्ब एकाग्रचित्त, विस्मृति, मन स्मिृति प्रबल इत्यादि।

तद्भव शब्दावली :-

मिश्र जी ने अपने काव्य में जहाँ एक ओर तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है वही दूसरी ओर तद्भव शब्दों का भी पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है। इन शब्दों के विधान से कवि ने निम्नांकित कार्य किए है।

1. एक तो अभिव्यक्ति को सरल बनाने का कार्य सम्पादित किया है।
2. भाषा में एक प्रवाह और निरन्तरता का सृष्टि की है।
3. भाषा में सौन्दर्य की सृष्टि की है।
4. भाषा में प्रेषणीयता की अतिरिक्त शक्ति भर दी है।

तद्भव शब्दावली के कतिपय उदाहरण इस प्रकार से द्रष्टव्य है–

पंछी, माता, पंख, सपना, संघ, अमरत, कन–कन हास, चन्द्रभस, सूरज, रितु, गर्दन वैशाख, सावन, अँगुली, आँचल, सरसराती, पूत, पगडण्डी, खिसली, विच्छिया, पैग सरग–नसेनी, दीखे, घर, किसानिन, खेत, जागना, समुन्दर, किरन, हिरन, जतन, गेह, भीर इत्यादि।

विदेशी शब्दावली :-

विदेशी शब्दावली के अन्तर्गत उर्दू फारसी, अंग्रेजी के शब्दों लिया जा सकता है। उर्दू फारसी, के शब्दों का प्रयोग मिश्र जी के काव्य में अधिक मिलता है किन्तु अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम मिलता है। उर्दू फारसी के शब्दों के रूप में कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है–

फरियाद, अजीब, औरंगजेब समॉ हैवानियत, माफिक, महसूस, जरूरत अख्तियार, ताकत, फिक्र, अक्कल, औरंगजेब कर्ज, हाजिरि, गुम कसबा, लायक अलबत्ता, बदनाम दगाफरेब, किस्मत, खालिश, दोस्त सख्त, गलत, जमाना, जरा, आफत, गजब हुजूर फरोस, साज, और आवाज जमान–ए–हाल इत्यादि।

अंग्रेजी की शब्दावली मिश्र जी के काव्य में अत्यल्प है। फिर भी प्रचलित अनेक अंग्रेजी शब्द आ ही गए है यथा–पेपर, फायर, पम्प, नोहाऊ, फाइल, कोट अगस्त, टेलीफोन, लॉन, मोटर, रेडियों टॉजिस्टर, सेट, सैकेण्ड स्टेनों, हेमोक्रेसी रिपब्लिक इत्यादि।

लोक शब्दावली :-

लोक जीवन से गृहीत शब्दावली भवानी प्रसाद मिश्र को विशेष प्रिय है। उन्होनें अनेक शब्द विशेष मोह के साथ लोक अंचल से ग्रहण किए है यथा

उतारू, चौखट, चिल चिलाती, उलट–पलट, जमघट, बंग, नगर–डगर, पीके सिहाये खटका, झोपडी, भगदड़ निगोंही, उघम् फिसड्डी इत्यादि।

मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग :-

कवि भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य लोक चेतना से अनुप्राणित है। उन्होनें अपनी कविताओं में मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग करके एक नयी चटक और भाव भंगिमा के जीवन्त किया है।

उनकी अनेक रचनाओं में मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से सग्रहों को सार्थकता और व्यंग्य को वाणी मिली है। कुछ उदाहरण द्रव्टव्य हैं–

1. "जिसे भी रंगना चाहो

रंगों आज अपने रक्त से

आँखे मत चुराओं वक्त से

हर बात का वक्त होता है–।"[1]

2. " आँच न आए

अपनी मनमानी पर

बानी पर पाबन्दी बरकरार रहे।"[2]

3. "मगा मुश्किल यह तुम्हारी नहीं

मेरी है

क्यों कि तुम्हारे लिए

सब धान है

और बाईस पसेरी है।"[3]

4. शाबास

कितना तेल निकल रहा है

बाल सेक।"[4]

5. "तुम चाहो तो हमें

सावन के अन्धे कहलो

अपने किसी मन से।"[5]

6. "जिनके कन्धो पर

वे इन्ही के सिर मारे।"[6]

7. वे एक हद तक काफी बरसों से

बेहोसी में ही सही

हथेली पर सरसो जमाने की बात

कह रहे है।"[7]

8. "कलाई खुल गई अदालत में

---

1. आंखे चुराना, पृष्ठ 18, त्रिकाल संध्या आँच न आना।
2. पृष्ठ 26, वही,सबधान बाईस पसेरी होना।
3. पृष्ठ 35, वही, बाल से तेल निकालना।
4. पृष्ठ 35–36 वही, सावन का अन्धा होना।
5. पृष्ठ 41, वही, सिर मारना।
6. पृष्ठ 56 वही, हथेली पर सरसों जमाना।
7. पृष्ठ 866 वही, कलाई खुल जाना।

तो पड़ गए बड़ी तबालत में।''[1]

9. ''मौत से बचने के लिए
सिर पर पॉव रखकर,
भाग नहीं सकते उससे दूर।''[2]

10. ''वह कसे बना खुद और कहाँ से आया
यह अलग बात है
कल्पना के घोड़े दौड़ना नाहक है।''[3]

11. ''हम इन्हे सिर माथे लें
बने तो वापस दें इन्हें।''[4]

12. ''इतने निरर्थक रण के लिए
जिसमें आसमान
सिर पर उठाना पड़ता हो
पटकना पड़ता हो जिसमें
सूरज को जमीन पर।''[5]

13. ''उस दिन
आँखे मिलते ही
आसमान नीला हो गया था
और धरती फूलवती।।''[6]

14. ''बूढ़ो का दिल बैठ जाता है
आशा नहीं रहती रहती उन्हे
किसी से किसी बात की।''[7]

15. ''कि अब हम

---

1. पृष्ठ 122, त्रिकाल संध्या, कलाई खुलगई।
2. पृष्ठ 71, खुशबू के शिलालेख, सिर पर पॉव रखकर भगना।
3. पृष्ठ 87, कल्पना के घोडे दौडना।
4. पृष्ठ 20, बुनी हुई रस्सी सिर माथेलेना।
5. बुनी हु रस्सी, पृष्ठ 13, आसमान सिर पर उठाना।
6. पृष्ठ 23, वही,ऑखे मिल जाना।
7. पृष्ठ 50, दिल बैठ जाना।

न तीन में हैं न तेरह में।"[1]

सूक्ति विधान :-

मिश्र की भाषा में विशेष रूप से प्रयुक्त सूक्तियों को भी विस्मृत नही किया जा सकता। इनके प्रयोग से कवि ने एक ओर तो अपनी निश्चयात्मक बुद्धि का परिचय दिया है, और दूसरे भाव सौन्दर्य, परिस्थिति औचित्य व भाषायी आकर्षण को द्विगुणित कर दिया है। कतिपय इनके संग्रहों से ली गई सूक्तियाँ प्रस्तुत है–

"हर बात का वक्त होता है
हर एक घृष्टता के कचोल आँसू से गीले होते है।"[2]
"मगर हाल परिस्थितियों के तेजस्वी बुद्धि से निकलते है
तेजस्वी वृद्धि स्वार्थ के घेरे के बाहर देखती है
और वह स्वरूप होता है स्नेह और श्रद्धा और ममता का।"[3]
"कोई भी काम
कर्तव्य बन जाता है उसी क्षण
जब हमें लगता है कि यह उस निष्ठा का अंग है
जो जीवन के पहले क्षण से हमारे संग है।"[4]
"त्रुटि अँधियारे की बेटी है।"[5]
"अपने प्रति सख्त बनो
जिससे नरम बन सको दूसरों के प्रति।"[6]
"जो जितना ऊँचा चढ़ता है
उतना साबित कदम बनाना पड़ता है उसको।"
"इस दुनिया को सँवरना अपनी चिता रचने जैसा है।"
सुख और शोख
"कायरो को वार नही झेलने पड़ते।

---

1. पृष्ठ 44, खुशबू के शिला लेख तीन में न तेरह में
2. दूसरा सप्तक,पृष्ठ 24।
3. गॉधी पंचशती, पृष्ठ 348।
4. वही, पृष्ठ 380।
5. वही, पृष्ठ, 381।
6. वही, पृष्ठ 381।

अन्धकार और आलोक
मोह और मत्सर
शान्ति और संघर्ष बने रहे
वही वह जा रहा है।।"
"मरण भी तेरी एक विभूति है।"[1]
"शुद्ध अस्तित्व
जो सकल में एक
दिव्य छाया है।"[2]
खूबसूरत होते हैं
उदासी में गाये गये गीत।"[3]
"चिन्ता मत करो
सिर्फ अपने भीतर ही नही
    सब के भीतर विश्वास भरो
    वह उमर कर रहता है।"[4]

भाषागत विशेषताएँ :-

नये कविता के इतिहास में जब भाषा की चर्चा तब–तब भवानी प्रसाद मिश्र को याद किया जाएगा, वे प्रयोगशील वृत्ति के ऐसे नये कवि हैं जिन्होनें शब्दों को नया रूप और संस्कार दिया। उनमें नई शक्ति और अर्थोदभावन क्षमता भरी है, उनकी भाषा में अभिनय सौन्दर्य है, एक सजीव प्राणवत्ती है, एक सजीव अर्थ बोध है। अतः मिश्र जी के भाषायिक प्रदेय और महत्व को निम्नांकित आधारों पर आँका जा सकता है–

प्रेषणीयता :-

भाषा वैयक्तिक सम्पति नहीं है। उसका स्वरूप आधन्त सामाजिक है, ऐसी स्थिति में उसकी सार्थकता उसकी प्रेषणीयता में ही है। प्रेषणीयता के गुण रिचर्ड्स ने बड़ा बल दिया था। मिश्र एक प्रचेता कलाकार है, वह शब्दार्थ संयोग ही मिश्र की भाषा में प्रेषणीयता की

---

1. वही, पृष्ठ 46
2 वही, पृष्ठ 50
3. त्रिकाल संध्या, पृष्ठ 52
4. त्रिकाल संध्या, पृष्ठ 52

प्रतिष्ठा कर सका है। उनके सभी संग्रहों में ऐसे भाषायी मिलते है जिनमें अर्थवत्ता व प्राणवत्ता के कारण प्रेषणीयता का गुण आ गया है। स्पष्टीकरण के लिए एक उदाहरण द्रव्टव्य है–

जब अँधेरा घिरता है
मेरा मन डाल के टुटे पत्ते–सा
नीचे गिरता है
और आवाज सुनता हूँ मैं
डाल से अपने मन के टूटने की
जमीन पर आ गिरने तक।

–भवानी प्रसाद मिश्र, सम्पादक विजय बहादुर सिंह, पृष्ठ 49

माधुर्य एवं द्रवणशीलता :-

मिश्र की भाषा में माधुर्य और द्रवण शीलता भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। यथा–

फूल लाया हूँ कमल के
क्या करूँ इनको,
पसारें आप आँचल,
छोड़ दूँ,
हो जाय जी हल्का
किन्तु होगा क्या कमल के फूल का
कुछ नही होता
किसी भी मूल का
मेरी कि तेरी हो
ये कमल के फूल केवल मूल हैं।

– 'दूसरा सप्तक', पृष्ठ 9

वस्तुतः मिश्र की भाषा में माधुर्य और प्रसाद गुण की प्रधानता है, जो का यदा कदा ही कवि ने आश्रय दिया है। मिश्र जी प्राकृतिक सौन्दर्य, नारी सौन्दर्य और मानवीय करूणा के कवि है। यही कारण कि उनकी भाषा में उक्त दोनों गुणों का विधान कुशलता से किया गया है।

सरलीकरण की प्रवृत्ति :-

मिश्र जी जीवन के कवि है, उनके भावों में जीवन के दैनिक सन्दर्भ और व्यावहारिक संकेत है। वे भाषा को सरलीकरण की प्रवृत्ति में ढालनें के अधिक कायल है। यथा–

अगर में पंछी होता
तो शायद ही बैठता कभी
मोटी किसी शाखा शाखा पर
पहुँचता जिस वृक्ष्य के पास
हमेशा चुनकर चक्कर काटकर

– 'खुशबू' के शिला लेख,' पृष्ठ 23

एक उदाहरण और द्रष्टव्य है–

खूब सूरत होते है
उदासी में गाए गए गीत
तरल होते है वह
और स्वच्छ भी
जैसे मेरे आज के आँसू।

– 'त्रिकाल संध्या' पृष्ठ 52

संगीतात्मकता :-

प्रत्येक शब्द एक संगीत होते है, उसके प्रयोग से शब्द की आत्मा झंकृत होकर अर्थ को भी झंकृत कर देती है। मिश्र ने ऐसी संगीतात्मक सादृश्य परक और लयात्मक शब्दावली का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। मिश्र की कविताओं में संगीत बज उठता है, यथा–

मैं सन्नटा हूँ फिर भी बोल रहा हूँ
मैं शान्त बहुत हूँ फिर भी डोल रहा हूँ
यह सर–सर यह खड़–खड़ यह सब मेरी है
वह है रहस्य मैं उसको खोल रहा हूँ।
मै सूने में रहता हूँ– ऐसा सूना
ऊगा होता है जहाँ घास भी ऊना,
होता है झाड़ कही इमली, पीपल के,
घन अन्धकार होता है जिनसे से दूना। – दूसरा सप्तक' पृष्ठ 13

एक और उदाहरण देखिए–

मेरी आत्मा
ऐसी है जैसे पेड़ पर फल
तनिक कोशिश करो
तो उसे देख सकते हो,
छू सकते हो,
पा सकते हो
और तो और किसी फल की तरह
उसे खा सकते हो।

– 'बुनी हुई रस्सी' पृष्ठ 93

चित्रात्मक सौन्दर्य :-

छायावाद के सन्दर्भ में सुमित्रानन्दन पन्त ने जिस चित्रात्मक भाषा की हिमायत की थी, उसे मिश्र जी के काव्य में देखा जा सकता है। उनके शब्द सस्वर है, सबिम्ब है और मिश्र जी की चित्र–छवियाँ शब्दों के अन्तस् की प्रतिरूप है। कही–कही तो यह चित्रत्व अलंकृति से आया है, कहीं सपाटबयानी और कहीं भावोन्तेजक शब्दों के द्वारा आया है। भाषा की चित्रात्मकता के कारण ही कहीं–कहीं तो प्रत्येक शब्द या पंक्ति एक रूपाकार, अर्थाकार हिलोरें लेता हुआ दिखाई देता है, यथा–

तब दृष्टि हुई
वातायन से झंझाझकोर भीतर आया
लाया जल–कण नव वर्षा के छू, गई बूँद मेरा शरीर
मुँद गई आँख, मैं सिहर उठा, सुनकर सुदुर में एक तान,
वह था किसान, जिसने अपने छोटे–से घरती के टुकड़े को,
किया सुनहला, लगा घान,
उसकी अटपटी–सी भाषा में उल्लास मयूरों में उमड़ा
घन गरजन था उसका विवाह, वर्षा थी उसको पुत्र–जन्म।

– 'गीत फरोश', पृष्ठ 32

वर्षा के दिन किस की आँखों की उछाह, प्राणों में प्रवाह और शरीर में रोमांच पैदा नही करते, सन्ध्या–समय सारे आकाश को बादलों ने घेरा मानों आषाढ़ के काले मेघों ने घने

अन्धकार में अपना बितान ताना हो। झंझाझकोर के साथ नव वर्षा के जल–कण कवि को स्पर्श कर गये, एक सिहरन, एक गुदगुदी और फिर सुदूर में प्रथम वर्षा के अवसर पर किसान की आह्लादमयी तान मानों मयूरों का उल्लास, उसकी अटपटी वाणी में समाया हो, बादलों का गर्जन जैसे विवाह के उत्सव की स्थिति हो और वर्षा की सुखद अनुभूति जैसे किसान को पुत्र जन्म की अतुलनीय प्रसन्नता हो। उपर्युक्त पंक्तियों में यह भाव शब्दों के माध्यम से सजीव हो उठे है। वर्षा का पूरा चित्र पाठकों के सम्मुख उपस्थित हो उठा है।

अप्रस्तुत-योजना :-

अप्रस्तुत–योजना का दूसरा नाम उपनाम–योजना भी है। आधुनिक युग जहाँ एक और अलंकार के पक्ष धर मिलेंगे, वही दूसरी औरे ऐसे कवि या समीक्षक भी मिल जाएंगे जो अलंकार की अनिवार्यता को स्वीकार नही करेंगे। सुमित्रानन्दन पन्त ने प्रयोगशील कविता में कदम रखते समय यह घोषणा की थी कि, ''वाणी मेरी क्यो तुम्हें चाहिए अलंकार।'' तो नई कविता के कवियों ने अलंकार–योजना, विशेषकर अप्रस्तुत–योजना की नवीनता पर अधिक बल दिया है। यद्यपि इस सम्बन्ध में नये कवियों की कोई स्पष्ट मान्यता नही मिलती, तथापि उनकी कविताओं से यही निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वे अप्रस्तुत–योजना को काव्य के उत्कर्ष में विशेष महत्वशाली मानते है। आज नई कविता का कवि यह कहता है–

''चाँदनी चन्दन–सदृश हमें क्यों लिखें,
मुँह हमें कमलों–सरीखा क्यों दिखे,
हम कहेगें चाँदनी उस रूपये–सी है,
जिसमें चमक तो है पर खनक गायब है।

यहाँ पर दो प्रतिक्रियाएँ स्पष्टतः हमारे सामने आती है। एक तो यह कि नया कवि अप्रस्तुत–योजना की आवश्यकता को स्वीकार करता है और दूसरी और कवि को अप्रस्तुत । उपमानों के प्रति आसक्ति है। यदि ऐसा न होता तो कवि–चाँदनी को रूपयें जैसी कभी न लिखता। अस्तु नई कविता उपनामों के ग्रहण और प्रयोग के प्रति अधिक सतर्क है, अधिक ममत्व वाली है।

वास्तव में यह तथ्य है कि अप्रस्तुत, कविता के लिए आवश्यक धर्म है, किन्तु यह आवश्यक धर्मिता तभी स्वीकार की जा सकती है, तब तक कि यह स्वाभाविक रूप से काव्यगत भावों के साथ सहभागी दिखाई दे। अप्रस्तुत काव्य में प्रमुखतः निम्नांकित कार्य सम्पदित करते है–

इनके सहारे कवि का वर्ण्य विषय स्पष्ट से स्पष्टतर होता चला जाता है। यहाँ तक कि कभी–कभी तो अप्रस्तुत के साथ चलता हुआ कविितागत भाव–विशेष न समझ में आने वाली बात को भी बता देता है।

अप्रस्तुत वर्ण्य विषय को सौन्दर्य प्रदान करते है। कथ्य में अतिरिक्त आकर्षण भर देते है। इस लिए यह माना जाता है कि सामान्य कविता से विशिष्ट कविता तक अप्रस्तुत के बिना अपनी काव्य यात्रा को कवि बहुत–दूर तक नही ले जा सकते।

अप्रस्तुत वे आधार है जो कवि की अनुभूति को सम्प्रेणीयता के द्वार तक ले जाते है। उनमें राग–बोध और सौन्दर्य–बोध को उत्पन्न करने की सामर्थ्य तो होती ही है, भाव–प्रेषण की अभूत पूर्व शक्ति भी विद्यमान रहती है।

अप्रस्तुत की शक्ति को पहचानते हुए डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक ने उचित ही कहा है, उपनाम–योजना काव्य का प्राणतत्व है। इससे काव्य में रसादृता, प्रभाव विष्णुता, प्रेणणीयता और मर्म–स्पशिता का संचार होता है। अप्रस्तुत–योजना से प्रकृष्ट रूप में संयोजित कविता पाठक एवं श्रोता को काव्यानन्द प्रदान करने में सहायक होती है। इसी प्रकार नई कविता के समीक्षक डॉ0 चरण शर्मा का कथन है कि यदि उपनाम संजीव प्रतिभाशाली और विषयानुवर्ती होंगे तो साधारणी करण भी व्याहत नही हो सकता है। अतः साधारणीकरण, रस–व्यंजना और प्रेषणीयता की दृष्टि से अप्रस्तुत–योजना का अविस्मरणीय है। अनेक बार तो कवि के मन में ऐसी अनुभूतियाँ जागती है। कि उन्हें उपमनों के अभाव में सही रूप में अभिव्यंजना के द्वार पर लाकर खड़ा नही किया जा सकता, प्रेणणीयता की से तो बात ही अलग है। वस्तुतः उपमान काव्य–सौन्दर्य की रीढ़ तो होते ही है।

उपमानों का वर्गीकरण :-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उपमान, जो कि कविता में साम्य उपस्थित करने के लिए लाए जाते है, के सम्बन्ध में कहा है कि, "हमारे यहाँ साम्य मुख्यतः तीन प्रकार का माना जाता है–सादृश्य (रूपया आकार का साम्य) साघर्म्य (गुण या क्रिया का साम्य) और केवल शब्द साम्य (दो विभिन्न वस्तुओं का एक ही नाम होना)। इनमें से अन्तिम तो शब्द कीड़ा दिखाने वालों के नाम का है। रहे सादृश्य और साधर्म्य, यदि विचार करके देखें तो इन दोनों में प्रभाव साम्य छिपा मिलेगा।

सादृश्य व्यापार के आधार अप्रस्तुत का विभाजन इन रूप में किया जा सकता है–

1. मूर्त अप्रस्तुत के लिए अमूर्त, उपमान,
2. अमूर्त के लिए मूर्त उपमान,

3. मूर्त के लिए मूर्त उपमान,

4. अमूर्त के लिए अमूर्त उपमान।

इस वर्गीकरण के माध्यम से कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने काव्य में अप्रस्तुत योजना का सही मूल्यांकन नही हो पाता। इसके लिए यह आवश्यक है कि नई कविता प्रयुक्त उपमानों के लिए एक ऐसा सुविधापूर्ण करण किया जाए जो वैज्ञानिक ही हो और कविता की मूल्य प्रकृति तथा मूल चेतना को समझा सके। ऐसे वर्गीकरण से भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य, उनकी कवित्व–शक्ति तथा उनकी ग्रह्मशक्ति का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। इस कार्य के निमित विषय–स्त्रोत के आधार पर किया गया वर्गीकरण हमें अधिक वैज्ञानिक, अधिक व्यावहारिक और अधिक सुविधाजनक प्रतीत होता है। यही वर्गीकरण है–

1. प्राकृतिक उपमान, 2. सांस्कृतिक उपमान,

3. धार्मिक उपमान, 4. वैज्ञानिक उपमान,

5. समकालीन जीवन से गृहीत उपमान।

अब हम इसी वर्गीकरण के आधार पर कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने काव्य में प्रयुक्त उपमानों का परिचय प्राप्त करते है।

(i) प्राकृतिक उपमान :-

मिश्र जी का काव्य प्रकृति का काव्य है। उन्होनें अपनी काव्याभिव्यक्ति का सरस, सम्प्रेषणीय और अर्थगर्मित बनाने के लिए अनेक प्रकृतिगत उपमानों को अप्रस्तुत के रूप में प्रयुक्त किया है। मिश्र जी ने वर्ण–साम्य, प्रभाव–साम्य और आकृति–साम्य के आधार पर अनेक मौलिक उद्–भावनाएँ की है। इससे उनके काव्य में सौन्दर्य की अभिवृद्धि तो हुई ही है, काव्यगत सत्य अपने पूरे प्रभाव के साथ पाठक तक सम्प्रेषित भी हुआ है, मिश्र जी द्वारा उपमान के रूप में गृहीत कुछ प्राकृतिक उपकरण द्रष्टव्य है–

" माथे को फूल जैसा
अपने चढ़ा दे जो
रूकती–सी दुनिया को
आगे बढ़ा दे जो,
मरना वही अच्छा है।"[1]

---

1. दूसरा सप्तक, पृ0 सं0 22.

माथे को फूल जैसा उपमान दिया गया है, मृत्योपरान्त फूल की तरह लोकहित में जो बलि चढ़ जाय, वही सार्थक है।

इसी प्रकार एक और उदाहरण लें–

"जैसे हवा में अपने को
खोल दिया है इन फूलो ने
आकाश और किरणें और झोंको को
सौंप दिया है अपना रूप
और उन्होनें जैसे अपने में
मरकर भी उन्हे छुआ नही है
ऐसा नही हो सकता क्या?"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में हवा के झोके, खिले हुए के साथ अठखेलियाँ करते है, किरणें भी क्रीड़ाएँ करती है। फूल अपना सब कुछ समर्पित कर देतेहै– हवा, आकाश और किरणों के लिए, लेकिन यह तमाम उपकरण फूल का स्पर्श करके भी उसे मलिन नही करते। ऐसा उन्मुक्त वासना–विहीन समर्पित जीवन क्या मानवीय सन्दर्भ से सम्भव नहीं है?

इसी तरह –

"अँधेरी रात
पी लेती है जैसे
छाया को
ऐसे पी लेता है
अर्थो को मेरा मन।"[2]

यहाँ अर्थ की तलाश में भटकता कवि–मन अँधेरी रात–द्वारा छाया को पी लेने की प्रक्रिया से उपमित किया गया है। एक उदाहरण प्राकृतिक उपमान का और लें–

"जब अँधेरा घिरता है
मेरा मन डाल के पत्ते सा
नीचे गिरता है
और आवाज सुनता हूँ मैं
डाल से अपने मन के टूटने की।"[3]

---

1. अंधेरी कविताएं– पृ0सं0 33।
2. बुनी हुई रस्सी– पृ0सं0 27।
3. दूसरा सप्तक–पृ0सं0 16।

ठीक इसी प्रकार का प्रयोग और–

"बूँद टपकी एक नम से
और जैसे पथिक
छू मुस्कान चौंक और घूमे
आँख उसकी जिस तरह
हँसती हुई–सी आँख चूमे
उसी तरह मैने उठाई आँख।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण में मिश्र जी दृष्टिपात की अपनी स्थिति को आकाश से बूँद टपकने के प्राकृतिक दृश्य से जोड़कर एक विशेष प्रभाव की सृष्टि की है।

(ii) सांस्कृतिक उपमान :-

सांस्कृतिक उपमानों में धर्म, दर्शन, संस्कृत और इतिहास से सम्बन्धित उपमानों को स्थान प्राप्त है। इन अप्रस्तुतों के प्रयोग से कवि जहाँ एक और अतीत के सांस्कृतिक गौरव से जुड़ता है, वही दूसरी ओर वह इनमें प्रयोगगत नवीनता लाकर मौलिकता, नवीनता और सौन्दर्य–बोध क्षमता का भी परिचय देता है। मिश्र जी के काव्य में सांस्कृतिक वर्ग के उपमानों को पूरा व्यापकता के साथ अपनाया गया है। कवि संस्कृति–बोध, इतिहास ज्ञान और धार्मिक पावनता के सहारे अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

कवि मिश्र जी ने कई रचनाओं में इतिहासाश्रित उपमानों के प्रयोग में पूरे कला–कौशल से काम लिया है। यथा–

"ईशा और गांधी का
जैसी मरनी पड़ी है
और जैसी मरनी पड़ेगी
हमारे पड़ोस के उस लड़के को
जो अपने को कवि मानता है।"[2]

इन पंक्तियों में कवि की नियति को ईसा और गांधी की नियति से उपमित पर उसकी महानता, त्याग, तपस्या और कर्तव्य को व्यक्त किया गया है तथा सांसारिक न्याय को भी। इस प्रकार बहुत कम शब्दों में बहुत बड़ा अर्थ मरने में मिश्र जी को सफलता मिली है।

---

1. दूसरा सप्तक, पृ0सं0 16।
2. खुशबू के शिला लेख–पृ0सं0 35।

(iii) धार्मिक उपमान :-

नँई कविता में दूसरे सप्तक के माध्यम से प्रकाश में आने वाले कवियों में मिश्र और भारती दोनों की विशेषतः धार्मिक एंव पवित्र भावों के अभिव्यंजक उपमानों के प्रयोगकर्ता के रूप में सामने आते है। मिश्र जी में अपनी कृतियों में कतिपय स्थानों पर धार्मिक अप्रस्तुतों का प्रयोग भी सफलता के साथ किया है, जैसे–

"कुछ शब्द सुमन रखता हूँ
तुम तक नहीं पहुँचेंगे मेरे सुमन अज्ञात है यह तो
किन्तु "हृदय की मेरी श्रद्धा तुम भी जानों"
ऐसा मुझको कभी लगा ही नहीं, जगा ही नही भाव यह
सारे जग में लक्ष–लक्ष है भक्त तुम्हारे,
मैं उनमें से एक रहूँ अविशेष।"[1]

यहाँ आराधना की पद्धति को उपमा के रूप में गृहीत कर कवि मिश्र ने शब्द–सुमन अर्पण कर अपने कर्म को नया सौन्दर्य प्रदान किया है। ऐसे ही–

"अकेले बैठा हूँ मैं
अँधेरे के तीर पर
बल्कि अंधेरे के नीर पर
ऐसे किसी योगी की तरह
जो पानी पर
लगाकर पद्मासन बैठा रहता है
भीतर नही जाता पानी के
कमल के फूल की तरह।"[2]

योगी का पद्मासन लगाकर पानी पर कमल की तरह बैठना मिश्र जी द्वारा अच्छा उपमान चुना गया है। इससे पूरी स्थिति स्पष्ट हो गई है– तत्कालीन परिस्थिति में कमल की तरह निरपेक्ष रहकर निष्कलुषता की स्थिति उजागर हो गई है।

एक और उदाहरण धार्मिक उपमान का देखें–

"माला की तरह प्राणो को चरणों पर चढ़ा दूँ
मैं चाहता हूँ प्राण यो मोल चढ़ा दूँ

---

1. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 77।
2. त्रिकाल सन्ध्या– पृ0सं0 72।

चरणों पर चढ़े प्राण तो हूँ तो प्राणवान मैं
मेरे प्रमाण घन्य हैं महिमा महान मैं
मेरे प्रमाण लो कि मेरे प्राण विकल
अब तक मूँदे थे आज किरन छूके कमल है।"[3]

यहाँ प्राणों की उपमा माला से दी गई है। माला एक धार्मिक उपकरण है। इसकी पवित्रता, सार्थकर्ता आदि को प्राणों से जोड़कर अर्थ में एक नई प्राणवत्ता कवि मिश्र जी ने उत्पन्न की है।

(iv) वैज्ञानिक उपमान :-

कवि भवानी प्रसाद मिश्र आधुनिक संवेदना के कवि है, किन्तु उनकी आधुनिक संवेदनाएँ एक पारम्परिक और अभिजात्य गरिमा से युक्त है। उनकी अभिव्यंजना के लिए कवि ने जिन अप्रस्तुतों का चयन किया है, वे या तो सांस्कृतिक वर्ग के है, या प्राकृतिक वर्ग के दैनिक जीवन के विविध व्याधाओ से सम्बन्धित अप्रस्तुत भी मिश्र जी से काव्य में व्यापक रूप से मिलते है, किन्तु वैज्ञानिक उपमान उनके अप्रस्तुत भी मिश्र जी से काव्य में व्यापक रूप से मिलते है, किन्तु वैज्ञानिक उपमान उनके काव्य में अपवाद–स्वरूप ही मिलते है। आज अनेक नये कवि जब वैज्ञानिक क्षेत्र की उपलब्धियों और तत्सम्बन्धी उपकरणों से अप्रस्तुतों और प्रतीकों का चयन कर रहे है, तब भी मिश्र जी की दृष्टि उधर नही गई है। इसके दो कारण सम्भावित है, एक तो यह कि, कवि के पास जो जीवन–दृष्टि है वह सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में ही विकसित हुई दूसरे, कवि की चिन्तना और आनुभूतिक प्रक्रिया का स्तर भानुकता और संवेदना–प्रधान ही अधिक है। इन दोनों कारणों से विशेष रूप से कवि मिश्र ने अपने काव्य में वैज्ञानिक उपमानों का सीमित प्रयोग किया है। फिर भी ढँढने पर वैज्ञानिक उपमानों के प्रयोग को उनके काव्य में देखा जा सकता है। कुछ उदाहरण देखे–

"और यह कोई ऐसा बमवारी
भूचाल या आसमानी सुल्तानी का दिन नही था
कि भाग रहे हो सड़क पर जैसे–तैसे सब।"[2]

बमवारी के दिन जैसे समय के रूप में वैज्ञानिक उपमान को लेकर कवि ने समय की भयभीत को उजागर किया है। इसी प्रकार–

"टेलीफोन के तार
एक–से बने

1. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 87।
2. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 32।

रूपहीन सरकारी घर
सब के मानो
अपनी एक आत्मा है
और चेहरा है।"[1]

(V) जीवन-व्यापारों से गृहीत उपमान :-

नई कविता में ऐसे उपमानों का एक विशाल कोष मिलता है, जो जीवन के क्रिया–व्यापारों और नित्य–प्रति व्यवहार में आने वाले उपकरण, पदार्थों और नामों व घटनाओं से गृहीत है। कवि मिश्र जी कलाप्रिय एवं यथार्थ बोध के वाहक कलाकार है। अतः उनके काव्य में इस प्रकार के उपमान प्रायः प्रयुक्त मिलते है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है–

"बातें भी चल रही है
आँखे उनकी
एक–दूसरे की तरफ
उठते–गिरते ऐसी जल रही है
जैसी बातियाँ नीराजनों की तुलसी के चौरे पर।"[2]

उपर्युक्त उदाहरण में पूरे दृश्य को तुलसी के चौरे पर नीराजनों की बातियाँ जलने के उपमान से सार्थकता मिली है।

"अँधेरी रातो में
डर को मूलने के लिए
जैसे कोई अकेला आदमी
रास्ते पर
चलता हुआ गाता है
जोर–जोर से
इस तरह आता है आजकल
स्वर मेरे मन में
और फिर होंठो पर।"[3]

इन पंक्तियों में भय की लय को दैनिक जीवन के साधारण–से व्यापार चलते हुए गाने

---

1. खुशबू के शिला लेख, पृ0 सं0 119।
2. खुशबू के शिलालेख पृ0 142।
3. त्रिकाल संध्या, पृ0सं0 78।

से उपमित कर सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की है। इसी प्रकार एक कविता में सूरज के डूबने को 'नीबू' से उपमित किया गया है–

"हम दो थे / मगर फिर

नीबू की तरह / पीला सूरज / डूब गया।"[1]

छन्द-विधान :-

'लय' जीवन–व्यापार को संचालित करने वाली शक्ति है। यही शक्ति कला, साहित्य के मूल में भी विद्यमान रहती है। यहाँ 'लय' से तात्पर्य विविध कला विधियों के मध्य आविर्भूत होने वाली वस्तुओं के गति एवं यति विषयक ऐसे समानुपात से है, जो इन्द्रिय बोध हो।" अरस्तू ने काव्य की दो मूल प्रेरणाएँ मानी है– अनुकरण की प्रवृत्ति तथा संगीय–लय। उसके अनुसार अनुकरण की भांति यह भी मानव में जन्म जात होती है। और छन्द स्पष्टतः लय का ही रूप–विधायक अंग है। मन की विश्रृंखल और अव्यवस्थित अवस्था को संयमित करने वाला तत्व जिस प्रकार राग है उसी प्रकार काव्य में एकात्मकता तथा व्यवस्था लाने वाला तत्व छन्द है।

काव्य में निर्विवाद रूप से छन्द की महत्ता को स्वीकार किया गया है। आज के नये कवि भले ही छन्द को छन्द की अर्निवार्यता को नकारते हो, वे किसी न किसी छन्द के बन्धन में बँध अवश्य जाते है। यह ठीक है कि छन्द शास्त्र एवं पूर्व परम्पराओं का सामने रखकर वे काव्य–रचना नही करते है, परन्तु मुक्त छन्द में तो लिखते ही है और मुक्त छन्द भी तो एक प्रकार का छन्द ही है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी छन्द को लय मानते है। उन्होनें कहा है, "मेरा छन्द से तात्पर्य उस रिदम से है जो सर्वत्र प्रवाहित है– छन्द का अर्थ केवल मीटर नही है। वास्तव में छन्द और लय एक–दूसरे के पर्याय के रूप में ही गृहीत है। छन्द से लयात्मकता को पृथक नही किया जा सकता। नयी कविता तक पहुँचते–पहुँचते छन्द का स्वरूप काफी बदल गया है। अधिकांश रचनाएँ आज कल मुक्त छन्द में ही लिखी जाने लगी है। मात्रा, वर्ण, गुरू, लघु आदि के नियमों में बँधा जो छन्द का स्वरूप है नये कवि की दृष्टि में वह कृत्रिम है।

भवानी प्रसाद मिश्र की छन्द सम्बन्धी धारणा :-

हमने अपने इस प्रबन्ध के दूसरे अध्याय में कवि मिश्र की कविता शैली, छन्द और लय पर विचार किया है। फिर भी सांकेतिक रूप में यहाँ कवि मिश्र जी की छन्द के विषय में मान्यताओं पर विचार लेना समीचीन रहेगा।

कवि मिश्र ने छन्द और लय को निर्विवाद रूप से अंगीकार किया है। यही कारण है

---

1. तूस की आग पृ0सं0 20।

कि कवि मिश्र की कविता में छन्द बद्धता है, लेकिन उन्होनें अपनी कविता को छन्द बद्ध करके भी बोझिल होने से हमेशा बचाया है। भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने काव्य में प्रायः मुक्त छन्द मुक्त छन्द का प्रयोग किया है। वे नयी कविता के छन्द के विषय में यह स्वीकार करते है कि आज की कविता छन्द और लय के अभाव में केवल संग्रहों में बन्द रह गयी है। परंपरागत या छन्द शास्त्रीय सिद्धान्तों पर आधारित कविता को स्वीकार करने के लिए सहमत नहीं है, वे बँधे–बधायें छन्दों को अपनाने के पक्षघर नहीं है। वे मानते है कि छन्द शास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर लिखे गये काव्य में एक रसता आ जाती है। इसी लिए मिश्र जी कविता में छन्द का होना आवश्यक मानते है। यदि कविता में छन्द का प्रयोग नही किया जाएगा, तो कविता श्रव्य होने से वंचित रह जाएगी। मानव–जीवन में कही गयी हर बात किसी–न किसी छन्द में अवश्यक बँधी होती है।

छन्द-वर्गीकरण :-

छन्द शास्त्र में सामान्यतः छन्द दो प्रकार के माने गए हैं– मात्रिक और वर्णिक। वर्णिक छन्दों में वर्णो की निश्चित संख्या और लघु–गुरू का विधान निश्चित रहता है। तीन वर्णो की इकाई से एक गण की निर्मित होती है। ये गण आठ प्रकार के होते है और इनसे ही लघु गुरू का स्वरूप पूर्व निश्चित रहता है। मात्रिक छन्द तो सीधे–सीधे मात्राओं पर ही आधारित रहते है। मात्रिक छन्दों में मात्राओं की निश्चित संख्या के स्थान विशेष पर लघु एवं गुरू का भी निर्देश रहता है। मात्रिक छन्दों का प्रयोग आधुनिक युग में विशेष रूप से हुआ है। वर्तमान काव्य प्रवृत्तियों का ध्यान में रखकर छन्दों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

1. परम्परागत छन्द,
2. किंचित परिवर्तित परम्परागत छन्द,
3. मिश्रित परम्परागत छन्द
4. नवीन छन्द
    1. योजना–परिबद्ध छन्द,
    2. मुक्त छन्द,
5. अन्य भाषाओं के प्रभाव से आये छन्द।

कवि भवानी मिश्र के काव्य में प्रयुक्त छन्द :-

उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर नयी कविता के किसी भी कवि के छन्दों का विशेषण किया जा सकता है। इसी वर्गीकरण को ध्यान में रखकर हमने मिश्र जी के काव्य में प्रयुक्त छन्दों के वर्गीकरण को यहाँ प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। ध्यातव्य है कि जहाँ काव्य–शिल्प

के अन्य विविध अंग इस युग के कवियों द्वारा प्रयोग–प्रभावित रहे, वहीं छन्द के प्रति भी इन कवियों में नवीनता का आग्रह विघमान है। मिश्र जी भी इस आन्दोलन में अपने कवि साथियों से पीछे नहीं है।

मिश्र जी के काव्य में परम्परागत छन्द बहुत कम है, कुछ परम्परागत छन्दों में रद्दोबदल अवश्य की गई है। कही–कही दो परम्परागत छन्दों के मिश्रण से मिश्रित छन्द का निर्माण किया है। एक ऐसा ही उदाहरण द्रष्टव्य है–

बुनी हुई रस्सी को घुमाएँ उल्टा– 21 मात्राएं
तो वह खुल जाती है– 12 मात्राएं
और अलग–अलग देखे जा सकते हैं 21 मात्राएं
उसके सारे रेशे 12 मात्राएं

इस कविता में 21 तथा 12 मात्राओं वाले क्रमशः 'प्रवासी' तथा 'मालिका' छन्दों को मिलाकर एक मिश्रित छन्द निर्मित किया गया है।

कुछ परम्परागत छन्दों का प्रयोग भी कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने किया है। ऐसे दो छन्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है–

मनोरमा (अर्द्धसम) छन्द–

"सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए–से
ऊँघते अनमाने जंगल।"[1]

भुजंग प्रयाता छन्द –

"जी हाँ हुजूर मैं गीत बेचता हूँ – 20 मात्राएं
मै तरह–तरह के गीत बेचता हूँ – 20 मात्राएं
मै किसिम–किसिम के गीत बेचता हूँ[2]

इसी प्रकार उनकी 'सन्नाटा' नामक कविता में 'राधिका' नामक परम्परारित छन्द का प्रयोग किया गया है।

मुक्त छन्द का इतिहास हिन्दी–काव्य के लिए विशेष पुराना नही है। छायावाद के समय से ही इस छन्द का प्रारम्भ एवं समुचित विकास माना जाता है। निरन्तर विकास की ओर अग्रसर होता हुआ यह छन्द नयी कविता में सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है। यह माना जाता

1. प्रत्येक पंक्ति में 14–14 मात्राएं, दूसरा सप्तक, पृ0सं0 10
2. 20 मात्राएं– दूसरा सप्तकपृ0सं0 25।

है कि निराला ने इस छन्द सर्व प्रथम प्रयोग अपनी कविताओं में किया था। इस सम्बन्ध में उसका कथन है, कि "मुक्त छन्द, छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है। मनुष्य की मुक्त की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्य की मुक्ति कर्मो के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना है। मुक्त छन्द का सार्थक उसका प्रवाह ही है। वस्तुतः मुक्त छन्द का प्रवाह ही उसकी जीवनी शक्ति है आत्मा है। अंग्रेजी में मुक्त छन्द का पर्याय फीवर्स है, जिसका अर्थ है कि छन्दहीन कविता किन्तु उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हिन्दी में मुक्त छन्द इस अर्थ का घोतक नही है। नयी कविता में मुक्त छन्द मं लय वैविध्य भी मिलता है क्योंकि मुक्त छन्द भावभिव्यक्ति के लिए किसी प्रकार की बाधासहन करने वाला छन्द नहीं है। भाव और रस के परिवर्तन के साथ लय का परिवर्तन होना भी स्वाभाविक ही है। लय वहीं एक सी हो सकती है, जहाँ भाव और रस में एक ही घारा रहे। वास्तव में मुक्त छन्द की धारणा वही तक वाक्य में कहें तो मुक्त छन्द वह छन्द है जिसका प्राणतत्व लय है। मुक्त छन्द के प्रयोक्ता कवि और अन्य विद्वान इस बात से सहमत है कि मुक्त छन्द की इमारत लय भी नींव पर खड़ी है। लय मुक्त छन्द प्राण है। एक मात्र गुण है। यदि उस में लय का अभाव हो तो उसमें और गद्य में कोई भेद नही रहता। गिरिजा कुमार माथुर विकसित लय–पट को ही छन्द की संज्ञा देते है। अज्ञेय ने भी नयी कविता के मुक्त छन्द के सन्दर्भ में कहा है, "एक तरफ वह छन्द के बन्धन को तोड़ती है, तो दूसरी ओर यह संगीत यानी गेय तत्वों को अधिक अपनाना चाहती है।"

मुक्त छन्द के स्वरूप के स्पष्ट करने के बाद उसकी कुछ विशिष्टताओं का निर्देश कर देना सभी चीन प्रतीत होता है। संक्षेप में मुक्त छन्द की कुछ उल्लेखनीय विशेषताएं इस प्रकार है।

1. ध्वनि–माधुरी के लिए अन्त्यानुप्रास के विविध स्वरूपों का आयोजन,
2. चरणान्तों में सम्पूर्ण चरणों का आवृत्ति,
3. भावानुकूल ध्वन्यार्थक शब्द–योजना का प्रयोग
4. विशेष भाव को व्यक्त करने वाले शब्दों का चयन
5. सरलता के लिए अविधा शक्ति और प्रसाद गुण का उपयोग,
6. मुहावरे दार सरल प्रचलित भाषा का प्रयोग और व्यंजना शक्ति की अभिवृद्धि के लिए उपर्युक्त विदेशी शब्दों का सहज ग्रहण,
7. गद्य के समीप वाक्य–योजना,

8. जन–भावना के अनुकूल अभिव्यक्ति तथा विषयों का चयन,
9. एक भाव को एक ही पद्यांश में व्यक्त करना,
10. निश्चित लय पर्व का प्रयोग।

कवि मिश्र ने वाणी के लिए अलंकारों की आवश्यकता कभी महसूस नही की। इस लिए वे छन्द, अलंकार आदि की उलझनों से दूर रहे है। मिश्र के काव्य में छन्द विधान पर्याप्त मर्यादित है। शिल्पगत उच्छखलता का भी अभाव है, क्यों कि वे सहज कवि है, उपयोगिता वादी भी फलतः छन्द–योजना में उन्होनें मुक्त छन्द की अपेक्षा बँधे छन्द को उपयोगी स्वीकार किया है। परन्तु यह स्थिति उनकी प्रारम्भिक रचनाओं तक ही सीमित है, परवर्ती रचनाओं में उन्होनें छन्द के बन्धन से छुटकारा पाकर प्रायः सर्वत्र मुक्त छन्द को ही अपना लिया है। मुक्त छन्द का एक प्रयोग द्रष्टव्य है–

"रूकते नही है रोके
ये अनचाहे सुलभ
अनमाँगे मोती
किरने हेम–सज्जित
रोमांचित दूब दिल
गीत घाटी के पार के
परिभार्जित वर्णों में
घुली गन्ध छन्द मनक रही सरिता
सब कुछ फेरी हुई आँखों के आगे।।"[1]

लय :–

अज्ञेय ने कहा है आज कल की कविता बोल चाल की अन्विति माँगती है, पर गद्य की लय नही माँगती। तुक–ताल का बन्धन उसने अनात्यंतिक मान लिया है, परन्तु लय को वह उक्ति का अभिन्न अंग मानते है। डॉ0 जगदीश गुप्त ने लय के दो भेद माने है– शब्द की लय और अर्थ की लय। रिचर्डस के विचारों की व्याख्या और पुष्टि करते हुए डॉ0 गुप्त ने शब्द लय से अर्थ की लय को अधिक महत्व बताया है। इसके साथ ही उन्होनें कहा है कि बिना अर्थ को लिए शब्द की लय अधिक प्रभावशाली नही हो सकती। यह बात शब्दशः सत्य है, परन्तु रिचर्ड्स के कथन की दृष्टि शब्द और अर्थ की संपृक्तता में समाहित है। उन्होनें शब्द

1. चकित है दुःख, पृ0सं0 94।

की कोई स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार नही की, वस्तुतः शब्द की अनुपस्थिति में लय अर्थ को कैसे अंगीकार किया जा सकता है। शब्द और अर्थ का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। फलतः दोनों को मिलाकर की लय कहना उचित रहेगा।

भवानी प्रसाद मिश्र गीतात्मक संवेदना के कवि है। इनकी कविताओं में जो तुक और लय की आकर्षण पाया जाता है, वह इनकी इसी गीतात्मक प्रवृत्ति का घोतक है। उनकी प्रायः सभी रचनाओं में यह प्रवृत्ति मिलती है। आरम्भ की रचनाओं में जो लय और प्रवाह है. उनकी शिल्पगत उपलब्धियों का परिचायक है, इसी कारण वैचारिकता से बोझिल स्वर प्रवाह में व्यवधान नही डाल पाते। यह कहना अनुचित न होगा कि मिश्र जी की रचनाओं में सशक्त गद्यात्मक लय विद्यमान रहती है। तुक और लय के दो–तीन उदाहरण देख लेना पर्याप्त रहेगा–

"कोई सागर नहीं है अकेलापन
न वन है
एक मन है अकेलापन
जिसे समझा जा सकता है
आर–पार जाया जा सकता है जिसके
दिन में सौ बार
कोई सागर नहीं है
न बन है
बल्कि एक मन है
हमारा तुम्हारा सब को अकेलापन।"[1]

इसी प्रकार उनकी सुप्रसिद्ध रचना 'गीत फरोश' कुछ पंक्तियाँ ले–

"यह गीत सुबह का है गाकर देखें
यह गीत गजब का है, ढाकर देखे,
यह गीत जरा सूने में लिखा था,
यह गीत वहाँ पूने में लिक्खा था,
यह गीत पहाड़ी पर चढ़ जाता है,
यह गीत बढ़ाये से बढ़ जाता है।

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 41

यह गीत भूख और प्यास भगाता है,

जी हाँ यह भसान में भूत जगाता है।"[1]

अब उनकी एक और कविता की कुछ पंक्तियों में लय विधान देखें–

"उठो, पाँव रक्खो रकाब पर

अंगल–जंगल नदी–नाले कूद–फाँदकर

धरती रौंदों।

जैसे भादों की रातों में बिजली कौंधे,

ऐसे क़ौंधो।"[2]

आधुनिक गीत–काव्य की धारा में मिश्र जी के गीत प्रेरणा–स्त्रोत का कार्य करते है। गाने की वृत्ति मानव मन की सहज प्रवृत्ति है। परिणाम स्वरूप इस बदली हुई परिस्थिति में भी गीत अपने स्वरूप की खोज करता रहा। अज्ञेय, शमशेर, गिरिजा कुमार, माथुर, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, केदार नाथ सिंह और भवानी प्रसाद मिश्र आदि ने इस दिशा में कुछ नये प्रयोग किये है। इन नवीन प्रयोगों के कारण ये प्रयोगशील और नये कवि नवगीत के प्रवर्तक गीत–कारों का श्रेय प्राप्त करते है। मिश्र जी के विचार गीत के सम्बन्ध में बड़े साफ और ध्यान देने योग्य है। वे गीत के घिसे–पिटेपन और गीत के साथ किए जाने वाले परम्परागत व्यवहार को नवगीत के विकास में बाधक मानते है। इस लिए वे सचेत करते है, आज से ज्यादातर गीत–गीत लेखकों के अपने–अपने पाले हुए पंक्षी है, वे हमारे खुले आकाश के धन नहीं है और जब तक ऐसा हो नही जाता या जब तक गीत की विद्या को आज क्या कभी भी एक उपयोगी विद्या मानता कठिन तो होगा ही, ऐसा होने के लिए गीत को व्यक्तिगत जीवन की गहराई और सामाजिक जीवन का विस्तार आत्मसात करना ही होगा।

गीतों की वैचारिक बोझिलता को उन्होनें कतिपय नवीन विषयों का काव्य में प्रयोग करके दूर कर दिया है। सन्नाटा, मसान, नर्वदा के चित्र, सत्य काम, दहन पर्व, संस्कृति का मोर्चा और आशागीत आदि मिश्र जी की ऐसी गीत रचनाएँ है, जहाँ उन्होनें कवि परम्परा से बिलग सर्वथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण प्रस्तुतकर अपनी विविधता का परिचय दिया है। सन्नाटा, आशा गीत और दहन पर्व जैसी रचनाएँ कथागीत की परिधि को छूती है। इन लम्बी कविताओं में गीतात्मक स्वर है, लेकिन इससे आगे इसी शिल्प का विकास करते हुए खूशबू के

---

1. गीत फरोश
2. चकित है दुःख, पृ0 सं0 34

शिलालेख नामक एक और भी लम्बी कविता उन्होनें लिखी है, जिससे लय, ताजे बिम्ब, प्रतीक और सहजता एक जुट होकर मिश्र जी के काव्य–शिल्प का प्रति निधित्व करते है। इनसे भिन्न मिश्र जी ने कई नव गीत भी लिखे है जैसे–

"सखा ओ
छाया दो
मन की तपन को
देखा–अनदेखा मत करो
अपनी ही मर्जी–रेखा मत करो
चित्त के इस तट पर
किरने ही किरनें
कहाँ तक सहूँ
ध्यान दो थोड़ा ही सही
छाया–छाया कि मेरा
इस तट पर
सखाओं छाया दो।
छाया भी चाहिए
विरक्ति का प्रकाश पड़ चुका
अनुरक्ति का माया भी चाहिए।
सखाओं, छाया दो।"[1]

एक नव गीत और द्रष्टव्य है–

"मुख खोला भर कि तैयार कोई सजा है।
दुःशासन को अनुशासन पर्व कहो तो ठीक
पुलिस और सेना की क्रूरता पर गर्व–करो तो ठीक
और यह भी कहो कि ही व्यक्ति
देश है एक ही व्यक्ति प्रजा है
यह कैसा मजा है।"[2]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0 सं0 95
2. त्रिकाल संख्या, पृ0सं0 120

भवानी प्रसाद मिश्र ने कुछ अन्य भाषाओं के छन्दों को भी अपनाया है। गजल एक ऐसा ही विदेशी छन्द माना जा सकता है, जिसका प्रयोग कुछ रचनाओं में कवि मिश्र ने किया है। आज तो हिन्दी में गजलें पर्याप्त मात्रा में लिखी जा रही है। मिश्र जी की एक गजल–रचना द्रष्टव्य है–

"हँसी आ रही है सबेरे से मुझको
कि क्या घेरते ही अँधेरे में मुझकों।
बँधा है हर एक नूर मुट्ठी में मेरी
बचाकर अँधेरे के घेरे में मुझको।
करें आप अपने निबरने की चिन्ता
निबरना न होगा निबेरे से मुझको।
अगर आदमी से मुहब्बत न होती
तो कुछ फर्क पड़ता न टेरे से मुझको।"[1]

अलंकार-विधान :-

"काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते" दण्डी,

शब्द और अर्थ की शोभा बढ़ाने वाले धर्म को अलंकार कहते है। अलंकार का सुप्रसिद्ध अर्थ है आभूषण या गहना। जिस प्रकार सुवर्ण आदि के आभूषणों से शरीर की शोभा बढ़ती है उसी प्रकार जिन उपकरणों से काव्य में सुन्दरता आती है उन्हें (उसी सादृश्य से) अलंकार कहते है।

वस्तुतः शब्द और अर्थ को एक–दूसरे से सर्वथा पृथक कर रखना सम्भव नहीं है क्योंकि वे परस्पर अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध है। यदि शब्द है उसका कुछ न कुछ अर्थ अवश्य होगा, वैसे ही अर्थ की सत्ता भी शब्द के बिना नहीं हो सकती। (निरर्थक शब्दों से काव्य का कोई प्रयोजन नहीं, अतः उसकी शंका का अवकाश नहीं है) जिस प्रकार प्राणहीन शरीर निष्प्रयोजन है तथा शरीर वियुक्त प्राण अगोत्तर या अग्राहय है उसी प्रकार अर्थहीन शब्द अनुपादेय अथवा अव्यवहार्य और शब्दरहित अर्थ अबोध्य या अज्ञेय है। जैसे स्थूल। (मूर्त) शरीर से ही सूक्ष्म (अमूर्त) प्राण का अनुभव होता है वैसे, ही अमूर्त भाव या अर्थ को अनुभवगम्य बनाने के लिए मूर्त शब्द का आश्रय लेना अनिवार्य है। अर्थ को शब्द का प्राण और शब्द को अर्थ शरीर कह सकते है। तो शब्द ही वह माध्यम है जिसके द्वारा अर्थ या भाव की

1. त्रिकाल संध्या– पृ0सं0 65

प्रतीति की या करायी जा सकती है। इस तरह हैं तो दोनों अविच्छेय, फिर भी गिरा–अरथ जल–बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। उनके अभिन्न होने पर भी भिन्नतया प्रयोग होता है; यह शब्द ठीक नहीं है, यह अर्थ गलत है' आदि। ऐसे स्थलों पर' प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' प्रधानता से नाम दिये जाते हैं–इस नीति के अनुसार उनका पृथक्–पृथक् व्यवहार होता है। इसी को अन्वय–व्यतिरेक भी कहते है। किसी के रहने पर कोई रहे, यह अन्वय और किसी के न रहने पर कोई नहीं रहे यह व्यतिरेक है। जहाँ शब्द के ही ऊपर अलंकार की निर्भरता है वहाँ उसी की प्रधानता मानी जायगी; इसलिए उसे शब्दालंकार कहेंगे अर्थात् यदि उस शब्द विशेष को परिवर्तित कर दें तो अर्थ वही रहने पर भी वह अलंकार नहीं हो सकेगा। जैसे बंदउं गुरू पद पदुम पराग को यदिं बंदउं गुरू पद कमल परागा कर दें तो अर्थ ज्यों का त्यों रहने पर भी 'कमल' के पर्याय 'पदुम' के रहने से पहले पाठ में 'पद' के सान्निघ्य से जो छेकानुप्रास निष्पन्न होता था, वह दूसरे पाठ में नष्ट हो जाता है। इसलिए छेकानुप्रास (शब्दालंकार) के निर्वाह में 'पदुम' शब्द की स्थिति अनिवार्य है–कमल के दूसरे पर्याय से काम नहीं चलेगा। अर्थ वही रहने पर भी शब्द भेद से जो अलंकार नष्ट हो जाता है, उसे शब्दालंकार कहेंगे। वैसे ही जहाँ शब्द भेद से जो अलंकार नष्ट हो जाता है, उसे शब्दालंकार कहेंगे। वैसे ही जहाँ शब्द की कोई प्रधानता नहीं अलंकार केवल अर्थाश्रित हो, अर्थात् शब्द–परिवर्तन कर देने पर भी जहॉ अर्थ अपरिवर्तित रहे, वहाँ अर्थालंकार होता है। जैसे, उपर्युक्त उदाहरण में ही पद पदुम में रूपक अलंकार होता है, यदि 'पदुम' के बदले हम कमल शब्द भी रखदे तो 'पद कमल' में रूपक अव्याहत रहता है– उसमें कोई अन्तर नहीं आता क्योंकि अर्थ तो पदुम और कमल दोनों का एक ही है। यहाँ अलंकार अर्थ के अधीन है, इस लिए रूपक को अर्थालंकार कहेंगे। कहीं अलंकार की स्थिति शब्द और अर्थ दोनों पर अवलम्बित रहती है वहाँ किसी एक का भी परिवर्तन कर देने से अलंकारता नष्ट हो जाती है, अतः उसे उभयालंकार या शब्दालंकार कहते है। इस तरह जो कुछ कहा जा चुका है उसके अनुसार अलंकार के तीन भेद हुए–

1. शब्दालंकार – जहाँ शब्दगत अलंकार हों।
2. अर्थालंकार – जहाँ अर्थगत अलंकार हों।
3. शब्दार्थालंकार – जहाँ उभयालंकार–जहाँ शब्दार्थ–उभयगत अलंकार हो।

इनमें उभयालंकारों की संख्या अत्यन्त परिमित, शब्दालंकारों की उससे अधिक और अर्थालंकारों की सबसे अधिक है।

यहाँ एक बात मैं स्पष्ट करना चाहूँगी कि प्रगतिवाद के प्रारम्भ से ही अलंकार पर अधि

ाक बल नहीं दिया गया। श्री भवानी प्रसाद मिश्र तो विशेष भावनाओं के कवि हैं, अतः अलंकारों पर उनकी दृष्टि रही ही नहीं: हाँ अलंकार सहज ही उनके काव्य में आ गये है। अलंकारों के आधार पर उनके काव्य का विवेचन प्रस्तुत है–

1. अनुप्रास :-

अनुप्रास–अनु+प्र+आस से बना है जिसका अर्थ, है शब्दों के पीछे प्रकृष्ट शब्दों की आवृत्ति हो।

अनुप्रास क्रमशः भेद होते हैं– (क) छेकानुप्रास (ख) वृच्यनुप्रास (ग) लाटानुप्रास

(क) छेकानुप्रास :-

अनेक व्यंजनों की एक बार स्वरूप और क्रम से आवृत्ति को छेकानुप्रास कहते है। छेक का अर्थ है– विदग्ध या चतुर और यह अलंकार प्रिय है अतः छेकानुप्रास कहते है। छेकानुप्रास में वर्णो की आवृत्ति स्वरूपतः तथा क्रमतः उभयता होनी चाहिए जैसे कमल कोमल। यहाँ यदि स्वरों को छाँट दें (अनुप्रास में स्वरों की गणना नहीं होती क्योंकि उनमें कोई चमत्कार नहीं रहता) तो कमल और कोमल में कमल बचा रहता है। इन दोनों कमल का स्वरूप और क्रम एक ही है, और आवृत्ति भी एक ही बार हुई, इसलिए यहाँ छेकानुप्रास है, इसके विपरीत यदि 'कलम' कमल रखें तो छेक नहीं होगा; कारण यहाँ कि यहाँ क्रमशः आवृत्ति नहीं है 'कमल' में 'क' के बाद 'म' और 'म' के बाद 'ल' पर कमल में 'क' के बाद 'ल' तब 'म' है, अतः यहाँ क्रम भंग हो जाता है इसी कारण छेक नहीं है।

(ख) वृत्यनुप्रास :-

यदि एक व्यंजन की एक बार या अनेक बार अनेक व्यंजनों की एक बार या अनेक बार स्वरूपतः अथवा अनेक व्यंजनों की अनेक बार स्वरूपतः क्रमतः आवृत्ति हो तो वृत्यनुप्रास है।

(ग) लाटानुप्रास :-

तात्पर्य के भेद से शब्द और अर्थ दोनों की पुनरूक्ति को लाटानुप्रास कहते है। 'लाट' आधुनिक गुजरात का प्राचीन नाम है। सम्भवतः वहीं इस अलंकार की सर्वप्रथम उद्भावना हुई या वहाँ के लोगों को यह बहुत प्रिय था इसी लिए इसका नाम लाटानुप्रास पड़ा है। शब्द और अर्थ दोनों की पुनरूक्ति में तात्पर्य भेद कैसे होता है, यह निम्नोक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। कोई व्यक्ति से पूछता है 'लड़का कैसा है? और वह व्यक्ति उत्तर देता है'' लड़का तो लड़का ही है'' यहाँ लड़का शब्द की नहीं उसके अर्थ की भी आवृत्ति हुई है पर दोनों के

अर्थ में तात्पर्य भेद यह है कि प्रथम 'लड़का' शब्द के सामान्य अर्थ को प्रगट करता है पर दूसरा लड़का शब्द उसकी रूप बुद्धिशीलादिगुण –विशिष्टता को व्यक्त करने वाला है। श्री भवानी प्रसाद मिश्र द्वारा उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

(1) "इसलिए
निपट अन्यों ने उनको
अपना और अनन्य गिना।"[1]

(2) "उसकी गर्वोन्नत
ग्रीवा में गिरकर
एक विनत माला कर दे।"[2]

(3) "प्रजा और पृथ्वी के प्राणिमात्र
सुखी बने।"[3]

(4) "सज्ज सैन्य का सेनापति
है किसे विचारा।"[4]

(5) "गुरूजन अवरोधन अन्तःपुर
अद्‌भुत विवेक।"[5]

(6) "यह लगे मनाने मन ही मन।"[6]

(7) "स्वर्ण–वर्ण–स्वरूप उज्जवल भावनाएं।"[7]

(8) वर्ण–वर्ण को बोया भीतर।[8]

(9) " कठिन है बहुत कठिन
बैठे–बैठे सहना सौन्दर्य को।"[9]

(10) "फहरे स्वरों की
गति पर लहरें
ठहरें तो ठहरें पॉव
पहुँचकर पिया के गॉव।"[10]

(11) "वर्षा की सरदी की शरद की

---

1. कालजयी, पृ0सं0 14.
2. वही, पृ0 सं0 16
3. वही, पृ0 सं0 22
4. वही, पृ0 सं0 37
5. वही, पृ0 सं0 70
6. वही, पृ0सं0 7
7. वही, पृ0सं0 86
8. वही, पृ0सं0 101
9. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 18
10. वही, पृ0सं0 87

मगर सहमी–समही हो

और जानती हो तुम कि

मैं अब

झाड़ हूँ न पहाड़ हूँ न पंक्षी।''[1]

(12) ''इतना सुख इतना दुख

इतना स्नेह इतना क्रोध

तब क्या अनुभव नहीं

केवल अज्ञान।''[2] (छेकानुप्रास)

(13) ''कितने अनुरूप हैं आप अपने

दूसरों से लेना तो पड़ता है क्योंकि आप

अकेले नहीं है अखिल में है।''[3]

(14) ''विचलित इस वितान के नीचे

शान्त भाव से

कैसे जोड़ूँ, अपनी गाँठ मैं।''[4]

(15) ''मैं उसे पकडूंगा

झूले वह डाल–डाल

चाहे तो पात–पात

मै उसे जकडूंगा।''[5]

(16) ''छूटे–घने किन्ही केशो की है।''[6]

(17) ''कि उसकी लहरों नौकाओं पतवारों

मल्लाहों, उछलती–गिरती मछलियों की छपाछप।''[7]

(18) ''नाथ के साथ की साथरी

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 102
2. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 10
3. वही, पृ0 सं0 21
4. वही, पृ0सं0 67
5. वही, पृ0सं0 74
6. वही, पृ0सं0 120
7. वही, पृ0सं0 158

इसमें दरिद्रता का पर्याय
बन गई है।"[1]

(19) "भदरंगी
एक तंगी
नंगी खड़ी है, सबके सामने।"[2]

(20) "आघात पर आघात
आँखों के आगे
धरती घूम रही है।"[3]

(21) "बिन्दु बिन्दु ही सही
इन सिंधुओं को
सोखो।"[4]

(22) "रास्ते पर चलते–चलते
भीड़ में जलते–जलते
अकेले हो जाने पर
हम राख हो जायेंगे।"[5]

(23) "सब खुल गया
लगा मैं कुल का कुल
गया।"[6]

(24) "तीर–तीर
थका शरीर लेकर चलता हूँ
रूक जाता हूँ शाम को।"[7]

(25) "क्या पसंद है तुम्हें
भय या अभय
लय दोनों में है
किन्तु मैं तो दिनों
प्रलय सोच रहा हूँ
सो भी छंद में
स्वर में सुगंध में।"[8]

(26) "अभी–अभी मेरे मन में मगर

---

1. परिवर्तन जिए, पृ0सं0 13
2. वही, पृ0सं0 13
3. वही, पृ0सं0 15
4. वही, पृ0सं0 17
5. वही, पृ0सं0 44
6. इदं न मम, पृ0सं0 10
7. वही, पृ0 सं0 19
8. वही, पृ0सं0 46

यह एक खटका आया कि।"[1]

(27) "पेड़ों पर के पंछी
कुछ ज्यादा चहके हैं।"[2]

(28) " तरूण तारकों के साथ–साथ
इस महाकाश में
वृद्ध और वर्द्धमान।"[3] (छेकानुप्रास)

(29) "कोदण्ड से काल के
और विद्रोही मैं
भाल के अक्षरों का।"[4]

(30) "राशि–राशि सहन नहीं होता
एकाध किरण सूरज
एकाध फूल–पौधा।"[5]

(31) "आग–आग धुआं–धुआं
रात की छांह में।"[6]

(32) "हमारे बीच में अंधेरा
साफ–साफ ही
दिख रहा होऊँ मैं तुमको।"[7]

(33) "एक झंडे के तले अब चले हम
भेद इसके तले अपने दलें हम।"[8]

(34) "इस घटा में लीन है पीना अपीना
ह्रष्ट कपिला पुष्ट मीना।"[9]

(35) "धूल की धूमिल घटा
पश्चिम दिशा की छटा को ढाँके हुए।"[10]

(36) "लपटे लपटती हैं हम पर झपटती है
और यदि किसी के प्राण लपटों से डरते हैं।"[11]

(37) "कुछ कहा कुछ बे कहा रहने दिया।"[12]

(38) "आज पीपर पात हर–हर डोलते।"[1]

---

1. इदं न मम, पृ0सं0 65.
2. वही, पृ0 सं0 83.
3. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0 36.
4. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0 38
5. वही, पृ0सं0 70
6. तूस की आग, पृ0सं0 13.
7. वही, पृ0सं0 50.
8. गाँधी पंचशती, पृ0सं0 12
9. वही, पृ0सं0 27.
10. वही, पृ0सं0 27.
11. वही, पृ0सं0 56.
12. वही, पृ0सं0 69

(39) " नींद रहें घास कदाचित दल के दल वे
हहर रही है ज्वार सुबह की हवा चल रही
जोड़ रही है घास काटती उनकी खुपरी
मेरे मन को हर बाहर से।"[2]

यमक

भिन्नार्थ अथवा निरर्थक स्वर–व्यंजन समुदाय की आवृत्ति को यमक कहते है। 'यमक' शब्द का अर्थ है दो। इसलिए इस अलंकार में एक ही आकार वाले वर्ण–समूह का कम से कम दो बार श्रवण आवश्यक है। अधिक के लिए कोई संख्या निर्धारित नहीं– कितनी बार भी आवृत्ति हो सकती है। वस्तुतः इसे अनुप्रास का ही एक भेद समझना चाहिए, पर जहाँ अनुप्रास के अन्य भेदों में स्वरों की गणना नही होती है, वहाँ इसमें स्वरों की भी गणना होती है। यमक में अर्थ का विचार प्रधान नहीं रहता–इसमें कवि का ध्यान रहता है एक विशेष ढंग से वर्णो के विन्यास पर जिससे उनकी आवृत्ति–सी प्रतीत हो। अतः यमक का चमत्कार शब्दाश्रित है, अर्थाश्रित नहीं, इसीलिए यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे वर्ण सार्थक ही हों। वे सार्थक और निरर्थक दोनों ही हों सकते हैं।

(1) " कविता का वर्ण–वर्ण
मिलकर मिट्टी में
रच–पचकर मिट्टी में
बनेगा सोना।"[3]

(2) "मन के बारे में क्या कह सकते हैं
मन के अपने भी मन हैं।"[4] (यमकाभास)

(3) "आभार पहले तो भार था।"[5] (यमकाभास)

(4) देखना–सुनना हो
तो कहाँ जायें
अब कहाँ जंगल में मंगल/बल्कि कहो/
कहां है जंगल
कहां है मंगल।"[6]

(5) "एक बसंत में/दो बैल/चर गये थे

---

1. गॉधी पंचशती, पृ0सं0–74.
2. वही, पृ0सं0 81.
3. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0–18
4. वही, पृ0सं0 81.
5. वही, पृ0सं0 97.
6. तूस की आग, पृ0सं0 64

मेरा गुलज़ार का गुलज़ार।"[1]

(6) " तसवीरें मो अनेक कारणों से/बनती बिगड़ती हैं
तसवीर सर्वश्रेष्ठ चेतन, आदमी की
छाया है आखिरकार/और दिखने का मतलब/केवल/चेहरा नहीं किसी का।"[2]

(7) "मेरे ही जैसे दो–चार उन्मन मन और
घन जो चाँद को घेरे–घेरे/बूढ़े हो गये हैं।"[3]

(8) "आपकी पहुँच से परे
तो चिल्लानें लगें है आप 'रोनटी', रोनटी' ।"[4]

(9) "झूठ तो/समान एक आसमान में उड़ता है।"[5] (यमकाभास)

(10) "और फिर गठित होती है/आदमकद मद की टोलियां
ढाली जाती हैं उनके हाथो से/तलवारें और गोलियां
तय होता है बडप्पन/जातियों और देशों का/शास्त्रों के अंबार से
दो और दो चार से/इनकार करता है ऐसा मद/ ।"[6]

(11) "अब तक की/कितनी विसंगतियों को मैं
संगतियों की तरह चुन रहा हूँ।"[7] (सभंग यमक)

(12) "सब खुल गया/लगा मैं कुल का कुल/गया/भीतर/कुछ भी/बचा नहीं है।"[8]

(13) "प्रयत्न के अभाव में होता है
अनमाने किसी भाव में होता है।"[9]

(14) "बाँधकर/किनारे पलों के/कल–कल बह जाता है।"[10]

(15) "पंछी चहके/महके प्रसून/ स्वर सुना कि/शुभक्षण आया लो
वे अर्थ नहीं समझे फिर भी
सबने कुछ अर्थ लगाया लो।"[11]

(16) "तुम बरस लो, वे न बरसें।
पाँचवे को वे न तरसें।।"[12]

---

1. तूस की आग, पृ0सं0–70
2. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0–20
3. वही, पृ0सं0 34
4. वही, पृ0सं0 73
5. परिवर्तन जिए, पृ0सं0 18
6. वही, पृ0सं052
7. परिवर्तन जिए, पृ0सं0–57
8. इदं न मम, पृ0सं0 10
9. वही, पृ0 सं0 29
10. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0–38
11. कालजयी, पृ0सं0–80
12. गीत फरोश

(3) श्लेष :-

शिलष्ट पदों से अनेक अर्थो का कथन श्लेष अलंकार है। शिलष्ट शिलष धातु से निष्पन्न विशेषण है, जिसका अर्थ है मिला हुआ, सटा हुआ या चिपका हुआ इसलिए शिलष्ट शब्द का अर्थ हुआ, ऐसा शब्द जिसमें अनेक अर्थ मिले हुए या चिपके हुए हो। इस श्लेष के दो भेद हैं– अभंग और सभंग। अभंग उसे कहते है जिसमें बिना भंग (टुकड़े) के अनेक अर्थ हो जाएं। सभंग में जैसा नाम से ही स्पष्ट है, शब्दों को तोड़–मरोड़ कर अनेक अर्थ प्राप्त किये जाते है–

(1) "संदर्भो के घन और फिर वे भी
झंझावात में उड़ गये।"[1]

(2) "रंगना–चाहती हो मेरी बेबसी को
आश्वास–वचनों से।"[2]

(3) "जो उनके कष्ट को समझकर/सिक्त करती रहीं
पय से अपने उनकी जड़े।"[3]

(4) "पत्थर के बड़े–बड़े ढोके रस–कलस फोड़ते एक ओर।"[4]

(5) "इसलिए तनिक–सा पश्चिम से भी हमने नेह मंगाया है।"[5]

(6) "जिस शिवनिमित्त–संस्कृति–धारा ने
तट घोये इन देशों के।"[6]

(7) "नदी सिवा बहने के क्या है
जीवन दिये बिना है सूना।"[7]

(8) "थे राधागुप्त सतर्क
अर्क की तरह।"[8]

(9) "सोचने वाला सदा
सिद्धार्थ की ही नियति का है।[9]

(10) "किसी सिद्धान्त–सूत्र अटूट से सींता हुआ।"[10]

(11) किन्तु अर्थ सेवा का कितना क्षण भंगुर है।"[11]

(12) और स्नेह भर कर प्रकाश को किया उजागर।"[12]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0–85
2. वही, पृ0सं0 102
3. तूस की आग, पृ0सं0 47
4. गांधी पंचशती, पृ0सं0 29
5. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 29
6. कालजयी, पृ0सं0 14
7. कालजयी, पृ0सं0 62
8. वही, पृ0सं0 68
9. वही, पृ0सं0 82
10. वही, पृ0सं0 84
11. कालजयी, पृ0सं0 97
12. वही, पृ0सं0 101

(4) पुनरूवक्तवदाभास

भिन्न आकार वाले शब्दों के अर्थ में आपाततः पुनरूक्ति की प्रतीत को पुनरूवक्तवदाभास कहते है। इसका अर्थ है– पुनरूक्ति– सा आभास। 'आभास' से ही स्पष्ट है कि वस्तुतः इसमें पुनरूक्ति रहती नहीं है पर शब्दों का सन्निवेश कुछ इस प्रकार रहता है कि पुनरूक्ति–सी प्रतीत होने लगती है। जैसे–हाथ में कर दे दिया। यहाँ 'हाथ' और 'कर' में सहसा पुनरूक्ति–सी झलकती है पर 'कर' अर्थ 'हाथ नही' नही लगान या माल गुजारी है।

(1) यात्रायें

खेद से खिन्न तक की/रोको।''[1]

(5) उपमा

भिन्न पदार्थो के सादृश्य –प्रतिपादन को उपमा कहते है। उपमा का अर्थ है (उप) समीप से (मा) तौलना (देखना) अर्थात् एक वस्तु के समीप दूसरी वस्तु को रखकर उनकी समानता प्रतिपादित करना। अर्थालंकारों का मूलाधार उपमा ही है। सादृश्यमूलक अलंकार तो इसी के रूपान्तर है। इसके चार अंग है– उपमेय, उपमान, साधारण धर्म, सादृश्य वाचक। इसके–पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, मालोपमा, रशनोपमा इत्यादि भेद होते है।

(1) ''एक क्षण के लिए जब
अपने को आप जैसा पाया मैनें।''[2]

(2) ''डालियों में अटक रही–सी है
और खटक रही–सी है।''[3] (मालोपमा)

(3) समुद्र की लहरो में/सूरज का शरीर
जैसे अधीर लगता है।''[4]

(4) ''कर्ता की इच्छा से कर्म का होना
ऐसा ही है जैसे शेष नाग का ढोना।''[5]

(5) ''इतने चुप और/शान्त है पेड़ हवा में
लगता है ये तसवीरे हैं/वृक्षों की/कुछ थोड़े अलग ढंग की।''[6]

(6) ''तुम्हारी ओर से जो मढ़ा गया है
नशा–सा चढ़ गया है वह मुझ पर।''[7]

(7) ''बिना कुछ सोंचे/उतर तो पड़े हम नीचे
किरनों की तरह।''[8]

---

1. परिवर्तन जिए, पृ0सं0–17
2. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0–21
3. वही, पृ0सं0 25
4. वही, पृ0सं0 34
5. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 34
6. वही, पृ0सं0 36
7. वही, पृ0सं0 40
8. वही, पृ0सं0 43

(8) "वातावरण जिसमें/दूब की तरह हरा था/और कोमल।"[1]

(9) "और लाल खून का–सा धब्बा
उसके चेहरे पर दमक रहा था।"[2]

(10) "प्यार जिसे लोग भीतर की आग
और भीतर का प्रकाश कहते है।"[3] (मालोपमा)

(11) आकाश/ताकता है नीचे भू पर ऐसे
जैसे अंक में लेना चाहता है/निरशंक।"[4]

(12) "अनन्त की शाखा से/टूट कर पत्ते की तरह
बह गया जो ख्याल।"[5]

(13) "मै जो कुछ कहता हूँ/समय किसी स्टेनों की तरह
उसे शीघ्र–लिपि में लिखता है।"[6]

(14) "बच्चे की तरह हँसे
और तब रोये तो बच्चे की तरह।"[7]

(15) "सद्यः पुत्रवती किसी सुहागिन–सी
मेरी छाती पर/सिर धर देती है।"[8]

(16) "शाम से भोर तक/दीये की तरह टिमटिमाती रही
सिरहाने/पूनों की चाँदनी।"[9]

(17) "पिता जी भोले बहादुर
बज्र भुज नवनीत–सा डर।"[10]

(18) "जैसे फैलती जाती है/लगभग बिना अनुमान दिये/तूस की आग
ऐसे उतर रहा है/मेरे भीतर–भीतर/कोई एक जलने और
जलाने वाला तत्व।"[11]

(19) "शुक्र का तारा/आसमान में ऐसा कि
सिमटा तुम्हारा रूप/और स्वरूप आसमान का।"[12]

(20) "खाली कासा लेकर/आयेगा कल का प्यासा दिन
हर दिन की तरह।"[13]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0–51
2. वही, पृ0सं0 53
3. वही, पृ0सं0 59
4. वही, पृ0सं0 60
5. वही, पृ0सं0 63
6. वही, पृ0सं0 67
7. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 68
8. वही, पृ0सं0 90
9. वही, पृ0सं0 101
10. गीत फरोश,
11. तूस की आग, पृ0सं0 9
12. वही, पृ0सं0 14
13. वही, पृ0सं0 27

(21) "तभी तो/सागर के गर्जन की/तरह हो गया है
स्वर हवा का।"[1]

(22) "वर्तमान के क्षण/शमशीर सरीखे निकलें/तने रहें।"[2]

(23) "गत की माटी/किसी पके घट की माटी है।"[3]

(24) "चक्र सरीखा चलता भर हूँ।"[4]

(25) "अपनी रूचि से काटते–छाँटते रहते है/उन्हें कर देते हैं लगभग एक–सा
अपने ही व्यक्तित्वहीन/अस्तित्वों की तरह।"[5]

(26) "रंग मैंने जमा करके रखे हैं/उन्हें जब कभी
ठीक–ठीक जमा पायेगा/तो बिजली–सी चमक जायेगी।"[6]

(27) "सूरज की किरन के वृंत पर/खिलता हुआ फूल–जैसा।"[7]

(28) "दुनिया पूरी की पूरी/एक हिलती–डुलती हुई नाव हैं।"[8]

(29) "सुनाने की बातें/एक के बाद एक मैंने
सूंत कर रखी हैं तलवार की तरह।"[9]

(30) उदास हूँ/कि तोड़ नही सकता उसे/न झिझोड़ सकता हूँ इसे
किसी अपने/बहुत प्यारे दोस्त की तरह।"[10]

(31) हर कदम तरंगित–सा हो जाता है/चढ़ता हूँ मैं लहराता हुआ–सा
छोटी–बड़ी वहाँ की ऊँचाइयाँ/या बैठ रहता हूँ थोड़ा चलकर।"[11]

(32) कम ज्यादा पंछी और पेड़ भी/पत्तियों की तरह
गायेंगे और क्या जाने/जैसा मैं अकेला वहाँ रोज/गाता हूँ ऐसा।"[12]

(33) "जैसे पानी बहता है नदी में
इस तरह बहा है खून/बीसवीं सदी में।"[13]

(34) जैन दर्शन के/फूटे बर्तन के पानी की तरह
भीतर आये बाहर रिसते रहे।"[14]

---

1. तूस की आग, पृ0सं0–43
2. खुशबू के शिला लेख,पृ0सं0 14
3. वही, पृ0सं0 14
4. वही, पृ0सं0 15
5. वही, पृ0सं0 25
6. वही, पृ0सं0 34
7. वही, पृ0सं0 60
8. खुशबू के शिला लेख, पृ0सं0 79
9. वही,पृ0सं0 92
10. वही, पृ0सं0 106
11. वही, पृ0सं0 114
12. वही, पृ0सं0 115
13. परिवर्तन जिए, पृ0सं0 10

(35) "राख हुआ न चूरा/गरम जरूर हुआ
वासंती हवा की तरह/आयर्वेद की दवा की तरह।"[1] (मालोपमा)

(36) "मेरी स्मृति की खूंटियों पर/तुम्हारे कितने वचन/ऐसे सिलसिले से ढंगे है
कि ग्रीष्म शीत वर्षा/जीवन की/उनको लपेटकर/जब जितनी चाहिए तब
उतनी बचा लेता हूँ।"[2]

(37) "मत बाजारू बाजीगरों की तरह
झूठे दो–दो फुट ऊँचे/आम के पेड़ उगा।"[3]

(38) "तुमसे मिलकर/ऐसा लगा जैसे/कोई पुरानी और प्रिय किताब
एकाएक फिर हाथ लग गयी हो।"[4]

(39) "रात की आँखों ने/जब मेरे कपोल हुए
तो चुए ओस–जैसे बूँद/मेरी आँखों से।"[5]

(40) पूजन की भावनाएं तक/जगाता है वह/कभी–कभी भीतर
वृंदावन के मोर की तरह।"[6]

(41) "कमर जैसे कलाई टूट जाये/हिम्मत जैसे घड़ी फूट जाये/तबियत।"[7] (मालोपमा)

(42) "जब अंधेरा घिरता है/मेरा मन डाल के टूटे पत्ते–सा/नीचे गिरता है।"[8]

(43) "सुनती हो/मेरी बहन आत्मा/किसी नदी के हरहराने–जैसी
यह आवाज/यह रगों में दौड़ता हुआ/मेरा खून है।"[9]

(44) "शरद के बादल जैसा/हमारा व्यक्तित्व/धूप में उड़ता है।"[10]

(45) "आँसू की तरह गरम/टपके उस के दो शब्द।"[11]

(46) "सूनी–सी शाम में/नीली–सी पहाड़ियाँ/कुहरे से ढँकी हुई।"[12]

(47) समुद्र रहता है शान्त/अशान्त भी कभी–कभी/बैले में उगा हूँ। बहा हूँ

(48) "तुम कि जिसने नील अम्बर में/सितारों को कि जैसे–सी दिया है।"[14]

(49) वह प्रशस्त ललाट भारत के तपोघन ऋषि सरीखा

---

1. परिवर्तन जिए, पृ0सं0–34
2. वही, पृ0सं0 42
3. वही, पृ0सं0 55
4. इदं न मम, पृ0सं0 18
5. वही, पृ0सं0 28
6. वही, पृ0सं0 63
7. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0 –2
8. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0–10
9. वही, पृ0सं0 24
10. वही, पृ0सं0 50
11. वही, पृ0सं0 62
12. वही, पृ0सं0 69
13. वही, पृ0सं0 135
14. गाँधी पंचशती, पृ0सं0–8
15. वही, पृ0सं0 26

घोर आतप में निरत तप स्नेह बरसाती हुई वह दृष्टि।''[15]

(49) ''आम्र वन की मंजरी की गंध को पीता हुआ–सा
फट रहे से अम्रदल को किरन से सींता हुआ–सा सूर्य।''[1]

(50) ''हास तुम्हारा शिशु के जैसा सरल/वचन तुम्हारे शिशु के जैसे तरल।''[2]

(51) ''पढ़े–लिक्खें समझता है/कि घुन–सा लग गया है एक तेरी हरी हस्ती में।''[3]

(52) ''शादी में सिर पर गैस लैम्प लेकर चलते रहते हैं जो,
उस बत्ती की ही तरह घिरे रहकर जलते रहते हैं जो।''[4]

(53) ''है हवा में कुछ किरन–दल का संदेसा–सा
तारकों की आँख में रवि का अँदेसा–सा
हिल रही है कली कुछ मुसान पीती–सी।''[5]

(54) ''है हवा में कुछ किरन–दल का ''[6]

(55) ''तब भारतीय संस्कृति–धारा बनकर
हो गयी मेखलाकार, स्वर्ण–सागर, बलिता।''[6]

856) ''मुझ क्षीण–धार/सरिता को लगता है
जैसे सागर से युक्त हो गया।''[7]

(57) ''ज्यादातर चुपचाप/कहीं कुछ बोल रहे थे,
एक–दूसरे पर रहस्य–सा/खोल रहे थे।''[8]

(58) तभी कहीं से आकर/काँटा–सा लग जाता हैं।
विनय–मूर्ति में अहंकार/क्षण में जग जाता है।''[9]

(59) ''देवी विदिशा–नगर–सेठ का कन्या, रूपवती
जीवन यो बन गया कि जैसे शंकर और सती।''[10]

(60) ''तेरा रहना/प्रलय–काल में मुझे
विघ्वस्त पोत की/नौका–जैसा है।''[11]

(61) ''कंपित गात अशोक झुके तब भिक्षु–चरण में
किसी प्रकंपित शिखा सरीखे।''[12]

(62) ''क्लांतिहीन वाणी अशोक की/उससे फूटे प्रश्न कि जैसे झरने फूटे।''[13]

(63) ''वर्ण–वर्ण को बोया भीतर

---

1. गाँधी पंचशती, पृ0सं0 28
2. वही, पृ0सं0 32
3. वही, पृ0सं0 47
4. वही, पृ0सं0 61
5. वही, पृ0सं0 65
6. कालजयी, पृ0सं0 14
7. वही, पृ0सं0 33
8. कालजयी, पृ0सं0 47
9. वही, पृ0सं0 52
10. वही, पृ0सं0 56
11. वही, पृ0सं0 66
12. वही, पृ0सं0 91
13. वही, पृ0सं0 95
14. वही, पृ0सं0 101

कंपित लौ–सा उसे सँभाला।"[14]

(6) स्मरण

सदृश वस्तु के प्रत्यक्ष से पूर्वानुभूत वस्तु का स्मरण 'स्मरण अलंकार है। स्मरण का अर्थ है याद करना। पहले का अनुभव मन में निहित रहता है। वही परिस्थिति विशेष में जगकर स्मरण का कारण बन जाता है। ऐसा प्रायः होता है जब पूर्वानुभूत वस्तु के सदृश कोई वस्तु प्रत्यक्ष होती है।

(1) "थी उसे बरसात प्यारी/रात–दिन की झड़ी झारी।
और बाड़ें में वह जाता/बीज लौकी के लगाता।"[1]

(2) "और गीता पाठ करके/पिता जी नीचे आए होंगे।
तब नयन जल में छाए होंगे।"[2]

(3) "और माँ बिन पढ़ी मेरी। दुःख में वह गढी मेरी।"[3]

(4) "एकाध अच्छी लग जाती है जब कभी
तभी याद आ जाती है हरी पत्तियाँ
हरी दूब ऊधमी बच्चे सूने खंडहर
घर दोस्तों के मैदान लोगों से भरे।"[4]

(5) "तब से ऐसा भाया है/सूरजमुखी का मुखड़ा
कि जहाँ दिख जाता है/ताजा और टटका वह
तो मन थोड़ी देर/भटका–भटका फिरता है।"[5]

(6) "याद दिला रहा है/पीली थीं जिसकी टाँगें/लाल थी जिसकी चोंच
सफेद थे जिसके फैले डैने/बहुत ही सफेद थी जिसकी छाती।"[6]

(7) "समय की खुशबू/प्राणों में भर गयी/उतर आया भीतर
अतीत का चेहरा/बदल गया वर्तमान/शायद/भविष्य भी।"[7]

(8) "कलम खोजी/और खोली यह डायरी/तो पिछला बरस
आँखे में तैर गया/और मेरे समूचे अस्तित्व ने साँस ली।"[8]

(7) प्रतीप

प्रसिद्ध उपमान को उपमेय बता देना प्रतीप अलंकार है। प्रतीप का अर्थ है– उलटा, विपरीत। जैसे, साधारणतः कहते है कि "चन्द्र सा मुख है" तो वहाँ उपमा होती है और यदि इसे ही उलट कर कहें कि" मुख–सा चन्द्र है तो यह प्रतीप का उदाहरण हो जाता है। इसका तात्पर्य रहता है उपमेय का अतिशय उत्कर्ष सूचित करना। उपमेय–उपमान के

---

1. गीत फरोश
2. वही,
3. वही
4. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 52
5. वही, पृ0सं0 60
6. खुशबू के शिला लेख, पृ0सं0 60
7. इदं न मम, पृ0सं0 18
8. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0 55

सम्बन्ध–विपर्यय के कारण ही इस प्रतीप कहते हैं।

(1) "आपके जैसा होने का मजा/ख़ासा बड़ा है/मगर क्षण के लिए/
सदा तत्पर नहीं रह सकता मैं/इतने निरर्थक रण के लिए/जिसमें आसमान
सिर पर उठाना पड़ता हो/पटकना पड़ता हो जिसमें/सूरज को जमीन पर।"[1]

(2) "मोह से अधिक ताकतवर/कुछ नहीं होता।"[2]

(3) "चेहरे हमें अपने लगते थे/सूरजमुखी से ज्यादा सुनहले/और खिले हुए।"[2]

(4) "नींद से/गहरी चीज/क्या है/दीवार से/बहरी चीज/क्या है। मगर
मैं जहाँ/डूब रहा हूँ/ज्यादा गहरी है/वह समग्रता/नींद से/ज्यादा बहरी है।
दीवार से वह अव्यग्रता।"[4]

(5) "तुम सारे अमरों से ज्यादा अमर रहोगे
जब तक सूरज है, प्रकाश होगे तुम तब तक
जब तक गंगा है तक तक तुम विमल बहोगे।"[5]

(6) "इन्द्र का ऐरावत/अश्व स्वयं सूर्य के/बेटा नगण्य हैं सब/अभी हैं, अभी नहीं।
मूल्य प्रेम करूणा के ममता के साध्य अपने/पंथ है अतीव कठिन/इन तक पहुँचने के
किन्तु वे ही सेव्य है/शिव हैं, आराध्य अपने।"[6]

(7) "नीख वातावरण बीच शशि–प्रभा लजाये।
अर्धोन्मीलित नयन–किरण आनन्द पिये थी।"[7]

(8) रूपक

उपमेय में उपमान निषेध रहित आरोप रूपक है। आरोप का अर्थ है, एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु को इस प्रकार रखना कि दोनों अभिन्न मालूम हों–दोनों का अन्तर दिखाई न पड़े। रूपक के तीन प्रमुख भेद हैं– (1) निरंग (2) सांग (3) परम्परित।

(1) "नये अर्थ की प्यास में डूब गया शब्द/मन का गोताख़ोर डूब गया उभरकर भँवर में अविश्वास के।"[8]

(2) "सारा वह धारा–प्रवाह जीवन/अब रोग की एक खूँटी पर टँगा है।"[9]

(3) "एक पहाड़ से/निकला था मेरा दुख/और बहा फिर वह/मैदानों में।"[10]

(4) दुख मेरा/एक पहाड़ से निकल था/और पार करके मैदानों को

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 22
2. वही, पृ0सं0 73
3. वही, पृ0सं0 73
4. इदं न मम, पृ0सं0 74
5. गाँधी पंचशती, पृ0सं0 78
6. कालजयी, पृ0सं0 21
7. कालजयी, पृ0सं0 91
8. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 85
9. वही, पृ0सं0 102
10. तूस की आग, पृ0सं0 24
11. वही, पृ0सं0 24

मिल गया सागर से/कई बातें हुई हैं/बहुत–कुछ गुजरा है इस पर।"[11]

(5) "चुपचाप/भीतर का ताप सही/उसे शब्दों में मत कहो।
शीतल उसे करो/कर्मो की रेवा में/सेवा की शिखरिणी से
स्नेह के समुंदर तक/उसको उतरने दो।"[1]

(6) "किसी एक क्षण/सुख की दुलहिन/देह परस दे
जीवन का अंधियारा बादल/विभा बरस दे।"[2]

(7) "काल–पुरूष इसलिए/अगर जीवित है तो
केवल अंशो में/सकल प्राण अक्षुण्ण।"[3]

(8) "तैयारी में था/क्षितिज की अपनी देहरी पर
पाँव धरने की/उठा चुका था पाँव।"[4]

(9) "और खड़कते रहना आस–पास/मृत्यु–वृक्ष के पत्तों का
जोर–शोर से/तन को और शायद इसीलिए/मन को/रास आने लगा।"[5]

(10) "क्योंकि मन/एक मैली कमीज है इन दिनों/
सोच रहा हूँ/घुलने दे दूँ कहीं।"[6]

(11) " और मन का रक्त कमल जिसमें/दिन भर भी
खिला नहीं रह सका है/शायद मेरी रगों में/यह खून।"[7]

(12) "ईर्ष्या–सागर के मंथन से/संजात सदा सत्ता का मद।"[8]

(13) "निष्कंटक राज्य न चलने पायेगा/यह राज्य–दीप
निवतिन जलने पायेगा।"[9]

(14) "तेरे आरोहण से/शतदल पराग सौरभ/शोभा में वह खिले।"[10]

(15) "मैं बिंदुसार वासव/ये बज्र–भुजाएं/क्षण–भर सही सहो।"[11]

(16) "जो मृत्यु–नदी को/आर–पार करने जाकर/उसको लाशों से पाटेंगे।"[12]

(17) "यौवन–वेला में बसंत के/मधुमय क्षण सिमटे आते थे
सुरभित शतदल कुंज/भ्रमर–दल उनके आस–पास गाते थे।"[13]

(18) "महा मधुमास–पर्व की रजनीगंधा/रूप आरती–सी करता था
जब ऐसे में उतरी संध्या।"[14]

(19) कमलपाणि को छूकर/मेरे सारे पत्थर

---

1. खुशबू के शिला लेख, पृ0सं0 – 12
2. वही, पृ0सं0 12
3. वही, पृ0सं0 15
4. वही, पृ0सं0 61
5. परिवर्तन जिए, पृ0सं0 56
6. अंधेरी कतिवताएं, पृ0सं0 4
7. वही, पृ0सं0 25
8. कालजयी, पृ0सं0 16
9. वही, पृ0सं0 17
10. वही, पृ0सं0 22
11. वही, पृ0सं0 30
12. वही, पृ0सं0 43
13. वही, पृ0सं0 56
14. वही, पृ0सं0 58
15. वही, पृ0सं0 59

गल जाते हैं।"[15]

(20) "रवि–निकर–निष्ठा तमिस्रा जागी
तर्क–तृष्णातीत, प्यास गमीर जागी।"[1]

(21) "भिक्षु–सुस्मित–अधर–पल्लव जब हिलेंगे।
नये शतदल–पुंज प्रज्ञा के खिलेंगे।
पुष्प–रथ पर स्नेह पृथ्वी–भर फिरेगा।"[2]

(22) "इस समस्या–जलधि की क्या तरी होगी।"[3]

(23) "सुखी अल्पजन बहुजन डूबे शोक–सिंधु में।"[4]

(24) "यह बसन्त की ऋतु यदि फैली
तो सारी दुनिया में समता के फूलों की फसल खिलेगी।"[5]

(25) "यह कवित रस भाव का यह सिन्धु
स्वाति जैसी बुद्धि का यह बिन्दु।"[6]

(9) उल्लेख :-

ज्ञातृ–भेद विषय–भेद से एक वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन उल्लेख अलंकार है। उल्लेख शब्दिक अर्थ है। लिखना, पर यहाँ वर्णन से तात्पर्य है। इस अलंकार में एक वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है, ऐसा दो तरह से होता है–

(1) ज्ञातृ भेद से :-

जहाँ एक व्यक्ति एक वस्तु का, अपनी–अपनी भावना के अनुसार, अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं।

(2) विषय-भेद से :-

जहाँ एक व्यक्ति एक वस्तु का भिन्न–भिन्न गुणों के कारण, अनेक प्रकार से वर्णन करता है।

(1) "कोई सागर नहीं है/न वन है/बल्कि एक मन है/
हमारा तुम्हारा सबका अकेपापन।"[7]

(2) "छूटे–घने किन्ही केशों की है/आम के वन की है/आषाढ़ के नये घन की है
धाराहत पल्लव की है/स्वच्छ किसी।"[8]

(3) और बगैर हमारी भाषा जाने/हमारे अहाते भर के बच्चों के साथ
लहर गया है न थमने वाले/गीत की कड़ी की तरह
या यह खिड़की चमक रहे हैं जिसके काँच
शाम को सुबह से भी ज्यादा/या मेरे दोस्त सत्यनारायण का घुमावदार ढंग।"[9]

(4) और जीता है अपनी/धरती हवा पानी किरण के अनुरूप/कम ज्यादा जमा करें जड़े

1. कालजयी, पृ0सं0 85
2. वही, पृ0सं0 85
3. वही, पृ0सं0 87
4. वही, पृ0सं0 97
5. गाँधी पंचशती, पृ0सं0–15
6. वही, पृ0सं0 68
7. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0–41
8. खुशबू के शिलालेख पृ0सं0 120
9. वही, पृ0सं0 153
10. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0 135

या जैसे पहाड़ से निझर कर बूंद/बनती है यथा सम्भव नदी।''[10]

(5) ''मंगलकारी दीन बन्धु करूणा के सागर
लोकोपकार व्रती जागृति के सूर्य उजागर
पूजनीय हे गुण गौरव की विमत्न पताका।''[1]

(6) ''तुम युगों युगों तक गूँजोगे/जैसे कबीर के पद/तुलसी की चौपाई
नरसी मेहता के भजन/तुका के–से अभंग।''[2]

(10) सन्देह

उपमेय में उपमान का संशय, सन्देह अलंकार है। सन्देह, सादृश्यमूलक ही होता है। चीटी में हाथी का या रेलगाड़ी में आदमी का सन्देह नहीं होता, क्योंकि इनमें परस्पर कोई सादृश्य नहीं है। चमत्कार मूलक संशय ही अलंकार हो सकता है।'' यह रस्सी है या सर्प'' वह गाय है या बैल'' ऐसे वाक्यों में चमत्कार का अभाव रहने से इन्हें सन्देहालंकार की श्रेणी में नही रख सकते।

(1) ''या तारे के सहारे जिस अर्थ में
शाम से सुबह तक मन जगता है।''[3]

(2) ''मान कर कि शायद तुम/ऊँचाई पर रहते हो/अभ्रंकश कलश
और मीनारें/और गुम्बदें/भुजाओं की तरह उठाई और तानी गई है
तुम्हें छू सकने के ख्याल से।''[4]

(3) ''बावजूद इस बात के कि/मैं आक नहीं हूँ/ढाक ही हूँ शायद/फिर भी।
अपनी इच्छा के अनुकूल/धूल भी हूँ मैं/फूल भी हूँ मैं
और कोरी धूल भी हूँ मैं।''[5]

(4) ''मेरी छाती के भीतर/कोई पंछी है/चिन्ता का चिन्तन का या विचार का।''[6]

(5) ''कि हो न हो/यह मेरी रगो में दौड़ता हुआ/मेरा खून ही है।''[7]

(6) ''गाँधी मानव है या फिर से धूम रहे हैं प्रभु उस भू पर
जिस पर वे पहुँचे थे पहले भी अति करूणाग्रस्त घड़ी में।''[8]

(7) ''जो अभी कहीं पर बोल उठा वह कोयल है या केका है।''[9]

(11) अपह्नुति

उपमेय का निषेध कर उपमान की स्थापना अपह्नुति अलंकार है। अपह्नुति या अपह्नव का अर्थ है छिपाना। इस अलंकार में 'नं' 'नहीं' आदि निषेधवाचक शब्दो की सहायता से

---

1. गाँधी पंचशती, पृ0सं0 – 11
2. वही, पृ0सं0 75
3. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0–34
4. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 85
5. परिवर्तन जिए, पृ0सं0 – 21
6. इदं न मम, पृ0सं0 63
7. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0 25
8. गाँधी पंचशती, पृ0सं0 18
9. वही, पृ0सं0 71

उपमेय का प्रतिबंध कर उसमें उपमान का आरोप करते हैं, जैसे –

"यह मुख नहीं, चन्द्र है।" यहाँ "नहीं" शब्द से मुख (उपमेय) का निषेध क, उसमें चन्द्र (उपमान) का आरोप किया गया है। उपमेयोपमानत्व–सम्बन्ध के अभाव में भी अपह्नुति देखी जा सकती है।

(1) "हवा जैसे पड़ जाती है पीछे धुंए के/और उठा देती है उसे ऊपर
आसमान में ऐसे/जैसे वह धुआँ न हो/ हो बादल का कोई टुकड़ा।"[1]

(2) "दया और करूणा और ममता/कोई ऐसी चीजें नहीं है/जिन्हे हम मुट्ठी में धरे या जेबो में भरे फिरे और फेंके जहाँ–तहाँ लोगो पर/ये सब तो असल में वर्षा के बादल है जो घनते है अपने स्वभाव में/जरूरत में और बरसते भी हैं/केवल अपने स्वभाव या अपनी जरूरत में।"[2]

(2) "दया और करूणा और ममता/ कोई ऐसी चीजें नहीं है/जिन्हें हम मुट्ठी
में धरेया जेबो में भरे फिरें/और फेंके जहाँ–तहाँ लोगों पर/ये सब तो असल
में वर्षा के बादल हैजो घनते है अपने स्वभाव में/जरूरत में और बरसते
भी है/केवल अपने स्वभाव या अपनी जरूरत में।"[3]

(3) "ऐसी गंगा/धरती की नहीं आकाश की/हल्की भी ऊष्मा से अलिप्त।
स्निग्ध नये एक प्रकाश की/छुअन/भुवन–भर मेरे अस्तित्व को
रोमांचित किये है अनुक्षण/गन्धर्वो का गान/निविड रहस्य से भरे किसी वन में।"[3]

(4) "इस सरोवर में/कमल की नहीं/कोई अलग–सी सुंगध है/लगता है।
देवता नहाने आते है इसमें/गाते है बैठकर/इसके किनारे गन्धर्व
तैरती है अप्सराएं/अगर होता है ऐसा/तो बतायें मुझे/इस सरोवर की आत्माएं
क्यों लाया गया है मुझे/भटका कर यहाँ/इसके किनारे।"[4]

(5) "तब जो/लहरे उठती हैं/मथ डालती हैं वे मन को/अपनेपन के अहसास पर
फेन छा जाता है। याने भीतर मन में/भयंकर एक/तूफान आ जाता है।
मन के भीतर का तूफान/किनारे से दूर या पास/सुना जाने वाला/गान या गर्जन
नहीं है सागर का।"[5]

(12) उत्प्रेक्षा

उपमेय में उपमान की सम्भावना उत्प्रेक्षा अलंकार है। उत्प्रेक्षा का अर्थ–उत्कट् रूप से प्रकृष्ट (उपमान) को देखना। यहाँ देखने का तात्पर्य है 'सम्भावना करना। सम्भावना ज्ञान की कोटि है, जिसकी स्थिति सन्देह से आगे और निश्चय नहीं होकर उत्कट्–प्रबल–निश्चय की

---

1. बुनी ई रस्सी, पृ0सं0 70
2. खुशबू के शिला लेख, पृ0सं0 97
3. इदं न मम, पृ0सं0 20
4. वही, पृ0सं0 57
5. तूस की आग, पृ0सं0 127

ओर अधिक झुकी हुई रहती है। इस प्रकार उपमेय में उपमान की सम्भावना करने पर उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। उत्प्रेक्षा में तीन भेद हैं (1) वस्तूत्प्रेक्षा (2) हेतूत्प्रेक्षा (3) फलोत्प्रेक्षा

(1) "और सोचकर ऐसा/बिछल गये हम घास पर/इस छोर से उस छोर तक
मानों किरने ही किरने हों हम/हल्की–हल्की।"[1]

(2) "तब सब एक साथ बदल गये मानो/अस्पताल के परदे और दरवाजे
और खिड़कियां और/कमरे में आती–जाती लड़कियाँ।"[2]

(3) "अपार और अज्ञेय/एक सौन्दर्य–रहस्य मानो/बोला है
इस आसाधरण/घटना के माध्यम से।"[3]

(4) "लगता है दोनों गतिवान है/समतल भूमि पर/और जाना दोनों को कहीं नहीं है
चलना या बहना इनका/मानों इतना कहना–भर है/कि हम स्थिर नहीं हैं।"[4]

(5) "पत्ते आज/सामने के पीपल की डाल पर/यों उठ–गिर रहे हैं
मानो वे डैने हों/आकाशगामी किसी पंछी के।"[5]

(6) मछली/उछली/उजली चाँदनी ने/उस पर हाथ फेरा/चाँदनी से भी।
उजले पानी का/पानी पर/एक घेरा बन गया/मन गया मानो।
नीचे धरती पर भी एक आसमान।"[6]

(7) "मैनें निचोड़कर दर्द/मनको/मानो सूखने के ख्याल से/रस्सी पर डाल दिया है।"[7]

(8) "भले ही काल/महाराज/उनसे ऐंठे रहते हैं/मगर बिगाड़ नहीं पाते।
उनका कुछ/क्योंकि वे समय को/बैठे–बैठे/मानों हुक्के की तरह/पीते है।"[8]

(9) "आ पास बिन संचरित मानों वंश उसका अंश
वह घटा को घेरता है, टेरता है, फेरता है।"[9]

(10) "उस दिन सूरज–किरन/उतरते ही फूलों को रंग दे चली
उस दिन हवा प्राण को मानो/सुधा निमज्जित संग दे चली।"[10]

(11) "आए अशोक तो खल्लाटक खिले गये/मानो उनको मन के मोती मिल गये।"[11]

(12) "सुष्ठु द्वार प्रकाश का मानो खुलेगा/अर्धउन्मीलित नयन से तम घुलेगा।"[12]

(13) अतिशयोक्ति

उपमेय को छिपाकर उपमान के साथ उसकी अभेदप्रतीत कराना अतिशयोक्ति है। अतिशक्ति का अर्थ है– अतिशय (बढ़ी–चढ़ी)+ उक्ति (कथन)। उपमेय का सर्वथा छिपाकर उपमान से उसका अभेद दिखाना–उपमान उसकी अभिन्नता प्रदर्शित करना अतिशयोक्ति का विषय है।

(1) "सूरज के उजाले को/पीछे छोड़ते हुए किनारे की तरफ चली आ रही हैं
काली नावें/क्या लदा है इनमें/शायद रौदें हुए घरौंदें।"[13]

(2) "और वह लगभग डेढ़–दो मन का कुत्ता/चढ़ा आ रहा है मेरे बिस्तर पर।
और खेलना चाहता है मुझसे/जितना बनेगा खेलूंगा उससे।"[14]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 43
2. वही, पृ0सं0 57
3. तूस की आग, पृ0सं0 30
4. वही, पृ0सं0 74
5. वही, पृ0सं0 119
6. इदं न मम, पृ0सं0 32
7. वही, पृ0सं0 77
8. इदं न मम, पृ0सं0 8.
9. गॉधी पंचशती, 27
10. कालजयी, पृ0सं0 57
11. वही, पृ0सं0 68
12. वही, पृ0.सं0 85
13. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 19
14. खुशबू के शिला लेख, पृ0सं0 101

(3) "पच्चीस प्रतिशत/एक मकड़ी/पकड़े हुए है इस घड़ी
शत प्रतिशत एक कीड़े को/जैसे पच्चीस प्रतिशत/एक आदमी।
चबा रहा है/शत प्रतिशत एक बीड़े को।"[1]

(4) "धरती से आसमान के छोर तक/गाऊँगा/उठूँगा चलूँगा
घुमाऊँगा जैसे घरती को तुम्हारे इशारे पर।"[2]

(5) "शरीर की इस हालत में/ डालकर धरती में जड़े/रस तक खींचना पड़ेगा
और सींचना पड़ेगा/अपने आस पास को /उस रस से।"[3]

(6) " वे कुदाली हाथ में लेकर यहाँ भी आ रहे हैं
वक्त बदला है किसी के रोकने से क्या रुकेगा
आज लगता है कि कोई आस्मां भी हो झुकेगा।"[4]

14 रूपकातिशयोक्ति

जहाँ उपमेय को छिपाकर उपमान के द्वारा उसका बोध कराया जाय।

(1) "इसके पहले भी/चला हूँ लेकर हाथ में हाथ/भगर वे हाथ/किरनों के थे फूलों के थे सावन के/सरितामय कूलों के थे/"[5]

(2) "दो सौ भील दूर था दिल्ली से/यह काला बादल–दल/पछुआ की पीठ पर पार करके आया है/यह कितने छोटे–बड़े गाँव।"[6]

(3) "हट गये मेघ/प्राची दिगन्त में/शुक तारा झिलमिला उठा/ली झुख की झाँस धरित्री ने/वन–पथ में पल्लव– मर्मर स्वन/हौले–हौने सिलसिला उठा।"[7]

15 तुल्ययोगिता

अनेक प्रस्तुतों अथवा अनेक अप्रस्तुतों का एक धर्म से सम्बंध बताना तुल्ययोगिता अलंकार है। तुल्ययोगिता का अर्थ है तुल्य (समान) की योगिता (सम्बंध) समान के सम्बन्ध का तात्पर्य यह है कि जहाँ उपमेय हो वहाँ केवत्न उपमेय ही रहे और जहाँ उपमान हों वहाँ केवल उपमान ही रहें, उपमेय और उपमान का मिश्रण नहीं होना चाहिए। इसमें केवल कई प्रस्तुतों को एक साथ रखकर उनका एक धर्म से सम्बन्ध दिरवाते हैं।

(1) "अंधेरी रात/पी लेती है जैसे/छाया को/ऐसे पी लेता है। अर्थो को अंधेरा मन।"[8]

(2) "गतिहीन समय ने भुझे/अपने से दूर/इस तरह फेंक हिया है/जिस तरह फेंक नहीं पाती लहरों को चट्टानें भी।"[9]

(3) "जैसे वृक्षों को अच्छे लगते होंगे वर्षा में/हवा के झोंके/ पहाडों को अच्छी लगाती होगी जैसे सरदी में धूप देर तक/अच्छा लगता होगा जैसे/पंछियों को शरद का

---

1. परिवर्तन जिए, पृ0सं0 22
2. इदं न मम, पृ0सं0–61
3. वही, पृ0सं0 61
4. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 55
5. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 98
6. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 116
7. कालजयी, पृ0सं0 79
8. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 25
9. वही, पृ0सं0 78

नीला आकाश अच्छे लगते थे मुझे/हँसी के झोंके सरल स्नेह की ऊष्मा/शोमित एकाध हल्की–सी–चिन्ता से/लगमग निरभ्र मन तुम्हारा।"[1]

16 दीपक

प्रस्तुत और अप्रस्तुत होनों का एक धर्म से सम्बन्ध दीपक अलंकार है। दीपक का अर्थस्पष्ट है– जिस प्रकार एक स्थान पर रखा हुआ दीपक चतुर्हिक अपना प्रकाश बिरवेर कर सभी वस्तुओं को प्रकशित करता है, उसी प्रकार 'दीपक अलंकार' में साधारण धर्म, प्रस्तुत और अप्रस्तुत से अन्वित होकर होनों को प्रकाशित करता हैं। दीपक के गुण साम्य के आधार पर इस अलंकार को भी दीपक कहते हैं।

(1) "हाय री इच्छा/शांति की/विराट् विमा भी/रवालिस कांति की।"[2]

(2) "यह तंगी/जितनी तन की है/उससे ज्यादा मन की है।'[3]

(3) "उदय और अस्त होते हुए/सूरज की तरह/शान्त और स्निग्ध रहकर/रंगे हैं।[4]

17 प्रतिवस्तूपमा

जहाँ उपमेय और उपमान वाक्यों में एक ही साधारण धर्म मित्र शव्दों से कहा जाय वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है। प्रतिवस्तूपमा में 'उपना' शब्द का सादृश्यमात्र अर्थ हैं–प्रतिवस्तु अर्थात् प्रत्येक वाक्य के अर्थ में जहाँ उपमा अर्थात् सादृश्य हो। प्रतिवस्तूमा में दो वाक्य होते है– एक उपमेय वाक्य और दूसरा उपमान वाक्य पर यह कि दोनों वाक्यों का साधारण धर्म होता है एक ही, पर एक होने पर भी उसे दोनों वाक्यों में दो शब्दों से कहते हैं।

(1) "सूरज का चंदा का/फूलों का पत्तो का/लहरों का बूँदों का वजन/मन पर करना बर्दास्त/निष्क्रिय भाव से/कठिन है बहुत कठिन है।"[5]

(2) "उम्र बढ़ चुकने पर/पहाड़ चढ़ चुकने पर/मूर्ति गढ़ चुकने पर/यहाँ तक कि कोई बहुत बड़ी किताब पढ चुकने पर/सुख और थकान और/थोड़ी देर चुप हो रहने का अनुभवन क्या सबको नहीं होता।"[6]

(3) "भटक रहा हूँ इसीलिए उसे खोजता हुआ/अबाबील में कोयल में सारिका में चंदा में सूरज में मंगल में तारिका में।"[7]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 102
2. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 11
3. परिवर्तन जिए, पृ0सं0 13
4. वही, पृ0सं0 42
5. बुनी हुई रस्सी,पृ0सं0 19
6. वही, पृ0सं0 28
7. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 39

(4) "जैसे रोम खड़े हो जाते हैं/सुख में या भय में/बड़े हो जाते हैं वैसे/कई बार अनसुने हल्के स्वर/अनबोले शब्द/अनाहत ध्वानियां/अनुभव की शून्यता में शायद कई बार–बार कहना/गलत है/बदल कर कहता हूँ/एक/आध/बार।"[1]

(5) "कई दिनों से चुपचाप/पड़े हुए विचार एकाघ–बार/मानों चिल्लाकर खड़े जाते हैं और कुछ इस तरह/कर देते है हक्का–बक्का/जैसे अपने घर आये हुए मेहमानों के बच्चे।"[2]

(6) "जिन्दगी के महासागर का किनारा/चाहता हूँ अभी सूना रहे/ लहरें आती जाती रहे– केवल/तबीयत का हाल पूछने वालों की तरह।"[3]

(7) कविता और फूल/ सब एक हैं /सब को बोना बखरना गोंडना /पडता हैं। सत्य हो शिव हो सुन्दर हो /अखिरकार इन सब को / किसी न पल /तोडना पडता हैं।[4]

(8) तुममें ऋषियों का –सा चिंतन संतो की सी मृदुता तुममें अवतारों–जैसी कर्मठता भक्तों–जैसी ऋजुता तुममें।"[5]

(9) "अन्नहीन पेटों में दानें/वस्तहीन देहों पर धागे हमने नहीं जुटाये तों हम/राजा होकर निपट अभागे है।"[6]

(10) "मुझे सचाई का प्रकाशमय/जो सागर दिख–सा जाता है अनदेखी–अनसुनी होनियों को/मन पर लिख–सा जाता है।"[7]

(11) "जैसे नवबधू/अगीत एक संगीत–धार में/बहती है/जैसे उद्दाम सुगंध किसी निस्तब्ध रात्रि में/रहती हे।"[8]

(18) दृष्टान्त

यदि उपमेय–उपमान में बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव हो तो दृष्टान्त अलंकार होता है। दृष्टान्त का अर्थ है उदाहरण। किसी बात को कहकर उसकी सत्यता प्रमाणित करने के लिए हम उसी ढंग की दूसरी बात कहा करते हैं– वह दूसरा वाक्य उदाहरण स्वरूप में आकर पहले कथन की प्रमाणिकता पर मानों मुहर लगा देता है, जैसे–'उसका मुख निसर्ग–सुन्दर है; चन्द्रमा को प्रसाधन की क्या आवश्यकता? "यहाँ पहला उपमेय वाक्य और दूसरा उपमान वाक्य है, दोनों सर्वथा स्वतंत्र है पर दोनों को ठीक से देखने पर ऐसा मालूम पड़ता है, जैसे–दोनों में एक ही विचार दो रूपों में कहा गया है–

---

1. तूस की आग, पृ0सं0 22
2. वही, पृ0सं0 67
3. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 82
4. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0 3
5. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 12
6. कालजयी, पृ0सं0 61
7. वही, पृ0सं0 63
8. वही, पृ0सं0 71

—किसी सुन्दर वस्तु का अकृत्रिम रूप से सुन्दर लगना।

(1) "और लगता है मुझे/ यह मेरी जीवन की/लगभग सबसे निविड ऐसी घड़ी है। जब मैं दे पा रहा हूँ/स्वाभाविक और सुख के साथ अपने को।"[1]

(2) "सुबह टहलते–टहलते/हरी–भरी दूब पर पाँव पड़े/तो लगा जैसे पड़ गया हो पाँव किसी सोते हुए आदमी के शरीर पर।"[2]

(3) "जो बरसेगा अगर पूरे मन से/तो गन्ध उठेगी वैसी/जैसी की जेठ तपी–धरती से उठती/आषाढ़ के बरसे।"[3]

(4) "मेरा दुखड़ा/तन गया है चतुर्दिक/बरसने वाले किसी बादल की तरह।"[4]

(5) "जैसे देर तक चल रही शाम में/एक चुप्पी होती है/ऐसी चुप्पी सिमटती है भीतर जब लेता हूँ मैं/तुम्हारा नाम/भाव चाहे समूह में/घण्टा झालर के साथ आरती का हो।"[5]

(6) "सूखी डाली जैसे किसी हरे पेड़ की/पेड़ से कट कर ही हो सकती है काम की मेरे उदास ख्याल लगभग उसी तरह/तापे जा सकते है दूर कहीं। हँसी–खुशी की महफिल से।"[6]

(7) "अभिशप्त उसे लगती थी/अपनी साँस–साँस/उसको अनुभव होता था जैसे जीवन है/अब शरद्–काल का/हरा–भरा उत्फुल्ल काँस।"[7]

(19) निदर्शना

जहाँ वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध सम्भव अथवा असम्भव होकर उनमें सादृश्य का आक्षेप करावे। वहाँ निर्दशना अलंकार होता है। निर्दशना का अर्थ है उदाहरण या दृष्टांत। निर्दशना में ऐसी बातें एक साथ कही उनमें सादृश्य की कल्पना नहीं करते, तब तक वे वाक्य ऊँट–पटाँग असंबद्ध से दीखते है, उन दोनों वाक्यों में कोई संगति नहीं मालूम पड़ती, पर सादृश्य के आक्षेप के द्वारा परस्पर निरपेक्ष या असंबद्ध सी उन बातों को सापेक्ष या सुसंबद्ध रूप में उपस्थित कर उनकी संगति दिखाई जाती है।–

(1) ताराओं में/सुगंध फैलानें और टॉकनें का/मेरा यह सपना/रहना न जाये केवल मेरा अपना/इतना मॉगता हूँ/मेरे देवताओं याने शब्दों से/शब्द जो न आते है/मेरी आकाशमय।"[8]

(2) "बुद्धि के बिन वीरता की सफलता देखी कहीं है/क्यों कभी देखा है कूदों आग में लपेट न झूमें/लड़ो राजा रो कि फिर तलवार भी गर्दन न चूमें।"[9]

(3) "क्या कभी कोई सितम बिन बात ही खफा हो सका है/क्या नशा उसका कभी भी डर बिना कम दो सका हैं।"[10]

(4) "जग से कटकर बैठे किसी आदमी का लिखना कुछ/हवा काटने का प्रयत्न करने जैसा है।"[11]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 28
2. वही, पृ0सं0 33
3. वही, पृ0सं0 41
4. वही, पृ0सं0 70
5. इदं न मम, पृ0सं0 70
6. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0 85
7. कालजयी, पृ0सं0 74
8. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 129
9. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 51
10. वही, पृ0सं0 54
11. वहीं, पृ0सं0 77

(5) "शूरता के नाम से जो है प्रतिष्ठित/क्यो नहीं भय भीत है वह।"[1]

(6) "तम न भेदे सूर्य तो फिर सूर्य क्या है/नम गुंजाया नहीं तो फिर तूर्य क्या है।"[2]

(7) "मुझे लगता है कि जैसे/लहर में सागर डुबाना है/
दिन–दहाड़े रात लाना है मनो में हवा से इंकार करना है वनो में।"[3]

(20) व्यतिरेक

उपमान की उपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष–वर्णन व्यतिरेक अलंकार है। व्यतिरेक का अर्थ है विशेष (वि) अधिक्य (अतिरेक) पर अधिक्य किसका और किसकी अपेक्षा? उसी का लक्षण में उत्तर है। उपमान की अपेक्षा उपमेय का अधिक्य अथवा उत्कर्ष इस अलंकार का विषय है। प्रायः और सभी अलंकारों में उपमेय की उपेक्षा उपमान के उत्कर्ष का वर्णन रहता है पर यहाँ उसका विपर्यय पाया जाता है।

(1) "अन्तर इतना है/एक को बनाया है आदमी ने/दूसरो का बनाया है उजाले ने
पानी के ऊपर, शायद थोड़ा–कुछ भीतर भी।"[4]

(2) "उसकी मौत/सूरज या ईसा या गाँधी जितनी/घनी और काली नहीं होगी
उतनी काली तो नहीं होगी/हमारी या आपकी भी मौत/क्योंकि मौतें/
अपने–अपने मन में–भरे हुए/प्रकाश या रंगों के/अनुपात में काली होती है।"[5]

(3) "मगर आग जो/अब निकल रही है/मेरी आँखों के कोनों से/
उसमें धारणा का कुछ नही हैं/सब छोड़नें का है/आज मेरा
मन/बना बनाया अपना मकान/तोड़ने का है।"[6]

(4) "उसी तरह यह भी कहा गया है/कि आदमी जो तुमने बनाया है
तुम्हारी कृतियों में वह श्रेष्ठ है/और श्रेष्ठ जो कुछ है प्रकृति में/
सब उसमें मिलता है/जल की तरलता और प्रवाह/अग्नि की
ऊष्मा और ज्वलन शक्ति।"[7]

(5) "मगर कविता को कोई/खोले ऐसा उल्टा/तो साफ नहीं होंगे हमारे अनुभव
इस तरह/क्योंकि अनुभव तो हमें/जितने इसके माध्यम से हुए है।
उससे ज्यादा हुए हैं दूसरे माध्यमों से/व्यक्त वे जरूर हुए है यहा।"[8]

(6) "मुझमे और उनमें फर्क है/जो केवल तर्क है/और धूमते रहते है जो
अपनी ही अक्ल की कील पर/लट्टू से ज्यादा/घानी–मानी हो जाते है जो खुद
और समझते हैं/दुनिया चक्कर में है।"[9]

(7) "प्यार/जो/ज्यादा जीता है फूल से/धरती पर/आता है/भूल से।[10]

---

1. कालजयी, पृ0सं0 84
2. वही, पृ0सं0 87
3. वही, पृ0सं0 89
4. खुशबू के शिलालेख पृ0सं0 29
5. वही, पृ0सं0 35
6. वही, पृ0सं0 68
7. वही, पृ0सं0 86
8. बुनी हई रस्सी, पृ0सं0 17
9. वही, पृ0सं0 22
10. वही, पृ0सं0 37

(8) "गीत लिखने से अच्छा मानता हूँ मैं/लिखना फसले जमीन।
टुकड़े पर।"[1]

(9) "तुम्हारे हाथ/उनसे नये हैं अलग है/एक अलग तरह से ज्यादा सजग हैं
वे उन सबसे नये है/सख्त हैं तकलीफ़देह है/जवान हैं।"[2]

(10) "कि देंखे हम/सच सुस्ता रहा है/थोड़ी देर छाँव में/और।"[3]

(11) "भली है/मेरे गॉव की संकरी गली/जहॉ लोग मिलते है/,एक–दूसरे से/
तो कहते है। भइया राम–राम/विस्तृत पथों को/उन पर दौड़ते हुए रथो को/
क्या कहिए देखते रहिए उन्हे तो/अपनी गति में/एक दूसरे के सिर
पर/पोंगा बजाते।"[4]

(12) "देह तुम्हारी क्षीण किन्तु बलहीन नहीं/तुमसे आत्मा लब्ध हुई तुम दीन नहीं हो
साधारण–सा रूप किन्तु दीपित–श्री ऐसी/इन आंखो को किसी देह
में दिखी न जैसी।"[5]

(13) "नहीं सन्तोष दृप्त को होता है/तब तक न प्राप्त कर ले/वह पद।"[6]

(21) विभावना

कारक के अभाव में कार्य की उत्पत्ति का वर्णन विभावना अलंकार है। विभावना का अर्थ है विशिष्ट (वि) कल्पना (भावना)। कारण के अभाव में कार्योत्पत्ति का कथन विशिष्ट कल्पना से सम्भव है। सामान्य और प्रसिद्ध कल्पना तो यही है कि कारण के रहने पर ही कार्य उत्पन्न होता है, पर कारण के न रहने पर कार्य का उत्पन्न होना विशिष्ट कल्पना के द्वारा प्रतिपादित हो सकता है इसलिए इसे विभावना कहते हैं।

(1) "आधे–अथ के आधी–इति के गीत गाये दम घोंटें/लौंटे फिर गये दिन
ठीक दिशा ठीक गति के बिना।"[7]

(2) "धुआं दिए बिना/मेरे भीतर से भीतर की तह तक/देता रहूँगा मैं एक तरह की/
शह तक/कि जलता रहे यह।"[8]

(3) "मैं इस बिना खींची/शराब को/पीता हूँ/मैं/इस बिना देखी/आब को जीता हूँ।"[9]

(4) "पेड़ो पर के पंछी/कुछ ज्यादा चहके हैं/बिना खास हवा के भी वृक्ष/मुझे देखकर
कुछ ज्यादा लहके हैं।"[10]

(5) "एकाध बार लगता है/जब मन नहीं रहा शरीर में/तो बिना मन के इस शरीर को
कौन चीज कहाँ तक चलायेगी।"[11]

(22) विशेषोक्ति

कारण के रहते हुए भी कार्य का न होना विशेषोक्ति अलंकार है। विशेषोक्ति का अर्थ है, खास तरह की उक्ति। सामान्य उक्ति से विलक्षण, विशेष प्रकार की उक्ति। विशेषोक्ति में कारण का कथन रहता है, फिर भी कार्य का अभाव बताया जाता है।

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 63
2. वही, पृ0सं0 99
3. परिवर्तन जिए,पृ0सं0 18
4. वही, पृ0सं0 25
5. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 11
6. कालजयी, पृ0सं0 16
7. बुनी हई रस्सी, पृ0सं0 48
8. तूस की आग, पृ0सं0 9
9. इदं न मम, पृ0सं0 12
10. वही, पृ0सं0 83
11. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0 11

यह विलक्षण बात है कि कारण के रहते हुए भी कार्य न हो। इसी विशेषता के आध ार पर इस अलंकार का नाम विशेषोक्ति पड़ा है।

(1) "सुबह जो घटना होनी थी/और वह जब हुई तो मैं/चकित नहीं हुआ।"[2]

(2) "मेरी तरंगे तो/उसे उठ कर/भर नहीं सकती।"[2]

(23) विरोधाभास

दो वस्तुओं में वस्तुतः विरोध न रहने पर भी विरोध की प्रतीत विरोधाभास अलंकार है। विरोध ाभास का अर्थ है– विरोध का आभास (झलक)। नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें भी विरोध–सा झलकता है। यह विरोध प्रायः शब्दाश्रित ही होता है, अर्थाश्रित नहीं। अर्थ की ठीक अवगति होने पर विरोध दूर हो जाता है।

(1) " स्वर्ण के इस फूल का कोई केन्द्र था/लेकिन स्वर्णिम नहीं था/वह केन्द्र।"[3]

(2) "मगर फिर अंधी आँखों बहरे कानों/हमें सब–कुछ देखना–सुनना पड़ता है।"[4]

(3) "लदे वृक्षों के फल की तरह/और मैं हल्का हो रहा हूँ/आज का रहकर भी कल का हो रहा हूँ।"[5]

(4) "ऐसा होता है समय कभी कितना सोता है/कभी कितना जागता है/लगता है कभी कितना हो गया है स्थिर/कभी कितना भागता है।"[6]

(5) "गुजर जाएं चाहे जितने दौर/पुराने नहीं पड़ते आम की मंजरी के मौर।"[7]

(6) "सारा दिन कितनी आवाजें जो आपस में/नहीं बोल रही होती।"[8]

(7) "दब जाता है तब मेरे मन का अदम्य मन/बुझ जाती हैं उसकी प्यासें ज्वालाएं।"[9]

(8) "न कुछ को शराब कर देता है/और लगा देता है/दुख के ओंठ आनंद से।"[10]

(9) "रूप एक छल है/नाम का सहारा/मृग जल है/यान की धारा से/प्यास नही बुझती।"[11]

(10) "स्थावर परिवेशों को जंगम करो/चित्र विचित्र भाव में।"[2]

(11) "जब चीजें नाचें और/स्थिर रहें उनकी परछाईयाँ।"[13]

(12) "एक काला हाथी/जो लगभग पीला है/एक सफेद कमल है/जो लगभग पीला है।[14]

(13) "शब्दहीन स्वर का शिल्पी/पवन/मगन है इस समय/हलकी–हल्की लहरों की तरह विलीन होने की धुन में।"[15]

(14) "एक कन भी अचल या अविचल नहीं इसका बचा है हिल गयी हैं जड़े ही धरती की जैसे।"[16]

---

1. बुनी हई रस्सी, पृ0सं0 31
2. तूस की आग, पृ0सं0 27
3. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 18
4. वही, पृ0सं0 24
5. वही, पृ0सं0 43
6. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 57
7. वही, पृ0सं0 69
8. वही, पृ0सं0 80.
9. वही, पृ0सं0 82
10. वही, पृ0सं0 95
11. खुशबू के शिलालेख, पृ0 10
12. वही, पृ0सं0 12
13. वही, पृ0सं0 144
14. इदं न मम, पृ0सं0 2
15. इदं न मम, पृ0सं0 31
16. गाँधी पंचशती– पृ0सं0 8

(15) "तुम्हारा मौन मुखरित हो गया मेरे हृदय।"[1]

(16) "जड़ता से उत्पन्न मृत्यु पर यह अमृत झरने का उत्सव।"[2]

(17) "नयी भी चाहिए ऐसी कि जिससे आग पैदा हो।"[3]

(18) "देखते हैं आँखे खोलकर भी एक सपना।"[4]

(19) "यह अजब महूरत है भाई लंगड़ा इसमें चल जाता है।"[5]

(20) "निशब्द निभृत में बहती है/यह धारा/भरकर कल–कल स्वर
रूखे–रूखे/ ऊँचे–नीचे/पृथ्वी के अंचल अपनाकर।"[6]

(24) पुनरूक्ति

जहाँ पर कोई क्रिया व्यापार दोहराया जाता है वहाँ पर पुनरूक्ति अलंकार होता है।

(1) "धुली–धुली दूर्बा का/निखरा बिखरा हुआ रूप।"[7]

(2) "दिन–दिन–दिनभर/रात–रात–भर करते है।"[8]

(3) "धीमी–धीमी–धीमी/मुझे प्यार है तुम्हारे आत्मा फल से।"[9]

(4) "हाँ–हाँ आज की/इस आग–आग/धुआँ–धुआँ/रात।"[10]

(5) "कि चाँदनी को मिल जाये/कि चाँदनी को मिल जाए।
तुमसे और आकाश को/बहलाने लायक कोई तत्व।"[11]

(6) "धुन में/भरा–भरा मैं/लगा हुआ हूँ।"[12]

(7) "राशि–राशि अलकों में/बँधा हुआ है।"[13]

(8) "यह द्विविधा है लहर–लहर में बिन्दु–बिन्दु।"[14]

(9) "धीरे–धीरे/नाम–रूप से परे/बृहत् से भरे देश में।"[15]

(10) "इसी के क्षण–क्षण–पकड़े/चकाचौंध क्षण–क्षण की।"[16]

---

1. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 27
2. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 33
3. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 49
4. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 51
5. वही, पृ0सं0 61.
6. कालजयी, पृ0सं0 15
7. बुनी हई रस्सी, पृ0सं0 19
8. वही, पृ0सं0 30
9. वही, पृ0सं0 94
10. तूसी की आग, पृ0सं0 13
11. वही, पृ0सं0 19
12. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0 9
13. वही, पृ0सं0 136
14. कालजयी, पृ0सं0 97
15. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 11
16. वही, पृ0सं0 13

(25) अर्थान्तरन्यास

यदि सामान्य का विशेष से या विशेष का सामान्य से समर्थन हो तो अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। अर्थान्तरन्यास का अर्थ है–अर्थान्तर (दूसरे अर्थ) का न्यास (रखना) अर्थात् एक बात के समर्थन के लिए दूसरी बात कहे, अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।

(1) "गरूण / उड़ता ही नहीं रहता / खिलता ही नहीं रहता फूल / मूल मगर वश–भर –खींचता रहता है रस / दर्पण प्रतिबिम्बित करता रहता है रूप।"[1]

(2) " हर रंग / रं बदलता है / सदा एक रंग बने रहने से।"[2]

(3) "रंग और प्रकाश भरना / छोटे काम करके ही तो / बचाये रख सकते हैं हम अपने छोटेपन को।"[3]

(4) "कठिन यह खेल हम खेलें थोड़ी देर / अबेर–सबेर कठिन से– –उलझना तो / सबको पड़ता है।"[4]

(5) "और तब यकायक चमका है यह सत्य / कि बेशक सॉप और आदमी आफत में एक है।"[5]

(6) एक बरस में उसका बन्धन / बना न जाने कारण कितनी कठिन श्रंखलाओं की क्षति का / अतियों को परिणाम बहुत ही जल्दी आ जाते है आगे।"[6]

(7) "समय के पाँव पर सब तो बिना अपवाद लोटे थे
काल की महिमा बड़ी है / कौन की तदवीर है ऐसी की जो इससे लड़ी है।"[7]

(8) "नाश को रचाए बिना / आगे निर्माण अब / नाश का प्रकाश तब / विकास से बड़ा हुआ।"[8]

(9) "मन सुसीम का इस भविष्य को / पकड़ न लेता क्यों / लिप्सा की चिंगारी को यह हवा न देता क्यों।"[9]

(10) "तक्षशिला से उज्जैनी पहुँचे अशोक ऐसे / गरूड़ गगन से गगनान्तर में जाता है जैसे।"[10]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 54
2. तूस की आग, पृ0सं0 29
3. खुशबू के शिला लेख, पृ0सं0 40
4. वही, पृ0सं0 71
5. वही, पृ0सं0 156
6. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 13
7. वही, पृ0सं0 51
8. कालजयी, पृ0सं0 24, 25
9. वही, पृ0सं0 55
10. वही, पृ0सं0 56

(26) मानवीय करण

जहाँ पर प्रकृति का मानव स्वभाव के अनुरूप चित्रण हो अर्थात जड़ का चेतन रूप हो। क्या या वर्णन हो वहाँ मानवीय करण अलंकार होता है।

(1) ''उतरेंगी अपना खेवा/उदास न हो जाए रेवा का पानी।''[1]

(2) ''सोया है मैदान घास का/ओढ़े हुए धुंघली–सी चांदनी।''[2]

(3) ''समय तो अब उन्हे/तोड़ने में लगा रहता है।''[3]

(4) ''वृक्ष जरूर नदियो के/तोड़ने में लगा रहता है।''[4]

(5) ''सारे वृक्ष विचित्र ढंग से/सिर हिलाने लगते है।[5]

(6) ''कुम्हलाकर बल्कि जैसे एकदम/डुबकी मार जाता है वह/उजाले की धारा।''[6]

(7) ''सुन्दर अरण्य–पल्लव के/रोज की तरह घूमने निकल गया।''

मिश्र जी के काव्य में मुद्रा, यथासंख्य, तद्गुण एकावली, उदाहरण अलंकार के छुटपुट उदाहरण भी मिलते है।

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 20
2. वही, पृ0सं0 42
3. वही, पृ0सं0 56
4. तूस की आग, पृ0सं0 47
5. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 114
6. वही, पृ0सं0 134
7. कालजयी, पृ0सं0 29
8. इदं न मम, पृ0सं0 15

शब्द-शक्तियाँ

(1) अभिधा

कोई भी काम बिना शक्ति लगाये नहीं होता। लिखना,–पढ़ना, बोलना, चालना, सबमें शक्ति लगती है। इसी तरह शब्द से अर्थ निकालने के लिये भी शक्ति अनिवार्य है। शब्द में अर्थ है पर वह बिना शक्ति के नहीं प्राप्त हो सकता। शक्ति को तृप्ति या व्यापार भी कहते है।

"शब्द का प्रसिद्ध अर्थ देने वाली शक्ति अभिधा है।"

प्रत्येक शब्द का एक अर्थ प्रयोग में प्रचलित और प्रसिद्ध रहता है इसलिये उस शब्द को सुनते ही वह अर्थ मन में अनायास ही जग पड़ता है। जैसे हाथी सुनते ही एक काले विशाल काय जंतु का रूप मन पर अंकित हो जाता है। चाँद कहने पर चमकीले ग्रह पिण्ड का बिम्ब मन में उपस्थित होता है। इसी प्रकार 'बैल' से पशु विशेष का, 'उल्लू' से पक्षिविशेष का 'हिमालय' से पर्वत विशेष का 'गंगा' से नदी विशेष का अर्थ अनायास उपस्थित हुआ करता है। उपर्युक्त शब्दों से ये अर्थ समाज में प्रसिद्ध है। इस स्तर पर प्रयुक्त शब्द को वाचक उससे प्राप्त अर्थ को वाच्य और शब्द से अर्थ प्राप्त करने वाली शक्ति को अभिधा कहते है।

(1) सामने के एक वृक्ष के बारे में कहूँ/और भी है एक दो बकुल के वृक्ष इसी पंक्ति में/ मगर यह उनसे अलग है।[1]

(2) और इतना तो तय ही है। कि इससे किसी और की/हानि नहीं होगी/ क्योकि प्रकाश और रंग की थैली/रूपयो की थैली नहीं है/न विज्ञान के दम पर/खोजा हुआ/कोई हथियार है।[2]

(3) कुछ इसी तरह को है यह/प्रकाश और रंग का मामला/क्योंकि पर्याय है यह उसी का/बीज है यह तुलसीदास का/उग आता है।[3]

(4) पंकजो से भरे सरोवर/नीम और करौंदियों से भरे/हजार–हजार बरसो से/ फूलने और खिलने वाले/विन्ध्यवन के विस्तार।[4]

(5) तुम्हारे कमरे के बाहर/तीन–तीन लोक है/उनके सुख है और/उनके शोक है।[5]

(6) मन के भीतर से/धरती पर ही नही/आकाश की ओर भी/प्रकाश और प्रेम की धारायें[6]

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 25
2. वही, पृ0सं0 33
3. वही, पृ0सं0 38
4. वही, पृ0सं0 124
5. परिवर्तन जिये, पृ0सं0 19
6. वही, पृ0सं0 57

(7) इस समय मै बगीचे में बैठा हूँ/मेरे आस पास के पेड़ो पर/पंछी चहक रहे है/और महक रहे है/पौधों पर फूल[1]

(8) तसवीरे तुम खीचों/ और रंगो तुम/अपनी खीची हुई तस्वीरे[2]

(9) तेज गर्मी/मूसलाधार वर्षा/कड़ाके की सर्दी/खून की लाली/दूब का हरापन[3]

(10) रास्ते/जमीन पर होते है/ और समुद्र मे भी/नही तो[4]

(11) यहाँ रास्ता खत्म है/और रास्ता जहाँ खत्म है वहाँ/एक काली बिल्ली मरी पड़ी है[5]

(12) वैसे अगर पिछले बरस मैं चला जाता/तो देखते रह जाते मुझे/मेरे बच्चे[6]

(13) यह जो मै लिख रहा हूँ/सो असल में मैं लिख नही रहा हूँ/वक्त काट रहा हूँ[7]

(14) यह अछूत वह काला गोरा/यह हिन्दू वह मुसलमान है/वह मजदूर और मै धनपति/यह निर्गुण वह गुण निधान है।[8]

(15) जरा दूर हट जाओ, आओ इधर आओ/पास मत छिरो उसके, उसे हल्की ठंढी हवा लगने दो[9]

(16) पुराने किस्सो में/होनहार बच्चों को/बताया जाता था ऐसे[10]

(2) लक्षणा

शब्द का सडा प्रसिद्ध या मुख्य अर्थ लेने से ही काम नहीं चलता कभी–कभी अप्रसिद्ध या गौण अर्थ भी आपेक्षित होता है। इस स्तर पर अमिधा शक्ति का कार्य सामाप्त हो जाता है और हमे लक्षणा की सहायता लेनी पड़ती है। अमिधा केवल प्रसिद्ध अर्थ या मुख्य अर्थ दे सकती है। अप्रसिद्ध या गौण अर्थ देने का काम लक्षणा का है।

वाच्य (मुख्य) अर्थ बाधित (असंगत) होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के कारण जिस शक्ति से मुख्य अर्थ से संबद्ध अन्य (गौण) अर्थ की प्रतीति होती है, उसे लक्षणा कहते है।

लक्षणा की आवश्यकता तभी पड़ती है जब मुख्यार्थ (वाच्चार्थ) लेने से काम नहीं चल रहा हो, तात्पर्य कि उसमे किसी प्रकार की असंगति उपस्थित हो रही हो जैसे जब किसी मनुष्य को कोई बैल कहता है अतः मनुष्य को बैल समझने में बांधा पड़ रही है अर्थात बैल का प्रशु अर्थ (जो उसका मुख्यार्थ है) लेने से बात नहीं बन रही है से स्पष्ट है कि शब्द के

---

1. परिवर्तन जिये, पृ0सं0 108
2. इदं न मम, पृ0सं0 16
3. वही, पृ0सं0 54
4. इदं न मम, पृ0सं0 97
5. अंधेरी कवितायें, पृ0सं0 17
6. वही, पृ0सं0 78
7. वही, पृ0सं0 115
8. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 15
9. वही,पृ0सं0 217
10. वही, पृ0सं0 375

प्रयोग के पीछे वक्ता का कुछ विशिष्ट अभिप्राय है। वह अभिप्राय है मनुष्य की मूर्खता की अतिशयता बताना। मूर्ख कहने पर मूर्ख की अतिशयता सूचित नही होती जबकि बैल कह देने पर मूर्ख की पराकाष्ठा प्रकट हो जाती है। यही कारण है कि यहाँ अमिधा को छोड़कर लक्षणा की सहायता लेनी पड़ती है।

(1) सूरज का चन्दा का/फूलो का पत्तो का/लहरो का बूंदो का वजन/ मन पर कसाबर्दास्त/निष्क्रिय भाव से/कठिन है बहुत कठिन[1]

(2) आसमान तब/सिर पर उठाया मैने/और दे मारा मैनें उसे/जमीन पर[2]

(3) उस दिन/आँखे मिलाते ही/आसमान नीला हो गया/और धरती फूलवती[3]

(4) अभी तो नगर की ओर/शरीर की ही नहीं/शरीरों की हवा को/खीचें जा रहा हूँ[4]

(5) तब भी नहीं समझते तुम/तो मैं उलझ जाता हूँ/लगता है जैसे/नाहल अरण्य में गाता हूँ[5] (रूढ़ा)

(6) पाने और खोने के/कोने ही कोने गडते है/पीठ में/मन में दीठ में[6]

(7) मेरा सदा मुरठी में/रहने वालामन/चीरकर मेरी उगलियाँ/मेरे हाथ से निकलकर खो गया[7] (रूढलक्षणा)

(8) और सिर उठाती है फिर/वक्त पाकर/आसमान में चुप पड़ी हुई/हवा की तरह[8]

(9) एक बादल पराग का/तुम्हारा अकेलापन[9]

(10) चादर चाँदनी की आज मैली है/यों उजली है वह घास की इस गंध की अपेक्षा/हरहराते घास के इस छंद की अपेक्षा[10]

(11) उजाले की आखिरी किरन तक/पी ले जो मन जो प्राण/अपने प्राणों ओर आदानो के बारें में/ मैं वैसा कुछ सोचता हूँ।[11]

(12) जवान था जब आसमान/दिलचस्पी थी उसे तब धरती में[12]

(13) जो पिये जा सकते है शायद उससे/शांतित और आनन्द और श्रेयस्/स्वस्थ गात्र के अभाव में[13]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 19.
2. वही, पृ0सं0 21
3. वही, पृ0सं0 23
4. वही, पृ0सं0 30
5. वही, पृ0सं0 35
6. वही, पृ0सं0 36
7. वही, पृ0सं0 38
8. वही, पृ0सं0 40
9. वही, पृ0सं0 41
10. वही, पृ0सं0 42
11. वही, पृ0सं0 45
12. वही, पृ0सं0 50
13. वही, पृ0सं0 56

(14) और बाहर के तमाम झाड़/शरीर के भीतर की नसें/मन के भीतर के पहाड़[1]

(15) और तुम चाहों तो बहला सकती हो मुझे/जब तक अंधेरा है तब तक सब्ज बाग दिखलाकर[2]

(16) गुजर जायें चाहें जितने दौर/पुराने नहीं पड़ते आम की मंजरी के मौर[3]

(17) हमारे करे–धरे पर/पानी फेरेगा कोई/ऐसा लगता ही कैसे[4]

(18) अभी माँग रहा है पत्ता मर भत्ता/और मैने तरह–तरह के पत्तों पर/पेश कर देखी है उसली मांग[5]

(19) जहाँ कोई मीठा सपना/हसताँ है और रोता है[6]

(20) मैं तुम्हारें हाथ/अपने हाथों में लेना चाहता हूँ/नये क्षितिज/तुम्हें देना चाहता हूँ/खुद पाना चाहता हूँ।[7]

(21) रात ने पाव के नीचें के/पत्थरें को ठंढा कर दिया है/हवा में/भर दिया है/एक चमकदार सपना[8]

(22) बने तो हल्की सी सुगंध/या मिठास मिलाकर उसमें/अपने मन की/फिर पूछों कुशल प्रश्न[9]

(23) खिसक जाती है/मेरे पावों के नीचें से धरती/क्या जाने क्या देखता हूँ तुम्हें[10]

(1) धूम–धाम से चले/अभी बारात उम्र की[11]

(2) तौलने में अपने को उस तरह/बेशक बनी रहती है/मन में बैठे हुए भी/उतनी उड़ान जितनी लगती है[12]

(3) अलग तो होता है हर वृक्ष के अपना–अपना/व्यक्तित्व होता है[13]

(4) तीव्रतर बहेगा/पत्ते तब काफी तादाद में झरेंगे/आज के ये लगभग मौन/वकुल महाशय[14]

(5) इन छोटे–बड़े/प्रकाशों और रंगों की बाढ में/यों तो छुप भी जा सकता हूँ[15]

---

1. वही, पृ0सं0 57
2. वही, पृ0सं0 58
3. वही, पृ0सं0 69
4. वही, पृ0सं0 73
5. वही, पृ0सं0 81
6. वही, पृ0सं0 87
7. वही, पृ0सं0 99
8. टूस की आग, पृ0सं0 12
9. वही, पृ0सं0 33
10. वही, पृ0सं0 54
11. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 11
12. वही, पृ0सं0 23
13. वही, पृ0सं0 25
14. वही, पृ0सं0 27
15. वही, पृ0सं0 32

(6) एक तरह की सावधानी/एक तरह का कौशल/मुझ में आयेगा/और मेरा सधा हुआ हाथ[1]

(7) नये एक अर्थ में पड़ जाते है सोच में/लज्जा से गड़ जाते है यानी/कि कितना वक्त/सोचने में निकाल दिया/और फिर आप[2]

(8) फिर दिखा सौम्य/और प्रशन्न सूरज/और सूरज को मैने/प्रायः नमस्कार किया[3]

(9) नतशिर और उत्कंठ/और सामने की तरफ/समः काय सीधी दृष्टि/तीन है स्थितियाँ/आदमी के सिर की[4]

(10) विचलित स वितान के नीचें/शांत भाव से/कैसे जोडूँ अपनी गॉठ मैं/एक नये हरे घाव से[5]

(11) जिन्दगी/उदासी और थकान शरीर की/ईंट हिलाने लगी है/मकान की/भगवान की इच्छा अलग चीज है/मेरी इच्छा अलग[6]

(12) मेरा और जिन्दगी का मतलब/दिन काटने से था/मौत को तो दिन काटने नहीं पड़ते/ स लिये वह साफ और/निश्चित मन से खेल रही थी[7]

(13) तो एकाएक खिला दो मेरे/पास के पौधे पर एक/हँसता हुआ फूल[8]

(14) दिखने वाला रूप उसका/तो सचमुच उस पर/चार चॉद लग जाते है/इन दिनों ऐसे पल[9]

(15) उन्हे सुनो तो लगता है/मौत है पीना पूषण की रश्मियों को/सिमट जाये अगर/किसी ढब से ये रश्मियाँ[10]

(16) हवा वह अब जोर पकड़ रही है/फट जायेगी और उड़ जायेगी उसमें/अक्ल को ढक रखने वाली/वे जलियाँ/जिन्हें तुमने/उपलब्धि माना है[11]

(17) चालीस बरस से डालकर कुटिया/शब्दों की प्रवाहमान धारा के किनारे बसा हूँ। लोग तो हॅसे ही है मेरी इस मूर्खता पर/कभी–कभी मैं भी हँसा हूँ[12]

(18) बेशक तंग दिली ने/पैदा किया है इसे/मगर स्पर्धा से लबरेज/व्यवस्था में/इसकी पखा है किसे[13]

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 33
2. वही, पृ0सं0 37
3. वही, पृ0सं0 62
4. वही, पृ0सं0 63
5. वही, पृ0सं0 67
6. वही, पृ0सं0 69
7. वही, पृ0सं0 74
8. वही, पृ0सं0 88
9. वही, पृ0सं0 103
10. वही, पृ0सं0 107
11. वही, पृ0सं0 113
12. वही, पृ0सं0 156
13. परिवर्तन जिये, पृ0सं0 13

(19) आक के नहीं/ढाक के/तीन पात[1] (रूढ़ि लक्षणा)

(20) अपना सब कुछ भूल जाते है वे/जुलूसों में घिसटते है/धूल खाते है और/चिल्लाते है उसे जो/सुना है उन्होने गीतों में[2]

(21) तुलसी मीरा सूर और कबीर के/पुराने गीत/ पीले पड़ने लगे/खून पिये हुए सुखे चहेरें। भॉपकर गये बीतो गीतों के/नये अभिप्राय[3]

(22) जलती हुई ऑखें/जिन्होनें मुझे घूरा/और राख बनाना चाहा मुझे/मगर मैने कहा ना। मैं पत्थर हूँ[4]

(1) उन वचनों के इशाखें पर/प्राणों को/चाहे जितने ठंढे आंगनों में/ऐसे नचा लेता हूँ/कि चूर–चूर हो जाती है/सूफ़ूर्ति के आनन्द में/इंद्रिया[5]

(2) वृंत की तरह/दुख भी नहीं होगा/और चुने जाने का दर्द/नहीं होगा फूल को[6]

(3) जैसे किसी ने/मन के बखियें/उधेड़ दिए[7]

(4) क्योंकि/दोनों की ऑख/आखिर/उजाले पर है[8]

(5) मेरे तो वे/मन में उतर जाती है/और वहाँ/कभी अकेली–अकेली/तो कभी आपस में बतियाती है।[9]

(6) रात की ऑखों ने/जब मेरे कपोल हुए/तो चुप ओस जैसे बूंद/मेरी ऑखों से[10]

(7) किसी दिन मगर/रोज की ये चीजे दिव्य हो जाती है/वो जाती है भीतर हमारे/किरने और लहरे और स्वर[11]

(8) घाव की पीड़ा/कई बार लजा जाती है/मेरे इस स्वभाव के कारण[12]

(9) मैनें निचोड़कर दर्द/मनको/मानों सूखने के ख्याल से/रस्सी पर डाल दिया है/और मन/सूख रहा है[13]

(10) रात में/दिन–भर की स्मृतियों से/धो देता था इस की थकान[14]

---

1. परिवर्तन जिये, पृ0सं0 20
2. वही, पृ0सं0 26
3. वही, पृ0सं0 33
4. वही, पृ0सं0 34
5. वही, पृ0सं0 42
6. वही, पृ0सं0 49
7. दं न मम्, पृ0सं0 10
8. वही, पृ0सं0 14
9. वही, पृ0सं0 16
10. वही, पृ0सं0 28
11. वही, पृ0सं0 36
12. वही, पृ0सं0 62
13. वही, पृ0सं0 77
14. अंधेरी कविताएं,पृ0सं0 11

(11) पार जा सके मेरी खुशी/पॉव–पॉव जा सके/जहाँ से मेरा रक्त कमल/किनारे के उस पार/शांतजल के थमें से/सरोवर में[1]

(12) कितना नाचा हूँ तुम्हारे इशारें पर/नौं मन तेल तक जुटाया है मैनें/खुद अपने ही लिये[2]

(13) वह अतल से फूटकर निकला है मेरे/आज सोतें जागतें यह स्वर मुझे घेरे हुये है[3]

(14) कल तक हरिजन कोश इकट्ठा करने में रत/वे इस आहट को पाते ही इधर मुड़े है/और उड़े है होश बेचारी सत्ता के जो देख रही है हर सेवा से/गॉधी शक्तिवान बनता है।[4]

(15) वर्षा के झरनो में गीतों को छोते फिरना/जाने अनजानें विन्ध्य शिखरों का होते फिरना/अब के भी करूंगा वही जीवित मरूंगा नहीं।[5]

(16) क्या ओ देश के अंधे कभी अपने भले घर की/तुझे तू सोचता क्या, उडाता है बिना पर की[6]

(17) कि मेरे साथ गम को ठेलकर इस पार आ गई/उमड़ता है अगर दर्दो का कोई एक समुन्दर। तू उमड़ने दें[7]

(18) जगत में देश की बेदी/न जाने आज तक/कितने हुए बरबाद घर कितनों के दिल टूटे/न जाने आज तक/कितने मिले मिट्टी में कितनों के करम फूटे[8]

(19) वे कुदाली हाथ में लेकर यहाँ भी आ रहे है/वक्त बदला है किसी के रोकने से क्या रूकेगा/आज लगता है कि कोई आस्मां भी हो झुकेगा[9]

(20) सड़कों पर मिलेगे हमें सड़कों पर दिखेगें हमें/ऐसे अनेक दृश्य जिनमें से एक–एक दृश्य/छाती को फाड़ दे/आखों में लगा दे आग मन को बिगाड़ दे/ गॉधी आज बन्द है नेहरू आज बन्द है/अस्त व्यस्त देश का बिखरा हुआ छंद है[10]

(1) कारण रण का तब/सिंहासन बन जायेगा/तब एक महाभारत फिर से/इस धरती पर ठन जायेगा[11]

(2) राजा ने उठकर/प्रेम विवश कस लिया/वे वज्र भुजायें/जिनने बिजली कसी[12]

1. अंधेरी कविताएं, पृ0सं0 25–26
2. वही, पृ0सं0 45
3. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 9
4. वही, पृ0सं0 17
5. वही, पृ0सं0 38
6. वही, पृ0सं0 46
7. वही, पृ0सं0 49,
8. वही, पृ0सं0 50
9. वही, पृ0सं0 55
10. वही, पृ0सं0 57
11. कालजयी, पृ0सं0 17
12. वही, पृ0सं0 30

(3) मगध राज का झंडा/चाहे अल्पकाल के लिये क्यों न हो/वहॉ झुका है/ तक्षशिला कम से कम इस क्षण/मागध–अंचल नहीं बचा है[1]

(4) स्वार्थो के झण्डे फहरे थे/था गगन भरा/थर–थर यदि कॉप रहा था कुछ/तो वह बेचारी वसुन्धरा[2]

(5) नदी सिवा बहने के क्या है/जीवन दिये बिना है सूना/धारा से हरियाली जागे/तो धारा का बहना दूना[3]

(6) हट गये मेध/प्राची दिगन्त में/शुक तारा झिलमिला उठा/ली सुख की सॉस/ धरित्री ने[4]

(7) फिर भी प्रश्न उठायें है सिर मन में मेरे/कितनी चिंताएँ अब भी है मुझकों घेरे/लगता है मैं कौन/कि सारे राजपाट की धारा बदलू[6]

(3) व्यंजना

''अमिधा और लक्षणा की सीमा के बाहर पड़ने वाले अर्थ को जो शक्ति व्यक्त करती है, उसे व्यंजना कहते है।''

पूर्व हम देख चुके है कि अमिधा का काम है पुरूषार्थ का बोध कराना और लक्षणा का काम है लक्ष्यार्थ का बोध कराना। पर इन दोनों के अतिरिक्त भी एक अर्थ होता है जो न अमिधा से प्राप्त हेता है और न लक्षणा से उसके लिये व्यंजना की सहायता लेनी पड़ती है। व्यंजना शक्ति से जो अर्थ निकलता है, उसे व्यंग्य कहते है और जिस शब्द से वह अर्थ निकलता है उसे व्यंजक कहते है। उत्तम व्यंग्य अर्थ का ही दूसरा नाम ध्वनि है। वाच्य और लक्ष्य अर्थो की अपेक्षा व्यंग्य अर्थ में अधिक सूक्ष्मता और रमणयिता रहती है और काव्य में रमणीयता का सर्वाधिक महत्व है। इसीलियें व्यंग्यार्थ को काव्य की आत्मा माना गया है।

व्यंजना के दो भेद होते है (1) शाब्दी (2) आर्थी

शाब्दी व्यंजना वहॉ होती है जहॉ अनेकार्थक शब्दों का प्रयोग होता है व

आर्थी व्यंजना वहॉ होती है जहॉ एकार्थक शब्दों का प्रयोग होता है–

---

1. कालजयी, पृ0सं0 36
2. वही, पृ0सं0 43
4. वही, पृ0सं0 62
5. वही, पृ0सं0 79
6. वही, पृ0सं0 92

(1) आसमान जवानी जाने के पहले ही/बेरूखा हो गया था धरती की तरफ से/और अब तो वह जवान भी नहीं रहा[1]

(2) एक बहुत ही हल्का लाल बादल/उसके सिर पर उतरा/एक बहुत ही सुर्ख रंग का धब्बा/उसके चेहरे पर उभरा[2]

(3) इस भय से कि निसर्ग का रस/उगा न पाये मुझ पर/अपने ढंग के काटें अपने ढंग के फूल[3]

(4) सब निश्चल खड़े रहे/ताकते हुये अस्पताल के परदे/और दरवाजे और खिड़कियाँ/और आती जाती लड़कियाँ/जिन्हे मैं सिस्टर नही कहना चाहता था/कहना ही पड़ता था तो पुकारता था बेटी कहकर[4]

(5) मैं सब जगह जाना चाहता हूँ/दो अपना हाथ मेरे हाथ में/नये क्षितिजों तक चलेगें/साथ–साथ सूरज से मिलेगें[5]

(6) वृक्ष जरूर नदियों के/पूर्वज हैं/इन पूर्वजों ने मगर/दूध पिया है/अपनी अनुजाओं का/ जो उनके कष्ट को समझकर/सिक्त करती रही/पय से अपने उनकी जड़े[6]

(7) कलम का दिये गये/इस अपराध में/हमारे हाथ/कि हमने/उन्हे/नाथ क्यों नही लिखा[7]

(8) जैसे भर रहा हूँ मैं इसे/खादी के तारों से/और गेहूँ बाजरा/ज्वारों के बीजों से[8]

(9) ठंढ में ओस गिरती है/उनकी बला से/वे कभी उस पर चलकर/नहीं देखते/पक्के आदमी पक्के घर/प्रकृति तक पक्की बनाकर छोड़ दी[9]

(10) क्योंकि/किसी के पास से/आया हुआ फूल अकसर तो/एक तरह की आग है[10]

(11) दोपहरी तक पहुँचते–पहुँचते!/मुरझा जाता है जो/वह कैसा भोर है/क्या/कुल मिलाकर/[11]

(12) कितना नाचा हूँ तुम्हारे इशारों पर/नौ मन तेल तक जुटाया है मैनें/खुद अपने ही लिये[12]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0सं0 50
2. वही, पृ0सं0 52
3. वही, पृ0सं0 53
4. वही, पृ0सं0 57
5. वही, पृ0सं0 99
6. टूस की आग, पृ0सं0 47
7. वही, पृ0सं0 83
8. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 31
9. वही, पृ0सं0 141
10. इदं न मम, पृ0सं0 56
11. वही, पृ0सं0 70
12. अंधेरी कविताएं पृ0सं0 45

(13) मेरी बोली का गर्व सदा ही से गरीब की वाणी है/मेरी स्याही रूप का सदा ही से आंखों का पानी है[1]

(14) जहाँ जो बोलता है/एक रस घोलता है/बेशक हमारा है/आँखों का तारा है[2]

(15) अहंकार रह जाय अजन्मा/द्विज हो जायें हम/यह मानव का भाग्य/कि ऐसा हो पाता है कम[3]

(1) कोमल किसलय हिले कि/पत्थरों के प्राणों में प्यार भर उठा/लहर मन्चल कर उठी कि/मरू के जीवन में भी ज्वार भर उठा[4]

(2) कमल पाणि को छूकर/मेरे सारे पत्थर/गल जाते है[5]

(3) स्नेह नित निरूपाय, द्वेष समर्थ है क्या/रक्त ही धत क्या हरी होगी/ इस समस्य–जलधि की क्या तरी होगी[6]

मैं यह कह सकती हूँ कि शैल्पिक रचाव में उन्होनें जिन दो बातों पर मुख्य रूप से ध्यान दिया है– वह है बोलचाल की भाषा तथा उसमें सही शब्दों का प्रयोग उनमें सर्व अभ्युदय की जा भावना है, उसे साकार करने के लिए वे सर्वजन्य सामान्य भाषा का प्रयोग आवश्यक मानते हैं। वे अपने इस सिद्धान्त को अपनी सर्जना में भी लागू करते है। बोलचाल की सरलतम भाषा में गम्भीर से गम्भीर बात कह देना तथा विचारों के पर्त दर पर्त खोलते जाना उनकी काव्य भाषा के रेखांकनीय के सम्बन्ध में 'बुनी हुई रस्सी' की भूमिका में लिखा है कि– "लिखना आखिरकार मेरा बोलना है। मैं जो लिखता हूँ उसे जब बोलकर देखता हूँ और बोली उसमें बजती नहीं हैं तो मैं पंक्तियों को हिलाता डुलाता हूँ बोलचाल हिन्दी की मेरी ताकत है"

निश्चय ही उनकी कविता एक बात चीत होती है कविता को बतकही और बतकही को कविता के सॉचें में ढाल देने की कला में वे सिद्धहस्त हैं, अद्वितीय कविता को मधुर और आकर्षक बना देती है कविता में बातचीत के उनके कई ढंग है कही वे प्रश्नकर्ता है कही संबोधन कर्ता तो कही उत्तरदाता दूसरा व्यक्ति भी उनकी कविता में परोक्षरूप से सदैव उपस्थित रहता है बोलचाल की भाषा से युक्त कविताओं में व्यक्तियों लोकोक्तियों एवं मुहावरों का भी

---

1. गांधी पंचशती, पृ0सं0 23
2. कालजयी, पृ0सं0 49
3. वही, पृ0सं0 52
4. वही, पृ0सं0 57
5. वही,पृ0सं0 59
6. वही, पृ0सं0 87

विशिष्ट प्रयोग देखा जा सकता है। वास्तव में उनकी भाषिक पहचान ही उनकी सबसे बड़ी विशेषता एवं उपलब्धि है, क्योंकि कविता पढ़कर सुधी पाठक यह सहज अनुमान लगा लेता है कि यह कविता श्री भवानी प्रसाद की हैं क्योकि हिन्दी कविता में उनकी अपनी विशिष्ट शैली है जिसके कारण वे अलग है कविता का एक–एक शब्द सशक्त हस्ताक्षर है कविता के नीचे या ऊपर उनका नाम देने की आवश्यकता नहीं है; अस्तु भवानी प्रसाद मिश्र नयी कविता में प्रथम पंक्ति में कवि है वे विशिष्ट है उनका कथ्य विशिष्ट है, उनकी शैली विशिष्ट है।

षष्ठम्-अध्याय

अध्याय – 6
अलोच्य कवि में बिम्ब–विधान

(क) बिम्ब-स्वरूप एवं वर्गीकरण

बिम्ब परिभाष एवं स्वरूप :-

आत्माभिव्यंजना मानव स्वाभाविक प्रवृत्ति है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उपलब्ध अनुभूतियों को प्रकट करके वह सुख का अनुभव करता है। कवि का हृदय तो सामान्य व्यक्ति के हृदय की अपेक्षा और भी अधिक संवेदनशील होता है, अतः उसमें आन्तरिक अनुभूतियों और जागरित घटनाओं की प्रतिक्रिया कुछ विलक्षण ही हुआ करती है। अनुभूतियों की सफल अभिव्यक्ति कवि हृदय द्वारा ही हुआ करती है। इस अभिव्यक्ति के लिए कवि को किसी ऐसे माध्यम की खोज करनी पड़ती है। जिसके द्वारा उसकी अनुभूति भावक वर्ग के लिए ग्राहय हो। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए कवि अपनी अमूर्त्त अभिव्यक्ति को शब्दों के माध्यम से मूर्त्त रूप प्रदान करता है, अर्थात उसे इस रूप में अभिव्यक्त करता है कि भावक में मानस पटल पर उसकी अनुभूति से सम्बन्धित विषयों का एक चित्र या खिच जाता है और भावक अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा उसका काल्पनिक साक्षात्कार कर लेता है, काव्य में इसे ही बिम्ब कहा जाता है।

'बिम्ब' काव्य का अनिवार्य उपादान है। वस्तुतः बिम्ब ही काव्य में भाव तथा विचार का साधक है। कविता में रागतत्व का सन्निवेश किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। कवि के ऐन्द्रिय सम्वेदनों की राग संपृक्त अभिव्यक्ति ही बिम्ब का रूप ग्रहण करती है। बिम्ब का जन्म कवि की अनुभूतियों से होता है। किन्तु अनुभूतियों व्यक्त होकर सदैव काव्य का रूप धारण नही करतीं, वे काव्य तभी होती है। जब कवि की कल्पना से अनुप्रणित होकर रूपायित होती हैं, कल्पना में बिम्ब विद्यायिनी क्षमता होती है। बिम्ब विधान अमूर्त्त में सम्भूर्ती करण की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के माध्यम से श्रेष्ठ कवि अपने काव्य में अनुभूतियों को चित्रगुण से संवलित कर, इस रूप में अभिव्यंजित करता है, कि प्रभाता के मनश्चक्षुओं के समक्ष वर्ण्य विषय का एक चित्र–सा खिच जाता है, और वह कवि की अनुभूतियों से ऐन्द्रिय साक्षात्कार कर तादात्म्य स्थापित कर लेता है। वस्तुतः अनुभूति को मूर्त्त रूप प्रदान करने में ही काव्य

की अर्थवत्ता है यही बिम्ब निमार्ण की प्रक्रिया है।

काव्य बिम्ब विधान का अध्ययन कवि के बाहय ज्ञान का स्वरूपात्मक परिचय तो है ही, उसके अन्तः मन के क्रमिक भावों एवम् सहजात वृत्तियों का अभिज्ञान भी है। बिम्ब के माध्यम से हम कवि के अन्तर में पैठ कर सम्यक रूप से उसे जानने का प्रयत्न करते है। बिम्ब कवि के समग्र व्यक्तित्व को प्रदर्शित करने वालों दर्पण मात्र ही न होकर ऐसी रश्मि है जो उसके मानस की सम्पूर्ण वृत्तियों एवं स्वरूप को प्रकाशित करती है तथा पाठक की मानसिकता और ग्राहय शक्ति को उर्वर बनाती है। बिम्ब काव्य की प्रतिकृति से प्रस्तुत करने का सबल और सशक्त माध्यम है। बिम्ब विधान काव्य में अन्तनिहित सम्बेदनाओं, प्रेरणाओं तथा अनुभूतियों का मनोवैज्ञानिक तथा सूक्ष्म रूप प्रस्तुत करता है। बिम्ब के सशक्त माध्यम से काव्य का बाहयान्तर परख करना सर्वथा एक नवीनतम् विधि है। काव्य के सन्दर्भ में बिम्ब एक विशिष्ट ऐन्द्रिक प्रक्रिया है। बिम्ब में कविता का अप्रतिम–सौन्दर्य काल्पनिकता एवं अलंकारिकता का मिश्रित रूप निहित रहता है। शास्त्रों के माध्यम से सादृश्य विधानम्की बिम्ब की वस्तु सामग्री को एकत्र करता है। काव्य या सहित्य के अतिरिक्त इस प्रकार की अनन्त गुणात्मिका वृत्ति विज्ञान तथा अन्य शास्त्रों में नही पाई जाती। बिम्ब के कलेवर का आधार नाना प्रकार की संकल्पनओं का पुज होता है। कल्पना के इस समूह को लेकर ही कविता अपने अस्तित्व का निर्माण करती है। बिम्ब काव्य का शाश्वत धर्म है। प्रत्येक देश जाति और काल के साहित्य में रस की सत्ता रहती है।

भारतीय विद्वान :-

बिम्ब शब्द अंग्रेजी के इमेज (IMAGE) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा में "बिम्ब' शब्द अपेक्षाकृत नया है। पुराने लक्षण ग्रन्थों में इस शब्द का उल्लेख मिलता है। केवल दृष्टान्त अलंकार की चर्चा में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का उल्लेख मिलता है जिसका आधुनिक हिन्दी कविता से कोई सम्बन्ध नहीं है।[1]

भारतीय कोशों में बिम्ब के अर्थ–प्रतिमा छाया प्रति बिम्ब, अवश, प्रतिच्छाया, सूर्य या चन्द्रमा मण्डल, कमण्डल, कुंदरू आदि दिए गये हैं। इस प्रकार बिम्ब सामान्यतः तीन अर्थो में प्रयोग किया जाता है– चित्र, प्रतिमा मूर्ति है।

---

1. चेदिम्ब प्रतिबिम्बत्व दृष्टास्तस्यदलंकृति–कुवलयानंद पृ0सं0 52.

हिन्दी साहित्य में बिम्ब के सर्वप्रथम प्रयोक्ता एवं व्याख्याता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल है। डॉ0 केदारनाथ सिंह ने अपने शोध प्रबन्ध में लिखा है कि "वस्तुतः बिम्ब सिद्धान्त हिन्दी आलोचना को शुक्ल जी अपनी देन है, उनसे पूर्व बिम्ब को सामान्यतः उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वाभावोक्ति और समासोक्ति आदि अलंकारों के भीतर ही समक्ष लिया जाता था। बिम्ब के संश्लिष्ट स्वरूप को व्याख्या करके शुक्ल जी पहले पहल उसे शोघधर्मी अलंकारों से अलगाने का प्रयास किया।"[1]

बिम्ब शब्द के प्रथम प्रयोक्ता आचार्य शुक्ल ने सर्वप्रथम काव्यगत अमूर्तता का विरोध किया और बिम्ब निर्माण की क्रिया को कवि का मुख्य उद्देश्य बताया "काव्य का काम है बिम्ब (IMAGE) अथवा मूर्त भावना उपस्थित करना, बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नहीं।"[2]

शुक्ल जी ने भावों के मूर्त रूप को बिम्ब कहा है– यह बिम्ब सहृदय की कल्पना में उपस्थित होता है। उनके अनुसार " बिम्ब रस पूर्ण होता है, विचार या तर्क पूर्ण नहीं। उनका विचार है कि "ऐसे रसात्मक तथ्य आरम्भ में ज्ञानेन्द्रियाँ उपस्थित करती हैं फिर ज्ञानेन्द्रियाँ द्वारा प्राप्त सामग्री से भावना या कल्पना उसकी योजना करती है।" इस प्रकार शुक्ल जी के अनुसार बिम्ब में रसात्मकता, ऐन्द्रियता एवं भावात्मकता का होना आवश्यक है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बिम्ब शब्द का प्रयोग आचार्य शुक्ल ने पहले–पहल अंग्रेजी के (IMAGE) शब्द के अनुवाद के रूप में किया होगा।

आज यह शब्द हिन्दी समीक्षा की शब्दावली का इतना स्वाभाविक अंग बन गया है कि उसके मूल स्रोत की ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता। डॉ0 नगेन्द्र ने इन्द्रियों के सन्निकर्ष से प्रमाता के चित्त में उत्पन्न होने वाली छवियों को बिम्ब कहा है, वे लिखते है कि "सर्जना के क्षणों में अनुभूति के ये नाना रूप कवि की कल्पना पर आरूढ़ होकर जब शब्द, अर्थ के माध्यम से व्यक्त होने का उपक्रम करते है तो सक्रियता के फलस्वरूप अनेक मानस छवियां आकार धारण करने लगती हैं, आलोचना की शब्दावली में इन्हें ही काव्य बिम्ब कहते हैं"[1]

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान – डा0 केदारनाथ सिंह, पृ0सं0–13
2. रस मीमांसा– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ–310

इस प्रकार नई समीक्षा में काव्य के अन्य तत्वों की अपेक्षा बिम्ब से अधिक महत्व दिया जाने लगा। वर्तमान में इसका अत्यन्त व्यापक प्रयोग है।

" बिम्ब" चेतन स्मृतियाँ है जो विचारों की मौलिक उत्तेजना के अभाव में विचार को सम्पूर्ण रूप में या अंशिक रूप में प्रस्तुत करती हैं।

पाश्चात्य दृष्टि से बिम्ब की परिभाषा :-

अंग्रेजी का (IMAGE) और हिन्दी का बिम्ब दोनों एक हैं। "बिम्ब" IMAGE का हिन्दी रूपान्तर है। जिसका अर्थ है– किसी पदार्थ को मूर्त्तया प्रदान करना, चित्रबद्ध करना, प्रतिबिम्बित कना या मानसी प्रतिकृति निर्मित करना।"[2]

अंग्रेजी के तृतीय अन्तराष्ट्रीय शब्दकोश में IMAGE के अर्थ दिये गये हैं – "प्रभाव पूर्ण प्रद्धति से भाषा में वर्णन अर्थवा मूर्तित करना, किसी व्यक्ति अथवा वस्तु का पुररूत्पादन करना, दर्पण, चित्रमूर्ति आदि।"

ब्रिटानिका विश्वकोश में बिम्ब की परिभाषा निम्न प्रकार दी हुई है –

The Word image will be inployed to denate any axtificial representa| ion whe ther Pictorial or sclptural of any Person or thing real of unneal Which is used as dirct adjunct of Religious Servicss"[3]

सी0डी0 लेविस के अनुसार – " काव्य बिम्ब ऐन्द्रिय चित्र है जो रूपात्मक होता है।

The poetic image is a more or less senscious picture in words, to some degee Metaphrical with an Undernote of some numan emotion"[4]

कु0 कैरोलिन की दृष्टि में– बिम्ब कवि के विचारों का लघु शब्द चित्र है।"

" An image is the little word Picture Used by to iLLustrate] - iLLuminate and embellise his thought ."[5]

जे0इ0डाउने ने– काव्य बिम्ब को परिभाषित करते हुए लिखा कि–

---

1. काव्य बिम्ब–डॉ0 नगेन्द्र – पृ0सं0 61
2. Shorter oxford English Dictionary P.N. 958.
3. Encyclopedia Bxitanica Part-II, Page 7/01
4. The Poetic Image -C.D. Lewis P-22
5. Shekespear's imagiary and what it tells us.

वह वस्तु की वास्तविक प्रतिलिपि न होकर ऐन्द्रिय विशेषता पर केन्द्रित प्रतिच्छति है।[1] निष्कर्ष यह कि मानवीय बिम्ब चेतना के व्यवहार में आने वाली ऐसी स्मरण शील प्रक्रिया है। "जो विचारों की वास्तविक उत्तेजना की कभी कारण उसी विचारको पूरे–पूरे स्वरूप में अथवा आंशिक रूप में हमारे सम्मुख उत्पन्न कर देती है।कवि यह कार्य काल्पनिक वस्तु और उस के सदृश्य शब्दों से करता है।

भारतीय विद्वानों ने बिम्ब को चित्र, प्रतिच्छाया प्रतिच्छवि कह कर इसे परिभाषित किया है तो पाश्चात्य विद्वानों ने उसके गुण और रचना प्रक्रिया का आधार लेकर अपनी परिभाषाएँ की हैं जिनका निष्कर्ष यह है कि बिम्ब एक शब्द चित्र होता है इसमें रूपायित सम्वेदनाएं, रूप, शब्द, स्पर्श, गन्ध स्वाद से सम्बन्धित होती है जिनकी अभिव्यक्ति के लिए ऐसे शब्दों को प्रयोग किया जाता है जो – सम्मूर्त्तन और ऐन्द्रिय बोधात्मक गुणों से संवलित हो

डॉ0 शिवचरण शर्मा ने बिम्बों के सम्बन्ध में निम्न निष्कर्ष प्रस्तुत किए है –

1. बिम्ब विधान सम्मूर्त्तन की प्रक्रिया है।
2. कवि की पूर्वानूभूतिया ही बिम्ब में रूप ग्रहण करती है।
3. बिम्ब में पूर्वानुभूतियों का शब्दों के माध्यम से चित्रित किया जाता है।
4. बिम्ब के निर्माण में कल्पना और स्मृति का प्रयोग रहता है।
5. कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया बिम्ब सहृदय के मनश्चुक्षओं के समक्ष रूप ग्रहण करता है।
6. बिम्ब के मूल में भावों व संम्वेगों की अवस्थिति अनिवार्य है।
7. बिम्ब का कार्य पाठक की हृदयस्थ संवेदनाओं को उद्‌बुद्ध करना है, तथ्य निरूपण या वर्णन करना नही
8. बिम्ब विधान के लिए अप्रस्तुत विधान का सहारा लेना पड़ता है। नवीन और अपरिचित उपमानों से बिम्ब में भास्वरता आती है।
9. बिम्ब की सफलता के लिए औचित्य का निर्वाह आवश्यक है जो अनुभूति के अभाव में असम्भव है।
10. बिम्ब सक्षिप्त अभिव्यक्ति का माध्यम है।[1]

---

1. Creative Imagination- J.E. Downcy-12.

इस प्रकार जहाँ बिम्ब कविता में प्रयुक्त शब्द चित्र हैं, वहीं उसे विस्तृत, सम्बद्ध और विच्छिन्न ऐन्द्रिय संवेदनों का शब्दिक पर्याय कहा जा सकता है। अतः बिम्ब कवि की अनुभूतियों मानस छवियों, भावों आदि का इन्द्रिय ग्राहय, रूप खड़ा करने वालो तत्व है जो वस्तु विशेष के आसन्न सन्दर्भो के परिप्रेक्ष्य में उच्चकोटि की सादृश्य विधायिनी, कारयित्री प्रतिमा के योग से उद्भूत होता है।

उपर्युक्त विचारधाराओं के निष्कर्ष में हम यह कह सकते हैं कि बिम्ब में अनुभूति (Feeling) भाव (Emotion) आवेग (Passion) ऐन्द्रियता (Sensuusness) जैसी विशेषताएं अनिवार्य हैं।

बिम्ब का वर्गीकरण :-

पूर्व चर्चा के अनुसार कवि की ऐन्द्रियक संवेदना के निश्चछल औश्रे रागात्मक अभिव्यक्ति ही बिम्ब का रूप ग्रहण करते हैं। जिसके माध्यम से प्रमाता पाठक भावुक या सहृदय के मनश्चक्षुओं के समक्ष ऐसा चित्र उपस्थित हो जाता है कि वह काल के मर्म तक पहुँचने में समक्ष हो जाता है। वास्तव में काव्यानन्द अभिभाज्य वस्तु है, अतः उसके किसी एक निश्चित तत्व के आधार पर उसकी अनुभूति तथा उसका विश्लेषण बहुत अधिक वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता फिर भी अध्ययन सौकर्य या बोधगम्यता के लिए काव्य के किसी एक तत्व का वर्गीकरण करने की परम्परा प्राय : साहित्य में प्राप्त होती है।

बिम्ब भी एक ऐसा आधुनिक उपकरण है जिसके माध्यम से कविता के मर्म को समझना और सहजामन्द की अनुभूति किसी एक सीमा तक होती है। बिम्ब मूलतः पाश्चात्य विचारकों की अवधारणा है, अतः उसका विस्तृत विश्लेषण पाश्चात्य साहित्य में अनेक प्रकार से हुआ है। यहाँ यह कहना असंगत नहीं होगा कि प्राचीन भारतीय साहित्य शास्त्र में बिम्ब प्रक्रिया का प्रत्यक्ष वर्णन न होने पर भी अनेक काव्य सम्प्रदायों में वर्णित काव्य में गूढ़ तत्वों में से उसका विवेचन निश्चित रूप से रहा है, अतः बिम्बों का वर्गीकरण करते समय पहले भारतीय विद्वानों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

डॉ0 नगेन्द्र में बिम्ब के पॉच वर्ग बनाकर वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

---

1. बिहारी सतसई में बिम्ब विधान – डॉ0 शिवचरन वर्मा – पृ0सं0 68

(वर्ग–1) दृश्य (चाक्षुष) श्रव्य (श्रोत) स्पृश्य, घ्रातव्य और रस (आस्वाद्य) (वर्ग–2) लक्षित और उपलक्षित (वर्ग–3) सरल और संशिलिष्ट (वर्ग–4) खण्डित और समाकलित, (वर्ग–5) वस्तु परक और स्वछन्द।''[1]

इस वर्गीकरण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पहला आधार जहाँ ऐन्द्रिय बोध पर आधारित है वहीं दूसरा वर्ग कलात्मकता पर। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि तृतीय और चतुर्थ वर्ग प्रेरक अनुभूति पर– आधृत होने के कारण कुछ भ्रान्ति सा उत्पन्न करता है। इसी प्रकार वस्तु परक बिम्ब और स्मृति बिम्ब (लक्षित बिम्ब) एक दूसरे के समान होते हैं। ऐसा ही स्वच्छन्द और उपलक्षित बिम्बों के बारे में भी कहा जा सकता है।

सारांश यह है कि प्रथम दो वर्गो में ही किसी न किसी प्रकार शेष वर्ग अन्तर्भुक्त हो जाते हैं जिसके कारण उनकी व्यर्थता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

डॉ0 सुशीला शर्मा तथा डॉ0 शिवचरण शर्मा ने इस वर्गीकरण को अपूर्ण माना है, डॉ0 सुशीला शर्मा ने बिम्बों का वर्गीकरण अनेक आधारों पर किया है–[2]

(क) स्रोतों के आधार पर :-

1. प्रकृति क्षेत्र से गृहीत बिम्ब – जलीय, आकाशीय, पार्थिव, वायत्व, तेजस, जीव जन्तु सम्बन्धी ऋतु एवं काल सम्बन्धी ऐकाधिक वर्गो से सम्बन्धित।
2. जीवन से गृहीत बिम्ब – ग्रामीण जीवन सम्बन्धी बिम्ब, सामान्य मानव सम्बन्धी बिम्ब– (अ) उपकरण सम्बन्धी (ब) अवस्था सम्बन्धी (स) मानव शरीर सम्बन्धी (द) राजकीय सम्बन्धी (य) मनोरंजन (र) अस्त्र–शस्त्र सम्बन्धी (ल) कला तथा विद्या सम्बन्धी (व) खाद्य पदार्थ सम्बन्धी (श) उत्सव तथा तीर्थ सम्बन्धी (ष) प्रचलित कथाओं सम्बन्धी

(ख) संवेदना के आधार पर :-

(1) चाक्षुष (2) स्पर्श परक (3) आस्वाद परक (4) घ्राण परक (5) ध्वनि तथा सह संवेदनात्मक

(ग) भावों के आधार पर :-

भक्ति परक, रति, उत्साह, भय, जुगुप्सा, हास्य, शोक, सम क्रोध, आश्चर्य वत्सल।

---

1. काव्य बिम्ब– डॉ0 नगेन्द्र–पृ0 सं0–16.
2. तुलसी साहित्य में बिम्ब योजना– डॉ0 सुशील शर्मा पृ0 सं0 316.

(घ) प्रकृति के आधार पर :-

(1) मूर्त्त उपमान से मूर्त्त अभिव्यक्ति, मूर्त्त उपमान से अमूर्त की अभिव्यक्ति, अमूर्त्त उपमान से मूर्त की अभिव्यक्ति

(5) अभिव्यक्ति के आधार पर :-

अबिघा द्वारा, लक्षण द्वारा, मानवीकरण द्वारा, अलंकारों द्वारा, मुहावरों तथा लोकोक्तियों द्वारा, प्रतीकों द्वारा, पौराणिक सन्दर्भो द्वारा इसके साथ ही बिम्ब वर्गीकरण का एक अन्य रूप उन्होने इस प्रकार प्रस्तुत किया है। चाक्षुष, श्रावण, घ्राण परक, स्पर्श परक, आस्वाद परक, सहसंवेदनात्मक, गत्वर, स्थिर वेगाद् भेदक, शब्द बिम्ब, वर्ण विबम्ब, समानुभतिक, संश्लिष्ट, एकल, सामाजिक प्रसूत, प्रस्तुत, अप्रस्तुत, जैवतथा, आदितत्व बिम्ब, ।

डॉ0 रामरतन सिंह ने "बिम्ब विधान, अप्रस्तुत विधान, चित्र विधान और रूप विधान को पर्याय मानकर अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। यह वर्गीकरण वस्तु और कला पक्षीय रूप में किया है। वस्तु पक्ष के अन्तर्गत परम्परित सामाजिक तथा उनके सांस्कृतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, मानवीय रूप, गुणरूप वाद्य यन्त्र, पृथ्वी, चाँद, तारा, आंधी, बिजली नदी पशु, पक्षी, कीट, पतंगे, आकाश, दिन, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व्यावसायिक, वैज्ञानिक, भावात्मक, स्पर्श, रंग, घ्राण, स्वाद, श्रवण आशा, निराशा और कला पक्ष के अन्तर्गत एक शब्द अलंकारों के विविध कार्यस्वरूप वस्तु व्यापार और गुण सादृश्य से चित्र भाषा शैली के माध्यम से यह वर्गी करण विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है।"[1]

इस वर्गीकरण के सम्बन्ध में यहाँ कहा जा सकता है। कि अप्रस्तुत विधान बिम्ब विधान का एक अंग है। एक निश्चित सीमा के अन्तर्गत माना जा सकता है। बात यह है कि बिम्ब विधान का क्षेत्र अप्रस्तुत विधान के क्षेत्र से विस्तुत है। एवं बिम्ब विधान में प्रस्तुत अप्रस्तुत दोनों अर्न्तमुक्त हो जाते हैं। अतः इस वर्गीकरण में भ्रान्तिया अधिक हैं। आधार भी पूर्ण रूपेण वैज्ञानिक नहीं।

डॉ0 सुधा सक्सेना ने – " जायसी द्वारा प्रयुक्त बिम्बों का वर्गीकरण 5 आधारों पर किया है। उपान्त वस्तु के आधार पर, संवेदनाओं के आधार पर, भावों के आधार पर, बिम्ब की प्रकृति के आधार पर अभिव्यक्ति के आधार पर।

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता में चित्र विधान – डॉ0 रामरतन सिंह

उपान्त वस्तु के अर्न्तगत–जलीय, आकाशीय, वनस्पतीय, पर्वतीय, खनिज, समय जीव जन्तु, लोक जीवन, मानव जीवन, विद्या, खेल कूद, खान–पान, अस्य–शस्त्र सम्वेदनाओं के आधार पर दृष्टि परक, स्पर्शपरक, स्वाद परक, घ्राण परक भाव के आधार पर–रति, उत्साह, क्रोध, भय, आश्चर्य, शोक्शम।

प्रकृति के आधार पर-मूर्त, अमूर्त्त

अभिव्यक्ति के आधार पर–अमिछा, लक्षणा अलंकार प्रतीक और मुहावरों द्वारा अभिव्यक्ति बिम्बों का विवरण प्राप्त होता है।"[1]

इन पांच आधारों पर विभक्त ये बिम्ब योजना बहुत अधिक तर्क संगत इस लिये नही लगती कि प्रत्येक वर्ग में जिन बिम्ब को स्थान दिया गया है वे केवल उसी वर्ग से सम्बन्ध नहीं रखते अपितु अन्य वर्गो से भी उसका सम्बन्ध है।

उदाहरणार्थ – प्रकृति अथवा जीवन से सम्बन्धित बिम्ब।

संवेदना शून्य हो या मूर्त्त अथवा अमूर्त न हो यह असम्भव सा लगता है।

अखौरी ब्रजनन्दन प्रसाद ने बिम्बों के विविध प्रकार बताये हैं –[2]

ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर

घ्राण बिम्ब, स्पर्श बिम्ब, ध्वनि बिम्ब, दृश्य बिम्ब, रस्य बिम्ब

आन्तरिक कला के आधार पर

उपमा, रूपक, आकृति बिम्ब ध्वनि बिम्ब

आन्तरिक शक्ति के अनुशीलन के आधार पर

विचार प्रधान बिम्ब, भाव प्रधान बिम्ब, प्रभाव प्रधान बिम्ब

ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर किया गया वर्गीकरण सवर्था जहाँ उपयुक्त है वहीं आन्तरिक शक्ति के आधार पर किये गये वर्गीकरण में कुछ पुनरूक्ति है। जैसे ध्वनि बिम्ब दोनों में है। इसी प्रकार विचार प्रधान काव्यात्मक बिम्बों में रमाने की कम शक्ति की स्वीकृति भी कुछ दोष

1. जायसी की बिम्ब योजना – पृ0सं0 264–66
2. काव्यात्मक बिम्ब पृ0सं0 178

उत्पन्न करती है। जैसा कि डॉ0 शिवचरण शर्मा ने कहा कि " आन्तरिक शक्ति के अनुशीलन के आधार पर किये गये वर्गीकरण निरर्थक एवं प्रेषण मात्र है। ज्ञानेन्द्रियों के आधार किये गये वर्गीकरण में ही ये सब प्रभेद किसी न किसी रूप में समाहित हो जाते है।"[1]

डॉ0 महेन्द्र कुमार ने प्रतीति को आधार बना कर बिम्बों के दो भाग किये हैं और पुनः प्रत्येक के दो–दो भाग कर दिये हैं–

1. लक्षित– इन्द्रिय विषयक भावात्मक 2. उपलक्षित– इन्द्रिय विषयी भावात्मक

डॉ0 महेन्द्र का मन्तव्य है कि यह जो बिम्ब स्वतंत्र संश्लिष्ट होते हुए भी प्रतीत की दृष्टि से जटिल नहीं होते वे लक्षित बिम्ब कहलाते हैं। दूसरे प्रकार के बिम्ब उपलक्षित कहे जा सकते है।[2] इन्द्रिय विषयी और भावात्मक बिम्बों के सम्बन्ध में उनकी धारणा यह है, कि इन्द्रिय विषयी बिम्ब केवल रूप, ध्वनि, स्वाद, गन्ध, स्पर्श सम्बन्धी ही हुआ करते है जबकि भावात्मक बिम्बों का सम्बन्ध–सुख, दुःख, आराम, भूख, प्यास इत्यादि अगणित अनुभूतियों के साथ होने से कारण इनकी कोई निश्चित संख्या नहीं रहती है"[3]

इस सम्बन्ध में इतना कहा जा सकता है कि लक्षित और उपलक्षित बिम्बों का वर्गीकरण तर्क संगत और स्पष्ट अवश्य है किन्तु भावात्मक बिम्बों का पृथक विभाजन असंगत–सा प्रतीत होता है। इसकी अपेक्षा बिम्बों का वर्गीकरण पहले ऐन्द्रिय आधार पर करके फिर उनके लक्षित–उपलक्षित भेद करना अधिक वैज्ञानिक दिखता है। डॉ0 कुमार बिमल ने बिम्बों को 5 वर्गो में वर्गीकृत किया है –

(क) कलात्मक अभिव्यक्ति भंगिया पर निर्भर बिम्ब (ख) काव्येतर कलाओं–वास्तु, मूति चित्र और संगीत कला से गृहीत शब्दवली और रम्य बोध के द्वारा निर्मित बिम्ब। (ग) अमिश्र ऐन्द्रिय बोधों के पर निर्भर बिम्ब (घ) उदान्त बिम्ब।"[4]

इस वर्गीकरण के सम्बन्ध में डॉ0 शिवचरण शर्मा की टिप्पणी है कि " कलात्मक अभिव्यक्ति तथा ऐन्द्रिय बोधों के आधार पर बिम्बों का वर्गीकरण करना तो ठीक है किन्तु

---

1. बिहारी सतसई में बिम्ब विधान पृ0–164।
2. रीति कवियों का काव्य शिल्प पृ0सं0–82।
3. वही – पृ0 सं0 82
4. छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन – पृ0सं0 229.

काव्येतर गृहीत शब्दावली और बोध के आधार पर अनुपयुक्त है। उदान्त बिम्बों का पृथक् वर्ग रखना भी उचित नहीं।''[1]

डॉ० केदार नाथ सिंह ने आठ प्रकार के बिम्ब बताए है –

(1) सज्जात्मक बिम्ब (2) छायात्मक बिम्ब (3) घनात्मक बिम्ब (4) मिश्रित बिम्ब (5) उदान्त बिम्ब (6) नाद बिम्ब (7) अमूर्त्त बिम्ब (8) प्रतीकात्मक बिम्ब।''[2]

इस वर्गीकरण के सम्बन्ध में लेखक ने अपना निश्चित मत व्यक्त किया है। इन मतों में प्रत्येक बिम्ब के सम्बन्ध में अनेक विसंगतियां दिखाई देती हैं जैसे अमूर्त्त और मूर्त्तता। में यहाँ यह बात कही जा सकती है कि बिम्ब अमूर्त्त होते है जबकि स्थिति यह है कि मूत्तर्ता उसका आवश्यक गुण है। दूसरी बात यहाँ इस रूप में रेखांकित की जा सकती है कि इस वर्गीकरण में बिम्ब के बाहय पक्ष पर अधिक महत्व प्रदान किया गया है। डॉ० नरेन्द्र मोहन ने कहा कि डॉ० केदार नाथ सिंह ने जिन वर्गो में बिम्बों को वर्गीकृत किया है वे संस्कृत वर्गीकरण के ही रूपान्तर हैं – इस प्रकार का वर्गीकरण रूप अथवा अभिव्यक्ति गठन पर अधिक निर्भर है और बिम्ब की कतिपय आन्तरिक और अनिवार्य विशेषताआं को ध्यान में रखकर नहीं किया गया है।

डॉ० भगीरथ मिश्र ने बिम्बों का वर्गीकरण इस रूप में किया है–

बिम्ब

ऐन्द्रिय बिम्ब — मानस बिम्ब

दृश्य बिम्ब — अन्य संवेद्य बिम्ब — भाव बिम्ब — विचार बिम्ब

वस्तु बिम्ब — व्यापार बिम्ब — स्पर्श — घ्राण — श्रवण — आस्वाद्य

गोचारण — कृषि — सांस्कृतिक — यांत्रिक — दैनिक
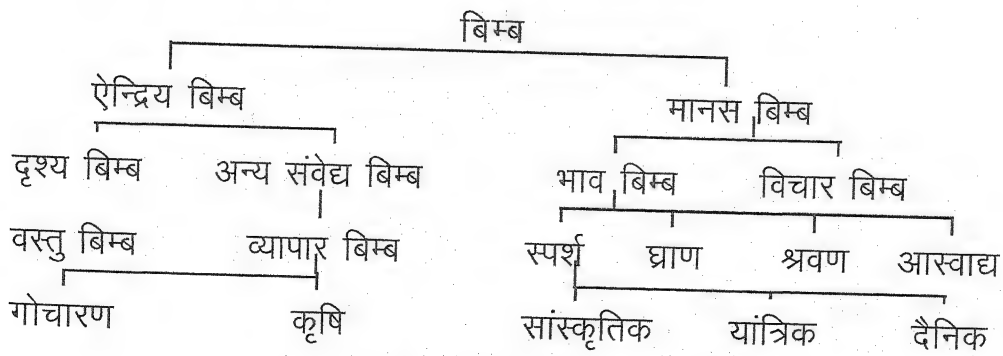
आवश्यकता सम्बन्धी — प्रणय सम्बन्धी — मनोरंजन सम्बन्धी

(काव्य शास्त्र – डॉ० भगीरथ मिश्र पृ०सं० 286–87)

---

1. बिहारी सतसई में बिम्ब विधान – पृ०सं० 129.
2. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान – पृ० सं० 247

डॉ0 कैलाश बाजपेयी नें :–

"दृश्य बिम्ब, वस्तु बिम्ब, भाव बिम्ब, अलंकृत बिम्ब, सान्द्र बिम्ब, विवृन्त बिम्ब, नाद बिम्ब, स्वाद, घ्राण एवं स्पर्श बिम्बों का उल्लेख किया है "[1] वस्तुतः ऐन्द्रियता के आधार पर दृश्य, नाद, स्वाद, इत्यादि बिम्ब एक ही वर्ग में रखे जाने चाहिए। भाव बिम्बों के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि ये काव्यात्मक बिम्ब नहीं होते।

डॉ. नरेन्द्र मोहन ने :-

दृश्य बिम्ब, चाक्षुष बिम्ब, श्रव्य बिम्ब, स्वाद बिम्ब, घ्रणा बिम्ब, स्पर्श्य बिम्ब, शीत–ताप बिम्ब, भाव बिम्ब, वस्तु बिम्ब, सान्द्र बिम्ब, विवृन्त बिम्ब का उल्लेख किया है।"[2]

उक्त वर्गीकरण में स्पर्श और शीत–ताप एक ही प्रकार के बिम्ब हैं, इन्हें अलग स्थान नहीं देना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि भारतीय विद्वानों द्वारा वर्गीकृत बिम्बों में ऐन्द्रियता, कलात्मकता को आधार बनाया गया है। यहाँ यह बात अवश्य ध्यातव्य है कि बिम्बों की संश्लिष्ट योजना, गठन, कसाव इत्यादि के आधर पर भी बिम्बों के अनेक उपवर्ग बनाए गये है। कहना नही होगा कि ये वर्गीकरण काव्यात्मक बिम्बो की आन्तरिक शक्ति के उद्घाटन और अध्ययन सौकर्य में पर्याप्त सहायक हुए है।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा वर्गीकरण :-

बिम्ब काव्य में ऐन्द्रियगम्य वर्णनों के द्वारा चित्रात्मकता लाकर काव्यगत अनुभूति की गहराई और जटिलता को दूर करता है। उसके माध्यम से काव्य में प्रभावत्मकता और अर्थ संप्रेषण की अलौकिक छटा दिखाई पड़ती है। उक्त तथ्य पाश्चात्य विद्वानों का भलीभाँति विदित थे, जिसके कारण बिम्बों को अनेक रूपों में वर्गीकृत किया गया है।

1. राबिन स्कलटन :-

इन्होनें बिम्बों के दस रूप रेखांकित किए हैं, जिसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है।

प्रकार	संक्षिप्त परिभाषा	उदाहरण
1. साधारण बिम्ब	एक ऐसा शब्द जिससे ऐन्द्रिक संवेदनाओं के विचार उद्रिक्त होते हैं।	कोमल, कठोर।
2. अमूर्त्त बिम्ब	एक ऐसा शब्द जो ऐन्द्रिक संवेदनाओं के कोई के विचार उद्रिक्त नहीं होते हैं।	सत्य, न्याय, विचार सिद्धान्त।

1. आधुनिक कविता में शिल्प – पृ0सं0 181।
2. आधुनिक हिन्दी काव्य में अप्रस्तुत विधान।

3. तत्क्षण बिम्ब	ऐसा बिम्ब जिसका मूल सम्बन्ध घ्राण, स्वाद दृश्य, संस्पर्श तथा ध्वनि की संवेदनाओं के विचारों द्रेक से है।	दुर्गन्ध, मीठा, रूक्ष, कठोर संगीत, क्षार।
4. अस्पष्ट बिम्ब	ऐसा बिम्ब जो परोक्ष रूप से किसी ऐन्द्रिय संवेदना को स्फुरित करता है, अथवा जिसका सम्बन्ध किसी एक ज्ञानेन्द्रिय से नहीं है।	मिलन, वियोग, आलस्य, शक्ति, इच्छा।
5. निकाय बिम्ब	ऐसे अमूर्त्त बिम्ब जो व्यक्तीकरण या इसी प्रकार की अन्य विधियों के प्रयोग से किसी ऐन्द्रिय संवेदना के विचार स्फुरित करने में होते हैं।	भय, शोक, प्रेम, पट, ओढ़, मरण।
6. मिश्रित बिम्ब	शब्दों का ऐसा संगठन जिसमें केवल एक ही पूर्ण बिम्ब निहित रहता है।	लाल क्रान्ति।
7. संश्लिष्ट बिम्ब	शब्दों का यह संगठन जिसमें एक से अधिक बिम्ब निहित हो।	अलिगुंजित पवन, न्याय पूर्ण दयालूता।
8. मिश्रित निष्काय	बिम्ब शब्दों का वह संगठन जिसमें मात्र एक निष्काय बिम्ब हो तथा कोई भी पूर्ण बिम्ब न हो।	न्याय पूर्ण दयालुता।
9. संश्लिष्ट निष्काय बिम्ब–	शब्दों का वह संगठन जिसमें एक से अधिक निष्काय बिम्ब हो, किन्तु कोई पूर्ण न हो।	सच्चा दान, पवित्र प्रेमादि
10. निष्काय मिश्रित तथा – निष्काय संश्लिष्ट बिम्ब	वह संश्लिष्ट अथवा मिश्रित बिम्ब जिसका अमूर्त्त विधान बिम्ब से अधिक महत्वपूर्ण हो और जिसमें एक अथवा अनेक बिम्ब अमूर्त्त विधान की विशेषता निर्धारित करते हों।[1]	स्वर्णिम, सटीकता।

1. पोयटिक पैटर्न – पृ0 सं0 – 90–91

इस वर्गीकरण के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि पहले और तीसरे बिम्ब ऐन्द्रिय संवेदनाओं से सम्बन्धित है, शेष को अमूर्त्त बिम्ब कहा जा सकता है। ऐसे बिम्ब काव्यामक बिम्ब की कोटि में नहीं आते। वस्तुतः काव्यात्मक बिम्ब किसी कविता का अभिन्न अंग कहा जा सकता है उससे कविता को समझने में सरलता होती है। अतः वर्गीकरण भी उलझा हुआ नही होना चाहिए। यहाँ इस वर्गीकरण में उलझाव कुछ अधिक है। जैसा कि श्रीमती सुशीला शर्मा ने लिखा है कि " यह विभाजन अस्पष्ट तथा दूसरे के क्षेत्र में प्रविष्ट होने वाले हैं।"[1] स्पर्जियन ने शेक्सपियर के बिम्बों का वर्गीकरण प्रकृति एवं रूचि के आधार पर किया है रूचि के आधार पर घर सम्बन्धी रूचियां और बाहर सम्बन्धी रूचियां एवं विचार सम्बन्धी बिम्बों के साथ ऐन्द्रिय बिम्बों पर भी प्रकाश डाला गया है।"[2]

इस वर्गीकरण में कवि के लौकिक ज्ञान और प्रवृत्ति को निरूपति क्रिया गया है किन्तु बिम्बों का यह सार्वभौम वर्गीकरण नहीं माना जा सकता है।

सी0डी0 लेविस ने जीवित बिम्ब और खण्डित बिम्बों का उल्लेख किया हैं।"[3] प्रसिद्ध अमेरिकन विद्वान हेनरी विल्स काव्यात्मक बिम्बों के सात वर्ग बताये है–

1. अलंकृत बिम्ब 2.आन्तरिक बिम्ब 3. सशन्ता या अतिश्योक्ति पूर्ण
4. पूर्ण बिम्ब 5. धनात्मक बिम्ब 6. विस्तारात्मक बिम्ब 7. समृद्ध बिम्ब

इस वर्गीकरण के सम्बन्ध में निम्रन्ति रूप यह कहा जा सकता है कि कोई वर्गीकरण में ऐन्द्रियता के बिना अधूरा है।

उक्त वर्गीकरण के सम्बन्ध में डॉ0 शिवचरण शर्मा का कथन है कि "इस वर्गीकरण में दिये गये सशक्त बिम्ब, धनात्मक बिम्ब, विस्तारात्मक बिम्ब तथा समृद्ध बिम्ब एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। इन विभिन्न वर्गो के मध्य स्पष्ट सीमा रेखायें नहीं खीचीं जा सकती है अलंकृति, सशक्तता, पूर्णता, धनात्मकता, समृद्धि आदि तो बिम्ब के गुण हैं। जो प्रत्येक बिम्ब में होने चाहिए इनके आधार पर बिम्बों के पृथक वर्ग निर्धारित करना युक्ति संगत नहीं।"[4]

---

1. तुलसी साहित्य में बिम्ब योजना – पृ0सं0 316
2. इमेजरी ऑफ शेक्सपियर – पृ0सं0 36
3. पोयटिक इमेज –सा0डी0 लेविस पृ0 90
4. बिहारी सतसई में बिम्ब विधान पृ0 सं0 124

तात्पर्य यह है कि बिम्ब ऐन्द्रिय गम्य वर्णनों के माध्यम से काव्य को सहज संवेध बनाता है। उसमें जीवन संचार के साथ–साथ उसे अलंकृत भी करता है तथा भावों को क्रमबद्ध रूप देकर पाठक को एक अलौकिक आनंद से अभिभूत कर देता है।

प्रत्येक वर्गीकरण के मूल में कुछ न कुछ आधारभूत सिद्धान्त रहते है, जिन पर रूचि प्रवृत्ति विश्लेषण की दृष्टि को आगे कर यह वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाता है। बिम्बों के आधारभूति सिद्धान्त में अलंकारिता प्रभावशीलता अमूर्त को मूर्त बनाने का सिद्धान्त दृश्यग्राही भावों को व्यंजित करना संवेदनशीलता स्थूल जगत से भावानात्मक सम्बन्धों की स्थापना। प्राण शक्ति के संचरण तथा रस प्रेषणीयता का सिद्धान्त इत्यादि सर्वमान्य है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किसी न किसी रूप में इन्ही को आधार बनाकर ये वर्गीकरण प्रस्तुत किये गये हैं। डॉ0 शम्भूनाथ चतुर्वेदी ने बिम्बों का वर्गीकरण निम्न ढंग से किया है।

- बिम्ब विधान
  - ऐन्द्रिय बिम्ब
    - दृश्य संवेदा बिम्ब
      - वस्तु बिम्ब
        - सहज बिम्ब
        - अलंकृत बिम्ब
      - व्यापार बिम्ब
        - पशुचारण सम्बन्धी बिम्ब
        - कृषि सम्बन्धी बिम्ब
        - दैनिक जीवन यापन बिम्ब
          - आवश्यकता पक्ष सम्बन्धी
          - मनोरंजन पक्ष सम्बन्धी बिम्ब
          - प्रणय व्यापार सम्बन्धी बिम्ब
        - सांस्कृतिक बिम्ब
    - अन्य संवेदा बिम्ब
      - स्पर्श प्राण संवेध बिम्ब
        - संवेदन प्रधान बिम्ब
      - श्रवण संवेद्य बिम्ब
  - मानस बिम्ब
    - भाव और विचार बिम्ब
    - वैज्ञानिक यांत्रिक युग के बिम्ब
      - ज्यामिति, तर्कशास्त्र और गणित पर आधारित बिम्ब
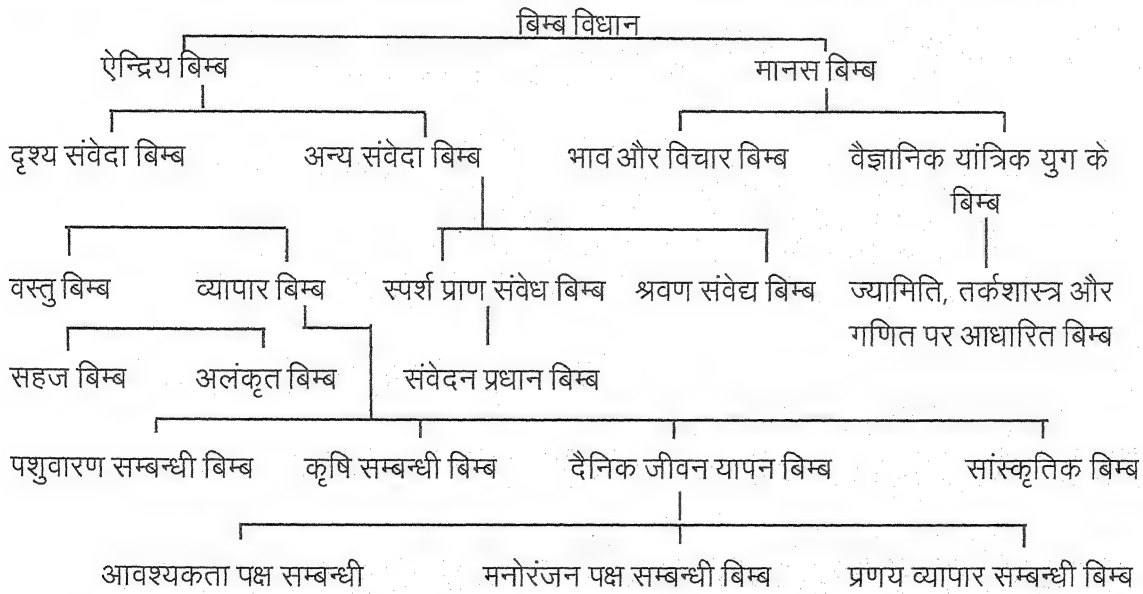
अतः सीमित दोषों की परिधि में रहकर बिम्बों का निम्न वर्गीकरण अधिक सुन्दर सरल, स्पष्ट और वैज्ञानिक लगता है। इस वर्गीकरण को स्रोत, संवेदना, भाव, वैचारिक तथा प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण किया जा रहा है।

1. स्रोतों के आधार पर – (क) प्राकृतिक क्षेत्र (ख) मानव जीवन (ग) अन्य
2. संवेदना के आधार पर– (क) चाक्षुष, स्पर्श, श्रवण आस्वाद, घ्राण
3. भाव एवं वैचारिक बिम्ब– (क) रति, शोक, घृणा, उत्साह, दर्शन इत्यादि
4. प्रकृति के आधार पर – अमूर्त और मूर्त बिम्ब

भाव काव्य का सहज और आवश्यक उपदान कहा गया है जिसकी सत्ता भखण्ड है, भावों की अरूपता को ही बिम्ब रूपायित करते है। भावमयता ही वह व्यावर्तक तत्व है जिसे लेकर कवि सुन्दर बिम्ब उपस्थित करता है। किसी वस्तु विशेष की प्रत्यक्ष काल्पनिक चित्र ही बिम्ब है। जिसका सम्बन्ध दृश्य जगत के ऐन्द्रिय बोध से होता है। बिम्बों का सैद्धान्तिक निरूपण करते समय यह लिखा जा चुका है कि कात्यार्थ की स्पष्टता रसो बोधन और सम्प्रेष्णिता में सहयोग देने वाली शक्ति के रूप में बिम्ब विधान की आवश्यकता पड़ती है इसके द्वारा ही काव्याभिव्यक्ति में रागात्मक स्फुरण स्वतः होता है। कवि की बहुज्ञता और बिम्बों की वस्तुगत समीक्षा के लिये कवि द्वारा प्रयुक्त बिम्बों के स्रोत या क्षेत्र जानना अति आवश्यक है, उसके अनुसार ही कवि की दृश्यगत व्यापकता, सूक्ष्म निरीक्षण की शक्ति अनुभवों के विविधि आयाम और उसके द्वारा ग्रहीत बिम्बों के स्वरूप विश्लेषण पर प्रकाश पड़ता है। स्रोतों के आधार को हम दो भागों में विभक्त कर सकते है –

(1) प्रकृति के क्षेत्र से ग्रहीत बिम्ब

(2) जीवन से ग्रहीत बिम्ब

प्रकृति के परिवेश से ग्रहीत बिम्बों के निम्न वर्ग बनाये जा सकते है –

(i) जलीय (ii) आकाशीय (iii) पार्थिव (iv) तायत्य (v) तेजस (vi) जीव–जन्तु (vii) ऋतु एवं काल सम्बन्धी (viii) एकाधिक वर्ग से सम्बन्धित। श्री भवानी प्रसाद मिर प्रकृति के कोमल अभिजात्य सुरूचिपूर्ण भावनाओं के कवि है। इनकी रचनाओं में धरती, नदी, नाले, सागर, पेड़ पौधे, हवा, आकाश, अग्नि, सूर्यप्रकाश, चन्द्रतारें, संध्या, रात, ऋतुयें, जाड़ा–गर्मी–बरसात आदि के अनेकानेक बिम्ब मिलते है। जिनके उदाहरण दृष्टव्य है–

<u>(i) जलीय बिम्ब –</u> इसके अन्तर्गत नदी, सरोवर, सागर, कमल, तरंग, शैवाल, इत्यादि ऐसे बिम्ब आयेगें जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध जल से है –

<u>(क) सागर–</u> श्री भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं में सागर से सम्बन्धित अनेक बिम्ब है। ये बिम्ब मूर्त ठोस एवं जीवन्त है –

"यह कवित रस भाव का यह सिन्धु

स्वाति जैसी बुद्धि का यह बिन्दु

तीन कौड़ी के कहायेगें
और जो युग आ रहे है वे बैठकर आँसू बहायेगें
दुख मानगें कि हम थे यहाँ
प्राण वाले लोग कम थे यहाँ
शोर में जो स्वर उठा सकते
पग प्रलय में जो बज़ सकते''[1]

भवानी प्रसाद मिश्र जी ने समुद्र को जमाने की करवट के रूप में देखा है–

''जमाना करवट बदलकर जाग जाये
हर पुराने नये का राग हाये
सब बादल जाये हमारे ढंग से
बिन्दु जैसे तुंग सिंधु तरंग से।''[2]

मिश्र जी ने सरोवर, सागर, को पूजा वस्तु रूप में देखा है–

''वृत्त मुझे प्यारा है मुझको बन्धन प्यारा है
सलिलि लहरियो का नन्हा–सा कम्पन प्यारा है
अच्छा लगता है कि सरोवर जितना सारा है''[3]

नदियां, बूंद–बूंद पानी से भरी हुई गागर की सदृश्य है तो सागर नदियों का प्रेम रूप है। इसी कारण से तो नदी सागर में जाकर एकाकार हो जाती है भले उसके आस्तित्व का समापन हो जायें–

''बूंद–बूंद से गागर भरती, नदी–नदी से सागर
किरन इकट्ठी हुई कि होता सारा जगत उजागर''[4]

सात समुद्र मिलकर यदि पृथ्वी को घेरते है तो मन को भी कही गीला करते है–

'इस निकम्मे मन का गीलापन इस अंधेरे मन की कालिमा
घुल मिलकर इतने है
धरती के सात समुंदर मिलकर जितने है।[5]

---

1. गांधी पंचगती – पृष्ठ–68.
2. वही – पृष्ठ – 70.
3. वही – पृष्ठ – 87.
4. वही – पृष्ठ – 113.
5. वही – पृष्ठ – 401.

जिस तरह से जलाशय, सरिता–सागर बूंद–बूंद कर बनते है ऐसे ही व्यक्ति को अपने अन्दर स्नेह की बूंदों को संचित कर स्नेहाभिव्यक्ति करनी चाहिये ताकि उसकी पशुता पाखण्ड का समापन हो सके–

बूंदों के समुदाय
जलाशय, सरिता सागर के
इसी तरह यदि व्यक्ति व्यक्ति के
स्नेह बूंद हम करे इकट्ठे
तो कटुता विद्वेष दंभ–पाखंड
निरंकुशता पशुता के
दांत सहज हो जाये खट्टे।[1]

सागर में अनन्त जलराशि है, अमित गहराइयां है तो ठीक ऐसे व्यक्ति के जीवन में गहरे अनुपात है। यदि सागर गहराई की चिन्ता नहीं करता है तो व्यक्ति को भी चाहिये कि वह अनुपात से तापित न हो–

गहरे से गहरे अनुपात में
चार–चार बार डूबकर सागर जैसी
गहराईयों में
पिछली अपनी जिन्दगी पर
सोचना पड़ा है
जिन्दगी जो परणीता नहीं है मेरी
किसी कारण से साथ है
और खुद भी मुझसे छूटना चाहती है।"[2]

पहाड़ से सागर तक पहुचने में अन्थल प्रयत्न करना पड़ता है। व्यक्ति के जीवन में दुखों का विस्तार भी इतना विस्तृत है कि उसे समेटने में भगीरथ प्रयास करना पड़ता है–

---

1. गांधी पंचगती – पृष्ठ– 417.
2. खुशबू के शिलालेख – पृष्ठ – 83.

"दुख मेरा

एक पहाड़ से निकला था

और पार करके मैदानों को

मिल गाया सागर से

कई बाते हुई है

उसके साथ

बहुत कुछ गुजरा है इस पर

पहाड़ से सागर तक पहुँचने में।[1]

व्यक्ति के जीवन में नदी की तरह शान्त प्रियता होनी चाहिये। सागर की तरह गर्जन–तर्जन नहीं–

गरजता रहा सागर

मैं देकर उसकी तरफ पीठ

उस दिशा में मालूम था

एक पुश्यतोया

चुप–चाप बह रही है।[2]

समुद्र में मोती सप्रयोज्य पैदा होता है लेकिन उसके अन्दर बाहर निकलने के लिये झटपटाहट है तो सीपी शान्त, निश्चल, निर्तिकार ही बनी रहती है–

"हो जाता है या नहीं

जैसे देखिये मोती पैदा

सागर–भर निष्प्रयोजन

तैरते रहने वाली सीप में

एकाधिक सीप में तो

1. तूस की आग, पृष्ठ–24.
2. वही – पृष्ठ– 85.

हो ही जाता है और

कई द्वीपो की

एकाधिक सीपो में

हो जाता है।''[1]

सागर की लहरों में सूर्य का शरीर कहीं व्यथित दिखता है। आज के भौतिक अंझावात के युग में मावन का मन भी उसी तरह का है–

''समुद्र की लहरों में

सूरज का शरीर

जैसे आधीर लगता है

या तारे के सहारे जिस अर्थ में

शाम से सुबह तक मन जगता है।[2]

भवानी प्रसाद मिश्र ने प्रायः सागर को मन के रूप में उकेरा है। जिस तरह सागर कभी शान्त रहता है कभी उद्वेलित। ठीक ऐसे मानव मन झंझावातों के थपेड़े खाकर तनावग्रस्त हो जाता है –

''कोई सागर नहीं है

न बन है

बल्कि एक मन है

हमारा तुम्हारा सबका अकेनापन[3]

मिश्र जी अपनी कविता में ठीक वैसे ही डूब जाना चाहते है जैसे सूर्य और चन्द्रमा सागर में डूबते दिखाई देते है। इन सबको वे अपनी कविता में समाविष्ट कर लेना चाहते है–

'' अनन्त काल तक

मुझ सागर तक का

मेरे डूब जाने पर

---

1. तूस की आग – पृष्ठ– 85
2. वही – पृष्ठ 93.
3. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–35.

मेरी कविता के सहारे

इसलिये चाहता हूँ मैं

कि शाम और सड़क

और वृक्ष और नदीं

और सागर

सबके छंद

कम–ज्यादा

मै कविता में बांध दूँ।[1]

मिश्र जी मन में जिज्ञासा है कि गरजता हुआ समुद्र या शान्त समुद्र कहीं कोई संदेशा तो मानव को नहीं दे रहा। सम्भवतः दे रहा है चैतन्य होने का–

"चेतना या चेतना का

गहरा अहसास

रास सागर की लहरों का

आकाश के तारों का

धरती के वृक्षों का

आंधी में और

आंधी या तूफान के बाद की चुप्पी मे

आंधी या तूफान ये क्या कुछ अलग है।[2]

तट से टकराती समुद्र की लहरे सुखदयिनी हो सकती है यदि उसको अर्न्तमन की आखों से देखा जाये –

लहरे नदी की

या समुद्र की

टकराती रहे तटपर

तो पहरो

---

1. परिवर्तन जिये, पृष्ठ – 98.
2. वही, पृष्ठ – 119.

देखता रह सकता हूँ उन्हे
मगर ये ज्यादातर
केवल सुख है
और इसलिये कम है तुमसे
जो ज्यादातर
चिंतन हो चिता हो दुख हो।[1]

वैदिक मंत्र में पृथ्वाी शान्ति : का स्पष्ट आशय समझा जाना चाहिये कि पृथ्वी में जितनी प्रकृति है उसकों प्रकृति सहः रहने देना चाहिये। उससे आनंदित होना चाहिये और उसके साथ छेड़–छाड का खिलवाड़ नहीं करना चाहिये अन्यथा पर्यावरण गड़बड़ हो जायेगा–

समुंदर
और हवा
और फूल
यही है इस की परमशक्ति
कि कुछ नहीं रहता
अनुकूल
इसके अपने परम रूप में आ जाने पर
तब सब इसका
विरोध करते है।[2]

मिश्र जी ने सागर को खुशी के रूप में रूपायित किया है –

किनारे के उस पार
शान्त जल के थमें से
सरोवर मे
खुशी को
बा रहा मना किया था
मैनें।[3]

---

1. इदं न मम, पृष्ठ – 75.
2. अंधेरी कवितायें, पृष्ठ–13.
3. वही, पृष्ठ–26.

जिस तरह से समुद्र शांत और उद्वेलित रहा वैसे कवि का मन भी परिस्थितिवश शांत और अशान्त रहा। लगभग पचास वर्ष–

समुद्र रहता है शान्त,
अशान्त भी कभी–कभी,
वैसे में उगा हूँ,
बहा हूँ,
रहा हूँ बंधा या खुला
लगभग पचास बदस।[1]

2. नदी-

प्रयोग धर्मी अज्ञेय जी के बाद मिश्र जी ही एक ऐसे सफल प्रयोगधर्मी कवि रहे जिन्होनें नदी का विभिन्न रूपों में देखा है, चित्रित किया है, चट्टानों को तोड़ती रगड़ खाती अवाध गति से बहती नदी संघर्ष करने की प्रेरणा मानव को देती है तो उसका शीतल जल तापित मन और मन को शांत करता है। तमाम तरह के बिम्ब नदी के मिश्र जी ने उकेरे है–

सोचा था किसी अजस्र स्रोतस्तिनी के किनारे
कुटिया बनाकर रहेगें, छोटा एक टुकड़ा होगा जमीन का
उसी से कमायेंगे रोटी, अवकाश में चरखा चलायेगें
आस पास के बच्चों को अपने ढंग से सिखायंगे पढ़ायेंगे।[2]

X X X X X

छोटी सी एक तलैया
भरपूर भरी पानी से
हरी धरती का एक टुकड़ा
उसी से लगा हुआ
और फैला हुआ
दूर–दूर तक ऊपर आसमान साफ और नीला ऐसा
कि नीचे का दृश्य उसमें लगता था जैसे प्रतिबिम्बित।[3]

---

1. अंधेरी कविताये – पृ0 135.
2. गांधी पंचशती – पृ0 327.
3. वही – पृ0 367.

ये नदियां प्रेम के आवेश में खेतों तक जा पहुंचती है ताकि खेत शस्य श्यामल हो सके और भरपूर फसले उगे कोई अधजन्या न रह जाये–

या कहा ये गंगा की या नर्मदा की
धाराएँ है जो बह रही है
जिसे सूझेगा इनके पास जाना
या लाना इन्हें अपने खेतो तक
जायेंगे वे उनके तटों पर।[1]

मिश्र जी का मानना है कि नदी का जन्म रात में हुआ। प्रकाश होते हर वह चल पड़ी और अनाथल यात्रा जारी रखी–

मैने एक दिन
चुपचाप देर तक बैठे–बैठे
नर्मदा के किनारे
जाना कि
नदियों का जन्म
रात में हुआ है
और प्रकाश होते होत तक
वे बह कर चली गयी
वनों से होकर
मैदानों तक
वे रात में भी चली
और दिन को भी जारी रखी
उन्होनें अपनी यात्रा।[2]

नदी चाहती है कि सभी का प्यास बुझे। सभी तृप्त हो। वह प्रकाश सदृश बहती है–

"कल घाटी में बह रही नदी

---

1. खुशबू के शिलालेख – पृ0– 97.
2. तूस की आग, पृ0 46.

कहने को
सिर्फ बह रही थी
मगर मैनें
महसूस किया
कि उसने
पास की पहाड़ी की
प्यास को समझकर
ताजा और ठंढा एक गीत गया
कि मैं
प्रकाश की तरह
बहती हूँ
मगर बनी रहती हूँ
घाटी में भी
कि कभी
प्यास लगे पहाड़ी को
तो पहाड़ी
प्यासी की प्यासी न रह जाये।[1]

नदियों के अन्दर भी कोमल भावनायें होती है। उनका मन भी सुख दुख की अनुभूति करता है–

उदास इस जमना के किनारे
बैठे है गये–बीते दिन
पांव पसारे
और अंधेरा धिरता आ रहा है
काला एक परदा
मेरे भी वर्तमान पर
गिरता आ रहा है
चक्कर सा खा रहे है
एक–एक करके
आसमान में ऊपर उठकर
आने वाले[2]

---

1. तूस की आग, पृष्ठ–46.
2. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–89.

नदी का पानी तरलयित है तो व्यक्ति के अन्दर भी भावनायें तरलयित होती है उमड़ती–घुमड़ती है और फिर अन्त में मन को एक अजीब सुखानुभूति दे जाती है–

मैं उस दिन
नदी के किनारे पर गया
तो क्या जाने
पानी को क्या सूझी .
पानी ने मुझे
बूंद–बूंद पी लिया
और मैं
पिया जाकर पानी से
उसकी तरंगों में
नाचता रहा
रात भर
लहरो के साथ–साथ[1]

साफ निर्मल जल में विभिन्न चित्र प्रतिबिम्बित होते है वे मानवीय संवेदनाओं से भी जुड़े होते है–

"एक–एक घड़ी में
नीचे गहरी नीली
नदी बह रही है
रात से ज्यादा गहरी
रात से ज्यादा नीली
और मुंह ताक रहे है
उस में जैसे
अपना ही
तारे नीले पीले।[2]

---

1. परिवर्तन जिये– पृष्ठ–92.
2. अंधेरी कवितायें – पृ0 111.

कमल-

कमल प्रतीक है खुशनुमा जिन्दगी का, विपहित में मुस्कुराते रहने का, और सब को सुगन्ध बाटने का। श्री भवानी प्रसाद मिश्र जी ने कमल को इसी रूप में देखा है–

"कमल के दलो की सुखी कुछ न पूछों
उदासी की छाया सभी हट गयी है।[1]

कमल हंसी का भी प्रतीक है और दुखों में आहलादित रहना अगर सीखना है तो कमल से सीचना चाहिये–

और मुझे यो लगा कि जैसे कमल पात पर बूंद हिल गये
और बोलते हुए जरा से हंसे तो जैसे कमल खिल गये।[2]

किसी को खुशी देनी है तो कमल की तरह उसके जीवन में सुगंध बिखेरना, उसकी जिन्दगी को खुशनुमां बनाये–

तुम्हे खुश कर देने के ख्याल से
तालाब में से ले आने
दूर पर खिला एक कमल
और हम बावजूत इस सबके
उसे ठीक दोस्त
कमी नहीं मान पाये
क्योंकि हम पूरी तरह
मुहं से बोलते थे।[3]

व्यक्ति यदि चाहते तो वह अपने चरित्र को कमल की तरह उदात्त बना सकता है–

आदि सुगंध आदमी को
हर कीचड़ से ऊपर रख सकती है
पंकज की तरह
रखती भी है
यह मैनें जाना है

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 113.
2. वही, पृ0 189
3. खूशबू के शिलालेख, पृ0 51

और यह भी जाना है

कि जितने दिन जियूंगा

सुगंधे केवल

पियूंगा नहीं

फैलाऊंगा[1]

व्यक्ति का चरित्र कमलवट होना चाहिये। वह दूसरे के जीवन में आनन्द बिखेरे, रंग बिखेरे–

एक फूल देखा है मैने

जो सचमुच कमल है

एक रंग देखा है मैने

जो ठीक धवल है

सारे रंग जिसमें हुए है

तपाये हुए साने से अलग[2]

कमल की हंसी को अपने जीवन में उतारना ही मानव को लक्ष्म होना चाहिये–

हंसी

पंल में फंसी पंकज की कतारो की

और अनुभव पंक को

उस मुसकुराहट के रपस्य का।[3]

जीवन में जब कभी धनी होती है। यह धनीभूत पीड़ा मन को इतना व्यथित करती है कि प्रकृति भी उसे बेगानी लगती है–

अब मैं किसी कमल या गुलाब

या जासौन के फूल को

न लिहरना चाहता हूँ न बोना

याने अब मैं

---

1. खुशबू के शिलालेख–पृष्ठ–51.
2. इदं न मम, पृष्ठ–67.
3. वही, पृष्ठ– 104.

न कोई क्षण पाना चाहता हूँ

न खोना[1]

आकाशीय बिम्ब-

आकाशीय बिम्ब के अन्तर्गत आकाश, चॉद–तारे, सूर्य, प्रातः काल, संध्या का वर्णन होता है। श्री भवानी प्रसाद मिश्र प्रकृति के कुशल चितेरे कवि है जिन्होनें आकाशीय दृश्यों को दृश्यवत किया है। उनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता है सहज अभिव्यक्ति, और ऐसा उन्होनें बिम्ब को उकेरते समय सहज शैली का प्रयोग करते है–

आकाशीय बिम्बों में उन्होनें नीले आकाश का सहज स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत किया है–

नीले गमन पर बादल आग्रह से लोटा है

दुख के क्षणों में क्या सुखमय न जारों का कोई बड़ा टोटा है

ऐसा नही था कभी और न है ऐसा आज

दिन भर रोने की मुझे संध्या में आई लाज।[2]

नीले आकाश को उन्होनें एक पर्व की भांति देखा है–

दिवस रात्रि रितु के परिवर्तन इसी विकल गति के कारण है

यही बिकलता किन्तु देश अवकाश और आकाश बनाती

और विराट प्रभा सूरज की

केवल साक्षी रहकर मानों

क्रिया शून्यता में कर्मो के पर्व मनाती।[3]

बादल के टुकड़े को उन्होनें पुष्प वृत्त की तरह माना है जो सूर्य की गर्मी को पाकर सहज रूप में आकार ग्रहण कर खिल गया हो–

फूल की तरह होता

एक टुकड़ा बादल का

क्षितिज पर जाते हुए सूरज

---

1. अंधेरी कविताएं, पृष्ठ–116.
2. गांधी पंचशती, पृष्ठ– 189.
3. गांधी पंचशती, पृष्ठ–257.

के वृंत पर

खिल गया है।[1]

अनन्त आकाश पक्षियों को उन्मुक्त रूप से उडऩें का अवश्र देता है ताकि वे प्रकृति का सहज आनन्द ले सके–

होने को आकाश है

और पंक्षी भी है

मगर अवकाश

आकाश का

उड़ने भी दे सकता है।[2]

कवि की मान्यता है कि आकाश जैसा दिखता है वैसा नहीं है। तमाम रहस्यों को अपने में आत्मसात किये हुए वह परिलक्षित होता है–

आसमान जैसा दिखता है

वैसा नहीं है

और न धरती

जैसा दिखती है वैसी है

ठीक नहीं कह सकता कोई

वह कैसा है यह कैसी है।[3]

आसमान शास्वत है। हवा ही उसमें बदलाव लाती है –

आसमान खुद हवा बनकर

नहीं बहता जैसे

हवा उसमें बहती है।[4]

कभी कभी वे निर्निमेष आकाश को देखते है कि वास्तव में यह आकाश क्या संदेश देना चाहता है–

आज को सरल दिन के सहारे

टिला हुआ मैं

बरसते पानी की झड़ी में

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ–60.
2. तूस की आग, पृष्ठ–41
3. बुनी हुई रस्सी, पृ0 24.
4. वही, पृ0 40.

टकटकी लगाकर

देख रहा हूँ

देश का काला आसमान।[1]

आसमान से जिस तरह सूर्य निकलता है उसका रंग पीला और फिर सफेद हो जाता है। कवि की मान्यता है कि भारत को ऐसा ही होना चाहिये–

हमारा ही सूरज

हमारे काले आसमान में

बनाते हुए उसे

लाल और फिर पीला

और फिर सफेद

और फिर ठीक वैसा नीला

जैसा भारत के

आसमान को होना चाहिये।[2]

तारा आसमान से टूटता है तो आकाश पहले से उसे बता देता है कि तुम्हे निराश होने की आवश्यकता नहीं तुम्हें पृथ्वी पर स्थान मिलेगा। सम्भवतः यह संदेशा मानव को देना चाहते है–

तारा नहीं है आदमी

कि आसमान से

धरती तक तेजी से छूटे

उसके तो पातें पहले से ही

धरती पर टिके है।[3]

आसमान के एक किनारे से दूसरे किनारे तक सुबह फैलती है तो शाम भी फैलती है–

आसमान में

इस छोर से

उस छोर तक

---

1. परिवर्तन जिये, पृष्ठ – 83.
2. वही, पृ0 101.
3. इदं न मम, पृ0 89.

भोर से

सांझ तक

सांझ से भोर तक[1]

सूर्य की किरणों को चन्द्रमा की चन्द्रिका को आधार स्तम्भ यदि कोई दिये है तो अनन्त नीख आकाश –

आकाश की मेहराबों पर

समान सुख से लपेटी है

किरणे उसने[2]

चाँद-तारे-

बहुत ठहरी तो आई रात आया चाँद

तारों की लड़ी निकली

बहुत ठहरी लगा मुझकों कि जगने की धड़ी निकली[3]

चन्द्रमा की हंसती हुई किरण आकाश और मन को प्रफुल्लित कर देती है–

पास आई किरण हास मन में घुला

रूप चंदा का जैसे गगन में घुला

सब निखर कर घुला नभ विमल हो गया

आज उतरी किरन मन कमल हो गया।[4]

आकश कमी घिरकर चॉद को बूढ़ा बना देते है ऐसे ही मानव को परिस्थितियाँ भी विवश कर देती है–

चाँद के आसपास के घेरे में

जाकर बैठ जायेगें

मेरे ही जैसे दो–चार उनमन मन और

धन जो चाँद को घेरे–घेरे

बूढे हो गये है।[1]

---

1. अंधेरी कवितायें, पृ0 51.
2. वही, पृष्ठ–105
3. गांधी पंचशती, पृष्ठ–46.
4. वही, पृष्ठ–107

चन्द्रमा या तारे इतनी दूर है कि वे अपनापन नहीं जानते है–

चंदा या सूरज या तारे से भी

और बह इतनी बहुत दूर की चीज

आप शायद जानते नहीं है

अपनापन है[2]

यदि हम आकाश गंगा तक जा पहुंचे हमे ज्ञात ही नहीं है कि वहाँ क्या है तम हम वहाँ पहुंचकर क्या याचना करेगे–

समझिये जा पहुँचे हम

किसी चमत्कार के नारे

आकाश गंगा के किसी तारे में

तो हम क्या जानेगे उसका

क्या मांगेगे उससे।[3]

चन्द्रिकाओं से तर बतर यह रात वृक्षों तक शनैः–शनै जा उतरती है–

चाँदनी से तरबतर वह रात

वन के वृक्ष

वृक्षों पर सटी बैठी हुई

झंकार बंती झिल्लियाँ[4]

चांदनी में उछलता हुआ चांद यदि प्रफुल्लित होता है वह चाहता है कि पृथ्वी में सदियों तक उत्साह बना रहे –

चांदनी उछालता चांद

सिग्धता बखेरते तोर

काहे के सहारे बढ़े कभी की

उत्साह बन्त सदियां[5]

कभी–कभी जबव चन्द्रमा उदास होता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि चांदनी का हाथ

---

1. खुशबू की शिलालेख, पृष्ठ–34.
2. वही, पृष्ठ–45.
3. तूस की आग, पृष्ठ–35,
4. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–98
5. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–107

उससे छूट गया क्योंकि चन्द्रमा काले बादलों में घिरे होने के कारण प्रकाश नहीं फैला रहा—

छूट गया

चांदनी का छोर

उसके हाथों से

और

ठौर–बे ठौर

छिटकी नहीं है अब

चांदनी[1]

एक लड़की चांदनी रात में फूल तोड़ रही है। संकुचित स्वभाव होने के कारण कवि उससे बोल ही नहीं पाते है—

और चांदनी ये घुले बागीचे में

फूल तोड़ती हुई

एक लड़की

जो न मुझसे बोलती थी

और न मैं

जिस से बोलता था।[2]

सूर्य-प्रात: काल-संध्या -

चलो ऊषा के पास
उसी से मांगे टटका हास
किरन का फूलों का
चलो ऊषा के पास
उसी से मांगे
नीला गगन
सुनहली सुबह
मोतिया घास।[3]

बैठे–बैठे सांझ देखना किरनों को पी लेना

अंधकार होने के पहले हर प्रकाश जी लेना

---

1. इदं न मम, पृष्ठ–42.
2. अंधेरी कविताये, पृ0 79.
3. गांधी पंचशती, पृ0 19.

दिन निकले तक इसके बल पर प्राण संभल पाता है

मेरा दिन भर का उदास मन सन्ध्या में गाता है।[1]

कवि का मानना है कि सूर्य का प्रकाश भत्य राज प्रासादों तक सीमित न रहकर गरीबों की पर्ण–कुटियों भी पहुचे–

उतरे सुबह शाम दोपहर

रात के सारे पहरो में

मन कटते हुए तट पर खेवा

सूरज और चंदा और तारिकाओं के इतने

कि झोपड़ी से निकरकर अब लगा रहूँ।[2]

शाम इतनी सुन्दर है, इतनी सुहावनी है लेकिन खेद की बात है कि भौतिकता के झंझावातों से घिरा हुआ आज का मानव इसे नहीं देख पाता–

और शामें

इनके बारे में क्या कहूं

फिर चाहता क्यों हूं

कहना मै इनके बारे में

जब इनमें से

किसी एक भी शाम को

निबाहता नहीं हूं मै।[3]

कभी–कभी आदमी इतनी तेजी से भागता है कि सूरज के उजाले को भी पीछे छोड़ देना चाहता है है लेकिन क्या ऐसा सम्भव है–

सूरज के उजाले को

पीछे छोड़ते हुए

किनारे की तरफ चली आ रही है

काली नावे

क्या लदा है इनमें

---

1. गांधी पंचशती, पृष्ठ–94.
2. खुशबू के शिलालेख, 159.
3. टूस की आग, पृष्ठ–16.

शायद रौंदे हुए घरौदें

मुरझाई हुई कलिया सूखे फूल

टूटे इन्द्र धनुष[1]

अर्थ को मन का अंधेरा ऐसा पी लेता है जैसे अंधेरी रात छाया का समापन कर देती है–

अंधेरी रात

पी लेती है जैसे

छाया को

ऐसे पी लेता है

अर्थो को अंधेरा मन।[2]

काली रात में यदि कोहरा रहता है तो जब व्यक्ति के जीवन में अवशाद होता है तो वह हिम्मत बांधकर अवसाद से निकलकर सचेष्ट हो जाता है–

रात काली हो

तो भीकुहरा सदा

सफेद रहता है

जहॉ–जहॉ अंधेरा हों

मेरा मन वहॉ–वहॉ

सचेत रहता है।[3]

सूरज का पहिया अभी रूका नहीं है। उसकी गति अर्हनिष चलती है–

सूरज का पहिया

अभी रूका नहीं है

बहुत कुछ होना बाकी है

सब कुछ

हो नहीं चुका है।[4]

तब ऑख सॉझ की

झुकती आती थी

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0 19.
2. वही, पृष्ठ–25
3. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–20
4. वही, पृष्ठ–36

सुन्दर अरण्य पल्लव के

कंपन–सी

गति को

रूकती–रूकती आती थी।[1]

ऊषा का स्पर्श मिट्टी के अतंस में उतरकर हलचल मचा देता है–

ऊषा का परस उतर पहुंचा

माटी के गहरे अन्तर में

जड़ चेतन को हू गये प्राण

हल चल भर गयी जगत भर में।[2]

सूरज भी जीवन्त है वह प्राणिवत् विश्राम चाहता है लेकिन वह जानता है कि उसके विश्राम से लोगों का जीवन ही समाप्त हो जायेगा–

शाम से

जरा पहले

खत्म हुआ हाथ का काम

नाम से

जरा पहले जैसे

जाग गया मन में

रूप

अब मैं

तत्कालीन एक छूप हूँ।[3]

जिस तरह से जीवन का अंत मृत्यु हो तो प्रातः काल का अवसान दोपहर है–

दोपहरी तक पहुँचते–पहुँचते

मुरझा जाता है जो

वह कैसा भोर है

क्या

---

1. कालजयी, पृष्ठ–29.
2. वही, पृष्ठ–80.
3. इदं न मम, पृष्ठ–25.

कुल मिलाकर
जीवन का मुंह
मृत्यु की ओर है।

कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने सुबह को बाहर जाने के रूप में, दोपहर को कमरें बंद करने के रूप में और शाम को भारी मन केरूप में रूपायित किया है–

सवेरे–सवेरे
उजाले के घेरे से
बाहर हो जाता हूँ एकाध बार
दोपहर तक द्वारा बन्द करके
कमरे के
अंधेरे के छन्द पहनता हूँ
हलके भारी
बारी–बारी
शाम को खोल कर द्वारे
अंधेर कमर के
बाहर निकलता हूँ
डूब जाने के ख्याल से।[1]

व्यक्ति के जीवन में आनन्द तभी हे जब सुबह–दोपहर–शाम वह आह्लादित रहे यानी सुख और दुख दोनों का समान रूप से सहज भाव से ग्रहण करे–

सुबह जो किरण निकली थी
वह सादी थी
शायद कमजोर भी थी
मगर मैने अपने दुख से कहा
भाई तुम किरण से तो
आंखे नहीं चुरा सकते
शाम को जो पंछी लौटा

---

1. अंधेरी कतिवायें, पृष्ठ–15.

वह थका हुआ था

और गीत उसके कण्ठ में नही था

मगर मैने अपनी निराशा से कहा

हमें अपने डैने

इस तरह नहीं सिकोड़ने है

रात धनी हो गयी

तूफान बहने लगा

प्राण दुख के दामन को।[1]

पार्थिव :-

इसके अन्तर्गत पृथ्वी, वन, घास, पेड इत्यादि का वर्णन होता है– श्री भवानी प्रसाद मिश्र जी ने इनके चित्रण में कृत्रिमता नहीं सहजता है स्वाभाविकता है–

"कुएं पर, नहीं तट पर वनों में या पहाड़ो पर।

खेत की मेड़ों पर पहली बार

इस या उस हृदय के शोक सुख से भीगकर

ये सहज स्वाभाविक स्वरों में नहीं फूटे।[2]

X X X X

मेरे बगीचे में बेर है अमरूद है

अनार है और आम है

फल तो इनके राहगीर

और आवारा लड़कों के है

मुझे तो जब–तब छाया

और सुबह से शाम तक

संगीत मिलता है पंछियों का।[3]

उदास होने के लिये इतना हीन पर्याप्त है कि एक सुरमित पुण्य को अपने ही हाथों से तोड़ना पड़ता है–

---

1. अंधेरी कवितायें, पृ0 40.
2. गांधी पंचशती– पृ0–241.
3. वही, पृ0 413.

कारण नहीं है यह

काफी उदास हो जाने के लिए

फूल को अपने हाथ में

पाने के लिए

उसे तोड़ना पड़ता है।[1]

वृक्ष भी क्या अजीव जीव होते है सुबह की मलयझहता में सिर डुलाते है दोपहर को स्वयं तापित होकर शीलता बातते है। शाम को एक सुहानी सुगन्ध देते है तो रात को महक उठते है–

ऐसे गाने लगते हैं

कि बबूल और तेंदू और सागौन के

सारे वृक्ष विचित्र ढंग से

सिर हिलाने लगते है।[2]

नदिया वृक्षों को जन्म देती है उन्हें दूध पिलाती है, पल्लवित पोषित व फलित करती है–

वृक्ष जरूर नदियों के

पूर्वज है

इन पूर्वजों ने मगर

दूध पिया है

अपनी अनुजाओं का

जो उनके कष्ट को समझकर

सिक्त रहती रही

पय से अपने उनकी जड़े।[3]

पृथ्वी का नाम वेदि भी है क्योकि इसके मूल में औषधियां है। इस पृथ्वी को उपजाऊ तो बनना ही होगा–

भूमा को सधना होगा तो

सधेगा वह

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ–104.
2. वही, पृष्ठ–114.
3. टूस की आग–47.

स्वल्प–सुन्दर की शोभनीयता में।[1]

जिस तरह से मिट्टी सोना बनाती है है उसी तरह से वर्ण–वर्ण कविता कंचन को गढ़ते है–

कविता का वर्ण–वर्ण
मिलकर मिट्टी में
रच पच कर मिट्टी में
बनेगा सोना
मगर मिट्टी में स्पने पचने के लिए
फिर से पड़गा मुझे
बोना अपने को
मिट्टी में।[2]

हरित दूर्वा को कवि ने सोते हुए व्यक्ति की तरह चित्रित किया है–

सुबह टहलते–टहलते
हरी भरी दूब पर पांव पड़े
तो लगा जैसे पड़ गया हो पाव
किसी सोते हुए आदमी के शरीर पर।[3]

नदी, पहाड़, फूल, काटे ये जीवन के सत्य है

नदी पहाड़ काटे और फूल
और धूल
और ऊबड़ खाबड़ रास्ते
सब सच ने जाने है।[4]

x x x x x

जवानी में विंध्याचल पर
उतरा चढ़ा था मैं
नर्मदा की लहरो के साथ–साथ
एक किनारे से

---

1. टूस की आग– पृष्ठ–87
2. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–18
3. वही, पृष्ठ–33
4. परिवर्तन जिये, 18

दूसरे किनारे तक बढ़ा था मैं

और विशिष्ट लगता था तब

विंध्या का

हर उतार–चढ़ाव

नर्मदा की हर

छोटी बड़ी लहर

चले आने पर भी वहां से

अपने छोटे घर में

प्रायः घूमते रहते थे।[1]

कोमल किसलय हिलते है तो प्रस्तर शिलाओं में प्यार का ज्वार उफान लेने लगता है–

कोमल किसलय हिले कि

पत्थर के प्राणों में प्यार भर उठा

लहर मचल कर उठी कि

मरू के जीवन में भी ज्वार भर उठा।[2]

व्यक्ति जब सघर्ष करने पर आता है तो मार्ग में बाधाओं को पार करता हुआ वह अनवरत बढ़ता ही जाता है–

निमर्म दुर्गभ पथ, उपल–खण्ड–आकीर्ण

भक्त बढ़ता चलता

वन–सधन कंटकाकीर्ण चीर

गिरि–शिखरों पर चढ़ता चलता।[3]

कवि ने प्रेयषी की सांस को वटवृक्ष या वांस के रूप के रूप में रूपायित किया है–

बट की

या बांस की

या उस दिन की

मेरी तुम्हारी तेज सांस की।[1]

---

1. परिवर्तन जिये, 45.
2. लालमनी, पृ0 56.
3. वही– पृष्ठ–81.

प्रेयषी के विचार जूही के फूल के सदृश है–

जूही के थे वे फूल
अच्छे तो लगते है मुंझे
इस लिये चुन लिये थे आज
तुम्हारे ख्याल से
तुम्हे भी अच्छे लगे
यह उनका भाग्य है।[2]

पौधे के अन्दर वह शक्ति है जो फूल को जन्म देती है और फूल परिवेश को सुरमित कर देता है–

और पौधा जिसे पाकर फूल देता है
क्या चीज है यह
अदम्य और कोमल और कठोर
जो अभी मन बहलाती है
अभी समूची जाति को
खून में नहलाती है।[3]

जिस तरह से पत्ते गिर जाने से पेढ़ पतविहीन हो जाता है ही आज का मानव परिस्थितियों के कारण हो गया है–

पतझड़ के झोके में
शरीर का अश्वत्व
जो नंगा हो गया था
फेंकता लगता है कोमलें
एड़ी से चोटी तक
पंख उगते है जैसे।[4]

तायत्य :-

इसके अन्तर्गत हवा, उसके तीव्र झोके इन सभी का चित्रण किया जाता है–

---

1. इदं न मम, पृष्ठ–17.
2. वही, पृष्ठ–46.
3. अंधेरी कवितायें पृष्ठ–12.
4. वही, पृष्ठ–108

है हवा में कुछ किरन दल का अदेसा–सा

तारकों की आंख में रवि का अंदेसा–सा

हिल रही है कली कुछ मुसकान पीती–सी।[1]

आंधी केवल कचरा नीं उड़ाती उसमें राज प्रसाद भी गिरा देने का धरासायी हो जाते है–

किन्तु आंधियों को स्वभाव है

केवल कचरा नहीं उड़ाकर ले जाती वे

महल अटारी कलश मंदिरो के भी उसमें ढह जाते है

कभी–कभी सिर पर गिरते है गिरने वाले कलश बज्र की तरह।[2]

कवि ने आज के मानव को संबोधित करते हुये कहा है कि जिन जालियों को तुमने विवेक मानकर घरों में लगा रखा है तीव्र तूँफान उनकों उड़ा ले जायेगा–

हवा अब जोर पकड़ रही है

फट जायेगी और उड़ जायेगी उसमें

अक्ल को ढक रखने वाली

वे जालिया

जिन्हे तुमने

अपनी उपलब्धि माना है।[3]

कवि ने हवा के रूपायित किया है– एक छेनी की तरह जो प्रस्तर शिलाओं को आकार प्रकार देती है–ऐसे ही वह अपने शब्दों को हवा के माध्यम से कविता का रूप देना चाहता है–

हवा में इन सबको

और टाँकना चाहता हूँ

सिग्ध अपने शब्दों की

हल्की और सधी

छेनी से उन्हे।[4]

सुवासित हवा स्नान किये हुये जंगल को शंख की सदृश ध्वनित करती है–

नहाये वन में बहती हवा को

---

1. गांधी पंचशती, पृष्ठ–65
2. वही, पृष्ठ–232.
3. खुशबू के शिलालेख– 113.
4. वही– 134–35.

कई गुना करके सुन रहा है

कानों पर शंख जड़ दिये हो जैसे

असमय के हाथ ने।[1]

जिस तरह हवा साफ रहती है निर्मल, पवित्र, रहती है ऐसे ही प्राणी को अपने सारे दुख दर्द भूलकर सम्मित जिन्दगी जीने का प्रयास करना चाहिये–

आज की हवा साफ है।

इसलिए कहता हूँ इसे साफ।

कि खीचते हुए भीतर इसको।

एहसास नहीं हो रहा है

कि खींचा जा रहा है कुछ[2]

कवि ने हवा को मानव की इच्छा के रूप में देखा है–

अगर इस नगर में घूमने वाली हवा

इससे बाहर निकल जाकर

ताजा हो जाती है

तो सांस जो घूम रही है इस शरीर में

मुक्त होकर इससे

बदलेगी

अच्छे की दिशा में।[3]

सुहानी हवा पक्षियों को इतना मदमस्त किये हुये है कि सुबह होने पर वो जगाये नहीं जगते है–

आज हवा यो चल रही है

जैसे किसी से जल रही है

पत्ते उसे छूकर

ये कैसा सवेरा हो रहा है आज

कि पंक्षी

---

1. टूस की आग, पृष्ठ–43.
2. वही, पृष्ठ–62.
3. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–29.

किरन और हवा के जगाये नहीं जगते।[1]

हवा जैसे ही वातावरण को छूती है उसका मन स्वंदित हो जाता है–

हल्की सुनहली किरने ने
हवा का आचंल हुआ है
और हुआ है
वातावरण का मन
किरने हो जाने का।[2]

हवा को झोका प्रतिदिन आता है और वो चाहता है कि सभी को स्पर्श कर अहलदित करे–

हवा का झोका आया
और रोज की तरह
सौ चीजों को चूमने निकल गया
सोचंता रहा मैं अन्यमनस्क
सूरज का घूमना
ओकों का पेड़ो को, पौधो को
अलको को चूमना।[3]

कवि ने मन को हवा से भरे हुये तन की तरह बिम्बित किया है। जिस तरह हवा का झोका सारे जंगल में व्याप्त रहता है उसी तरह से मादक स्मृमियाँ भी वसी रहती है–

जिसमें से
गंधवाही तुम्हारे
सभी करण का झोका
गुजर रहा है
उसे करते हुए आस्थिर।[4]

हवा ने शायद इसी कारण से बहना प्रारम्भ किया है कि वह फूलों को आकार प्रकार दे आकाश और किरणों का स्पर्श करे–

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–65–66.
2. परिवर्तन जिये–85.
3. इदं न मम, पृष्ठ–15.
4. वही, पृष्ठ–118.

जैसे हवा में अपने को
खोल दिया है इन फूलो ने
आकाश और किरणों और झोकों को
सौप दिया है अपना रूप
और उन्होनें जैसे अपने में
भर कर भी उन्हें हुआ नहीं है।[1]

चेहरे पर पानी के छीटे डालने पर वह आड हो जाता है। ऐसे हवा का झोका हमको आर्दृता देता है–

हवा चेहरे पर से
ऐसी वही
जैसे वही हो पानी पर से
तरंगित हुआ सा चेहरा
और जैसे
नीचे डूबकर चेहरे से।[2]

तेजस :-

इसके अन्तर्गत प्रकाश, आभा कांति का वर्णन होता है–

साधारण सा रूप किन्तु दीपित श्री ऐसी
इन आंखों को किसी देह में दिखी न जैसी
पलके उठती है तो लगता है झुला सब।
अंगुली उठती है तो लगता है रूका सब[3]

श्री मिश्र जी का विचार है कि– जो अभावों की जिन्दगी जी रहे है उन्हें सम्बल प्रदान किया जाये सामर्थ्यवान बनाया जाये–

जितने मन बदल सकोगे तुम
उतने प्रकाश आवरण अंधेरी देहौ को चमकायेगें
यदि प्राण आदमी के न बदलने पाये तुम।[4]

व्यक्ति का सधा हुआ हाथ अंधेरे को दूरकर सतंरगी आभा से युक्त प्रकाश चर्तुदिक फैला देता है–

---

1. अंधेरी कवितायें– पृष्ठ–33.
2. वही, पृष्ठ–33
3. गांधी पंचशती, पृष्ठ–11
4. वही, पृष्ठ–277.

एक तरह की सावधानी

एक तरह का कौशल

मुझ में आयेगा

और मेरा सधा हुआ हाथ

जो तमाम प्रकाश और

रंग मैने जमा करके रखे है

उन्हे जब कभी

ठीक–ठीक जमा पायेगा

तो बिजली सी चमक जायेगी

अभी यहाँ अंधेरे में

कभी वहाँ।[1]

व्यक्ति को चाहिये कि यदि वो अंधकार को समझता है तो प्रकाश को भी समझे–

भूल तुमसे ऐसी नहीं होती/

कि अंधेरा भी देखो

और देखों कहीं आस–पास

उजाला और उजाले में चीजें

भूल मुझसे एकाध

ऐसी होती रहती है।[2]

हम कल्पना में केवल फूल देख पाते है वृक्ष शायद हमारी कल्पना से परे हो जाता है जबकि वह वृक्ष एक फल के रूप में प्रकाश लाता है जो आस्वाद की वस्तु बनता है–

कल्पना ने केवल अंश देखा फूल

दर्शन के अंश नहीं देखा

विराट् देखा वृक्ष

और सो भी समूचा देखा

भीतर की जड़ो को बाहर ले आया वह

प्रकाश में

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ–34.
2. टूस की आग, पृष्ठ–55.

लटका दिया उसे उसने

आकाश में।[1]

जिस तरह से आम पृथ्वी पर टपकते है ठीक ऐसे ही आकाश से प्रकाश और शन्ति दोनों ही टपककर पृथ्वी पर आते है। मानव जीवन को सुखद शंतिमय बनाने के लिये–

आकाश में अवकाश है

प्रकाश है और शान्ति है

फल

होकर रसाल जैसे

धरती पर टपकते है

इसी तरह टपक रहे है

मेरे आगे आकाश से

अवकाश प्रकार और शान्ति।[2]

व्यक्ति के बाहय आकृति में यदि प्रकाश पुंज है तो उसके अन्तस में स्फूर्ति का प्रकाश भी गतिशील है जो उसके मन को स्फुरित कर गतिशीलता देता है प्रकाशवान बनाता है और उसके अन्दर अदम्य साहस संचित करता है–

भीतर का तत्व बाहर

एक आमा लेकर जागता है

सम्पूर्ण अपनी शक्ति और संयम से

कम से कम

मुझे ऐसा लगता है।[3]

व्यक्ति के अन्दर यदि चिन्ता उत्पन्न होती है तो चिन्ता के तुरन्त बाद प्रकाश पुंज के रूप में आशा का संचरण होता है–

ज्योतिपुंज महाकाश में

उगती है ज्वलन्त

---

1. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–112.
2. वही, पृष्ठ–113
3. इदं न मम, पृष्ठ–59.

कोई अनजानी सूरत

और जागती है

उसके साथ–साथ

चिन्ता।[1]

विपटित में व्यक्ति यदि विवेक से काम ले धैर्य से विचार करे, तो ऐसा नही है कि वह विपटित पर विजय न प्राप्त कर सके। क्योंकि उसके अन्दर एक प्रकाश पुंज है। जिससे वह बिखरी हुई जिन्दगी को सजा सकता है, संवार सकता है, बना सकता है–

ज्वालामुखी बादल दल

कुहरे से ढंकी नीली वनरजि

सह भी जाऊँ

तो और–और

जो कुछ बिखरा है

जहॉ–तहॉ उसका क्या हो।[2]

जीव जन्तु-

श्री भवानी प्रसाद मिश्र जहा एक ओर प्रकृति के कुशल चितेरे है वही दूसरी तहफ जीव–जन्तु पर भी उनकी लेखनी चली। सिं का गर्जना, ह्रदय को डुला देती है–

जंगल के राजा, सावधान

ओ मेरे राजा, सावधान

कुछ अशुभ शकुन हो रहे आज।

जो दूर शब्द सुन पड़ता है

वह मेरे जी में गड़ता है

रे इस हलचल पर पड़े गाज।[3]

आकाश की आग धरती और मानव को तापित किये हुयें है। कव मेघ गर्जना कर बरसेगें, मयूर नाचेंगे, दरके हुये खेतों का वितीर्ण धरती कब जल प्लावित होगी–

---

1. अंधेरी कवितायें, पृष्ठ–36.
2. वही, पृष्ठ–70.
3. गांधी पंचशती, पृष्ठ–20.

नाचेंगे कब मयूर–से मन
भरेगा कब यह नील गगन दलो से बादल के
बजेगे कब आगंन–आंगन थिरलते स्वर पग पायल के
बको की पॉत सरल–सुख गीत गा रही है कब उड़ पायेगी।[1]

एक छोटी सी चिड़िया कुदल कर साड़ी में दुवक गयी। पक्षियों का दल उड़ने के लिये ऊपर उठा–

कुछ हुआ कि एक सफेद छोटी चिड़िया जो झाड़ी में
दुबक गयी थी बाहर आकर फुदलने लगी और
आसमान में पक्षियों का जो दल झोकें की तरह
उड़कर ऊपर निकल जाने के विचार से ऊपर उठा था
सामने के नंगे से पीपल पर उतर आया
और गौरैये जो घोसलों में जा बैठी थी फिर
मैदान भर में घास के बीज चुनने लगी है।[2]

मन तक पुल की तरह है। जिस तरह से पुल नदी के दोनों किनारों को मिलाता है यातायात का साधन बनता है। मन भी अनन्त भावनाओं को मिलाता है–

पुल और दर्पित पुल
दोनों एक है
अपनी अवचेतनता में
एक पर से पार होती है गाड़ियाँ
गाय और भेड़े और आदमी।[3]

नीचे बहती नदी ऊपर जिनसे कि पशु निकल रहे है, तो नीचे जल में मछलिया भी उछल रही है–

गाये और भेड़े और आदमी
होती रहेगी पार नावें

---

1. गांधी पंचशती, पृष्ठ–173.
2. वही, पृष्ठ–338.
3. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ–29.

चमकती रहेगी उछल–उछलकर मछलियां[1]

कुत्ता व्यक्ति से इतना हिलमिल जाता है कि उसे सहज ही अपनत्व का आभास होने लगता है–

और वह लगभग डेढ़ दो मन का कुत्ता
चढ़ा आ रहा है मेरे बिस्तर पर
और खेलना चाहता है मुझसे
जितना बनेगा खेलूंगा उससे[2]

यदि पंक्षी उदास है तो कितनी आभामय चन्द्रमा का प्रकाश हो वह भी निस्तेज लगता है–

हंसो के डैने तक
पैने लगतेहै जिसे
उदास ऐसा आकाश
तरंगित कैसे कर सकता है भला
कार्तिक की चांदनी[3]

जंगल में हिरन है तो उसके शिकार करने के लिये राजा भी है और सिंह भी उसे शिकार करने के लिये उद्वत है–

हिरन महाविरे का कहीं मिलता है
और सचमुच के हिरन के पीछे
दौड़ाकर घोड़ा रहना पड़ता था
राजाओं तक को
रात–रात भर जंगल में
या पंजे में किसी सिंह की।[4]

मानव की एक विडम्बना है कि वह उन्मुक्त आकाश में पक्षियों के सदृश्य उड़ नहीं सकता –

उड़ नहीं रहे है पक्षी

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ–30
2. वही, पृष्ठ–101.
3. टूस की आग, पृष्ठ–9.
4. वही, पृष्ठ–45.

हिल नही रही है हवा

इस लिये हम बिना गर्दन उठाये ऊपर

धरती ताक रहे है

अगर डैने आसमान में होते

तो बोते हम

अपने जमाने के टुकडे में उड़ना[1]

कवि गिलहरियों के कोटरों और पक्षियों के घोसले को एक साथ जोड़कर सादृश्य मूलक कर देना चाहता है–

डालियों में बने

गिलहरियों के कोटरो और

पंछियों के घोसंले को जोड़ता हूँ।[2]

लोगों ने वृक्षों के महत्व को नही समझा जो उसे प्राण वायु देते है। वनों को काटकर न तो हम उन्नति के सोपान गाढ़ सकते है और न ही स्वास्थ्य सुख की कल्पना ही कर सकते है। उन्हें काटकर बसने वाले पक्षियों का घर तल हम उजाड़ देते है–

आसमान में चक्कर काटते

पक्षियों के दल नजर नहीं आते

क्योंकि बनाते थे वे जिन पर घोसले

वे वृक्ष कट चुके है या सूख चुके है

क्या जाने अधूरे और बंजर हम

अब और किस बात के लिये रूके है।[3]

पशु या पक्षी कितने ही क्लान्त उछलना और कूदना ही उनका जीवन है–

वन भर क्या आज भी

गूजेगे नही पक्षियों के स्वर

श्रांत ही सही

हिरन और खरगोश

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्–74.
2. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–74.
3. वही, पृष्ठ–107

उछलेगें नहीं क्या

थोड़े बहुत क्लांत ही सही।[1]

फूलों का खिलना पक्षियों का चहकना इसका कुछ अर्थ लगाया जा सकता है–

पंछी चहके

महके प्रसून

स्वर सुना कि

शुभ क्षण आया लो

वे अर्थ नहीं समझे फिर भी

सबने कुछ अर्थ लगाया लो।[2]

भौरे के गुंजार तितलियों का उड़ना मन को आनंदित करता है–

अभी–अभी मेरे मन में मगर

यह एक खटका आया कि

जाये मुमुकिन है कोई तितली

और न पाये वह तुम्हें वहाँ

जहॉ तुम उसे मिल जाते थे

या गूंजे हिर–फिर कर

और भौरा आस पास

परेशानी में।[3]

यदि मानव पक्षियों को देखकर आनंदित होता है तो पक्षी भी उन्हें देखकर आनन्द की अनुभूति करते है–

पेड़ों पर के पंछी

कुछ ज्यादा चहके है

बिना खास हवा के भी वृक्ष

मुझे देखकर

कुछ ज्यादा लहके है।[1]

---

1. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–117.
2. कालाजयी, पृष्ठ–80.
3. इदं न मम, पृष्ठ–65.

रास्ते में मरी बिल्ली पड़ी उसका पूरा का पूरा गोस्त किसी ने गायब कर दिया है इसी कारण से उसमें कोई दुर्गन्ध नहीं है–

वहाँ रास्ता खत्म है
और रास्ता जहाँ खत्म है वहाँ
एक काली बिल्ली मरी पड़ी है
जाने उसका गोस्त क्या हो गया
सिर्फ खाल पड़ी है उसकी
समूची और चमकदार
और वास नहीं है
आस पास
याने इस बन्द रास्ते पर
आज ही डाल गया है कोई
एक काली बिल्ली मार कर
और गोस्त उसका.........।[2]

व्यक्ति के अन्दर सर्प से कम विष नहीं है जब वह अमानवीय कृत्य करने लगता है–

क्योकि खुली पड़ी थी
मेरे सामने तब
सापों से भी एक गुफा
सांप जिससे हर पल
बाहर निकलते थे
और आते थे मुझ तक
और बिला जाते थे
आ–आकर बिला जाने वाले
ये साँप।[3]

ऋतुकाल :-

श्री भवानी प्रसाद मिश्र जी ने विभिन्न ऋतुओं का सांगोपांग, परिदृश्य प्रस्तुत किया है।

1. इदं न मम, पृष्ठ–83.
2. अंधेरी कविताये, पृष्ठ–17
3. वही, पृष्ठ–53.

उनके मन भावन चित्रण ह्रदय स्पर्शी, चित्रोपम झांकी खड़ी कर देते है।

वर्षा ऋतु अविएंते वरस रही है, बादल गरज रहे है, विरही मन किसी पीड़ा प्रणय की भावना को द्विगुणित कर देती है–

गा रही है आज वर्षा जिस तरह
उस तरह से गा चलो मेरे सजन
छा रहे है आज बादल जिस तरह
उस तरह से छा चलो मेरे सजन[1]

हवा, आंधी और पानी में बरसात के लिये कहानी है, सावन, भादौं, उमड़ घुमड़कर बरसने के दिन है जो लटाबितानों को वृक्षपादनों को हरीतिमा देते है तो मानव मन को भी हरा भरा कर देते है–

हवा बरसात आंधी और पानी/
हमारी और तुम्हारी एक कहानी
घुमड़कर हम उठे झड़ बांध बरसें
अभी सावन अभी भादों जवानी[2]

भागुन मास की ऋतु में पीली सरसों मन के सम्मोहित करती है, घास में ओस की बूंदे मोती की दृश्य चमकती हुई प्रतिभाषित होती है जो मानव को एक संदेश देती है कि हमेशा प्रफुल्लित और आनन्दित रहो सुख के क्षणों में भी और दुख में भी–

बूंद–बूंद से गागर भरती नदी नदी से सागर
किरन इकट्ठी हुई कि होता सारा जगत उजागर
फागुन में फूलों का मेला कली–कली की दम से
पेड़ फूल पत्ती की शोभा मिलती है शबनम से।[3]

बादल जब दयालु और कृपालु होते है तो धरती की तृषा को, उसकी पिपासा को शांत करने के लिये अणस वर्षा करते है क्योकि पृथ्वी के साथ उनका एक भावात्मक सम्बन्ध है–

ये सब तो असल में वर्षा के बादल है
जो घनते है अपने स्वभाव में

---

1. गांधी पंचशती–पृष्ठ–74.
2. वही, पृष्ठ–105.
3. वही, पृष्ठ–133.

जरूरत में और बरसते भी है

केवल अपने स्वभाव

या अपन जरूरत में।[1]

आसाढ़ में आम्र पल्लव नहाये घोये साफ स्वच्छ दृष्टिगोचर होते है, भवानी प्रसाद मिश्र ने इन पल्लवों को नायिका के खुले हुए केश के रूप में अंकित किया है।

छूटे घने किन्ही केशों की है

आम के वन की है

आषाढ़ के नये धन की है

धराहत पल्लव की है

स्वच्छ किसी[2]

गर्मी का आतप, मानव मन को श्रांत करना है क्लांत करता है, तो उसकी सुहावनी शाम सारी मलिनता को दूर कर उसके अन्दर एक आशा का संचार करती है तब वह वासुरी की धुन में गा उठता है–

ग्रीष्म–रितु की थली सी शाम की बासुरी से

धुरी से हट जायेगी धरती

अगर अब भी तुमने अखिल से

छिटकर रहने दिया अपने आपको।[3]

बसन्त में गुलजार ही गुलजार है क्योंकि ऋतुओं का पार है आनन्द की फुहार है इसमें मानव मन इतना रमता है कि वह नहीं चाहता कि जीवन से कभी बसन्त ऋतु जाये ही नहीं

एक बसंत में

दो बैल

चर गये थे

मेरा गुलजार–का गुलजार

मगर

ऐसा तो नहीं हुआ

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ–97.
2. वही, पृष्ठ–120.
3. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ–160.

कि मैने/फिर नही रोपे

फूल–पौधें[1]

फाल्गुन और चैत्र में उफली का राग चर्तुदिक ध्वनित होता है, प्रकृति में रंग बरसता है तो मानव मन सजता है हंसता और खिलता है। प्रकृति भी धानी चुनरी ओढ़कर पहाड़ों वनो को रिझाती है–

जब फागुन और चैत में

रंग बरसेंगे

पहाड़ो और मैदानों में

जब खेतो में

सुबह से रात तक

कंठो से निकलकर

सुर गूजेंगे[2]

अड़िग खड़ी चट्टाने ग्रीष्म वर्षा आतप सभी के प्रकोपों को समभाव से सहती है कड़कती हुई बिजली यदि उसके शिलाखण्डों को कहीं तोड़ देती है तो उसका मन तो टूटता है। व्यक्ति को चाहिये कि पर्वत की तरह अर्ध बने–

चट्टानों पर अपने नाम

वहीं होगे तब से वे

ले देकर वर्षा आंधी शीत धाम[3]

शरद ऋतु में नीला आकाश पक्षियों को अच्छा लगता है सर्दी की धूप पहाड़ो को आनन्दित करती है तो वर्षा ऋतु में हवा के झोंके वृक्षों को सुहावने प्रतीत होते है–

जैसे वृक्षों को अच्छे लगते होगे वर्षा में

हवा के झोंके

पहाड़ो को अच्छी लगती होगी

जैसे सरदी में धूप देर तक

---

1. तूस की आग, पृष्ठ–70.
2. वही, पृष्ठ–121.
3. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–72.

अच्छा लगता होगा जैसे

पछियों को शरद का नीला आकाश[1]

कवि ने इस बिम्ब को प्रतीकात्मता से ही कहने का प्रयास किया है कि बसन्त का आगमन हो गया तुम भी दुसचिंताओं से निकलकर बाहर आओं वासन्ती सरोवर में आकण्ठ डूब जाओ तुम क्या समझते हो कि बसन्त का आगमन नही हुआ–

बसन्त अगर

तुम्हारे कमरे में नही आया है

या किसी छोटे मोटे रोग ने

तुम्हे घर दबाया है

या मस्त है मन तुम्हारा

किसी दुश्चिंता से[2]

मानव इतना अदम्य साहसी है दृढ निश्चयी है कर्मठ है ऋतुओं की धारा को मोड़कर वह अपने अनुकूल बना लेता है। गर्मी की सुहावनी शाम का आनन्द लेता है तो जाड़े की धूप में अहलादित होता है। प्रातः कालीन टपकती हुई वर्षा ऋतु उसके उल्लास को दिगुणित करती है –

कि गीष्म शीत वर्षा

जीवन की

उनको लपेटकर

जब जितनी चाहिये तब

उतनी बचा लेता हूँ[3]

शरद की कुनकुनी धूप हर प्राणी को सुखद लगती है प्रीतिकर प्रतीत होती है। तमाम दुविधाओं को छोड़कर तंलिद होकर, शरद थपकी से गहरी नींद सो जाता है–

शरद की

किसी दोपहरी में

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–102.
2. वही, पृ0 108.
3. परिवर्तन जिये, पृ0 42.

स्निग्ध

और सुनहली धूप

हम पर

हांथ फेरकर

हमें

किसी

गहरी

ऐसी नींद में

डाल देगी।[1]

फाल्गुन में गाया जाने वाला लोक गीत यदि मादक है तो सावन में गायी जाने वाली कजरी की तान भी कम मधुर नही कानों में मिश्री का घोल उडेल देना, सम्भवतः सावन अपना कर्तव्य समझता है–

चौपालो में उनके साथ

झूमा है सावन में

कजरी की तान पर

उड़ा है जिनका गीतों के डैनों पर

फागुन की आयी है जब–जब रित[2]

जीवन में सुख और दुख चक्र अहंर्निश चलता रहता है। मधुमास आया है तो उल्लास भी आयेगा यदि सुखद विहान आया है तो रात्रि भी आयेगी– इस चक्र को मानव को अच्छी तरह समझना चाहिये–

दो दिन का मधुमास

न हमसे कहे

कि मैं मधुमास आ गया

क्षण भर का उल्लास

न हमसे कहे

---

1. परिवर्तन जिये, पृ0 91.
2. वही, पृ0 125.

कि मैं आलोक छा गया[1]

भवानी प्रसाद मिश्र जी ने ऋतु वर्णन में उसके पीछे छिपे कटु अनुभवों को भी उकेरा है। शरद के पहले कांसों का फूलना वर्षा के समापन का सूचक है। ऐसे ही मानव चिता जीवन को नीरस और स्वाद हीन बना देती है।

जैसे जीवन है

अब शरद काल का

हरा भरा उत्फुल्ल कांस

नीरस अशेष

चिंता विशेष[2]

शरद की ऊष्मा को ताजगी को शीतलता को कवि अन्दर आने का आमंत्रण देता है इसकी ऊष्मा ओजवती बनायेगी तो ठंढ़क सिहरन पैदा करेगी और यही सिहरन मन को स्फूर्ति देगी—

उठो

इसे भीतर बुलाओं

शरद है यह

तुम्हारे लिये आया है

टटकी और हल्की

एक ऊष्मा लाया है

कि विछालो उसे

चादर की तरह

अपने बिस्तर पर

आज शाम तक आयेगें

जो तुम्हारे कमरे में

बिछी जायेगें जब ताजी

और टटकी

इस चादर को[1]

---

1. कालजयी, पृष्ठ–65.
2. वही, पृ0 74.

वर्षा के साथ व्यक्ति का रागात्मक सम्बन्ध है। वर्षा ऋतु में ही पानी बरसता है तो निश्चित ही जन कल्याण के लिये। मानव जब हताश होता है तो आसू निकालकर अपने चित्त को ठीक कर लेता है और फिर पूरी तन्यमयता में कार्य करने के लिये तैया हो जाता है–

वर्षा ने मेरा बरसना देखा
आई जैसे
उसके भी चेहरे पर
एक रेखा
कि हाँ कम बादल नहीं है
इस आदमी के पास[2]

शरद ऋतु में बादलों के सुन्दर चित्र आकाश में बनते और बिगड़ते है। इन सुन्दर चित्रों को बिगाड़ने में हवा का हाथ रहता है। परिस्थितियाँ भी व्यक्ति के कार्यो को बनाती व बिगड़ती है–

शरद के बादल जैसा
हमारा व्यक्तित्व
घूप में उड़ता है।[3]

शरद ऋतु में भौरों का गुंजार वातावरण को गुंजरित करते है। उनके सदृश मानव मन भी गा उठता है–

शाम शरद की
आम तौर पर मैं सोचता हूँ
x x x x
शाम शरद की
आम तौर पर मैं गाता हूँ[4]

अस्वाद बिम्ब :-

आस्वाद बिम्ब के प्रति मिश्र जी का रूझान कम रहा है। सम्भवतः उन्होनें इसको अपने

---

1. इदं न मम, पृ0 39.
2. वही, पृ0 99.
3. अंधेरी कविताये, पृ0 60.
4. वही, पृ0 104.

जीवन से ग्रहीत किया है क्योंकि उनकों ग्यारह बार ह्रढयाधात था वह नहीं चाहते थे कि पाठक या श्रोता कटु अनुभवों को भोंगे या सुने। सच्चे अर्थो में वे ऐसे गीतकार है जो लोकमंगल की साधना के लिए कवि कर्म करते है उनकी कामना है कि प्रत्येक मान के जीवन में मधुरता ही बरसती रहे कटुता का गरल उसे न पीना पड़े –

(क) मधुर :-

संघर्ष परिणित विजय में होती है तब उसका जीवन अमीमय हो उठता है–

समय के संघर्ष से रहकर अछूता बोलता था
विष वहे चाहे चर्तुदिक तू सुधा ही घोलता था
किन्तु वह अमृत पिया जिसने सरासर राहु था वह[1]

सजे धजें हम यदि आनंदित होते है तो यह आनन्द अन्तस्य होना चाहिये बनावती पन से नहीं। क्योंकि कृतिमता जीवन में क्षणिक मधुरता लाती है –

गलता का लंहगा पहने ऐसे में बैठे हो तुम मेंहदी लगा रखी है पांव मे
जीवन से अब छॉव में ऑखें चार करने की आस बेअकली है।[2]

(ख) कटु :-

व्यक्ति आज इतना स्वार्थ लोलुप है कि वह दूसरे के जीवन में विष घोलकर स्वयं अम्रत पान करना चाहता है लेकिन यह कैसे सम्भव है क्योंकि उसकी संतति को गरल पान तो करना ही पड़ेगा–

जहर पिला–पिलाकर समूची संस्कृतियों को
हम प्रतिष्ठा में बढते है
तुमने हमारी बाते क्यों पढ़ी क्यो सुनी।[3]

मानव अपने अन्दर पौरूष के द्वारा शिव बन जाता है गरल को भी अम्रत में परिवर्तित कर देने की क्षमता उसे ईश्वर की ओर से प्रदत्त है तभी तो वह शिव स्वरूप बन जाता है–

क्या चीज है इसमें जो पचा जाती है
तुम्हारे खिलाये विष तुम्हारे पिलाये गरल[4]

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 95.
2. वही, पृ0 341.
3. वही, पृ0 253.
4. गांधी पंचशती, पृ0 297.

गंध बिम्ब :-

मिश्र जी को गंध की तीव्र पकड़ थी क्योंकि वो गांव की सांधी भॉती की सुंगध में रचे और बसे थे। इस बिम्ब में उन्होनें भोगे हुए अनुभवों का चित्रण किया है और यह चाहा है कि भौतिकता की चकाचौध में जीने वाले लोग प्राकृतिक सुगन्धो से परिचित हो स्वतंत्रता की कामना किसी महकते हुए फूल से कम नहीं–

नये फूल मन में महकते आज

नये बागवॉ हम नये ढंग से[1]

मन का पंछी बड़ा विचित्र होता है वह अवसाद में भी हंसने का प्रयास करता है। जीवन की सुंगध को नये ढंग से सूंधने का उसका यह स्तुत प्रयास उसे बुलांदियों की ओर ले जाता है–

और मानस कमल मानों कम खिला था अधिक खिलता है महकता है।[2]

आज भौतिकता का युग है प्रतिस्पर्धा का युग है लेकिन प्रतिस्पर्धा भी पारदर्शी नहीं विद्वेष और घृणा से भरी हुई है–

यह स्पर्धा आपको

बदबूदार नहीं लगती मिश्र जी[3]

व्यक्ति के जीवन में जीने की महल न होती तो न जाने कब तह पलायित कर गया होता। आशा से हुई सुंगध उसे जिजी विषा प्रदान करती है–

एक सुंगध के बल पर

जी रहा हूँ मै

सुंगध यह कदाचित

गर्भ में समझे हुए

परिवेशों की है।[4]

पीपल, बांस, झाड़ी, घास, इनमें एक सुंगध है जो व्यक्ति को ताजगी देते है–

बासा नहीं होने देती

यह सुंगध मुझे

घेरकर बहते है जैसे छंद मुझे[5]

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 110.
2. गांधी पंचशती, पृ0 251.
3. खुशबू के शिलालेख, पृ0 44.
4. वही, पृ0 120.
5. वही, पृ0 121.

धूल और घुयें से ऊपर यदि हम उठे तो हम पायेगें कि इस प्रकृति में सुंगध ही सुंगध है औश्र हम गुलाब चंदन और अगरू जैसी तमाम सुंगधों से सुवासित हो–

सुंगध के समाचार

खुशबू के शिलालेख

X X X X

भू पर है

अगरू और चंदन

और गुलाब और[1]

फूल नहीं बो सकते तो काटें से कम बोओं इस उक्ति को चरित्रार्थ करते हुए कवि का विचार कि जो हताश और निराश है उनके जीवन को सुरभित बनाया जाये–

और गायेगे कि आओ

अगर भरते ही है हम धुआं

तो अगरू और चंदन का भरे

जगाये जानी हुई सुंगध

पुराने अपने परिवेशों की[2]

आस मान को हो हमने सरुभित कर दिया लेकिन खेद का विषय है कि भौतिकता के दुराग्रह से ग्रसित मानव दूसरे के जीवन में सुगन्ध की जगह दुर्गध भर रहा है–

आसमान में

आम और धान और सरसों

और घास की

खुशबू की जगह

थोड़े दिनों भी मैं।[3]

कवि का सत्प्रयास है कि प्रकृति ने जो मादक सुंगध हमको दी है उस सुव्यसित सुंगध का एहसास प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिये–

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 125.
2. वही, पृ0 127.
3. वही, पृ0 132.

उठकर फिर सोने तक

आदिम सुगंधो को

गाता हूँ।[1]

मानव ने ही जाति–पात के बंधन बनाये है। आज आवश्यकता इस बात की है कि ये सारे बंधन टूट जाये और अखिल विश्व मानव एकता के सूत्र में पिरोये जाने–

भरते हुए कुछ सुंगध सी

अखिल अस्तित्वों में

घुल मिल जाते है।[2]

व्यक्ति धन के कारण बहक रहा है। दिग्भमित हो रहा है। फूलों जैसी सुंगध उसे देनी चाहिये और यहाँ मै यह कहना चाहूँगी फूल सा गंध दानी कहाँ आज है। आदमी को मथे आदमी के लिये भावना की मथानी कहॉ आज है–

दल फूलों के वैसे न महके

बहके न फिर से पॉव

मन ही मन सही वैसे

गॉव–गॉव[3]

हर्ष की बात है कि धीरे–धीरे व्यक्ति सहना ववतु का विचार कर रहा है और वह दूसरों को खुशी बॉट कर उनकी खुशी में अहलादित होता है।

उदार है लोगों के मन

खुशबू की तरह उड़–उड़कर

छूते है दृश्य उनको[4]

व्यक्ति यदि जीवन मे धैय से काम ले तो वह दिन दूर नहीं जब उसकी निराशाओं का समापन होगा आशा की सुगंध का संचार होगा।

खिलते हुए फूल के जैसा रंग शरीर का

फूलों ही जैसी सुगंध शरीर की[5]

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 133.
2. तूस की आग, पृ0 81.
3. बुनी हुई रस्सी, पृ0 71.
4. वही, पृ0 105.
5. वही, पृ0 106.

अब तक मानव ने प्रकृति को नगण्य समझा था। नीम भले कड़ती हो लेकिन व्यक्ति उसे अपने पौरूष में उसमें महुता के जैसी मिठास भर देता है।

न कुछ नीम की महक में
मह्व क्यों हो जाता हूँ मैं,
चाहे जिस स्वर
और गंध और छंद के
इशोर पर[1]

जीवन उक बगीचा है जहाँ की हरीतियां चहकते हुए पंक्षी, महकते हुए फूल का सारा सुख उस पर न्योछावर कर देते है–

इस समय मैं बगीचें में बैठा हूँ
मेरे आस–पास के पेड़ो पर
पंछी चहक रहे है
और महक रहे है
पौधो पर फूल[2]

भारतीय संस्कृति अक्षुण रही है– अपना बना हजम कर लेती चाल यहाँ की ढीली तमाम परदेशी यहॉ पर आये यहीं की संस्कृति में रच बस गये क्योकि यहॉ की संस्कृति में एक सोंधी सुंगध है–

संस्कृति का
गौरव था
जो गंध मान थे
जिनका
अपना सौरभ था[3]

वेणु की सुरीली तान मादक और मर्म स्पर्शी है। शीतल जल की सृदश जो एक तीव्र आनन्दानुभूति कराती है–

---

1. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–59.
2. वही, पृ0 108.
3. कालजयी, पृ0 12.

गंध रेणु की वेणु

होठो पर गीत–गान का सेतु बनी थी

स्रोत अधिक निर्मल थे जैसे

पर्वत रेखा अधिक धने थे।[1]

समय के अन्दर बड़े से बड़े धाव भरने की क्षमता है। वर्तमान का दुख अतीत का भूत बनता है और मानव के सुखद सुनहले स्वप्न संजोता है–

समय की खुशबू

प्राणों में भर गयी[2]

अति सर्वत्र वर्जयेत किसी चीज की अतिशयता व्याज्य है चाहे वह मादक सुंगध ही क्यों न हो–

बचना चाहता हूँ मैं

हर प्रकार की अतिशयता से

अतिशयता है यह सुंगध[3]

मृत्यु भी सुखद हो सकती है यदि हम उसको सहज रूप में वरण करे तो वह हमारे प्राणों में तिरंगी खुशबू बिखेर देती है–

वैसे बोतले हुए

रंग घोलते हुए

भरते हुए शायद प्राणों में[4]

बढ़ती हुई जनसंख्या ने पर्यावरण को असंतुलित कर दिया है। आज के मानव को स्वच्छ वातावरण नहीं बल्कि खुशबू विषक्तियुक्त परिवेश ही मिल पा रहा है–

तंग गलियो की बदबू

और अंधेरे को

इकट्ठा कर रहा है वह

मेरी किसी नयी तस्वीर के लिये।[5]

स्पर्श बिम्ब :-

आज के वैज्ञानिक भी मानने लगे है कि स्पर्श में एक चमत्कार है चाहे वो मानव का

---

1. कालजयी, पृ0 58.
2. इदं न मम, पृ0 18.
3. वही, पृ0 57.
4. अंधेरी कवितायें, पृ0 73.
5. वही, पृ0 88.

स्पर्श हो या प्रकृति का स्पर्श हो। यह स्पर्श उसे तनाव रहित करते है। विभिन्न समस्याओं का निराकरण करते है। उसके शरीर को स्वस्थ व मन सुखद आनन्द देते है :–
किसी का पहला स्पर्श स्फूर्तिवान बनाता है तन और को पवित्र करता है प्राण वत्ता देता है–

हे पवित्र

छू दिया आज तुमने

पवित्र हो गये प्राण[1]

अण्णता मानव के खून को ऊष्ण करती है। थोड़ी सी गर्मी पाकर वह स्फूर्तिवान वनता है और पूरे मनोंयांग से दृढ़ता के साथ कर्म में जुड़ जाता है–

एक काम करें, थोड़ी आग सुलगा दे इसके पास

अकड़ी हुई रगे गर्मी पाकर शायद खुल जाये[2]

जब व्यक्ति कर्म की आग में तपता है तो शीतल बयांर भी उसे शीतल नहीं लगती वरन ऊष्मा देती है–

अगहन की ठंढी बयार ठंढी नहीं लगती मुझे भी,

जो सिर्फ खड़ा–खड़ा देख रहा हूँ यह सोने सा तपा दृश्य।[3]

वृक्ष का तना भले ही काला हो लेकिन जब बासन्ती

हवा चलती है उसके प्रभाव में आकर स्पर्श को पाकर पत्ते भी स्फूर्तिवान बन जाते है–

लोहें का बना

चिकना और काला

डाल कर उसमें बाहें

X X X X

तप्त झोंका गरमी की रितु का

आज जैसे बासंती झोंको से

तीव्रतर बहेगा[4]

व्यक्ति के जीवन में यदि स्नेह रही है तो स्निग्धता का नितान्त अभाव है सारा का सारा वातावरण उसके ठीक विपरीत जान पड़ता है अपनत्व का स्पर्श ही उसे विषमताओं की

1. गांधी पंचशती, पृ0 108.
2. वही, पृ0 195.
3. वही, पृ0 331.
4. खुशबू के शिलालेख, पृ0 27.

श्रृंखलाओं से मुक्ति दिलाता है–

मगर जब बच्चे
इतना आलिंगन नहीं देगे उसे
क्योंकि अभी तो वे
x x x x
बकुल को आतप में भी मैं
इसी तरह देखूंगा दूर से
x x x x
तप्त झोकों से
शायद वह तपेगा
कपां है धीरे–धीरे
जैसे मेरे सामने शीत में[1]

किसी का आदक स्पर्श फूलों की ताजगी से कम नहीं क्योकि वे भी स्पर्श के द्वारा उसे प्रमुदित करते है।

सर खोश लेती है कोई
लड़की नम और ताजे
फूल अपनी वेणी में[2]

विषाद जब हर्ष में बदल जाता है तब मानव उमंगित होता है तब उसे एहसास होता है कि उसका स्पर्श किसी ने अपनत्व के भाव से किया था

जागती है जिसे छूकर दुनिया
पंक्षी जिसे पीकर गाते है।[3]

व्यक्ति के पास विचारों का स्पर्श भी होता है चिक्कणता के साथ किया गया स्पर्श उसको नवीन ऊर्जा प्रदान करता है–

स्निग्ध अपने शब्दों की

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 28.
2. वही, पृ0 56.
3. वही, पृ0 59.

हल्की और सधी

छेनी से उन्हे

x x x x

डाले उन पर अपनी ऊण्ण नहीं

ऊण्म बच रही किरणे[1]

रात के मादक स्पर्श ने कठोर पत्थरों को भी शीतल कर दिया है। व्यक्ति के अन्दर जो डर का एहसास है उसका समापन भी सहजता से हो जाता है और वह दुस्कर से दुस्कर कार्य को सहजता के साथ कर जाता है–

रात में पांव के नीचे के

पत्थरों को ठंडा कर दिया

x x x x

मेरी अंगुली पकड़ ली है

और आश्वस

दे रहा वह

पत्थरों पर चल रही

पॉव की मेरी नाव को[2]

शीतल जल का स्पर्श एक ताजगी देता है। व्यक्ति के जीवन में जो कलिया है कालुण्य है उसका सहज ही समापन हो जाता है। जब शीतल जल का इतना चमत्कार है तो अपनत्व भरा एक मादक स्पर्श जीवन में क्या नहीं कर सकता –

रात के पावं के ठंडे

पत्थरों के नीचे

ठंडा और साफ पानी

x x x x

और पार कर रहे होगे

उस ठंडे पानी को तारे

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 135.
2. तूस की आग, पृ0 12.

x x x x

आग–आग धुआ–धुआ

रात की छांह में

नावे और तारे लेकर,

एक साथ बांह में[1]

तेजस तत्व तेजस्वी स्पर्श को पाकर अथित होता है और वह अपने लक्ष्य को पाकर के ही विराट लेता है इससे उसका पूरा व्यक्तित्व ही बदल जाता है–

तूस की आग

ऐसे उतर रहा है

मेरे भीतर–भीतर

ऐसी अलक्ष्य गाति से

ऊष्मा देता हुआ धीरे–धीरे

समूचे मेरे अस्तित्व को[2]

व्यक्ति का सारा अकेलापन वास्तविक रूप में तब समाप्त होता है जब स्फूर्तिदायक किसी का मादक स्पर्श उसे स्पर्शित करता है तब व्यक्ति संघर्षो की दुनिया में उतरकर अनवरत संघर्ष करता है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है–

अपना समूचापन

कुछ कह देता हूँ

और मेरा वह समूचापन

छूकर उसे

कितना बदल जाता है।[3]

जब किसी का स्पर्श उसे छूता तब उसे यह अहसास है कि जिसकी उसे कामना थी वह पूर्ण हुई। उसे वह गति मिली जिससे वह बिना रूके– रूके, बिना झुके चल रहा है।

---

1. तूस की आग, पृ0 12.
2. वही, पृ0 09.
3. बुझी हुई रस्सी, पृ0 27.

और तब लगता है वह मुझे मेरा मन
उसका कुछ नहीं रहता तब उसके पास
दहकती है तब उसमें मेरी ज्वाला
लहकती है तब उसमें मेरी प्यास[1]

जिस तरह डूबते हुए व्यक्ति को तिनके का सहारा प्राप्त होता है ठीक उसी तरह ठंढ से ठिठुरते व्यक्ति को दीपक की ऊष्मा का स्पर्श उसके लिये पर्याप्त सिद्ध होता है—

ठंढ से ठिठुरती हुई रात में
एक दिया जल रहा था
ठंड से मर रहे आदमी को
जैसे सहारा था उसका
संभाला लियो दिये ने
और संभाला लिया आदमी ने[2]

कवि के कवितात्य में एक स्पर्श है वह जैसा चाहता है परिवेश को वैसा बना देता है यदि शांति की आवश्यकता है तो शांति का सृजन करता है और यदि संघर्ष की आवश्यकता हुइ तो वह युद्ध की रणभेरी भी बचा देता है—

और जिन उत्तरों को गारही है
वे शीत किन्ही लहरो पर
चढ़ कर आ रहे है
या कोई ज्वालामुखी
उन्हें उगल रहा है यह बात
किसी के सामने साफ नहीं है
मेरे सामने भी नहीं[3]

कवि ने युद्ध में प्रयोग की गई तोपों को कहीं आग के रूप में तो कही काल भैरव के नृत्य के रूप में देखा है—

कण—कण में आग है

---

1. परिवर्तन जिये, पृ0 44.
2. वही, पृ0 100.
3. वही, पृ0 122.

क्योंकि बड़ा दाग है

तोप जो दगी रही

इसमें आदिकाल से

भैरव नृत्य ताल से

नाचा है आदमी[1]

वर्षा की अजस्रधार लोगों को भिगों देती है तो गर्मी झुलसा देती है। कड़ाके की सर्दी खून को जमाने का प्रयास करती है–

तेज गर्मी

मूसलाधार वर्षा

कड़ाके की सर्दी[2]

चलने वाले तीव्र झोंके अपने स्पर्श का एहसास व्यक्ति को कराते है और ये स्पर्श कहीं सुखद है तो कहीं दुखद है।

हवा का बदला हुआ

स्पर्श भी अनुभव करता हूँ

जब दूसरे टूटे पत्तों के साथ

जाकर पड़ जाता है मेरा मन

जब सहाब अंधेरा

बुद्धि को छूता है।[3]

जीवन में सफलता मिलने पर व्यक्ति प्रफुल्लचित्त होता है। असफलता मिलने पर वह दुखी हो जाता है। लेकिन उसके अन्दर एक ऐसी अदम्य शक्ति है जो साहस देती है और वह अपने लक्ष्य को संघर्ष के साथ प्राप्त कर लेता है।

चिनगारी जिन्दगी है

ज्वाला मौत है

मैं अपनी ज्वाला से तंग हूँ

अपनी यह ज्वाला

---

1. कालजयी, पृ0 42.
2. इदं न मम, पृ0 54.
3. अंधेरी कवितायें, पृ0 10

मैं इस खुली गुफा के

मुंह पर धर कर

तुम तक आ रहा हूँ[1]

ध्वनि बिम्ब :-

इसके अन्तर्गत वे आवाजें है जिनकी अनुभूति प्रत्येक व्यक्ति सहजता के साथ अनुभूत करता है। तप–टप करती हुई पानी की बूंदें, सॉय–सॉय चलती हुई हवा, लहराते मर्मर की ध्वनि करते पत्ते में सभी ध्वनि बिम्ब के अन्तर्गत आते है। वे सारे प्राकृतिक उपादान जो ध्वनियाँ उत्पन्न कर रहे है। मिश्र जी ने बखूबी उनका प्रयोग किया है।

गांधी भले कृशकाय रहे हो लेकिन उनकी आवाज में इतनी गंभीरता थी कि पृथ्वी का हृदय भी तोलायमान हो उठा, शीतल, वाणी, आग, सदृश प्रतीत हो रही है–

मधुरतम तान में भी भैरवी का नाद

भैरव बन कंपा दे दिग्गजों के ती कि धरण धड़क कर डोले

भलय की आग लेकर जिस घड़ी वह बासुरी ढोले[2]

कलकल–छलछल की ध्वनि करती हुई नदी कानों में एक सुन्दर ध्वनि उत्पन्न कर देती है–

सुन रही है नदी जैसे गीत कलकल कह रही है[3]

व्यक्ति सपने चुनता है, बुनता है, और उसके सपने जब साकार हो जाते है तो वह दूसरों को भी प्रेरित करता है–

कल नहीं सुना पाये थे वो गाकर

उसे आज गाकर सुनाते है।[4]

पक्षी जब उड़ते है कवि की आकांक्षा है कि चहकता हुआ पंक्षी उसको भी आनंदित करे

कि उड़कर मेरे सिर पर से

थोड़ा–सा चहक जाये[5]

तूफानों की हरहराहट, बाढ़ की धरधराहट, बिजली की तड़कन मन मस्तिक में एक धबराहट नहीं एक जिज्ञासा एक कौतमहल उत्पन्न करती है–

---

1. अंधरी कविताएं, पृ0 10.
2. वही, पृ0 56.
3. गांधी पंचशती, पृ0 29.
4. खुशबू के शिलालेख, पृ0 66.
5. वही, पृ0 88.

तूफान का हरहराना

बाढ़ो का धरधराना

तड़कना बिजली का

धड़कना अपने ही डूबते से दिल का[1]

नदी में लहरे है, चप्पू चलने की आवाजें है तो छप छप कूदती मछलियों की ध्वनि भी है–

कि उसकी लहरों नौकाओं पतवारों

मल्लाहों उछलती गिरती मछलियों की छपाछप[2]

कवि ने नर्मदा को गंगा से जोड़ा है, नर्मदा की किलकारी की ध्वनि गंगोत्री से ही मुखरित हुआ–

नर्मदा की पहली किलकारी

उसके पहले–पहले रोने का स्वर

मुखर कब हुआ गंगोत्री

गंगा के गान से[3]

संवेदना में वह शक्ति है कि सहृदयों को कवि कलाकार बना देती है। उनकी वेदना की ध्वनि उन्हें सृजन के लिये बाध्य कर देती है–

संवेदना से भरे हजारों लाखों लोग

अपने को कविता लिखने में जुटा दे

और गुंजा दे सारा आकाश

संवेदना से भरे कहो

वेदना से भरे कहो

शब्दों से[4]

प्राकृतिक उपादान में कभी–कभी ऐसे कारण उपस्थित हो जाते है कि श्वेत चन्द्रिका का प्रकाश की मलिन हो जाता है। सोंधी घास की सुंगध हरहराती हुई घास कविता से भी ज्यादा श्रेयस्कर प्रतीत होने लगती है–

चादर चांदनी की आज मैली है

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 155.
2. वही, पृ0 158.
3. तूस की आग, 47.
4. वही, पृ0 117.

यों उजली है वह घास कि इस गंध की अपेक्षा

हरहराते घास के इस छंद की अपेक्षा[1]

मूर्तिकार उस समय और तन्यमयता से कार्य करता है जब मिट्टी से सोंधी महक उठती और कुहलती कोयल की मादक ध्वनि उसे कर्थ प्रिय लगने लगती है–

महक से खिचकर जाने कहॉ से आ जाती है

कुहलती कोयल

मच जाती है माटीमारों के भीतर अजब हलचल[2]

कहीं दरवाजों के भड़कने की आवाज है तो कटोरी गिरने की ध्वनि है तो छत में मसाला कूटने की ध्वनि भी सुनाई देती है–

ऊपर के घर में छत पर मसाला कूटने की

छूटकर शीशा किसी के हाथ से उसके टूटने की

कटोरी गिरने की कोल्हू पिरने की

दरवाजों के भड़कनें की

तूफान में पत्तों के खड़कने की

सन्दूख खीचने की बगीचा सीचने की

दलान में बच्चों के दौड़ने की धमाधम[3]

नदी की लहर में हवा का एहसास है तो घास के मैदान में पीले पत्ते की हरहराहट है–

एक

घास के मैदान मे

हर–हर है[4]

भौतिकता के कारण हिंसा प्रति हिंसा को जन्म दे रही है। चितायें धूं–धू कर जल रही है। शाम के समय शांय शांय करके हवा चल रही है–

देखता है

चारो तरफ चिताएँ जल रही है

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0 42.
2. वही, पृ0 69.
3. वही, पृ0 80–81.
4. वही, पृ0 110.

सॉय–सन्न हवाये चल रही है[1]

प्रकृति क्या–क्या गुल खिलाती है, चुपके से क्या संदेश दे जाती है मानव मन नहीं समझ पाता हौली हल्की कलियों के चटखनें की आवाज उन्हें क्या संदेश दे रही है।

और इसका

पता चलता है उन्हे

जो हौली हल्की आवाजे

कलियों के चटखनें तक की

साफ–साफ सुन पाते है[2]

महत्मा बुद्ध के अहिंसा परमो धर्म का विस्तार मंदिम स्वरों में किया है जो आज चर्तुदिक गुजांरित हो रहा है।

इस महापुरूष ने

इसे प्रवाहित किया वहाँ

कल्पनातीत था

इसका कल–कल नाव जहाँ[3]

जीवन की तरूवायी में ऐसे मधुरिम क्षण आते है कि मन कमल सृदश हो जाता है और भौरों का गुंजार गुंजारित होता है।

सुरभित शतद कुंज

भ्रमर दल उनके आस–पास गाते थे[4]

प्राची दिशा में शुक्र तारा झिलमिला उठा, पृथ्वी ने सुख की सांस भी वन मार्ग में पत्ते मर्मर धवनि करने लगे।

वन–पथ में पल्लव मर्मर स्वर

हौले–हौले सिलसिला उठा[5]

मिश्र जी का विचार है कि व्यक्ति अदम्य पौरूष के साथ जब कार्य करता है तो उसके पैर पृथ्वी में एक ऐसी धमक उत्पन्न कर देते है उनके कार्यो से पृथ्वी हिल जाती है।

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0 116.
2. परिवर्तन जिये, पृ0 106.
3. कालजयी, पृ0 106.
4. वही, पृ0 56.
5. वही, पृ0 79.

और जब उठोगे

तब पावों को

ऐसी एक धमक देगी कि तुम[1]

शहर चाहे जितने बढ़ जाये लेकिन वे कभी गॉव के अस्तित्व को नहीं समाप्त कर सकते है। गावों में झाड़ो की हर्राती हुई आवाज टपकती हुई बूँदें अपने अस्तित्व को बनाये ही रखेगी।

खत्म नहीं होती

झाड़ो की हरहर

खत्म नहीं होगा

टपक जाना[2]

दुखित मन अन्तस से इतना उदास होता है कि वाणी मूक हो जाती है तब उसके आखों से टप–टप की ध्वनि करते हुए आंसू गिरने लगते है–

आंसू की तरह गरम

टपके उस के

दो शब्द

x x x x

दो शब्द गीले और गरम[3]

कविता एक जीवंत रूप है, हवा की सरसराहट भी है तो वर्षा के तूफान की गुंजार भी है–

सरसराते हुये किनारे के

वन के साथ

गूंजूगा में वर्षा में तूफान में[4]

चातुक्ष बिम्ब :-

इसके अन्तर्गत वे बिम्ब आते जहाँ कवि अपनी लौह लेखनी के द्वारा एक ऐसा चित्र उकेरता है जो आखों के सामने चक्षुषात हो जाता है। उस दृश्य को देखकर वर्णित वस्तु का

---

1. इदं न मम, पृ0 87.
2. अंधेरी कवितायें, पृ0 59.
3. वही, पृ0 62.
4. वही, पृ0 99.

सहज ही अनुमान लग जाता है। भवानी प्रसाद मिश्र की सफलता इस बात पर भी कही जा सकती है कि चाक्षुष बिम्ब खड़ा करने में उसकों महारथ हासिल थी। कविता नहीं दृश्य दिखाई देते है।

(क) रंग संवेदना :-

इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के रंग आते है, प्राकृतिक रंग कितनी चटख के साथ उभरते है कि वास्तवतिक रंगों की समानधर्मिता करते है और वे वैसे ही प्रतीत होते है– हमारा तिरंगा, केशरिया रंग शौय साहस का प्रतीक है, हरा रंग ताजगी, सम्पन्नता का प्रतीक है श्वेत रंग शांति और शक्ति का प्रतीक है–

हरा स्वच्छ सफेद केशरिया
बीच में चरखा बिराजित किया
चिंह साहस त्याग का रंग केशरी[1]

कवि ने रंग माध्यम से हुआ छूत पर करारा व्यंग्य किया है–

यह अछूत वह काला गोरा
यह हिन्दू वह मुसलमान[2]

सूरज जो सारा दिन तो आकाश नापता है और शाम होते ही वह नीले सुन्दर में थककर आराम करता है ऐसी कवि की कल्पना है –

सफेद लम्बी टांगो वाला सूरज
X X X X
डूब गया समुन्दर के गहरे नीले पानी में[3]

कवि कल्पना करता है कि पानी के बादल जब तपित धरती को शीतलता प्रदान करेंगे तो हम भी नदियों की लहरों के माध्यम से ही सही अपनी धरती को धन धान्य से पूरित करेगे–

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 12.
2. वही, पृ0 15.
3. वही, पृ0 289.

सीचेगा धरतीः नील गगन के मौसम में

हम अपनी गंगा सिंधु और कावेरी की लहरे होगें[1]

औरते खेतों में रंग बिरगें में कपड़े पहने हुए खेतो की कटाई के लिये तैयार है–

औरतें लाल और पीले और नीले लहंगो में कछौटा मारे

चुनरियां का छोर खोशे कमर में हसिये के छंद को द्रुत किये है[2]

आदमी को थकान में नीला आसमान एक शांति का संदेश देता है–

नीला हो आसमान मन भी निरभ्र हो

पावों में हाथों में काम की थकान हो[3]

सूरज की किरण पड़ने से हरी घास जो ओंसबिदु कारण चमक रही है–

हरी घास जो चमक रही है

सो यह कहने के लिये

कि सूरज जो चमक रहा है।[4]

पेड़ों पर जो फल जरा भी पके दिखते है उन्हें पाने के बच्चे कच्चे फलों को भी तोड़ देते है क्योंकि कन डालों में लाल–लाल पके फल जो लगे है–

और जरा भी पीले पड़ गये है जो

उन्हे पाने की धुन में

x x x x

ऊंची इसकी कुछ डालियों पर

लदे है मगर लाल–लाल फल[5]

पेडों के तनों का रंग कुछ कहते नहीं बनता कि यह लाल है या काला या फिर दोनों का मिश्रण–

हरे और लाल और काले का

ऐसा संमजस यह मिश्रण[6]

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 295.
2. वही, पृ0 331.
3. वही, पृ0 403.
4. खुशबू के शिलालेख, पृ0 22
5. वही, पृ0 26.
6. वही, पृ0 27.

शायद पतअड़ में यह पेड़ अपने रंगीन पत्तों फूलों से उस वातावरण को रंगीन व खुशनुमां न बना पायेगा—

मौसम को तब वह
रगेंगा नहीं लाल हरे काले रंग से[1]

व्यक्ति की मृत्यु उसके जीवन भर के कार्यो का मूल्यांकन करती है जब उसके जीवन की दूह लीला समाप्त हो जाती है तो शेष बचती है उसके कृत्यों की यश लीला उसकी सदास्यता, उसकी उदारता और उसने जीवन में जो कुछ भी अच्छाइयों में युक्त कार्य किये है।

प्रकाश या रंगों के
अनुपात में काली होती है
जो जितने ज्यादा रंग
भरता है अपने भीतर[2]

सूर्य की रोशनी में सात रंग का मिश्रण होता जिनको विज्ञान में प्रिज्म के माध्यम से विभक्त व सिलाया जा सकता है—

यों प्रकाश टूटकर
सात रंग बन जाते है
और सात रंग मिलकर प्रकाश[3]

व्यक्ति के जीवन में बनावटी ज्यादा दिन तक नहीं चल पाता चाहे वह कितनी ही कोशिश क्यों न कर ले—

खाक को लाल करलो
चाहे नीली चाहे पीली
कितनी देर बहलायेगी वह
किसी को रंग के रूप मे[4]

मानव यदि अपने जीवन में स्नेह था जाता है तो उसे किसी भी बनावटी या कृत्रिम चीजों की आवश्यकता नहीं होती अपने जीवन को सुख से जीने में—

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 28.
2. वही, पृ0 35.
3. वही, पृ0 47.
4. वही, पृ0 52.

तो फिर जरूरत नहीं रहेगी

हमें रंग के प्रकाश की

कविता–पुस्तक की पीली पत्ती की[1]

कवि ने उड़ते हुए बादल व उड़ते हुए बगुले की तुलना रंगों के किवो के माध्यम से की है–

पीली थी जिसकी टांगे

लाल थी जिसकी चोंच

सफेद थे जिसके फैले डैने

बहुत ही सफेद थी जिसकी छाती[2]

सूरज की पहली किरण जब आसमान को चीरती हुई आती है तब वह पहले तो पीली फिर क्रमशः लाल व सफेद में परिवर्तित होती जाती है–

घुलना धीरे–धीरे आसमान का

पीली और लाल

और फिर सफेद[3]

हरी घास पर बैठ कर दृश्य देखना का चित्रण कवि ने किया है–

नतशिर बैठें हम

हरी घास पर

निखरे उसकी शोभा[4]

टोने–टोटके के चलते लोग जानवरों की पीठ पर लाल–लाल गोल धब्बे बना देते है–

जिसने उन सब की पीठ पर

डाल दिये लाल–लाल धब्बे[5]

चन्द्रमा का निकलना व कवि का छत पर निकलना व चन्द्रमा को वृक्ष की फुनगी पर देखना अक्सर होता है–

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 54.
2. वही, पृ0 60.
3. वही, पृ0 62.
4. वही, पृ0 63.
5. वही, पृ0 75.

उस पार और जरा दूरी पर

जो नीली–सी

वृक्ष–राजि है[1]

बादल शहर दर शहर, मैदान, हरे भरे खेत, नदी नाले आदि पार कर जाने कितनी दूर से आते है–

शहर, मैदान, खेत

नदी नाले

नीले हरियाले और पीत[2]

प्रदूषित वातावरण के चलते चमकदार सफेद तारे जिनमें पीलिया आ गई उनकी आशा नष्ट होती जा रही है–

पीले पड़ते हुये तारे

जो धीरे–धीरे

जैसे विलीन होते है[3]

सूरज में डूबते समय पीलिया लिये हुए होता है।

नीबू की तरह

पीला सूरज

डूब गया[4]

युद्धों में होने वाले रंक्तिम संहार ने लाल रंग को फीकां ही नही नष्ट कर दिया है–

रक्त से

लालिमा रण की इस सौन्दर्य ने

फीकीं ही नही सामाप्त कर दी है[5]

मानव शरीर पंचतत्वों से मिलकर बना है– धरती, आकाश, अग्नि (सूरज) पवन, जल

गाढ़ा हवा का चेहरा नीला है

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 102
2. वही, पृ0 116.
3. वही, पृ0 133.
4. तूस की आग, पृ0 20
5. वही, पृ0 30

तेज चमकीला सूरज

x x x x

काल का जानते है।[1]

नये वर्ष के आगमन पर सारा परिवेश, रंगीन, खुशमिजाज और आत्यमीयता से भरपूर लगता है–

आज हवा का चेहरा नीला है

और आवाज में उसकी

कोई रंग है[2]

प्रेमी व प्रेमिका के मिलने पर वातावरण भी प्रसन्न हो जाता है–

उस दिन

आखें मिलते ही

आसमान नीला हो गया था[3]

पर्वत की चोटी दूर से देखने पर नीली दिखाई देती है–

नीली है पहाड़ की चोटी

और लोटी–लोटी नग रही है[4]

आसमान पर लाल रंग का बादल छाया है जिसकी रोशनी व्यक्ति के ऊपर पड़ती है–

एक बहुत ही हल्का लाल बादल

उसके सिर पर उतरा

एक बहुत ही सुर्ख रंग का धब्बा

उसके चेहरे पर उभरा[5]

जाड़े की अंधेरी रातें कुहरे को अपने अंधेरे में नहीं छिपा पाती

रात काली हो

तो भी कुहरा सदा

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 75.
2. वही, पृ0 125.
3. बुनी हुई रस्सी, पृ0 23.
4. वही, पृ0 26.
5. वही, पृ0 52.

सफेद रहता है[1]

पृथ्वी का रंग कैसा है काला है, पीला है नर्म है या कंकड़ से युक्त है। कवि की चाहत है कि वह अनन्त आकाश तक धैर्यपूर्वक पहुचे, उसके अन्दर पक्षियों की तरह चहक हो—

माटी काली है तुम्हारी

कि पीली है

x x x x

उस नीली रेखा तक[2]

अनन्त आकाश में पक्षी उन्मुक्त गायन कर उड़ते है, गायन करते समय वे अपना लक्ष्य कभी—कभी भूलने लगते है लेकिन सहजा कभी—कभी ऐसा हो जाता है कि लक्ष्य स्वयं चलकर उनके समीप आ जाता है चाहे वो प्राणी हो चाहे वो पक्षी हो। ऐसी घटनाएँ जीवन में कभी—कभी घट जाती है।

नीली रेखा तक आये

तो कंठ उनका

इस तरह गाये कि वे

नहीं आये है[3]

कवि की कल्पना है कि जब स्नेह पुष्प रथ पर सम्पूर्ण पृथ्वी पर व्याप्त हो जायेगा तो सूर्य भी नीले आसमान पर सावन की तरह आनन्ददायी होगा

पुष्प रथ पर स्नेह पृथ्वी भर फिरेगी

नील नभ में सूर्य सावन सा घिरेगा[4]

जलाशय में जब चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब प्रतिभाषित होता हैं तो उसमें खिले हुए कमलों के रंग में भी परिवर्तन होने लगता है। कमल तोड़ने की इच्छा रखने वाले हाथी की आता हुआ देखकर कमल भयभीत हो उठता है—

एक काला हाथी

जो लगभग पीला है

---

1. परिवर्तन जिये, पृ0 20.
2. वही, पृ0 72.
3. परिवर्तन जियो, पृ0 73.
4. कालजयी, पृ0 85

एक सफेद कमल है

जो लगभग पीला है[1]

एक फूल जब सफेद है तो उसने चारो तरफ के वातावरण को आमा मंडित कर दिया है। कवि का विचार है कि यदि यह पुष्य लाल होता तो सौर्य ऊर्जा का प्रतीक बनता और यह बनता शक्तिमान देखने वालों की आखें निर्निमेष उसी पर टिकी रहती –

उस फूल को

सफेद होने की क्या जरूरत थी

वह लाल क्यों न हुआ[2]

कवि विचार करता है कि फूल भी रंग से रंगा गया है जिसने आसमान को रंगा है क्योंकि दोनों अमिट है

जिस चीज ने

रंगा है आसमान को

इतना नीला

क्या उसी ने रंगा है

तुम्हे इतना पीला

ओ पीले फूल[3]

कवि प्रश्न करता है फूल से कि जिसने सूरज को सुनहला, आसमान को नीला क्या उसी ने तुमको भी पीलें रंग से रंगा है–

सूरज को

इतना सुनहला

जिसने

रंगा है इतना नीला

और तुम्हे इतना पीला

---

1. इदं न मम, पृ0 22.
2. वही, पृ0 41.
3. वही, पृ0 84.

ओ पीले फूल[1]

रंग बिरंगे फूलो वाले वृक्ष में एक नीले रंग के फूलों के बीच एक पक्षी बैठा है जो कभी छिप जाता है कभी लाल–दिखता है–

फूलों से लदे क्षुप में

एक पंछी

फूल नीले

पंछी काला और लाल[2]

कवि कल्पना करता है कि नाखूनों की कालिया शरीर में नाखूनों को चुभाने से जो खून निकले उनसे मिट जाये और वे काले के स्थान पर लाल हो जाये किन्तु ऐसा नहीं हो पाता–

धसते हुए तुम्हारे

काले नाखूनों का

मैने चाहा था

लाल सुर्ख

कर दे

मेरा खून ही

मगर लाल नहीं हुए

तुम्हारे नाखून[3]

चट्टाने अपनी प्रकृति नहीं बदलती मात्र अल्प समय भर को ठंढी, गर्म या गीली होती है–

काली ये चट्टाने

ठंडी गीली या गरम है

कहने भर को[4]

जो रंग पहले थे उन्हे बढ लकर पहले लाल किया फिर नीला फिर पीला उनका कृमिक विकास ताकि वह आकर्षक लगता रहे–

---

1. इदं न मम, पृ० 85.
2. वही, पृ० 98.
3. अंधेरी कविताएं, पृ० 23.
4. वही, पृ० 67.

फिर फीके लगने लगे वे/

उन्हें लाल किया/

फिर किया नीला–पीली[1]

सफेद चॉद भी कोहरे में ललिया लिये हुए दिखाई देता है–

लाल है चॉद का रंग/

कुहरे से भरे/

आसमान में[2]

वस्तुए :-

वस्तु बिम्ब के अन्तर्गत वे वस्तुए या पदार्थ आते है जिनका प्रत्यक्ष बोध होता है अर्थात जिनको आखों के माध्यम से चक्षुसात किया जाता है और इसी के अन्तर्गत वे वस्तुए भी आती है जिनकी परोक्ष में भी जो व्यक्ति विशेष विचार सुनने के लिये घेर कर खड़ी हुई है– उसके प्रेम के संदेश को सुनने के लिए वह जैसे ही बोलेगे स्नेह का निर्झर प्रताहित होने लगेगा–

देखते हो भीड़ है

जो उस बिरल दाढ़ी उलझते केश वाले

आदमी को घेरकर प्यासी खड़ी है स्नेह का संदेश सुनना[3]

पुष्प के सदृश कोमल होने पर भी बापू के विचार बज्र भांति कठोर है। उनके विचार और उनके त्याग लोगों का जी दहला देते है–

कुसुमादपि कोमल बापू क्यों बज्रापि कठोर हो तुमसे

तुमसे चाहे जितनी सही रही हो, उनकी बाते[4]

बापू का रंग उनका आकर्षक व्यक्तित्व ऐसा था कि जो भी उनकी बाते सुनता तो इतने ध्यान से जैसे वह मग्न होकर जूहींकी कलियाँ चुन रहा हो

---

1. अंधेरी कविताएं, पृ0 102.
2. वही, पृ0 122.
3. गांधी पंचशती, पृ0 169
4. वही, पृ0 214.

वर्ण–वर्ण जिनका रंगा था प्रकाशवान था

सुनने वाला ऐसा सावधान था

मानों जूही की कलियाँ चुन रहा था[1]

बापू ने कृशकाय लोगों के अन्दर विचारों की इतनी दृढता भर दी, हृदय पक्ष इतना मजबूत कर दिया कि वे ब्रिटिश सत्ता का विरोध कर सकते थे उनके अत्याचारों को आसानी से सहन कर सकते थे। वे मृत्यु को भी वरण करने के लिये सदैव तत्थर रहते थे–

हम जो दुबले थे कभी लकलके छरहरे थे

हम जो बिस्तर को छोड़कर जल्दी शाम होने पर कही

ठहरे थे।[2]

राजघाट जहॉ अहिंसा का पुजारी आज सो रहा है। जिसके निधन पर पृथ्वी रोई तो आकाश भी रोया ऐसे व्यक्ति जब संसार में आते है तो वे कृत्यों के द्वारा अमर हो जाते है–

निस्पंद पक्ष्य नतनयन

झुकाये शीस खड़ा है काल जहॉ

नित सत्य अहिंसा शांति स्नेह का स्मारक यह राजघाट[3]

व्यापारी स्वतंत्रता के बाद स्वतंत्र है। कवि ने वस्तु बिम्ब का दृश्यवत वर्णन किया है। कुछ लोग दिन भर बाजार से खरीददारी करने के बाद वापस अपने घरों को लौट रहे है।

गधे की पीठ पर लादे

लौकियाँ और खरबूजे

धड़े और मटके

हाथ के बुने थान

चूड़िया कांच की मालाएँ रंग बिरंगी

गुड़ की भेलियाँ

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 227.
2. वही, पृ0 239.
3. वही, 267.

जलेबियाँ भी गुड़ की

और अब बे लौट रहे है शाम को[1]

व्यक्ति नहीं विचार है, काया साधारण कृशकाय शरीर लेकिन दीप्त आभा मंडल जिसकी ओर बर्वस लोग आकृष्ट हो जाते है।

साधारण–सा रूप किन्तु दीपित श्री ऐसी

इन आंखों को किसी देह में दिखी न जैसी

पलके उठती है तो लगता है झुका सब[2]

"चेहरा किसी का साफ इस जमाने में नहीं जो बात आइने में है वो इंसान में नहीं"

आज आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति का मन साफ स्वच्छ निर्मल और पवित्र होना चाहिये भले ही मुख्याकृति मलिन हो–

चेहरा सूरज का हो चाहे चाँद का

गलत नहीं है कि वह

दरपन होता है उनके मन का[3]

कवि बस जीवित होता ही होता है, वह एम कलम का सिपाही भी है जो समाज की बुरीतियों से लड़ता है उनका प्रकाशन करता है तभी वह कवि कहलाता–

कलाकार को चाहिए बस तेरा ही ध्यान

कविता तो उपहार है एक मृदुल मुस्कान

केवल

चेहरा नहीं किसी का

कवि के समूचे लिखने में

उसके समूचे दिखने का हाथ रहता है।[4]

समाज सघर्ष का दूसरा रूप है बिना संघर्ष के कोई भी व्यक्ति अपने अस्तित्व को नहीं बनाये रख सकता और उसके लिये उसे आवश्यकता होती है गतिशीलता की। वह जितना ही

---

1. गांधी पंचशती, पृ० 285.
2. वही, पृ० 11
3. खुशबू के शिलालेख, पृ० 19.
4. वही, पृ० 21.

गतिशील होगा समाज के साथ आगे चल सकेगा–

पतली से पतली उसकी टहनी

तौलते रहना पड़ता उस पर

अपना शरीर[1]

किसी वृक्ष की सार्थकता उसके पल्लवित पुष्पित और फलित होने पर है क्योंकि यह किसी न कहीं सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक है आज अर्थ शात्रियों के हथौड़े राजनीतिज्ञों के कुल्हाड़े हमारी सभ्यता और संस्कृति पर कुणराधण्ट करने में लगे हुए है। रक्षा करने में भी हत्या करने को तैयार बैठे है–

बन गयपा है ऊपर का इसका हिस्सा

खास कर पके इन फलों के कारण

कलश जैसा

तन गया है थोड़ा सा हिस्सा

सांप के फन की तरह

और पके फल

लग रहे है उस मणिधर की

मणियों[2]

कवि ने अपने बचपन के दिनों की याद करते हुए मित्रों के साथ बिताई गयी आत्मीयता का सांगोपांग विवेचन किया है। कही इमली तोड़ने कही आम पर पत्थर मारने या झाड़ियों से बेर तोड़ने। यह ऐसी आत्मीयता है जो किसी भी अवस्था में बचपन को भर देता है–

चढ़ जाता था वह हमारे लिये

इमली या आम या बेर

तोड़ने झाड़ो पर

और कूद पड़ता था[3]

व्यक्ति जब पुरूषार्थ करने को तैयार होता है तो विषम से विषम परिस्थितियों का सामना करने के लिये शारीरिक और मानसिक रूप से स्वयं को तैयार कर लेता है। जिसका परिणाम

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 23.
2. वही, पृ0 26.
3. वही, पृ0 51.

सहाजता के साथ लक्ष्य की प्राप्ति–

क्षितिज की अपनी देहरी पर

पाँव धरने की

उठ चुका था पाँव[1]

किसी बच्चे को हल्की सी थपकी थोड़ा सा स्नेह भरा अपनत्व अपना बनाने के लिये पर्याप्त होता है क्योंकि छोटा अनजान शिशु अपने पराये की भावना से परे होता है। जो भी स्नेह करेगा वह उससे सहजता के साथ घुल मिल जाता है–

आता है तो मैं थोड़ा

थपथपां है तो उसका सिर

जबकि वह तो चढ़ आना चाहता है

मेरे बिस्तर पर[2]

एक कहावत के अनुसार जिंदगी जिदांदिली का नाम हे मुर्दा दिल क्या खाख जिया करते है। जो पक्षियों से उन्मुक्त गगन में उड़ना सीख लेता है, तो तमाम संघर्षो में थोड़े से प्रयास से अपने गंतत्य को प्राप्त कर लेता है। मानव को चाहिये कि वह पिछली गलतियों को भूलकर नये शिरे से जीवन आरम्भ करे–

दूर पर उड़ते पालों की तरह

दिख जाये खिड़की से पंछी तो ठीक है

मगर सामने के बकुल के

पीछे के अश्वत्थ पर[3]

यहाँ पर कवि ने घोड़े और मानव के बीच एक रागात्मक संबध स्थापित किया है कि जिस तरह से अस्तबल में बंधा घोड़ा अच्छा नहीं लगता है खुले मैदान में ठीक वैसे बैठ ही मानव वही अच्छा लगता हे जो संघर्षो से जूझता है।

घोड़ा तो वह है

जो अस्तबल में

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 61.
2. वही, पृ0 81.
3. वही, पृ0 82.

बंधा है

जुता है तागे में

दौड़ रहा है

खुले मैदान में[1]

भारतीय संस्कृति अतिथि देवो भवः की रही है। अतिथि हमारा देवता हो उन्हें उनके पैर धुलाने चाहिए उचित आसन देना चाहिये ठंढा जल देना चाहिये तत्पश्चात हल्की मुस्कुराहट के साथ कुशल क्षेत्र पूछनी चाहिये–

मंजे चमकते लोटे में

अतिथि के पांव धुलाओ

लेकर आदर से उसे

अपने आगे–आगे

स्वच्छ आसन पर बैठाओं

और फिर पिलाओं उसे ठंडा जल[2]

व्यक्ति के अन्दर छिपा रहता है जो उसका अर्न्तमन होता है। जब वह अन्तस की बात सुनता है तो वह एक सामाजिक होता है। और जब वह अन्तष की बात अस्वीकार कर देता है तो वह असामाजिक बन जाता है–

तुम मुझे धुंधली

छाया की तरह दिख रही हो

और संभव है कि

देख रही हो तुम भी मुझे

एक छाया के रूप में[3]

आखों में एक सम्मोहन होता है, आकर्षण होता है एक जादूयी रंग होता है क्योंकि उनसे अपनत्व हृदयग्रहिता परिलक्षित होती और यह हृदयग्राहिता व्यक्ति को आकर्षित कर लेती है। यह ऐसा अपरूप होता है जिससे व्यक्ति बर्बस बन जाता है–

चार आंखों का वह जादू

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 99.
2. तूस की आग, पृ0 33.
3. वही, पृ0 49.

तुम्हें यहाँ से कैसे भेजूँ

आओ तो दिखाऊ[1]

मृत्यु को एक बिम्ब के रूप में उकेरते हुए कवि मिश्र ने लिखा है कि जअ उसके नश्वर शरीर का समापन हो तो उसके न रहने पर भी उसके अस्तित्व की पहचान उसके कृतियों के माध्यम से समाज में बनी रहे–

डूबे जब मेरा सूरज

तो छाई रहे उसकी लाली

शाम के बाद भी–दो चार पहर[2]

व्यक्ति का जीवन प्रवाहित होते हुए जल की तरह है। नदीं में बहता हुआ पत्ता अनन्त यात्रायें करता है। ऐसे व्यक्ति को अनन्त यात्रायें करनी पड़ती है–

अनन्त की शाखा से

टूट कर पत्ते की तरह

कह गया जो ख्याल

काल की धारा में

निहारता रहा मै उसे[3]

''मिलना और बिछड़ना जीवन की रीति है।

प्रेम के पयोधि में डूब जाना प्रीति है।।''

यह जीवन में चक्र अनवरत चलता है और इसे हृदयोगम कर लेना चाहिये–तभी वह जीवन को सही अर्थो में जी सकता है–

तो हँसे खिलखिलाकर बच्चों की तरह

और छूट गया

हाथ छाया का आकर हाथ में

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0 23
2. वही, पृ0 45.
3. वही, पृ0 63.

तो रोये तिलमिलाकर बच्चों की तरह

खालिस सुख[1]

मानव और पशुओं का भी एक भावात्मक संबध होता है। कुत्ता भले ही मूल जीवी हो लेकिन मावन भावनाओं का एहसास समय–समय पर होता रहता है। वह अपनत्व और तिरस्कार को बखूबी समझता है–

और वह लगभग डेढ़ दो मन का कुत्ता

चढ़ा आ रहा है मेरे बिस्तर पर

और खेलना चाहता है मुझसे

जितना बनूगाँ खेलूगाँ उससे[2]

आज के युग में प्रत्येक मानव दुव्यवस्थाओं का शिकार है। ईर्ष्या द्वेष का उसके अन्दर विकार है। यदि सच्चे अर्थो में जीवन जीना है तो इन विकारों से उसे परे रहना होगा–

भदरंगी

एक तंगी

नंगी खड़ी है सबके सामने[3]

निकल गली से तब हत्यारा, हाथ तौलकर चाकू मारा फूटा लहू का फव्वारा कहा नहीं था हत्या होगी। कभी–कभी दरिंदा व्यक्ति मावन रूप धारण करके आता है और आते ही मानवता की हत्या कर देता है–

दरिंदा

आदमी की आवाज में

बोला

स्वागत मे मैनें[4]

दूध में एक क्षण के लिये उगल आता है फिर शान्त हो जाता है। इस तरह का उफान मानव के लिये ठीक नहीं है। निर्विकार भाव से उन्नति शोपान पर शनैः शनैः चढ़े

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0 68.
2. खुशबू के शिलालेख, पृ0 101.
3. परिवर्तन जिये, पृ0 13.
4. वही, पृ0 16.

दूध का उनाल नहीं है यह
सिर्फ अपना ख्याल नहीं है यह
पीढ़ियां का है
वे तख्त पर पहुँचेंगी
जिन पर से उन सीढ़ियों का है
ये सीढ़ियाँ जानदार आदमियों की
है या होंगी
बिछेगें ये जानदार आदमी[1]

प्राणी जब इस संसार में आता है तो कभी–कभी वह अपने को नितान्त अकेला पाता है लेकिन धीरे–धीरे जब वह सामाजिक बनता है तो उसके सम्बल मिलना प्रारम्भ हो ज़ाता है। जिस तरह डूबते हुए व्यक्ति को तिनके का सहारा काफी होता है। ठीक ऐसे मानव दूसरे का सम्बल पाकर गतिशील हो उठता है और फिर चल पड़ता है अपने लक्ष्य की ओर–

वह जिसने कहा कि मैं अकेला हूँ
मुझे अकेला नहीं लगा था
ऊँचा और खूबसूरत
और कब का बलिष्ठ
मुझे लगा था एक दुनिया
आ धिरती होगी उसके इशारे पर[2]

विषम परिस्थितियाँ या दुर्दांत व्यक्ति की आत्मा को कुचल देना चाहती है आत्मा तो फूल की सृदश है उसे किसी भी स्थिति में किसी का खिलौना नीं बनने देना चाहिये जिससे कि वह समाज में सिर ऊंचाकर जी सके–

उठालो
आत्मा का यह फूल
जो तूफान के थपेड़े से
धूल में गिर गया है।[3]

---

1. परिवर्तन जिये, पृ0 22.
2. वही, पृ0 27.
3. वही, पृ0 49.

मानव की स्थिति बीच की स्थिति है। वह सुकृत्यों द्वारा देवता व कुकृत्यों द्वारा दानव बन जाता है। जो व्यक्ति सुकृती होते है उनका शरीर तो पार्थिव हो जाता है किन्तु उनके कृत्य जब तक समाज है धरती है तब तक बने रहते है। सच्चे अर्थो में वे कालजयी होते है। उनका अस्तित्व कभी समाप्त नहीं होता है–

सजीव है उनकी माटी

वह न जलकर

राख हुई है

x x x x

धरती पर

वे खुद रहते है मानो[1]

" एक आदमी रोटी बेलता है, एक सेकंता है, एक खेलता है

यह खेलने वाली कौन है, मेरे देश की संसद भौन है।"

धूमिल जी की यह कविता मिश्र जी की पंक्तियों में चक्षुसात होती है एक व्यक्ति धरती पर हल चलाता है अन्न उगाता है लेकिन उपयोग तीसरा करता है। एक व्यक्ति रिक्सा चलाता है, एक बैठा है। कवि की कामना है कि इस देश में समान कर्मो का बटवारा इस देश में कब होगा–

खीचते हुए रिक्शा /

कई खुले खेतों में

धरती को

चीरते है हल से

सीते है अनाज से

और फल से[2]

सच्चे अर्थो में वीर है जो सारे वारों को सीने पर स्वीकार करते है लेकिन जो कायर व्यक्ति है उसका जीवन तृणवत होता है। हवा आती है और तिनका सिर झुका लेता है लेकिन जो साहसी है भले ही समूल उखड़ जाये। हवा जैसी विषम परिस्थितियों का डटकर सामना करते है।

---

1. परिवर्तन जिये, पृ0 78.
2. वही, पृ0 79.

उनका खून बाहर नहीं गिरता

नसों में दौड़ता रहता है

अलबत्ता

तरते वक्त

उन्हें खून की कै होती है।[1]

व्यक्ति सतंरगी सपने बुनता है। सपने साकार भी होते है और आकार भी देते है। सार्थक सपने व्यक्ति के अन्तस को छूटे है उसे प्राणवत्ता देते है उसे शक्तिवक्ता देते है और तभी वह दूसरों के दुख दर्द का एहसास कर पाता है–

तसवीरे तुम खीचों

और रंगों तुम

अपनी खीची हुई तसवीरे

मेरे तो वे

मन में उतर जाती है

और वहाँ

कभी अकेली अकेली

तो कभी आपस में बतयाती है[2]

पंक्षियों की उड़ान अराध गति से बहते झरने, नैनाभिराम वृक्षों की पंक्तिबद्ध खड़ी श्रृंखला प्रत्येक प्राणी को मंत्र मुग्ध कर देती है। इस सुन्दर प्राकृतिक दृश्यो को देखकर व्यक्ति विचार करता है कि प्रकृति किसी न किसी माध्यम से एक सुन्दर संदेश देती है–

मुग्ध करता हुआ वन को

बन के वृक्षों को

वृक्षो के पर्णो को

उड़ान के बीच

रोकते हुए पंक्षियो को

चंचल गति झरनो को

करते हुए मंथर

---

1. परिवर्तन जिये, पृ0 85.
2. इदं न मम, पृ0 16.

सोंच रहा हूँ

क्या होने वाला है।[1]

रात्रि के बाद दिन और फिर रात्रि का आगमन सुख और दुख का अनवरत चक्र है। एक कांटा चुभता है एक पीड़ा का क्षणिक आभाष व्यक्ति को होता है। और यही पीड़ा सुखद एहसास में बदल जाती है। जीवन में सुख और दुख का चक्र चला करता है जो ऐण्ठ लोग है वे जय–पराजय हानि को सहज रूप में ही स्वीकार करते है–

कांटे का रंग

और कांटे की ताजगी

पांव से निकले हुये

खून में है

भीतर की बेचैनी और खुशी

आंख से टपकी

बूंद में है[2]

मानव और प्रकृति का रागात्मक भावात्मक संबध है। बहती हुई आम की डाली आकाश रूपी नायक के भाल पर विजय तिलक अंकित करती है और यह कामना करती है कि तुम्हारा साम्राज्य पृथ्वी में इसी तरह से हमेशा बरकरार रहे–

अभी

आम की डाली से

अभी

आकाश गंगा से

जुड़ते देखा है[3]

प्राणी प्रकृति के प्रति प्रतिबद्ध होता है। जो प्रकृति को स्वीकार कर लेता है। उसके निर्देश पर चलता है सुख की अनुभूति करता है। लेकिन जो प्रकृति के विपरीत कार्य करते है उन्हे जीवन में कष्ट की कष्ट मिलते है। प्रकृति भी चाहती है कि उसे आत्मसात करने वाला प्राणी उन्नति करे आनन्दमय जीवन जिये–

1. इदं न मम, पृ0 16.
2. वही, पृ0 23.
3. वही, पृ0 24.

धरती से आसमान के छोर तक

गाऊँगा

उठूंगा चलूंगा

घुमाऊगा जैसे धरती को

तुम्हारे इशारे पर[1]

नदी के तीव्र प्रवाह में कभी कुछ दिखता नहीं है। कभी–कभी व्यक्ति को अपनी प्रतिच्छाया दिखती है। चॉद सितारे दिखते है लहरो के साथ चॉद सितारों का लुपा छिपी का खेल उसके मन को मंत्र मुग्ध कर देता है–

मैं तेज धारा में

कुछ देख नहीं पाता

इसलिए बैठा हूँ गाता हुआ

डालकर प्रवाह में पॉव[2]

जीवन में अकेलापन नीरसता देता है, सरसता को समाप्त कर देंता है। व्यक्ति की अदम्य इच्छाये समाप्त हो जाती है। उसका जीवन हताश, निराश और उदासि हो जाता है–

कमर जैसे कलाई टूट जाये

हिम्मत जैसे घड़ी फूट जाये

तबियत

कुछ नये ढंग से खराब हुई है

सोचने की इच्छा लगभग शराब हुई है।[3]

मन में कभी सुविचार आते है तो कभी कुविचार आते है। सुविचारों को स्थान देना चाहिये। इनको सुव्यस्थित करके कृत संकल्पित होना चाहिये तो कुविचारों को एक गंदगी मानकर उन्हे हमेशा–हमेशा के लिए धोकर प्रच्छालित कर बाहर निकाल देना चाहिये जिससे कि मन सुन्दर वन सके–

क्योंकि मन

एक मैली कमीज है इन दिनों

---

1. इदं न मम, पृ0 61.
2. वही, पृ0 113.
3. अंधेरी कविताएं, पृ0 02.

सोंच रहा हूँ

धुलने दे दू कहीं

या खुद घो डालू[1]

कवि के अन्दर एक क्रांति की ज्वाला हमेशा धधका करती है जिसका मूल कारण है आर्थिक व सामाजिक वैषम्य वह इन विषमताओं की कहानी की हमेशा—हमेशा के लियें समाप्त कर देना चाहिये। जर्जरित कुप्रथाओं के महल को ढहा देना चाहता हैं व ऐसे भव्य प्रसाद का निर्माण करना चाहता है जो सबके लिये हो—

मैं मजदूर मुझे देवों की बस्ती से क्या

अगणित बारधरा पर मैने धरा पद स्वर्ग बनाये—

अरसे से

ऐसी एक हवा

मुझ पर चल रही है

जल रही है मुझमें

अरसे से एक ऐसी आग

और मैं उसकी सुन्दरता को

समझने की कोशिश कर रहा हूँ [2]

समाज की समग्रता वास्तव में किसान से है। मिश्र जी का भाव संभवतः कुछ इस प्रकार है—

"शहरो को गोदी में लेकर चली गॉव की डगर नुकीली

मेरा देश बड़ा रंगीला रीति रसम रितु रंग रंगीली"

भारतीय किसान अपने उदर पोषण के साथ शहरों में रहने वाले लोगों का भी उदर पोषण करते है—

सिर पर बोझा लिये

जा रही है एक औरत

कंधे पर हल धरे

लौट रहा है एक किसान

दौड़ रहा है तागे में

जुता हुआ घोड़ा[3]

---

1. अंधेरी कविताएं, पृ0 04.
2. वही, पृ0 7
3. वही, पृ0 29

दिन भर परिश्रम के बाद भारतीय किसान आत्मतोष लिये हुए गोधूलि बेला में घर लौटता हे इस आशा उल्लास के साथ कि भरपूर फसल होगी तो तमाम लोग का उदर पोषण स्वतः हो जायेगा

वह और यह जो किसान
दिखता है ढीलते हुए
हल के बैल[1]

व्यक्ति जब इस संसार में आता है क्रमशः कई परिवर्तन उसके जीवन में आते है। शनैः शनैः वार्धक को पार करते हुए वह जीवन लीला को समाप्त करता है लेकिन उसका कृत्य शेष रहता है–

मगंर जैसे
जब पिता जी जा रहे थे
और मै लाचार
उनके बिस्तर के पास
खड़ा होकर उनके सिराहने
देखता रह गया था उन्हे[2]

शुभ और अशुभ का निर्णय हम सफलता और विफलता के आधार पर कर लेते है। वास्तव में इसके मूल में अवधारणा मात्र होती है। इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता है।

कल
आंसू की तरह
पटक कर फल ने
हल्का
कर दिया
पेड़ को
X X X X
पेड़ पर बैठी चिड़िया की
बायी आंख
फरक गयी[3]

---

1. अंधेरी कविताएं, पृ0 71.
2. वही, पृ0 78.
3. वही, पृ0 121.

गरीबी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। एक तरफ कुत्ते दूध पीकर वातानुकूलित कार में घूमते है तो दूसरी तरफ गरीब के बच्चे फटेहाल जमीन पर लोटते है–

क्योंकि मेरे पास
न कमीज है न बण्डी है
खुले बदन[1]

(ग) गतिः-

ऐसे बिम्ब जो चलते हुए, घूमते हुए दिखाई देते है–

गांधी जी ने सबके भारत का सपना देखा था उनका यह सपना था कि दुवों की कलियां भरी रात का समापन हो सुखद विहान का आगमन हो लेकिन सभी के लिये हो। सपनों ने गति तो पकड़ी लेकिन मात्र कुछ काली रात में जीवन यापन कर रहे है–

अग्निवर्णी हंस स्वर मानों सुधा में तैरने के बाद
इस तरह का रूप मुझको आज लगता है तुम्हारी याद का
स्वच्छ नीले विगत कितने वर्ष है
आकाश मानों इस दिशा से उस दिशा तक
इन्ही में उड़ता फिरेगा
हंस मेरे देश के सौभाग्य का वह अग्निवर्णी
इस निशा से उस निशा तक[2]

सबेरे–सबेरे पंक्षी अपने घोंसलों से निकलकर आसमान में उड़ते, कलख करते है किसी भी दिशा की ओर उड़ जाते है। यह कवि के लिये नया और कुतूहलता से युक्त लगता है–

और इसी तरह पंछी
निकलकर सवेरे घोसंलो से
आसमान में
गीत गान भी
पथ के निधान है
यह मैने एक और नया तमाशा देखा है[3]

---

1. अंधेरी कविताएं, पृ0 127.
2. गांधी पंचशती, पृ0 305.
3. इदं न मम, पृ0 97

समय का पहिया कभी नहीं रूकता या व्यक्ति की स्थिति सदैव सी नहीं रहती है–

और तब रूका हुआ पहिया

समय का

या भय का कहिये

धूम जाता है

जैसे एक झटके से

पूरा का पूरा

और नये सिरे से

नाचने लगता है[1]

कवि चिड़िया को देखता है जो घोसले से उड़कर आसमान में चली जाती है जिसका पीछा करते करते कवि की दृष्टि भी आसमान में जा पहुंचती है–

मेरे आंगन के पेड़ से

उड़कर

छोटी सी एक चिड़िया ने

जुड़कर आसमान से

मुझे इस छोर से

उस छोर तक

पहुंचा दिया[2]

भाव बिम्ब :-

(क) प्रेम :-

कवि कल्पना करता है कि इस स्वार्थमयी संसार में भी हमको स्नेह बाटना है–

उसने हमसे यह कहा कि शोषण की दुनिया में

हमको प्यार बसाना है।[3]

व्यक्ति जब बहुत दुखी हो जाता है तो उसे किसी सहारे की आवश्यकता होती है जहाँ वह दुख स्नेह की उपस्थित में विस्तृत सा हो जाता है–

---

1. अंधेरी कविताएं, पृ0 37.
2. वही, पृ0 97
3. गांधी पंचशती, पृ0 141.

बहुत धना मेरा दुख तत्क्षण चुप जाता है

मुझे खीचनें लगती है स्नेहिल आवाजे[1]

मानव का स्वभाव बदलता रहता है। व्यक्ति स्वयं दुखी होने पर भी दूसरे को ढांढ़स बंधवाने का प्रयास करता है–

और हवा का रूख बदल गया

सहानुभूति में बदल गया दुख

उसने मुझे थपकी दी

और कहा सो जाओ[2]

प्यार, स्नेह, लगाव ये तो व्यक्ति किसी से भी हो सकता है चाहे वह मानव हो या न हो

प्यार मैं कर सकता हूँ तुमको भी

आदमी को तो करता ही हूँ[3]

प्रेम में व्यक्ति प्रशन, अपने आप में हो मग्न हो जाता है

और सुना है प्रेम को

हर क्षण अपने भीतर

बजते गाते और

गुनगुनाते[4]

करूणा और प्रेम दोनों ही मानव के मूल्य है–

करूणा के बजाय हमें

प्रेम का स्वर होना है[5]

कवि का मानना है कि फूल एक समय अन्तराल के बाढ तोड़ लिया जाता है या वह स्वतः ही नष्ट हो जाता है किन्तु प्रेम फूल से भी ज्यादा दीघार्यु होता है–

प्यार

जो

ज्यादा जीता है फूल से[6]

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 229
2. वही, पृ0 266.
3. खुशबू के शिलालेख, पृ0 91.
4. तूस की आग, पृ0 80.
5. वही, पृ0 82.
6. बुनी हुई रस्सी, पृ0 37.

प्यार मूर्त नहीं होता है वह तो अनुभव करने की चीज है जो व्यक्ति को भीतर (अर्न्तरात्मा) से प्रेरित करता है–

प्यार जिसे लोग भीतर की आग
और भीतर का प्रकाश कहते है[1]

पर्वत की चोटियां धीरे–धीरे बढ़ती रहती है तो कवि कल्पना करता है कि ऐ पर्वत तू अपने शिवरों को आकाश की ऊँचाईयो तक पहुँचा दे–

स्नेह और संगीत के
धरती से उठकर आकाश तक
पहुँचा दे अपने शुभ्र शिखर[2]

भारतीय संस्कृति में शस्त्रों के बजाय स्नेह को अधिष्ठ महत्व दिया जाता है।

वे शस्त्र नहीं
ले बढ़े स्नेहा
सागर को लाँधा आर पार
x x x x
पादातिक थे उनके विचार[3]

कवि का मानना है कि जब धरती पर ईर्ष्या, धंभ, द्वेष कमजोर हो जायेगे और उनके स्थान पर प्रेम, करूणा, स्नेह सौहार्द होगा तो धरती की शोभा अलग होगी सदियों तक उस परिर्वतन से जन समुदाय प्रभावित होगा–

धरती पर द्वेष और
दंभ तीण तेज होगें
प्रेम और करूणा की
प्रवाहित होगीं नदियां
x x x x
उसके प्रभाव से
प्रभावित होगी सदियां[4]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0 59,
2. परिवर्तन जिये, पृ0 58.
3. कालजयी, पृ0 14.
4. कालजयी, पृ0 20.

जीवन में यदि कुछ शास्वत सत्य है तो वह अपनत्व, स्नेह, मानवीय मूल्य, व्यक्ति का दुर्भाग्य है कि वह राम–रहमान के झगड़े में फसता है इनको बाटने का प्रयास करता है। वह मूल जाता है कि ये मात्र नाम रूप है। उसका रूप एक हे। नामों में विभिन्नता हो सकती है। उसके साधना के मार्ग अलग–अलग हो सकते है लेकिन सारे मार्ग आगे चलकर के मार्ग आगे चलकर एकाकार हो जाते है। अतः उसे घृणा विद्वेष की भावना से दूर रहकर प्रेम बाटना चाहिये। और यदि मैं यह कहूँ फूल नहीं बो सकते तो काटें कम से कम न बो।

यह है स्पर्श गंध है मन का

x x x x

इसे पकड़ को

स्नेह करो छाती तक खीचों

सहज जकड़ लो

घृणा प्रहार गिरावट फसनां

x x x x

मठ–मंदिर मन से छोटे हैं

स्नेह सही है, सब खोटे है।[1]

(ख) उत्साह :-

उत्साह बिम्ब के अन्दर मानवीय भावों को उत्साहित किया जाता है। उसे पौरूपत्व प्रदान किया जाता है शक्ति भत्ता दी जाती है–

अपने शत्रुओं को नष्ट करने के लिए व्यक्ति उत्साहित होकर चिल्लता है–

कई बार जब क्रोध उमड़ता है मैं पागल हो जाता हूँ

और फेककर हाथ फाड़ कर गला चीखता चिल्लता हूँ

ऐसा लगता है कि काटकर धर दूँ शत्रु गणों को अपने[2]

व्यक्ति जब उत्साहित होता है तो उसके साथ सम्पूर्ण जन समुदाय व प्रकृति भी साथ हो लेती है–

हम बोले तो लगे कि सारी धरती बोल रही है

हम गरजे तो लगे कि जैसे धरती डोल रही है[3]

---

1. कालजयी, पृष्ठ–104.
2. गांधी पंचशती, पृ0 84.
3. वही, पृष्ठ–93

उत्साहित व्यक्ति क्या सकता वह पानी की लहरों में भी आग जलाने की जज्बा रखता है–

चलते चलो और चलते चलो

लहरों में लपटों में पलते चलो[1]

कवि मानव को संदेश दे रहा कि एंकाकी पन को छोड़ कुछ रचनात्मक कार्य के लिए तैयार हो जाओ–

उठो इस एकान्त से, दामन छुड़ाओं इस महज शान्त से

चलो उतरकर नीचे की सड़क पर जहाँ जीवन

सिमटकर बन रहा है साहस की दिशा में[2]

व्यक्ति के जीवन में जब तक संघर्ष की स्थिति नहीं आती वह जीवन के संघर्ष, खतरों से डरता रहता है किन्तु जब वह दृढ़ इच्छा शक्ति से उसके विरूद्ध खड़ा होता है तो उसे वह खतरे भी उत्साहित करने लगते है–

अलबत्ता मैं खतरों में जीता रहना चाहता हूँ

जरूरत पड़ने पर खतरों का जहर

बढ़कर पीता रहना चाहता हूँ[3]

वृक्ष रात दिन ऊर्ध्वाधर बढ़ते है और कवि कहता हे कि नर्मदा के नदी के किनारे वृक्षों को यह शक्ति नर्मदा से मिली है–

साहस और

शक्ति यह उन्हे

हमसे मिली है

ऐसा कह रही थी

नर्मदा[4]

पृथ्वी पर समृद्धि या निवास की स्थिति मानव ही लाता है ऐसा कवि का मानना है–

परिस्थिति यह

भगवान नहीं

हम खुद लायेगें[5]

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 147.
2. वही, पृ0 271.
3. वही, पृ0 313.
4. तूस की आग, पृ0 48.
5. परिवर्तन जिये, पृ0 14.

उत्साही व्यक्ति कभी भी हतोत्साहित नहीं होता वह हर स्थिति में अपने को बेहतर प्रदर्शित करने की कोशिश करता है–

फूल भी हूँ मैं
और कोरी भूल भी हूँ मैं
रात को कोहरा बनकर नहीं
दिन को गीत बनकर
छा जाऊँगा[1]

लगातार संघर्ष करने से व्यक्ति कठिन से कठिन कार्य को भी पूरा कर सकता है– और कवि संघर्ष के लिए तत्पर है–

किन्तु मानते रहते है हम
बात जूझने से बनती है
हम जूझेगें[2]

(ग) करूणा :-

करूणा वह मानवीय भाव है जो पत्थर को पिघला देती है। यह बिम्ब सुकोमल रूप होता है।

कवि कहता है कि गांधी जी मानव हे या ईश्वर जो पहले भी इस धरती पर करूणाग्रस्त अथवा संकट की स्थिति में पहले भी आवरित हो चुके है–

गांधी मानव है या फिर से घूम रहे है प्रभु उस भूपर
जिस पर वे पहुंचे थे पहिले भी अति करूणाग्रस्त घड़ी में[3]

बरसात के मौसम में जिनके पास रहने का स्थान नहीं, जाड़े में आग नहीं व खाने के लिए दो वक्त की रोटी नहीं है ऐसी करूणाग्रस्त स्थिति अत्यन्त कष्टदायी है–

वर्षा में जिनके छांह नहीं जाड़े में जिनके आग नहीं
दो वक्त पेट भर कर खालें ऐसा भी जिसके भाग नहीं[4]

इस धरती पर अनेक लोग घूमते फिरते मृत्यु को प्राप्त हो जाते है कुछ भूख प्यास से किन्तु उनकी मृत्यु पर शायद ही किसी को दुख होता हो–

---

1. परिवर्तन जिये, पृ0 21.
2. अंधेरी कविताय, पृ0 9
3. गॉधी पंचशती, पृ0 18
4. वही, पृ0 23.

कोई फिरा जगत भर हारा–थका निराश्रित

और मर गया भूख प्यास से

और किसी को बेचारों का कहने लायक दुःख हुआ हो[1]

(घ) देश-प्रेम:-

जो भरा नहीं है भावों से बहती जिसमें रसधार नहीं

वह हृदय नहीं है पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।

इन्ही भावों की अभिव्यक्ति करता है यह बिम्ब

मानव का मानवता से जो सम्बन्ध है वही देश प्रेम से है– कवि देश प्रेम व मनवता को एक ही मानता है–

देश प्रेम का यही अर्थ है यही अर्थ मानवता का[2]

अपने व्यक्तिगत सुख–दुख को भूलकर कवि सभी को राष्ट्र कि यशोगीत गाने को कहता है–

तुम भी गाओं मैं भी गाँऊ कंठ खोलकर गीत देश के

याने अपने मन के सुख के याने उसके मन के दुख के अभिव्यक्ति के।[3]

(च) भय :-

भय मानव का वह कालिमा भरा पक्ष है जो अकारण उसके व्यक्तित्व को विनष्ट करने का कुस्सित प्रयास करती है।

कवि को भय है कि क्या पता कब शांति विरोधी लोग युद्ध का बिगुल फूंक दे

हाय किन्तु भय है कि किसी दिन फिर भविष्य में

मेरी रण की गधें फूंक दे

बजने लगे सा धरम फिर से[4]

गांधी जी चाहते थे प्रत्येक भारतीय निडर बने साहसी हो, अंग्रेज जो डर रूपो अफीम पिला रहे है उससे उरे नहीं–

भीति और पस्पर विरोध के

प्याले तुम कितनी तरह से पिला रहे हो इसे

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 79.
2. वही, पृ0 219.
3. वही, पृ0 292.
4. वही, पृ0 217.

कितनी तरह की अफीमें तुम खिला रहे हो इसे[1]

व्यक्ति के अन्दर यदि अदम्य धैर्य है, साहस है, निड़रता है तो वह कंटका कीर्श मार्ग को पुष्पवत बना लेता है। सारी आकाँक्षाओं इच्छाओं की पूर्ति सहज ही कर लेता है–

इस भय से कि निसर्ग का रस
उगा न पाये मुझ पर
अपने ढंग के कांटें अपने ढंग के फूल[2]

पक्षी आने वाले तूफान के भय से शान्त वातावरण में भी बाहर नहीं निकल रहे है जबकि उस समय हवा तक नहीं चल रही है–

उड़ नहीं रहे है पंछी
हिल नहीं रही है हवा
x x x x
तूफानें डर से
चट्टानों की आड़ में दुबके हो तुम
उस समय जब हवा
हिल भी नहीं रही हैं।[3]

भय में आदमी की जुबान सूख जाती है और प्यास से भी –

क्या कह सकते हैं,
वह डर भी हो सकता है
और प्यास भी हो सकती है वह
जिसके मारे उस दिन
मेरी जुबान सूख गयी थी
और बोल नहीं निकल रहे थे।[4]

---

1. वही, पृ0 297.
2. बुनी हुई रस्सी, पृ0 53.
3. वही, पृ0 74.
4. वही, पृ0 121.

भय या डर धीरे–धीरे एक तरंग की तरह बढ़ती है–

भय की

एक लय

मुझ तक

किसी ने

तंरग की तरह फैकीं थी[1]

(छ) निराशा :-

अवसाद व्यक्ति के अन्दर तब जन्म लेता है जब उसे असफलता मिलती है लेकिन किसी का सम्बल उसकी निराशा को दूर कर देता है।

उदासी या निराशा व्यक्ति को सामान्य से बिकल या उद्देलित कर देती है–

हाय रे ऐसी उदासी यह निराशा जड़ी भाषा

आज जीवन को बिकलतर बनाकर करती तमाशा[2]

गांधी वादी बापू के सपनों को टूटते देख निराशा हो उठते क्योंकि उनसे उनकी यह हालत देखी नहीं जाती है–

ऐसी लाचारी लगती है कभी–कभी

कि जड़ हो जाते अभी के अभी

देखना न पड़ता गांधी के देश में

उनके ही अनुयायियों के द्वारा

उनकी एक एक इच्छा का खून[3]

व्यक्ति ही व्यक्ति के मन में कुंठा निराशा देष को जन्म देते है इस तरह न तो वह सुख वर्तमान में जी पाते है और न ही सुखद भविष्य की कल्पना ही कर पाते है–

हम एक दूसरे में निराशा बोते है

इस तरह न आज के होते है न कल के।[4]

कवि का मानना है कि विश्वास की कमी होने पर व्यक्ति समुचित साधन होने पर भी वह

---

1. इदं न मम, पृ0 110.
2. गांधी पंचशती, पृष्ठ 98.
3. वही, पृ0 336.
4. वही, पृ0 350.

उनका सही उपयोग नहीं कर पाता है—

जहाँ मन थोड़ा भी विस्वासहीन है व्यक्ति
वहाँ प्रकाश में भी दीन है व्यक्ति[1]

व्यक्ति दूसरे उदास व्यक्ति की जिन्दगी से अपना खालीपन क्यों नहीं दूर कर लेता कवि विचार करता है जिससे दोनो प्रशन्न हो जाये

सोचता हूँ वह खुद
क्यों नहीं भर लेता
डुबा कर मेरी
उदासी में
खाली अपना कासा[2]

कवि को हर है कि निराशा व्यक्ति कहीं निराशा के चलते बर्फ के सामान जड़ न हो जाये

और वह खुद हो जाये
निराशा में जमकर बरफ
ठंडी एक शाम में[3]

कवि कहता है उदास भले हो जाओं किन्तु निराश नहीं होना चाहिए क्योकि उदासी तो एक निश्चित समय के बाद खत्म हो जाती है किन्तु निराशा नहीं। निराशा आगामी पीढ़ी को भी नष्ट कर सकती है लोगों की रचनात्मकता नष्ट कर देती है— कवि का मानना है कि कुछ लोग अकर्मश्यता के चलते निराश होने का वह निराशा करने का अवसर रहते है—

उदास भले हो जाओं
निराश मत होना
कहीं ऐसा न हो कि नई पीढ़ी
छोड़ दे बोना
x x x x
कुछ लोग
प्रजातंत्र मर गया कहकर

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 387.
2. तूस की आग, पृ0 27.
3. परिवर्तन जिये, पृ0 24.

उदास है

x x x x

लोगों को तो उदास होने का

बहाना चाहिये।[1]

परिस्थितियाँ व्यक्ति को कभी–कभी इतनी घोर निराशा में डूबो देती है जो समुद्रवत लगती है और व्यक्ति को ऐसा प्रतीत होता है कि उसके जीवन में शुक्ल पक्ष का नहीं बल्कि कृष्णपक्ष का आगमन हो गया है जो सदैव विद्यमान रहेगा जिसका समापन नहीं होगा जबकि ऐसा नहीं होता। व्यक्ति के अन्दर यदि सम्बल है तो वह दुखो को सुखों में परिवर्तित करने की क्षमता रखता है–

आदमी के विषय में इतनी निराशा

मुझे लगता है कि जैसे

लहर में सागर डूबाना है

दिन दहाड़े रात लाना है मनो में

हवा से इनकार करना है बनो में[2]

यांत्रिक वैज्ञानिक :-

भौतिकता के युग में वैज्ञानिकता का इस प्रभाव पड़ा है कि उसने जन मानस को झंकृत किया है तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर कुठाराधारा भी किया है कवि का मानना है कि यह आणतिक शक्ति शैनः शैनः हिंसात्मक अहिंसात्मक हो जायेगी–

हमारा यह युग जो अणु के अस्त्रो से और

नायलान के वस्त्रों से हमें डरा रहा है बदल जायेगा[3]

कवि का मानना है कि एक समय आयेगा जब विश्व में अणु बम, व हिंसात्मक अस्त्र नहीं होगें–

तब अणु भट्टियाँ जलायें नहीं जलेंगी

और तोपें किसी के चलाये नहीं चलेगी

क्योंकि गढ़ी ही नहीं जायेगी तब खूनी मंशाएें[4]

---

1. परिवर्तन जिये, पृ0 69.
2. कालजयी, पृ0 89.
3. गांधी पंचशती, पृ0 242.
4. वही, पृ0 243.

कवि अणुशक्ति को जो देश में औद्योगिक, निर्माण में सहायक है तो विनाश में अग्रणी है के कार्यान्वित होने पर दुखी है–

क्या अर्थ लिकालू इस दांताकिमकिल का
जो किरन से सियाही तक
निर्माण से तबाही तक चल रही है
हाय, मेरे देश में भी अणु की भट्‌टी जल रही है।[1]

जिस दिन देश अणुशक्ति सम्पन्न हो जायेगा उम्र दिन हम बदल जायेगें और देगें दुनिया को और किसी सम्प्रभुता को स्वीकार नहीं करेंगे। अपने अस्मिता की रक्षा करेंगे

हमारे पास होगा अणु शक्ति सम्पन्न बम
कहते है उस दिन हम बदल जायेगें
और पलटेगें उस दिन हमारे दिन[2]

शून्य डिग्री पर पारा बर्फ जमाने वाली स्थिति में पहुंचता है कि जब यह तापमान इतने नीचें पहुंच जाता है तो व्यक्ति का सारा जीवन नीरस हो जाता है उसका पौरूष नष्ट हो जाता है और वह बिफलताओं की तरफ बढ़ने लगता है–

शून्य से भी नीचे चला गया है
पारा मेरे प्रति उसकी गर्मी का
नरमी का वर्तन करती ही रहे[3]

वैज्ञानिक तकनीकि, अविष्कार आदि से मानव अन्य ग्रहों पर भी पहुँचने की संभावनायें तलाश करने लगा है–

हमारे इतने विज्ञान को
बेचारे मंगल बगैरा क्या सहेगें[4]

आणविक शक्ति, वैज्ञानिकी, तकनीकि अविष्कार, के चलते हम वायु से भी तीव्र गति से उड़ते है। यह, प्रकृति हमें कैसे सहती है कवि विचार करता है–

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 248.
2. वही, पृ0 352.
3. खुशबू के शिलालेख, पृ0 83.
4. परिवर्तन जिये, पृ0 83.

तो कैसे सधती हमें

अणु की शक्ति

कैसा होता है भला आसमान में

आवाज से तेजतर

हमारा बहना[1]

पौराणिक बिम्ब :-

पौराणिक बिम्ब से आशय उन बिम्बों से है जो 18 पुराण 4 वेद उपनिषदों से ग्रहीत है। श्री मिश्र जी ने इन पौराणिक बिम्बों का बड़ा सटीक चित्रण प्रस्तुत किया है–
कवि मिश्र की अवधारणा है कि जिस तरह राम के हाथों ताड़का उद्धार हुआ और तपस्थियों का संताप दूर हुआ ऐसे ही गांधी जी के द्वारा ताड़का रूपी परतंत्रता का समापन हुआ–

धनी होकर तमिश्रा की ताड़का को

यो तुम्हारें हाथ मरना था[2]

शंकर जो मृत्यु को जीते हुए है, विष को पानी की सदृश पिया है आखों में जिनके विनाश की अग्नि है वे काल चक्र को अपने मुरठी में बंद किये हुए समय को अनुकूल या प्रतिकूल कर सकते है–

चलो हे शंकर कि तुम तो आंखों में बिजली लिये हो

चलो मृत्युंजय कि तुम गरम पायी, विष पिए हो[3]

कवि कहता है भैरव के आगमन विनास का समय उनके आगमन का प्रतीक डमरू के बचने का समय जानता है–

कि तुम भैरव–नाद का भी समय है यह जानते हो

ये कि कब डमरू बजे वह ठीक क्षण पहिचानते हो।[4]

गरूण जिसने सीता के बचाव में अपने प्राण त्याग दिये, विष्णु के वाहन गरूण तुम युगों युगों तक अपने इस त्याग के लिये जाने जाओगें ऐसीं कवि की मान्यता है–

---

1. परिवर्तन जिये, पृ0 50.
2. गांधी पंचशती, पृ0 16.
3. वही, पृ0 25.
4. वही, पृ0 26.

हे गरूण सरीखे

विष्णु–वहन कर्ता समर्थ

x x x x

तुम युगो–युगों तक गूंजोगें[1]

महाभारत के युद्ध के मौसम मैं जहॉ अर्जुन योद्धा हो व स्वयं भगवान सारथी हो, विजय तो होगी ही–

जहॉ पार्थ हो लड़ने वाले

जहॉ स्वयं हो कृष्ण सारथी

वहॉ विजय श्री वरण करेगी[2]

जब अर्जुन हताश और निराश थे उन्हे लगा कि उनके ही हाथो अपनों का वध होने जा रहा है तो श्री कृष्ण ने शंका समाधान करते हुए बताया कि ये सब कालचक्र के मारे हुए है तुम साधन हो। मिश्र का विचार है कि आज के अर्जुनों को कवियों की वाणी कब उद्वेलित कर पायेगी–

गीता के अर्जुन की भांति गत–शंका गत–दीनता

अर्थो की हीनता इनके ही हाथों से जायेगी[3]

राधा और कृष्ण प्रेम आनन्द के प्रतीक है। व्यक्ति के अन्दर जो छंद पलता है इन्ही नामाधारों पर उनका समापन होता है

बल्कि अक्ल तुम्हारा कृष्ण है प्रेम तुम्हारी राधा है

इन्ही के बल पर आनन्द का रास रचाते हो तुम[4]

कवि कहता है कि जो इस आनन्द रूपी अम्रत का हकदार हो उसी को इस धरती रूपी स्वर्ग पर रहने का अधिकार है–

कि धरती स्वर्ग हम इन्द्र है इस स्वर्ग के, आनन्द का अमृत किसे दे

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 75.
2. वही, पृ0 85.
3. वही, पृ0 231.
4. वही, पृ0 258.

कौन इसका पात्र है जो पात्र हो सो बढ़े आगे[1]

कठोपनिशद में यम और नचिकेता का वर्णन है। नचिकेता जो पिता द्वारा यम को देने को कहने पर यम की अनुपस्थिति में तीन दिन भूखा उनके द्वार में रूका रहता है–

सवाल नचिकेता जैसा
कैसे रोकते है देखूंगा मुझे यम
क्षीण हो गया है सब कुछ मेरा[2]

शंकराचार्य जिन्होनें धर्म के उत्थान के लिए घर छोड़ा रास्ते में आने वाले सभी संकटों का सामना करने का निश्चय किया

अब समझ में आ रहा है
कहना शंकराचार्य का
जिसने घर छोड़ा उसने डर छोड़ा
और छुड़ाया डर दूसरो का[3]

इन्द्र का वाहन ऐरावत, सूर्य के सात घोड़े किन्तु कवि इनको अपना आराध्य न मानकर शिव को मानता है–

इन्द्र का ऐरावत
अश्व स्वयं सूर्य के
x x x x
किन्तु वे ही सेव्य है
शिव है, आराध्य अपने[4]

ऐतिहासिक बिम्ब :-

इतिहास का अर्थ है घटनाये जो घटित होकर काल कवलित हो गयी है। लेकिन काल सापेक्ष के रूप में एक सीख लेते है उदाहरण के तौर पर ताकि उन घटनाओं की पुनराविति न हो।

चर्चिल ने महात्मा को नंगा फकीर कहा था। इस नंगे फकीर ने वह करिश्मा वह जादू कर दिखाया जो बड़े से बड़े न कर सके इस कृशकाय शरीर वाले को लोहा गौरांग प्रभुओं ने भी स्वीकार किया–

आज अभागे बचन बोलने वाले बोले

यह बिडम्बना, चढ़ा एक नंगा फकीर

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 287.
2. खुशबू के शिलालेख, पृ0 84.
3. तूस की आग, पृ0 107
4. कालजयी, पृ0 21

भारत के राजा के ड्योढ़ी पर

x x x x

पॉव धरा चल बसे मुहम्मद अली[1]

पंडित मोतीलाल नेहरू की मृत्यु से सम्पूर्ण देश शेकमग्न हो गया–

इस बार सिधायें पंडित मोतीलाल

स्तब्ध देश हो गया एकदम विवश[2]

ईशू व महात्मा गांधी दोनों को ही देश व समुदाय के उत्थान के लिए बलिदान देना पड़ा और आगे भी क्रांतिकारियों को बलिदान देना पड़ेगा–

ईसा और गांधी को

जैसी मरनी पड़ी है

और जैसी मरनी पड़ेगी।[3]

तुलसीदास अपने समय के पथ प्रदर्शक थे जब सम्पूर्ण समाज रूढ़िगत होकर जी रहा था तब तुलसीदास ने ही उसे प्रकाशित कर अधकार को दूर किया–

प्रकाश और रंग का मामला,

क्योंकि पर्याय है यह उसी का

बीज है यह तुलसीदास का।[4]

अशोक के शिलालेख जो अपने समय का प्रतिबिम्ब उकेरते है –

अशोक के शिलालेखों की तरह

आगत[5]

कवि दुखी है कि अब समाज में तुलसी, मीरा, सूर के पद लोगों को रूचिकर नहीं लगते है–

तुलसी मीरा सूर और कबीर के

पुराने गीत

पीले पड़ने लगे[6]

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 13.
2. वही, पृ0 14.
3. खुशबू के शिलालेख, पृ0 35.
4. वही, पृ0 38.
5. वही, 129.
6. परिवर्तन जिये, 33.

चाहे आदि शंकराचार्य हो, या नानक या कबीर या विवेकानन्द या गांधी इन दार्शनिकों ने समाज व देश को गौरावांवित ही किया है–

है कभी शंकराचार्य
कभी नानक कबीर
X X X
वह कभी
विवेकानन्द
फिर कभी गूंजने लगती है
बनकर
गांधी का गौरव–स्वर[1]

तक्षशिला से अशोक अपनी राजधानी तीव्र गति से पहुचते है–

तक्षशिला से उज्जयिनी पहुँचे अशोक ऐसे
गरूण गगन से गगनान्तर में जाता है जैसे[2]

अमूर्त के लिये मूर्त :-

बिम्ब ग्रहण में उपमानों का विशेष महत्व होता है ये उपमान या तो मूर्त (स्थूल) होगें अथवा अमूर्त (सूक्ष्म) होते है। प्रस्तुत उदा0 में मानवीय भावनायें अमूर्त रूप में वर्णित है जिनके चाक्षुष प्रत्यक्षीकरण हेतु आदमी, औरते, और बच्चो का प्रयोग कवि ने बिम्ब धर्मिता के लिये किया है।

कविता की तरह प्यारे आदमी
इच्छा की तरह चंचल बच्चे
प्रबल प्रश्नों की तरह औरतें
आते–जाते हैं तो जितना
पहले कभी नहीं हिला हूँ
ये सब मुझे उतना हिलाते है।[3]

धार्मिक :-

धार्मिक बिम्ब वे है जो धर्म से जुड़े हुए है सत्य अंहिसा आस्तेय उसके अंग है। मिश्र जी ने इन अंगों का सटीक प्रयोग किया है–

कुछ लोग रात दिन अपना परलोक सुधारने के लिये माला जपते रहते है:–

1. कालजयी, पृ0 18.
2. वही, पृ0 56.
3. खुशबू के शिलालेख पृ0 82.

कुछ डालकर गोमुखी में हाथ

टरकाते है माला के गुरिये

जहॉ–जहॉ धरती है[1]

क र्मकाण्ड करना ही आस्तिकता नहीं है बल्कि स्वयं पर विश्वास, करना अपने कार्य को सफलतापूर्वक सम्पादित करना भी आराधना ही है–

पाठ नहीं किया रोज उठकर चार बजे

अपने पिता की तरह

गीता का

विष्णु सहस्रनाम का

माला नहीं फेरी

मंदिर नहीं घूमें[2]

कोई कर्मकाण्ड कराने वाला ब्राह्मण अपने मस्तक पर चंदन की लकीर खींच लेने से तेजस्वी नहीं हो जाता–

दिखता है जैसा

चंदन चर्चित

तेजस्वी

किसी ब्राह्मण का माल

दिख सके[3]

मानव मृत्यु के पश्चात नदी में अस्थिफूल विसर्जित करने की हिन्दी संस्कृति में मान्यता रही है कि ऐसा करने से उस मृतक को मोक्ष की प्राप्ति हा जाएगी–

ईधन चुक जायेगा आग बुझ जायेगी

बच रहेगी राख

सिरा देगें उसे स्नेही जन

कहकर फूल

नर्मदा में

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 85.
2. वही, पृ0 94.
3. वही, पृ0 135

जो मोण दा है।[1]

कवि का विश्वास है कि जो आत्म शांति ईश्वर की सादगी पूर्ण आराधना से मिलती है वेसी कृतिम वाद्ययंत्रों के शोर से नहीं मिलती। कवि बाहय अडम्बरों व दिखावा के विरूद्ध खड़ा दिखाई देता है–

आदमी के हाथ के स्पर्श के

x x x x

जो तड़के

सुबह से सुबह तक शोर करते है

धरों में पूजाधरों में सड़कों पर

बगीचों में बाजारों में[2]

बादल का तीव्र गति से बादल गरूण पंक्षी की तरह अस्थिर है–

मानों

वह

वह कोई बादल हो

गरूण पंखी[3]

कवि किसी भी बंधन को तोड़कर आगे बढ़ने का संदेश देता है जैसे गरूण पक्षी बादलों की परवाह न करते हुए आगे बढ़ता है और लक्ष्य की प्राप्ति करता है'

आकाश चीरते हुए

गरूण की तरह

फड़फड़ाते ही मत रहो

पिजंरे में बंद

किसी पंछी जैसे[4]

इस लोक से परलोक तक व्यक्ति के द्वारा किये गये सद्कार्य ही द्रष्टिगोचर होते है अन्य कुछ नहीं–

हाथ कुछ नहीं लगता

---

1. तूस की आग, पृ0 10.
2. वही, पृ0 104.
3. वही, पृ0 112.
4. वही, पृ0 120.

न नाम न रूप
अस्तित्व का आंगन
कृतज्ञता की धूप से भरा है
और तिस पर भी
सूना है विस्तार
देहरी से ठाकुर द्वारे तक का[1]

किसी शिवमंदिर के गुम्मद के ऊपर स्वर्ण कलश पर बैठा हुआ पक्षी किलंर्तव्य विमूढ है कि उसे किस तरह जाना चाहिए मंदिर में विराजमान मूर्ति स्वीकार करना चाहिये या उड़कर चला जाना चाहिये–

शिवालय के स्वर्ण कलश पर
काफी अरसे से बैठी
निश्चल चील[2]

जैनदर्शन श्वेताम्बर ओर दिगम्बर दो भागों में बटा हुआ है जो जैन नहीं वह अजैन है अर्थात म्लेच्छ है गंदा है ऐसा जैनियों का मानना है जबकि वास्तविक अर्थ में जो जितेन्द्रिय है वहीं जैन है–

जैन दर्शन के
फूटें बर्तन के पानी की तरह
भीतर आये बाहर रिसते रहे[3]

मानव ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। वह जीवन की विषम परिस्थितियों में आशारूपी दीपक को लेकर जीवन्त रहता है–

भगवान चाहता
तो वह आदमी से भी
अधिक मूर्ख
कोई प्राणी
बना सकता था[4]

तुलसीदास कृत विनयपत्रिका के पद, विष्णु के सहस्रनाम व अभंग तुला राम के के पद सुनने व पढ़ने पर मन को आत्मशांति मिलती है–

पढ़ते हुए तुम्हे
विनय पत्रिका के पद

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृ0 36.
2. वही, पृ0 61.
3. परिवर्तन जिये, पृ0 12.
4. वही, पृ0 36.

सुनते हुए

विष्णुसहस्रनाम का पाठ

अभंग तुकाराम के पद[1]

उत्साही व्यक्ति ही सृजानात्क कार्य कुशलता से कर पाते है निराश व्यक्ति नहीं इसलिए

क्रम आगे बढ़ेगा

कलश किसी दिन

शिवालय पर चढ़ेगा

उदास भले हो जाओं

निराश मत होना[2]
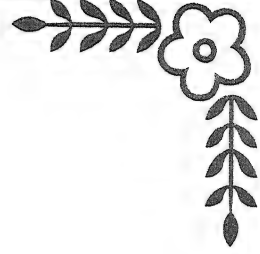
कवि बचपन से शैव (शंकर) व शक्ति (देवी) का उपासक रहा है लेकिन जीवन में उसने क्या खोया क्या पाया इसका वह एहसास नहीं कर पाया।

मैं था अब तक शैव

शक्ति का पूजक था मैं परम्परा से[3]

ईश्वरीय भक्ति का महत्व ध्यान से है चाहे व ध्यान भीड़ व कोलाहल में हो चाहे एकान्त में–

भाव चाहे समूह में

घंटा झालर के साथ

आरती का हो

चाहे एकान्त में

रूदाक्ष की माला पर

जप का।[4]

इस तरह से मैने यह पाया कि भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी समस्त रचनाओं में बिम्बों का सुन्दर सटीक प्रयोग किया है। यदि मै यह कहूँ कि बिम्ब ही उनकी कविता है तो इसमें अति क्योक्ति नहीं है। उनके शब्द बिम्बों के माध्यम से गम्भीर अर्थ को ध्वनित करते है। यह उनकी विशेषता है।

---

1. परिवर्तन जिये, पृ0 42.
2. वही, पृ0 68.
3. कालजयी, पृ0 92.
4. इदं नमम, पृ0 11

सप्तम्-अध्याय

अध्याय–7
भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में प्रतीक विधान

प्रतीक-

प्रतीक अभिव्यंजना की एक पद्धति–विशेष है। आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक शब्द से अभिप्राय के सिम्बल (SYMBOL) शब्द से लिया जाता है। प्रतीक वस्तुतः अप्रस्तुत की समस्त आत्मा या धर्म या गुण का समन्वित रूप लेकर आने वाले प्रस्तुत का नाम है। बिम्ब का सबसे निकटमवर्ती शब्द प्रतीक है। प्रत्येक प्रतीक अपने मूल में बिम्ब होता है और उस मौलिक रूप से क्रमशः विकसित होकर प्रतीक बन जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक बिम्ब अपने प्रभाव में चाहे जितना ऐन्द्रिय और संवेगात्मक हो पर अन्ततः उसकी परिणिति किसी प्रतीकात्मक अर्थ की व्यंजना में ही होता है।

डॉ0 कुमार विमल के अनुसार " जब एक ही शब्द या अप्रस्तुत किसी सम्पूर्ण अर्थ सन्दर्भ को व्यंजित करने की शक्ति अर्जित कर लेता है तब वह प्रतीक बन जाता है।"[1]

काव्यात्मक प्रतीक का सृजन कुछ इस प्रकार होता है कि वे रूपक या बिम्ब के संक्षिप्त संस्करण प्रतीत होते हैं। आरम्भ में उनका प्रयोग बिम्ब या उपमान के रूप में होता है किन्तु आगे चलकर वे उसी अर्थ में रूढ़ होकर प्रतीक हो जाते हैं। बिम्ब ही सिमटकर प्रतीक हो जाता है, तथापि बिम्ब एवं प्रतीक एकार्थक नहीं है। बिम्ब अधिकांश वैयक्तिक कल्पना से निर्मित होते हैं तथा उसी से अर्थवत्ता प्राप्त करते हैं। प्रतीक के मूल में अधिकार तो परम्परागत जातीय चेतना रहती है। प्रतीक विषय का प्रतिनिधत्व मात्र करता है एवं बिम्ब उसका सप्रंग अनुबंगों के साथ चित्रातमक अंकन। बिम्ब विषय के समग्र चित्र होते हैं वे भावादि को मूर्त कर उसे पाठक के प्रति सम्प्रेषित करते है जब कि प्रतीक केवल संकेत ही करके रह जाता है। प्रतीक व्यंग्यात्मक होता है और बिम्ब लाक्षणिक। बिम्ब प्रकृति से ही संश्लिष्ट होता है अतः उसका ग्रहण भी प्रतीक के विपरीत संश्लिष्ट रूप में होता है। प्रत्येक पाठक उसके निकट अपने व्यक्तिगत अनुभव मार्ग से होकर पहुँचता है। इस दृष्टि से बिम्ब, प्रतीक की अपेक्षा अधिक स्वच्छन्द और अनेकार्थक व्यंजक होता है। प्रतीक में एकार्थता होती है और बिम्ब में अनेकार्थता। अतः दोनों की रचना प्रक्रिया में भी अन्तर होता है। प्रतीक अपेक्षाकृत चेतन मन की सृष्टि से होता है, बिम्ब विधान का स्रोत मुख्यतः उपचेतन मन है जो व्यापकता की दृष्टि से शेष दोनों स्तरों से अधिक महत्वपूर्ण होता है। कोई भी नया प्रतीक अपने अभीप्सित अर्थ की प्राप्ति के लिए एक ऐतिहासिक प्रवाह की अपेक्षा रखता है। वह

---

1. सौन्दर्य शास्त्र के तत्व पृ0 सं0 256

निरन्तर प्रयुक्त होते–होते ही नियत अर्थ और निश्चित आकार ग्रहण करता है। इसके विपरीत बिम्ब प्रायः आकस्मिक होते हैं वे समय के सबसे छोटे और अत्यन्त निजी अंश को बांधने का प्रयास करते हैं। बिम्ब विधान बहुत से विश्रृंखत क्षणों का एक समुच्चय होता है, उसका आधार जीवन और जगत की अनेकता में है। इसके विपरीत प्रतीक किसी सूक्ष्म गहरी एकता का बोधक होता है। इसीलिए प्रतीकों की योजना में जाने अनजाने एक तार्किक संगति अवश्य रहती है, परन्तु बिम्ब विधान में तार्किक संगति का पाया जाना लगभग असम्भव है और यदि पाई भी जाती है तो वह उसकी तीव्रता को कम करती है, बढ़ाती नहीं। बिम्ब में ऐन्द्रियता का होना नितान्त अपेक्षित है, किन्तु प्रतीक के लिए ऐन्द्रियता आवश्यकता शर्त नहीं है। प्रतीक मूर्त भी होना आवश्यक है। इसके विपरीत बिम्ब के लिए ज्ञानेन्द्रिय के किसी भी स्तर पर मूर्त होना आवश्यक है। यह मूर्तता केवल दृष्टि विषयक ही नहीं होती नाद, घ्राण और स्वादपरक हो सकती है। प्रतीक किसी वस्तु का चित्रांकन नही करता इसीलिए प्रतीक का ग्रहण सन्दर्भ से अलग और एकान्त रूप में भी सम्भव हो सकता है, पर बिम्ब की प्रेषणीयता उसके पूरे सन्दर्भ के साथ होती है।

विकास की दृष्टि से दोनों में पूर्वा पर ऐतिहासिक सम्बन्ध है एक विशेष बिम्ब किसी एक ही कवि के अनेक रचनाओं में बार–बार दोहराया जाकर प्रायः प्रतीक बन जाता है। होता यह है कि जब एक ही बिम्ब बार–बार कई प्रंसगों में दोहराया जाता है तो वह अति परिचय के कारण अपनी दृश्यता खोकर केवल संकेत या चिह्न रह जाता है। समर्थ कवि इस परिणाम से बचने के लिए नये विषय और नूतन संन्दर्भो की खोज करते हैं। प्रत्येक बिम्ब के भीतर एक प्रतीक अन्तर्निहित होता है और व्यापक प्रयोगों में जैसे–जैसे वह सम्मूर्तता की ओर बढ़ता जाता है वैसे–वैसे उसकी प्रतीकात्मकता स्पष्ट होती जाती है, प्रतीकात्मकता से शून्य बिम्ब अधिक से अधिक कविता के बाह्रय सौन्दर्य की ही वृद्धि कर सकता है, वह उसकी अर्थ संहति को बढ़ाने में सहायक नहीं हो सकता।

प्रतीक का क्षेत्र बिम्ब की अपेक्षा व्यापक है। दर्शन शास्त्र, तर्क शास्त्र, गणित तथा धर्म के क्षेत्र में भी प्रतीक की स्थिति है, किन्तु बिम्ब की स्थिति काव्य तक ही सीमित होकर रह जाती है। सुश्री सुनाने के लैंगर का कथन सत्य है कि " प्रत्येक बिम्ब तत्वतः प्रतीकात्मक होता है।"[1]

भाषा मानव की ह्रदयगत भावनाओं और अर्जित अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का सबलतम् माध्यम है पर मानव मन में जाने अनजाने ऐसी बातें जन्म ग्रहण करती रहती है, जिनकी अभिव्यक्ति वह सामान्य भाषा में चाह कर भी नहीं कर पाता।

---

1. Problems of Art. Susanne Langer. P. 132.

डॉ. देवेन्द्र आर्य :-

का मत है कि "जब भाषा संवेदन जन्य अनुभूतियों को अभिव्यक्ति करने में अपने को कुछ असमर्थ सा पाती है, तब एक ऐसी कलात्मक युक्ति का अन्वेषण किया जाता है जो अमूर्त्त सूक्ष्म और भावप्रवण अनुभूतियों को वाणी का परिधान पहना सकें प्रतीक ऐसे ही अमूर्त्त भावों को रूप प्रदान करता है, वाणी देकर मुखरित करता है।"[1]

प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में हिन्दी शब्द सागर में लिखा है कि" प्रतीयते अनेन इति प्रतीकम्" अर्थात जिससे प्रतीत हो या किसी वस्तु की अभिव्यक्ति हो वह प्रतीक है। प्रसिद्ध वैयाकरण भट्टो जी दीक्षित के पुत्र भानू दीक्षित ने 'अमरकोश' का योग करके प्रतीक शब्द घातु से कीकन् प्रत्यय लगाकर उससे पूर्व "प्रति" उपसर्ग का योग करके प्रतीक शब्द की सिद्धि की है, अर्थात प्रति+इण+कीकन् प्रतीक जिसका अर्थ है किसी की अगोचर वस्तु का प्रतिनिधि। प्रतीक शब्द की युत्पत्ति का उल्लेख करते हुए अपने 'गीता रहस्य' में श्री तिलक महोदय ने लिखा है कि 'प्रति' उपसर्ग के साथ इक क्रिया का योग होने पर प्रतीक शब्द की सिद्धि हुई है, अर्थात प्रति अपनी और इक हुआ अर्थात जब किसी वस्तु का कोई एक भाग पहले गोचर होता है, फिर आगे उस वस्तु का ज्ञान हो तब उस भाग को प्रतीक कहते हैं।"[2]

प्रतीक का अर्थ प्रतिष्ठान अथवा एक वस्तु के लिए किसी अन्य वस्तु की स्थापना। संस्कृत साहित्य में प्रतीक के लिए " उपलक्षण" शब्द आया है। आधुनिक हिन्दी साहित्य विशेषता काव्य में प्रतीक शब्द से अभिप्राय अंग्रेजी के सिम्बल (SYMBOL) शब्द से लिया जाता है। प्रतीक वस्तुतः अप्रस्तुत की समस्त आत्मा या धर्म या गुण का समन्वित रूप लेकर आने वाले प्रस्तुत का नाम है। प्रतीक के लिए हम कह सकते है कि अप्रस्तुत, अप्रमेय , अगोचर, अथवा अमूर्त्त का प्रतिनिधित्व करने वाले उस प्रस्तुत या गोचर वस्तु विधान को प्रतीक कहते है, जो देश काल एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण हमारे मन में अपने चिर साहचर्य के कारण किसी तीव्र भावना को जाग्रत करता है।"[3]

भारतीय विद्वान

हमारे प्राचीनतम् धर्म ग्रन्थ वेदों में भी प्रतीकों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। अनेक ऐसी ऋचाएं ऐसी शक्तियां है, जो पूर्णरूपेण प्रतीकात्मक हैं। वेदों के साथ परवर्ती संस्कृत साहित्य में भी प्रतीक का प्रयोग है, विभिन्न विद्वानों ने प्रतीक के लिए अपने विचार व्यक्त किये हैं–

---

1. हिन्दी सन्त काव्य में प्रतीक विधान– डॉ0 देवेन्द्र आर्य पृ0 सं0 – 17
2. गीता रहस्य – तिलक पृ0 सं0 415
3. आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक विधान– डॉ0 नित्यानन्द शर्मा पृ0 सं0 21

1. विश्व कोश – विश्व कोश में श्री नगेन्द्रनाथ वसु महोदय ने प्रतीक के विषय में लिखा है कि "प्रतीक : (सु0प्र0) प्रतीकं निघातमात्‌दीर्घ :। प्रतीक का शब्दिक अर्थ है अवयव अंग, पता चिह्न, निशान। किसी पद्य अथवा गद्य के आदि या अन्त के कुछ शब्द लिखकर या पढ़कर उस पूरे वाक्य का पता लगाना।"[1]

2. आचार्य शुक्ल : 'ने' चिन्तार्माण' में प्रतीक की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर जिस प्रकार उसके स्वरूप और उसकी विभूति की भावना चट मन में आ जाती है, उसी प्रकार काव्य में आयी हुई कुछ वस्तुएं विशेष मनोविकारों या भावनाओं को जाग्रत कर देती है।"[2]

3. श्री परशुराम चतुर्वेदी " प्रतीको की सहायता बहुधा ऐसे अवसरों पर ली जाती है जब हमारी भाषा पंगु और अशक्त सी बन कर मौन धारण करने लगती है और जब अनुभवकर्ता के विविध भाव शिला से चतुर्दिक टकराने वाले स्रोतों की भांति फूट निकलने के लिए मचलने से लग जाते है, ऐसी दशा में हम उनकी यथेष्ट अभिव्यक्ति के लिए उनके साम्य की खोज अपने जीवन से विभिन्न अनुभवों में करने लगते हैं और जिस किसी को भी उपयुक्त पाते हैं, उसका उपयोग कर उसके मार्ग द्वारा अपनी भावधारा को प्रवाहित कर लेते हैं।"[3]

4. डॉ0 रामधन शर्मा :–कवि जब अपने भावों को सामान्य शब्दों के द्वारा व्यक्त करने में असमर्थ पाता है वह प्रतीकों और रूपको का आश्रय लेता है। प्रतीकों की आवश्यकता प्रायः आध्यात्मिक और दार्शनिक प्रसंगों के वर्णन में अत्यधिक होती है। जहाँ उनकी सहायता से उत्पन्न सूक्ष्म और गहन तथ्यों को संरलता से अभिव्यक्त एवं भावानाओं से परिपूर्ण बनाया जाता है।"[4]

5. कविवर पन्त " प्रतीक अव्यक्त को व्यक्त करने का माध्यम है।"[5]

6. डॉ0 सुधीन्द्र ने प्रतीक की व्याख्या करते हुए लिखा है कि " प्रतीक वस्तुतः अप्रस्तुत की समस्त आत्मा या धर्म या गुण का समन्वित रूप लेकर आने वाले प्रस्तुत का नाम है, प्रतीक अप्रस्तुत का प्रस्तुत रूप में अवतार ही है।"[6]

"हिन्दी साहित्य कोश" में प्रतीक का अर्थ देते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा गोचर वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य

---

1. विश्वकोश–नगेन्द्रनाथ वसु भाग–14 पृ0सं0 546
2. चिन्तामणि – रामचन्द्र शुक्ल भाग–2 पृ0सं0 118
3. कबीर साहित्य की परख– श्री परशुराम चतुर्वेदी पृ0सं0 142–43
4. कूट काव्य – डॉ0 रामधन शर्मा – पृ0सं0 21
5. पत्रावली– पंत–पृ0सं0 41
6. हिन्दी कविता में युगान्तर – डॉ0 सुधीन्द्र, पृ0 सं0 364

अगोचर या अप्रस्तुत विषय का प्रति विधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा यह कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समान रूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रतिविधान प्रतीक, मूर्त दृश्य एवं श्रव्य प्रस्तुत विषय द्वारा करता है जैसे अदृश्य या अश्रव्य ईश्वर, देवता अथवा व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिभा या अन्य कोई वस्तु कर सकती है।''[1]

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों के मतों के आधार पर हम कह सकते है कि प्रतीक का प्रयोग प्राचीन समय से ही काव्य में होता आया है। आज भी प्रतीक अपने विस्तृत रूप में काव्य में अनिवार्यता के साथ विद्यमान हैं।

पाश्चात्य विद्वान

काव्य में प्रतीक का प्रयोग भावाभिव्यंजना की पद्धति के रूप में होता है। पाश्चात्य साहित्य में इसे SYMBOL कहा जाता है। 'प्रतीक' के बारे में पाश्चात्य विद्वानों ने अपने–अपने विभिन्न विचार प्रस्तुत किये है–

1. वैबस्टर के अनुसार :–

''प्रतीक अपने सम्बन्ध, सामंजस्य रूढ़ि अथवा संयोग द्वारा अन्य वस्तु की ओर संकेत करता है, किन्तु उसका लक्ष्य साम्य स्थापित करना नहीं है, वह मुख्य रूप से किसी अमूर्त वस्तु का मूर्त संकेत है।''[2]

2. जार्ज हवैले :–

'' प्रतीक के स्वरूप में प्रत्येक प्रतीकात्मक एवं सांकेतिक वस्तु का समाहार है।''[3]

3. कालरिज :–

रहस्यवादी कवि कालरिज ने प्रतीक की व्याख्या कुछ भिन्न रूप से प्रस्तुत करते हुए उसे अनन्त की अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम माध्यम माना है। उनका मत है कि ''प्रतीक व्यष्टि में विशेष अथवा विशेष में सामान्य अथवा सामान्य में किसी विश्वव्यापी सत्व का आभास देता है और सबसे ऊपर नश्वर में अनश्वर की ज्योति प्रतिभासित करता है।''[4]

कालरिज प्रतीक को अनश्वर की झलक देने वाला मानता है जो अधिक तर्कसंगत और उपयुक्त नहीं है, क्योंकि काव्य में प्रयुक्त किये जाने वाले प्रतीक अधिकतर लाक्षणिक होते हैं और अतीन्द्रिय सत्ता के साथ–साथ भौतिक वस्तुओं और अनुभव को भी व्यक्त करते हैं।

---

1. हिन्दी साहित्य कोश – ज्ञान मण्डल लि0, काशी, पृ0 सं0 471
2. Quted by William Tindllinthe Literary Symbol- Webster P. No. 6
3. Poetic Process - George Whalley, P.N. 166
4. The States Mans Manual Camplete Work. Vol I - S.T. Coleridge P.N. 7

भाषा

4. **श्री ई0जोन्स का मत** है कि " प्रतीक अभिव्यक्ति के समस्त साधनों का एक समन्वित प्रतिनिधि है। यह एक शाश्वत स्थानापन्न है और ऐसे प्रच्छन्न एवं अप्रस्तुत की अभिव्यक्ति है जिसके साथ उसकी सुस्पष्ट समान विशेषताएं या गुण हो।"[1]

5. " बुद्धि अथवा कल्पना के अप्रत्यक्ष क्षेत्र में आभासित विचारों, भावों एवं अनुभूतियों के गोचर चिह्न सा संकेत का नाम प्रतीक है।"[2]

6. **श्री सी0एम0 बाबेरा** का विचार है कि " अति प्राकृतिक अनुभूतियों को दृश्यमान वस्तुओं की भाषा में सामान्य उद्देश्य के लिए नहीं अपितु अतीन्द्रिय यथार्थ को उद्‌बुद्ध करने वाले आसंगों के लिए की गयी अभिव्यक्ति प्रतीक है।"[3]

7. यूनानी तथा रोमन प्रतीकों की व्याख्या करते हुए **"श्री गार्डनर"** लिखते हैं कि "प्रतीक उसे कहते हैं जो देखने या सुनने में किसी विचार भावना या अनुभव को व्यक्त करता हो, जो वस्तु केवल बुद्धि या कल्पना से ग्राह्य हो उसकी ऐसी व्याख्या कर देना कि आँख के सामने आ जाय।"[4]

वास्तव में प्रतीक का उद्देश्य भाव व्यंजना होता है। प्रतीक भाव साम्य के आधार पर निष्पन्न होते हैं। प्रतीक का अर्थ उसकी अपनी अनुभूति के आधार पर स्पष्ट होता है, उसका अर्थ निश्चित नहीं होता क्योंकि कोई भी दो व्यक्ति एक ही प्रतीक के दो भिन्न–भिन्न परिणाम निकाल सकते हैं– जैसे दुःख पीड़ा, निराशा एवं व्यथा के प्रतीक कभी एक और कभी दो भावनाओं को व्यक्त करते हैं, कभी–कभी सब भावनाएं भी व्यक्त कर देते हैं।

यहाँ पर बेवस्टर के कथन को अधिक पूर्ण मान सकते हैं– अदृश्य के दृश्य विधान को हम दूसरे शब्दों में आन्तरिक भाव विचारों तथा अवस्था का बाह्य प्रगटीकरण कह सकते हैं। वास्तव में साधना के महत्वपूर्ण क्षणों में मानस की असीम गहराइयों में से जो कुछ उफन सा उठता है, भावातिरेक में अन्तर का चेतन जाग्रत हो कुछ अनजाना सा गुनगुनाने लगता है, प्रतीक ऐसे महत्वपूर्ण क्षणों को रूप प्रदान करता है उन अनभिव्यक्त भावनाओं का प्रतिनिधि बनकर सामने आता है। प्रतीक मानव मन की गहराइयों से उत्पन्न आत्माभिव्यक्ति का सक्षम माध्यम है। मन की इन प्रबलतम भावनाओं को चित्रकार रेखाओं द्वारा तथा कवि काव्य द्वारा रूप प्रदान करता है और उनके इस कृत्य में प्रतीक उनका सहयोगी बनकर आता है।

---

1. पेपर आन साइको एनालिसिस–ई0 जोन्स–अध्याय 8, पृ0सं0 163
2. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ एण्ड एथिक्स ग्रन्थ 12, पृ0सं0 139
3. हेरिटेज ऑफ सिम्बोलिज्म–सी0एम0 बाबेरा पृ0सं0 210
4. सिम्बोलिज्म–ग्रीक एण्ड रोम–पी0 गार्डनर–पृ0सं0 139

सारांश में हम कह सकते है कि प्रतीक किसी अदृश्य या अव्यक्त सत्ता के दृश्य और भाषव्यक्त रूप हैं यही धर्म बिम्ब का भी है; काव्य में प्रतीक किसी न किसी रूप में सभी कार्य करते हैं, अनुभूति भाव या वस्तु की सम्यक् व्यंजना प्रतीक का उद्देश्य है। प्रतीक अपने काल संस्कृति आदि के प्रतिबन्ध एवं मान्यताओं से प्रभावित रहता है साथ ही काव्य की स्वाभाविगक सरसता को बाधित न कर उसे द्विगुणित करता एवं सरस बनाता है।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि अपने विशेष अर्थ में रूढ़ देश काल एवं संस्कृति आदि की मान्यताओं से प्रभावित काव्य की स्वाभाविक सरसता के पोषक उस प्रस्तुत एवं गोचर वस्तु विधान का नाम प्रतीक है, जो किसी अप्रस्तुत एवं अगोचर वस्तु का प्रतिनिधि हमारे मन में तत्काल उसके समग्र स्वरूप एवं तीव्रभाव को जाग्रत करता है।

प्रतीकों की उपयोगिता के बारे में कहा जाता है कि 'प्रतीक' अभिव्यक्ति का वह सबल माध्यम है जो अनभिव्यक्त भावों को मूर्त रूप प्रदान करता है, भाषा साहित्य, कला धर्म दर्शन यहाँ तक कि मनुष्य जीवन का नित्य प्रति का कार्य व्यवहार भी प्रतीकों का चिर अवलम्बन लिए चलता है। साइमन्स का विश्वास है कि विश्व के आदि पुरूष ने जिस शब्दावली का सर्वप्रथम प्रयोग किया था वह प्रतीकात्मक थी। यो तो मनुष्य प्रारम्भ से ही अपने मनोयोगों एवं भावों को प्रतीक पद्धति से प्रकट करता आया है, किन्तु आधुनिक युग में भी इसको पर्याप्त प्रश्रय मिला है। साहित्यकार प्रतीक प्रयोग द्वारा अपने भावों को सफलता पूर्वक अभिव्यक्ति कर सकता है। वह प्रतीक प्रयोग द्वारा अपने भावों का मूर्त विधान कर सकता है। मानसिक भावों की मूर्तमत्ता के लिए प्रतीकों की उपयुक्तता असंदिग्ध है। आज की कविता में प्रयुक्त 'झंझा' से सामान्यतः वेगवती वायु का अर्थ नहीं ग्रहण किया जाता, अपितु जीवन के समस्त संघर्षो एवं विक्षोमों से परिपूर्ण मानसिक अवस्था का ज्ञान होता है। 'झंझा' शब्द हमारे अन्तश्चक्षुओं के समक्ष निःसन्देह विक्षुब्ध मानसिक अवस्था का चित्र सा खड़ा कर देता है।

स्थायीभाव और संचारी भाव मन की ही वृत्तियां है वे अपने आप में सूक्ष्म हैं कवि द्वारा वे किसी मूर्त वस्तु के माध्यम से ही अभिव्यक्त होते हैं। इन भावों को व्यक्त करने हेतु कवि को प्रतीकों का पल्ला पकड़ना ही पड़ता है।

काव्य में वर्णित रस, भाव, ध्वनि भावाभास भावोदय, भावशान्ति भावसन्धि, भावसबलता, आदि सभी भाव प्रतीकों द्वारा संप्रेषित होते हैं। इससे एक ओर तो कवि के लिए स्थूल वस्तु की सहायता से अरूप एवं सूक्ष्म भावों का प्रकटीकरण सरल होता है दूसरी ओर सह्रदय इन्हीं प्रतीकों के द्वारा कवि निर्दिष्ट अनुभूति या धारणा से तादात्म्य कर लेता है।

आध्यात्मिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में प्रतीकों की महत्ता स्पष्ट है। बहुनामधारी जगत के कण–कण में व्याप्त उस अरूप ब्रहम की अभिव्यक्ति के लिए सामान्य।

भाषा समक्ष और पर्याप्त नहीं, साधना एवं योग की चरग स्थिति में पहुँच कर साधक ने परम रहस्यमय अगोचर बह्रम का वर्णन सांकेतिक भाषा में किया है क्योंकि बहुनाम धाटी होकर भी वह नाम रहित है। समस्त वर्णनों से परे है। जब कि समस्त वर्णन उसी में समाये हुए है। इसी कारण वह मस्तिष्क की शक्तियों से परे है। रहस्यवादी और छायावादी कवियों ने अपने स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकातमक शैली को ही चुना है।

कवि परम्परा में यह बात सर्वत्र देखने को मिलती है कि वह कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों को भर देना चाहता है। प्रतीक हमारे मन में भावों की एक सम्पूर्ण रूप रेखा ही प्रस्तुत कर देते है, साधारण शब्द भावों का इतना विशद और सर्वागीण चित्रण नही कर पाते।

प्रतीकों में लाक्षणिक चमत्कार उत्पन्न करने की अपूर्व शक्ति होती है जिसके प्रयोग से भाषा में लाक्षणिकता और व्यंजकता का विकास होता है यदि प्रतीकों का प्रयोग भाषा में न होता तो न जाने कितने भाव अनकहे अनसुने ही रह जाते क्योंकि प्रतीक कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक कह सकने में समर्थ है। सारांश रूप में हम कह सकते है कि (1) प्रतीक किसी विषय की व्याख्या करते है। (2) प्रतीक किसी विषय को स्वीकृति प्रदान करते है। (3) प्रतीक पलायन का पथ भी प्रस्तुत करते है। (4) प्रतीक चेतन अथवा अचेतन मन में सुप्त किवां दमित आदिम भाव कल्पना को व्यक्त तथा जाग्रत करते है। (5) प्रतीक अलंकारों की भांति किसी उक्ति को उत्कर्ष तथा सौन्दर्य प्रदान करते है। (6) प्रतीक कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों को गति प्रदान करते है सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करते है। अतः प्रतीकों की उपयोगिता सर्वत्र एवं सर्वदा विद्यमान रहेगी।

प्रतीक के भेद

प्रतीकों के परिभाषित करते हुये कहा गया है कि मानव अनुभूति प्रवण प्राणी है। हृदयस्थ विचार उत्त्तेजक होकर शब्दायित होते रहते हैं। अनुभूति की गम्भीरता व्यक्त करने का वैकल्प एवं रसमय स्थिति कभी–कभी भावों की व्यन्जना से इतनी अधिक हो जाती है कि शब्द बौना और छोटा होकर रह जाता है। ऐसे ही भाव सान्द्रता की स्थिति में प्रतीकों का निर्माण होता है। यहाँ हम बिम्बों के वर्गीकरण के साथ प्रतीकों का वर्गीकरण भी करेंगे। यह वर्गीकरण क्षेत्र विषय वस्तु और भावनाओं के आधार पर विशिष्ट विद्वानों द्वारा किये गये वर्गीकरण को ही प्रस्तुत करेंगे। यहा निभ्रान्ति रूप से कहा जा सकता है। कि विभिन्न आयामों की दृष्टि से बिम्बों का जितना अधिक वर्गीकरण या विश्लेषण हुआ है। उतना अधिक प्रतीकों का नहीं। बात यह है कि बिम्ब में जिस ऐन्द्रियता के कारण काव्य के आनन्द का वर्गीकरण किया जाता है। प्रतीक में वह सम्भव भी नहीं है। कुछ शब्दों के द्वारा अभिव्यक्ति विशेष को प्रकाशित करने का काम प्रतीक करता है। अतः प्रतीकों के वर्गीकरण के आधार भी निश्चित हैं। यहा कुछ वर्गीकरण द्रष्टव्य हैं।

प्रतीको के विषय में यह निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि इसका क्षेत्र अन्नत है। अतः उसके भेद बताना भी सरल नहीं है। पाश्चात्य विद्वान अरबन ने प्रतीक के 3 भेद बताये हैं।– 1.वाह्ययस्थ प्रतीक 2.अन्तस्थ प्रतीक 3.अन्तर्दृष्टि युक्त प्रतीक। इन प्रतीकों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वाह्यस्थ प्रतीक वे हैं जिनका उनके शब्दिक अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं होता वे अधिकांशतः संकेत मात्र होते हैं। अन्तस्थ प्रतीक वह है जिनका उन वस्तुओं के आन्तरिक गुणों से सीधा सम्बन्ध होता है। जिनके वे प्रतीक बनाकर प्रयुक्त हुये हैं।

प्रथम प्रकार के प्रतीक सरल और सुबोध हैं इनमें कला और विज्ञान दोनों क्षेत्र के बहुत से प्रतीको का अर्न्तभाव हो जाता है। दूसरे प्रकार के प्रतीको के अन्तर्गत धर्म और नैतिक गुणों के प्रतीक आयेंगे। सी0एम0 बाबरा ने आकार के आधार पर इस प्रकार किया है।

1. शब्द प्रतीक – शब्द मात्र
2. वाक्य प्रतीक – मुहावरे लोकक्तिया
3. प्रबंध प्रतीक – समासोक्ति अध्यवासित रूपक[1]

भारतीय विद्वानों ने प्रतीक को कई दृष्टि से वर्गीकरण किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ज ने प्रतीकों को दो भागों में विभक्त किया है।

1. मनो विकार या भावों को जगाने वाले
2. विचारों को जागृत करने वाले[2]

---

1. हिन्दी सूफी काव्य में प्रतीक योजना पृ0 सं0 80
2. चिन्तामणि भाग–2, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल– पृ0सं0 109

दूसरे शब्दों में इन्हें भावोंद् बोधक और विचारोंद्बोधम प्रतीक कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध में डॉ0 सरोजनी पाण्डेय ने लिखा है कि प्रतीकों का यह विभाजन अपने आपमें मुक्त नहीं है। शब्दों के भावोद्बोधक, विचारोंद् बोधक दोनों गुण अन्योन्याश्रित है क्योंकि अच्छी कविता में जहां विचारोद्बोधक होगा वहाँ भावों ऊर्मि का उठना भी स्वाभाविक ही है। इस प्रकार जिस काव्य में भावोद्बोधन कराने की शक्ति होगी उसमें विचारोद् बोधन की सामग्री अवश्य होगी विचार रहित काव्य मनोरंजन की वस्तु मात्र होगी और विचार प्रधान भावहीन कविता दर्शन।[1]

डॉ0 प्रेम नारायण शुक्ल ने 4 प्रकार के प्रतीक माने है–

1. परम्परागत 2. देशगत 3. व्यक्तिगत 4. युगगत[2]

डॉ0 सुधा सक्सेना ने प्रयोग के आधार पर प्रतीकों के दो भेद और प्रत्येक के पुनः 2–2 रूप बताये है–

1. रूढ़–परम्परागत प्रतीक, साम्प्रदायिक प्रतीक
2. स्वच्छन्द– प्राकृतिक प्रतीक–अध्यात्मिक या रहस्य वादी प्रतीक[3]

डॉ0 सुरेन्द्र माथुर ने सार्व भौम प्रतीक, भावात्मक प्रतीक, अध्यात्मिक प्रतीक, विचारात्मक प्रतीक युग गत प्रतीक भावात्मक प्रतीक शुद्ध अथवा व्यापक प्रतीक एकोन्मुखी अथवा सीमित प्रतीक, अन्योक्ति मूलक प्रतीक, रूपकात्मक प्रतीक, लक्षण मूलक प्रतीक बताया है।[4]

डॉ0 सरोजनी पाण्डेय ने प्रतीक का प्रचलन के आधार पर निम्न भेद उल्लिखित किया है। सार्वभौम प्रतीक, देशारक प्रतीक, साधनात्मक प्रतीक साम्प्रदायिक प्रतीक रहस्यात्मक संकेत सूचक प्रतीक, परम्परागत प्रतीक, रूपात्मक प्रतीक लक्षण मूलक प्रतीक।[5]

डॉ0 देवेन्द्र आर्य ने प्रतीक निर्माण की पृष्ठभूमि में विभिन्न परिस्थितियों का उल्लेख किया है। इस प्रकार जलवायु के आधार पर सभ्यता और संस्कृति के आधार पर ऐतिहासिक एंव सामाजिक परिवेश मनोदशा के आधार पर प्रतीकों का वर्गीकरण किया है।[6]

वस्तुतः भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किये गये वर्गीकरण में कोई भी ऐसा वर्गीकरण नहीं है। जिसे पूर्णतः स्वीकार किया जा सके भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से प्रतीक के भिन्न–भिन्न वर्ग हो सकते हैं।

अतः उक्त वर्गीकरण का समन्वय करते हुये स्त्रोत, क्षेत्र परम्परा प्रयोग और नवीनता की दृष्टि से प्रतीकों के निम्न भेद स्वीकार कर हम आलोच्य कवि की कृतियों का अध्ययन करेंगे।

---

1. हिन्दी सूफी काव्य में प्रतीक योजना–डॉ0 सरोजनी पाण्डेय पृ0सं0 81
2. हिन्दी साहित्य में विविध वाद–डॉ0 प्रेमनारायण शुक्ल–पृ0सं0–472
3. जायसी की बिम्ब योजना–डॉ0 सुधा सक्सेना पृ0सं0 103
4. काव्य बिम्ब और छायावाद पृ0सं0 20
5. सूफी काव्य में प्रतीक योजना पृ0सं0 81
6. सन्त काव्य में प्रतीक विधान पृ0सं0 41

1. सांस्कृतिक प्रतीक– पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक
2. वैचारिक एवं वैज्ञानिक प्रतीक
3. नवीन प्रतीक

इस प्रकार प्रतीकों का वर्गीकरण करते है पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के द्वारा विभाजित प्रतीकों का विवरण प्रस्तुत किया गया है और देखा गया है कि उनके अनेक आधार हे। इनमें से सांस्कृतिक क्षेत्र से पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, वैचारिक एवं वैज्ञानिक प्रतीक तथा नवीन प्रतीकों का उल्लेख कर इन्हीं के आधार पर आलोच्य कवि का अध्ययन किया जायेगा।

1. ऐतिहासिक प्रतीक :-

पहले लिखा जा चुका है कि प्रतीक एक प्रकार के रूढ़ उपमान है। जिनके द्वारा अतीन्द्रिय भावों का मूर्त, से अमूर्त का संवहन एवं प्रस्तुतीकरण होता है और इसकी व्यंजना लक्ष्यार्थ से होती है। ऐतिहासिक प्रतीकों में कवि इतिहास में प्रसिद्ध व्यक्तियों का संज्ञा के रूप में प्रयोग कर सार्वनाविक संज्ञा के रूप में प्रयोग करता है। इस प्रकार उसके सामने ज्ञात अज्ञात ऐतिहासिक तथ्यों, घटनाओं, और नामों का विस्तृत संसार अव्यस्थित रहता है जिससे कवि मनोवांछित अर्थो की वितृप्ति है। इनका पुनराख्यान करता है। भवानी प्रसाद मिश्र प्रयोगवाद के ऐसे कवि है जो गांधीवादी विचारधारा से पूर्णरूपेण आस्था रखते है। देश में जो ऐतिहासिक उथल पुथल स्वातंत्र प्राप्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा नवयुवक सम्राट पं0 जवाहर लाल नेहरू आदि ऐसे नायकों का अभ्युदय हुआ है जो अपने जीवन काल में किवंदंति बन गये है। कवि को लगता है कि समसामयिक ऐतिहासिक महत्व के व्यक्तियों का उल्लेख कर उनकी दृढ़ता कर्तव्य निष्ठा, त्याग और बडप्पन से नई पीढ़ी कुछ सीख सकती है इसी लिये कवि ने गांधी पंचशती' में ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं के विवरण व्यंग्यार्थ रूप में प्रस्तुत किया है जिसके एक ओर गांधी के जीवन की महत्वपूर्ण घटनायें प्रतिबिम्बित होती है तो दूसरी ओर अंग्रेजों की क्रूरता तथा भारतीयों का अदभ्य उत्साह प्रतिबिम्बित होता है। ऐतिहासिक बिम्बों में एक बार स्मरणीय या ध्यात्य है कि कवि को इनके प्रयोग में बहुत सावधानी रखनी होती है। यदि ये मात्र ऐतिहासिक घटनाओं के रूप में चित्रित है तो प्रतीक नहीं बन पायेगा वह अपना वास्तविक अर्थ ले बैठेगा क्योकि ऐतिहासिक समसामयिक जीवन का पर्याय है अतः प्रतीकों के चयन में इस बात का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। खुशबू के शिलालेख में चीजों के विविध रूपों के देखने की दृष्टि कवि ने प्रस्तुत की है जहाँ. वृक्ष या पहाड़ ऊचाई के प्रतिमान दिखाई देते है किन्तु जब हम जवाहर लाल नेहरू महत्मा गांधी या विनोवा भावें के सुदीर्घ काया की ऊचाई को वृक्ष या पहाड़ के समान उपयिम करते है तो ये नाम संकट के समय आश्रय स्थल के प्रतीक बन गये है। ऐतिहासिक तथ्यों से हम भलीं भांति परिचित है

कि अंग्रेजों के दमन चक्र के सामने यह ऐसे व्यक्तित्व रहे है जिन्होनें जन सामान्य को प्रेरित कर क्रूरता की आंधी को दृढ़ता के साथ सामना करने की प्रेरणा दी है। इसी प्रकार कवि ने इन ऐतिहासिक पात्रों घटनाओं का ऐसा ही प्रयोग किया है।

वस्तुतः यह ऐतिहासिक प्रतीक दो प्रकार के सन्दर्भो को सूचित करता है। एक अर्थ तो सीमित होता है तो दूसरा अर्थ संश्लिष्ट होकर प्रतीक व्याख्या करता है।एतद् विषयक कुछ उदाहरण और दृष्टव्य है–

चाहे जैसा दिया सम्भव ही नहीं था
जवाहर का
गांधी जी का या विनोवा का
व्यक्तित्व वृक्षों या पहाड़ का या पहाड़ी का
उनके तने या ऊचाइयों[1]
X X X X
ईसा और गांधी को
जैसी भरनी पड़ी है
और जैसी भरनी पड़ेगी
हमारे पड़ौस के उस लड़के को
जो अपने को कवि मानता है[2]
X X X X
सवाल नचिकेता जैसे
कैसे रोकते है देखूंगा मुझे यम
क्षीण हो गया है सब कुछ मेरा
मगर लगभग अकारण दिये गये
चार–चार इन धक्को से[3]
X X X X
अशोक के शिलालेखों की तरह
आगत
यहाँ तक कि अनागत काल
झरनों की भाषा में बोले
अक्षरशः रस घोले[4]

---

1. खुशबू के शिलालेख पृ0 19
2. वही, पृ0 35
3. वही, पृ0 84
4. वही, पृ0 129

व्यक्ति के जीवन में विविध परिस्थितियाँ आती है जिनका सामना करने के लिये व्यक्ति विभिन्न मनों भाव का आश्रय लेता है। कवि ने रामलीला के मुखौटे के माध्यम से व्यक्ति के चहेरे के नकाब को रेखांकित किया है।

वह तो पहचान में

उस तरह नहीं आता

जैसे रामलीला में

राक्षस का चेहरा लगा लेने वाला

मेरा जाना हुआ

कोई आदमी[1]

समाज में मनृष्य अपनी प्रतिष्ठा अस्तित्व हेतु अनेक अकाण्ड ताण्ड़व करता है। उसके इस प्रकार के कार्यो को सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतीक के माध्यम से व्यक्त किया है जिसमें कुण्ड़लिनी जागरण और हथेली पर रखा आवले का प्रतीकात्मक प्रयोग है–

सारे ब्राह्मण्ड को

छान डालने की धुन में

कुछ अपने भीतर

डुबकी लगा लेते थे

कहते है

वे कुंडलिनी जगा लेते थे

और उनके लिए सब /हथेली पर हारे

ऑवले की तरह हो रहता था[2]

कवि ने संध्या की किरणे सप्तर्षि तारें पक्षी की उड़ान के प्रतीकों से मन की महत्वाकाँक्षायें हृदय की पुकार और मन के उल्लास को उक्त प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया गया है।

संध्या की स्वर्ण रेखियों का

अवसान न जाने कब होकर

हर इंच–इंच पर अलग उजाला बो–बोकर

कितने तारे नक्षत्र पुंज सप्तर्षि शुक्र मंगल निकले

अंतिम पुकार भरकर नभ में

---

1. इस की आग, पृ0 103
2. वही, पृ0 132

कोई पंछी उड़ गया और
जुड़ गया एक मेला मन में
मैं दीर्घखास गतवाक्य–हास
कविता ने जैसे मुझे हुआ[1]

प्रजातंत्र के लिये जिस उन्मुक्त वातावरण की आवश्यकता होती है वह अंग्रेजी शासन में सम्भव नहीं था। इसलिये कवि ने नवल वधू से उपभिमत कर उसके घूंघट से आच्छादित एक फूल की तुलना की है–

उसने धानी साड़ी पहन ली है
और मुह पर घूंघट डाल लिया है
कल वह एक चुपचाप कली थी
आज वह हंसता हुआ एक फूल है
उसे आने दे मुझ तक
उसे रोको मत टोको मत वह मेरी प्रिया है।[2]

अंग्रेजो की दमनकारी नीति, सतता का दुपर्योग व्यंजित करने के लिये कवि ने औरंगजेब का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है क्योकि दोनो समान रूप से दमननीति पर विश्वास करते थे–

किंतु जब संतान औरंगजेब हो जाती है
तब वरदान देने की शक्तियां खो जाती है[3]

अंग्रेजो ने फूट डालो और राजकरो की नीति अपना रखी थी। भारत की स्वतंत्रता किसे दी जाये। कौन यहाँ शीर्ष राजनेता होगा। इस पर हिन्दू मुसलमानों ने भेद डालने के लिये देश व्यापी कूटनीति का उपयोग किया दिल्ली, मास्को, न्यूयार्क, सर्वत्र यह बहस का विषय बनाया गया कि सत्ता का हस्तांतरण मुगलों को देना चाहियें। इसी बहस के मजे का प्रतीकात्मक प्रयोग मो0 रजा के माध्यम से किया गया है–

बहसों का मजा
नहीं ले पाये मुहम्मद रज़ा
क्योकि वे मर गये बहसो के युग के आगे
भाग तो अब हमारे आपके जागे

---

1. गॉधी पंचशती, पृ0 132
2. वही, पृ0 234
3. वही, पृ0 247

कि उठते बैठते बहसों का आलम है

आगे–पीछे ऊपर नीचें

मुह रखो बंद आंखे रखों मीचें

मगर बहसों के सहस्र बाहु

तुमको रहेगें खीचें छाती तक[1]

अधिनायक वादी प्रवृत्तियाँ अपनी सत्ता को स्थापित रखने हेतु शक्ति का दुपर्योग करते है। हिरोशिमा और नागशाकी में हुआ नरसंहार इतना लोभ हर्षक था कि आज उसके कारण ही अनेक देश समस्याओं के निराकरण हेतु युद्ध को एकमात्र निदान मानते है। अंधरी देहो को चमकाना अत्यन्त सार्थक प्रयोग हुआ है–

जितने मन बदल सकोगें तुम

उतने प्रकाश आवरा अंधेरी देहों को चमकाएगें

यदि प्राण आदमी के न बदलने पाये तुम

तो नये–नये नागाशाकी धमकायेंगे

संहारशरण, निर्माण तुम्हारें होंगे सब[2]

मृत्यु की अनिवार्यता के लिये कवि ने काल के गाल का रूपक प्रयुक्त किया है जिसमें रोम और मिश्र की सभ्यता के साथ ही महाभारत की अरठारह अक्षौहिणी सेना सामाप्त हो गयी। काल के गाल की विकरालता का यह व्यंजनात्मक प्रयोग–

सब कुछ समा जाता है

काल के गाल पर

द्वापर की अठारह अक्षौहिणी सेना

मिश्र की सभ्यता

रोम का साम्राज्य

कल का जन्मा हुआ

बच्चा

आज का

खिला हुआ फूल[3]

अधूरे चाँद के डूबने का दृश्य शीर्षक कविता में आकाँक्षाओं के अतृक्त रहने की बात

---

1. गॉधी पंचशती पृष्ठ – 268
2. वही, पृ0 277
3. अंधेरी कवितायें पृष्ठ–31

कही गयी है। और इस हेतु उद्दयी पुरूष को ऐतिहासिक इमारत ताज कह कर मन को उद्वेलित करने वाली भावनाओं को सवांरने की अभिव्यंजना इस कविता में है–

तूफानों को देखा है उसने

सवारां है माथे पर

ताज की तरह उसने

उल्काओं को

और जानता है वह

अस्ताचल के दोनो ओर

जो वेदियां है बलिदान की[1]

हृदय की दर्द भरी आह्लादित करने वाली उमंग व्यक्ति को इतना आप्यायित करती है जैसे पौराणित गंगा व्यक्ति के पापो, अल्मस, को अपने स्पर्ष से नष्ट कर देती है और व्यक्ति किसी अतीन्द्रिय लोक से आती हुई गंधर्वो के गान को सुनकर मस्त हो जाता है। यहाँ दर्द भरी तरंग के लिये पौराणिक प्रतीक गंगा और हर्ष से रोमांचित मन के अह्लाद के कारक तत्वों में से गंह्यार्वो के गान को प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है।

ऐसी गंगा

धरती की नहीं आकाश की

हल्की भी ऊष्मा से अलिप्त

स्निग्ध एक नये प्रकाश की

हुअन

भुवन भर मेरे अस्तित्व को

रोमांचित किये है अनुक्षण

गंधर्वो का गान

निविड रहस्य से भरे किसी वन में[2]

भारतीय लोक गाथा में गंधर्व किन्नर अप्सरायें एक विचित्र लोक का निर्माण करती है। इन्ही पौराणिक बिम्बों का प्रतीकात्मक प्रयोग कर कवि इस भवाटवी में न फंसकर इस अतिशयता के तट से दूर रहना चाहता है। कवि ने अपं.–वहित अलंकार के माध्यम सेइस रहस्यमय लोक की रचना कर अपने को इससे विलग करने की बात कही है

लगता है

देवता नहाने आते है इसमें

---

1. अंधेरी कवितायें पृष्ठ–107.
2. इदं न मम् पृष्ठ– 20.

गाते है बैठकर

इसके किनारे गंधर्व

तैरती है अप्सरायें

अगर होता है ऐसा तो बताये मुझे

इस सरोवर की आत्मायें,

क्योला गया है मुझे भटकाकर यहाँ

इसके किनारे[1]

दाता जब याचक की कल्पना से परेदान देता है तो वह आनन्दित तो होता हीहै किन्तु उसके सामने यह समस्या खड़ी हो जाती है कि इस महार्ध दान को लेकर वह कहाँ जाये। शरीर जैसे महार्ध दान को लेकर व्यक्ति इसे अपनी मुट्ठी में तो नहीं बन्द कर सकता। इस प्रकार यहाँ ब्रम्ह, ब्रम्हाण्ड, तथा दाता और याचक का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है—

मैनें

हाथ इस भाव से

नहीं पसारा था बस

पसार दिया था तुमने

जाने क्या सोचकर मेरे हाथ में

ब्रम्हांड रख दिया

अब कहाँ घूमू मैं

इसे मुट्ठी में बांधे—बाधे[2]

सन् 1917 में रूसी क्रांति एक ऐतिहासिक तथ्य एवं सत्य है जिसमें लाखों निरीह, निर्पराध जनता खून साम्यवाद लाने के बहाने बहाया गया है। इसी रूसी क्रांति का ऐतिहासिक प्रयोग इस कविता में किया गया है। और व्यंग्य तो यह है कि इस कविता को जनवादी रूप दिया गया है—

क्योंकि रूस तब

हमारे यहाँ

आज से भी ज्यादा रहेगा

खून तब नदीं के पानी से भी

कुछ ज्यादा सम और गहरा बहेगा

---

1. इदं न मम्, पृष्ठ संख्या— 57.
2. वही, पृ0सं0 119.

बेशक समता की दिशा में
क्रांति के प्रभात से
पहले वाली निशां में[1]

जैने दर्शन का स्यातवाद् अत्यन्त प्रसिद्ध है। गांधी दर्शन में भी बौद्ध, जैन और अद्वक्त दर्शन का अपूर्त समन्वय है किन्तु यह अहिंसा क्रूर के सामने कायर सिद्ध हो जाती है। इसी बात को लेकर कवि ने गांधी वादी विचारों की विडम्बना रेखांकित की है–

कचूमर निकल गया है जिनका
क्या कह दे
अपने उन गांधी वादी विचारों का
घूरा देख रहे है उनका
खड़े है उसकी छाती पर
सच्चे प्रंजातंत्र वादी[2]

भवानी प्रसाद मिश्र ने धर्म परिवर्तन शीर्षक कविता में नारेबाजी पर कशाघात किया है। पहले धर्म के साथ संस्कार भी बदल जाते थे किन्तु आज परिवर्तन के नाय पर थोथे आदर्श और खोखले नारे स्वार्थ सिद्धि में सहायक हो रहे है। धर्मोपदेशक धर्मान्तर पर इतना उपदेश करता है कि उन नारो या सिद्धान्त वाक्यों पर वह स्वयं नहीं आचरण कर पाता। इसी बात को कवि उपदेश, नारे, जुलूस, भीड़, इत्यादि शब्दो के प्रयोग से आधुनिक जीवन दर्शन को व्यंजित किया है।

पहले उपदेश
सीधे–सीधे दिये जाते थे
और वे पूरी निष्ठा से
लिये जाते थे
या लोग उनका उल्लंघन करते थे
उनमें उतनी ही निष्ठा रखे रहकर
आज उपदेश देने के शास्त्र
रूढ़ है
उपदेश्य तत्व आज धर्म पर नहीं
सजा पर आरूढ़ है
अपनी बात को वह खुद
झूठ मानता है मगर
कहता है उसे इतनी जगहों पर
इतने माध्यमों से इतने ठंगो से
गीतों में गूँथता है उन्हे
रंगता है रंगो से[3]

---

1. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–11
2. वही, पृ0सं0–12.
3. वही, पृ0सं0–26.

एकोब्रम्ह द्वितीयों नास्ति। का उद्‌घोष भारत वर्ष में अति प्राचीनकाल से होता चला आ रहा है। सर्वम खलविदम् ब्रम्ह का नारा शंकराचार्य, कबीर, नानन, विवेकानन्द ने किया है। और यही धारा गांधी के मुखरित स्वरों से व्यंजित हुई है। कवि ने इसी धारा के लिये इन ऐतिहासिक वृत्तियों का प्रयोग प्रतीक रूप में किया है।

है कभी शंकराचार्य
कभी नानक कबीर
वह आजी जातीहै हम तक
होकर अधीर
वह कभी विवेकानन्द
कभी है रवि ठाकुर
फिर कभी गूंजने लगती है बनकर
गांधी का गौरव स्वर[1]

बौद्ध धर्म में कहा गया है कि क्रोध को अक्रोध से जीतना चाहियें। किन्तु इस तथ्य की व्यवहारिक अनुभूति बिना क्रोध के नहीं होती। अशोक का कलिंग विजय इस तथ्य को परिभाषित करता है। महत्वाकाँक्षा की पूर्ति हेतु, देवोनाम प्रिय होने का अर्थ बोध हेतु लाखो नर नारी युद्ध अग्नि में आहुत बन गये। इस लोभ हर्षक दृश्य से अशोक की प्रतिहिंसा करूणा में दृवित हो गयी। कवि ने इसी घटना का उपयोग प्रतीक रूप में किया है।

वह सोंच रहा था किस आशा में
मैनें यह सारा कर डाला
एक शस्त्र श्यामल धरती का कोना–कोना
रक्त–मांस–भज्जा–कबंध
दुर्भिक्ष–रोग भय से भर डाला
जिसने युद्ध नहीं देखा है कभी
योगी नहीं भयानकता जिसने
उसकी भवरों में पड़कर[2]

यह ऐतिहासिक सत्य है कि भारत वर्ष में न जाने कितनी जातियाँ आयी, उनके साथ संधि विग्रह हुये। भारत वर्ष की उदारमना संस्कृति ने समान धर्माचरण का मंत्र सिखा कर सबको अपनी धारा में मिला लिया। इस ऐतिहासिक और सांस्कृतिक तथ्य की व्यंजना तथा सामाजिक समरसता के भाव को कवि ने कविता में इस प्रकार किया है।

द्रविड़ आर्य शक हूण यवन सब जाने मैनें
सबके साथ संधि विग्रह के क्षण आये
सनमाने मैनें
साथ रहा हर एक जाति के
सबका रहना सहना समझा

---

1. कालजयी, पृ0 15.
2. वही, पृ0सं0 75.

देखे सब के धर्म आचरण
करना समझा कहना समझा
किस जाति समुदाय धर्म में
कहना करना एक न पाया
इसलिए मन प्राण विकल ही रहे
भले तन हुआ सवाया।[1]

तात्पर्य यह कि कवि ने अशोक के शिलालेखों से लेकर औरंगजेब तक ईस्टइण्डिया कम्पनी से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक की ऐतिहासिक घटनाओं का प्रयोग कर अपने दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

सामाजिक प्रतीक :-

अपारे काव्य संसार कवि रेब प्रजापति के अनुसार कवि भी प्रजाति सृष्टिकर्ता होता है। प्रजापति द्वारा रचित यह दृश्यमान जगत जितना वैविध्यपूर्ण है उतना ही कवि रचित काव्य संसार तद्‌वत ही है। समाज में स्त्री–पुरूष, विविध सम्बन्ध, प्रतिनिधि रूप रूढ़ियां अंध विस्वास, मान्यतायें इसमें मिलती है। अन्तर यह होता है कि दृश्यमान संसार की घटनायें घटित होकर अपना अर्थ खो देती है जबकि कवि उन्ही घटनाओं की पुर्नव्याख्या अपने काव्य में करता है वहाँ वे अपनी नई अर्थ छवियाँ देने लगती है। भवानी प्रसाद मिश्र के सामाजिक प्रतीक स्त्री पुरूष के विविध मनाभावों, आशाओं और आकाँक्षाओं तक फैलें हुये है जिसमें एक ओर शरीर की थकान जर्जर जीर्ण–शीर्ण मकान से उपमित है तो दूसरी ओर मृत्यु को पकड़ने के लिये एकाग्रचित्त से की जाने वाली प्रार्थना समाहित है। इसमें शान्त भाव से जिन्दगी के साथ गंठबंधन तो एकाकी जीवन के अनेक खण्ड चित्र भी है। अस्तित्ववाद के कारण धीरे–धीरे व्यक्ति एकाकी पन से जूझने लगता है और जीवन उदधि में डूबता–उतराता रहता है। तंरगायित होने वाली लहरे उन क्षणिक शुभ चितंको का प्रतीक है जो कभी व्यक्ति की कुशल क्षेत्र पूंछ जाते है। कवि ने आधुनिक सामाजिक जीवन की नीरसता के लिये प्रकृति क्षेत्र से ग्रहीत महासागर डूबना उतराना और लहरों का अत्यन्त सटीक रूप में प्रयोग किया है।

जिन्दगी
उदासी और थकान शरीर की
ईंट हिलाने लगी है
मकान की
भगवान की इच्छा अलग चीज है
मेरी इच्छा अलग[2]
X X X X
दुनिया पूरी की पूरी
एक हिलती डुलती हुई नाव है
तूफान में पड़ी हुई[3]

---

1. कालजयी, पृ0सं0 93.
2. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 69.
3. वही, पृ0सं 19.

X X X X

अकेले रहते रहते अब नहीं रहा हूँ
यानें उतरा रहा हूँ
जिन्दगी के ऊपर–ऊपर
जिन्दगी में डूब नहीं रहा हूँ
जिन्दगी के महासागर का किनारा
चाहता हूँ अभी सूना रहे
लहरे आती जाती रहे केवल
तबियत का हाल पूछनें वालों की तरह[1]

जीवन के क्रम से एक तरफा बातचीत में कवि ये कहना चाहता है कि उसने ईश्वर के समक्ष अपने सभी कृत्य निष्कपट रूप से व्यक्त कर दिया है। परिणाम स्वरूप मनुष्य के होने बनने और मिटने की सभी अवस्थाओं से वह पार कर गया है। यह बात हम हवा में तलवार मांजने के समान कष्टप्रद होती है। इस उक्ति को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

सुनाने की बाते
एक के बाद एक मैनें
सूत कर रखी है मैनें तलवार की तरह
मगर हवा में वार करों
तो झटका लगता है अपने ही हाथ में
इसी लिये अब समेटूंगा मैं
तुमसे अपनी एक तरफा बातचीत
इतना ही कहकर
कि आदमी के होने
और बनने और मिटने
की जो अवस्थायें है
उनमें सीधी है सबसे
अवस्था मिटने की[2]

समाज में रहकर हर व्यक्ति की कुछ न कुछ अभिरूचिया विकसित होती है। इन्ही अभिरूचिया के दायरें में रहकर वह जिन्दगी के स्वप्नों को पूरा करता है। भवानी प्रसाद मिश्र ने जुलाहें और उसकी तारों की बनावट और बुनावट की उपमा इन्ही रूचियों से दी है। व्यक्ति अपनी महत्त्वाकाँक्षाओं की पूर्ति हेतु स्वप्नों का जो जाल बुनता है उसमें वह अपने को किसी से कमतर नहीं मानत। इसमें चाटीं–चीटीं छोटे–छोटे मन और अभिलाषाओं के प्रतीक है जो व्यक्ति को क्षणिक सुख दे जाते है।

जब मैं अपनी रूचियों को बाद चुनता हूँ
हो समझो एक आसमान बुनता हूँ
धरती भर को ढांक सकने वाली
रूचियों को चुनने का मतलब

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0सं0 82.
3. वही, पृ0सं 92.

चलना है रास्ता
बचाकर चीटीं–चीटीं तक को
समझना है दूसरों के मन की पीड़ा[1]

फूलों का उपयोग ईश्वर के समक्ष नैवेद्य की तरह समर्पण की तरह है तो इसकी सुगन्ध से मन की उदासी भी दूर की जा सकती है। कवि ने वृत्त से फूल को इसलिये नहीं विलग कर पाया क्योंकि वह उसकी शोभा डाली में ही देखना चाहता है। इसी प्रकार हम ईश्वर से अलग होकर अपनी सत्ता अलग. नहीं रख सकते। इसी प्रकार अंधेरे और उजाले में कुछ लोगों को बात करते हुये कवि उनकी विद्धता पर उतना ही अभिभूत है जैसे आनन्द के अनोखे सागर में प्रकाश की कोई गागर डूब जाये–

मगर तोड़ नही पाया मैं
कभी अपने लिये फूल
और बड़ी देर से
खड़ा हूँ इसके पास
लगभग उदास[2]
X X X X
उन्हे सुनो तो लगता है
मौत है पीना पूषण की रश्मियों को
सिमट जायें अगर
किसी ढब से रश्मियां
तो हम सब डूब जाये जाकर
आनन्द के उस किसी अनोखे सागर में
प्रकाश की गागर के[3]

यहाँ पर कवि ने श्रमिक किसान पूंजीपति की घूर्तता भरी शोषण नीति डंडे के बल पर बेगारी कराने के विकल्प में से किसे चुने इस भाव की व्यंजना के लिये विकल्प कविता लिखी गई है। समाज में आर्थिक शोषण के नये तंत्र प्रतिक्रिया बाद या विज्ञान वाद या विज्ञान वाद कहलायेगें। इन दोनों शब्दों से कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि आज का सामाजिक जीवन वर्गवाद के शिकंजे में कस गया है।

किस की बात करे
कवि की
किसान की
शब्द की एम की
या पैसे की बाजार की
राजनीति की चालाकी की

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृ0 98.
2. वही, पृ0सं0 106.
3. वही, पृ0सं0 107

सरासर झूठ की
डंडे के बल पर कराये जा रहे
श्रम की
चुनना मुझे है[1]

समाज में व्याप्त स्नेह, वात्सल्य, प्रेम अपने मूल धर्म अर्थ को किस प्रकार खो बैठे है। यह बात प्रेम के खिलाफ कविता में व्यंजित है। समूहबद्ध प्राणी को नियमित और संयमित जीवन व्यतीत करने के लिये जो नियम बनाये जाते है अन्त में उनके विरूद्ध नियम नियामक मनुष्य ही उठ जड़ा होता है। तथा उसके विरूद्ध उसकी भावनाओं को दमित करने कुचलते के लिये जो जन सैलाव उड़कर सामने आता हे उसमें भी वही रूढ़ वादी व्यक्ति होते है। भवानी प्रसाद मिश्र ने अत्यन्त सहज रूप में प्रेम में मिलने वाली तड़फ और उसके विद्रोह में तूफान की चर्चा की है–

तकलीफों का
कितना बड़ा रेला
मुझे हर प्यारी चीज से
छुड़ाने के लिये
कितना बड़ा तूफान
और कैसी–कैसी लहरे
सिर्फ एक आदमी को
डुबाने के लिये[2]

सामाजिक जीवन में मनुष्य की असंख्य आकाँक्षायें होती है जिनका महत्व हवा की तरह ही होता है। हवा के अभाव में जैसे दुष्कर है उसी प्रकार भावना या आकाँक्षा हीन जीवन भी। चलती हुई आंधी को शीघ्रता से भागते हुये मनुष्य को उपमित कर कवि ने बिम्ब के साथ प्रतीक का सटीक उपयोग किया है–

शून्य हो गयी है सृष्टि की
ज्यादातर व्याप्ति
और हवा को भागना पड़ रहा है
बदहवास होकर
उसे भरने[3]

कवि की मान्यता यह है कि समाज में कुछ व्यक्ति नायक, श्रेष्ठ होते है जिनका अनुकरण समाज करता है। शेष व्यक्ति अमत्वहीन हो जाते है। ऐसे रूढ़ विचारहीन मनुष्य कूड़े–कचरे के समान है जो जमाने की गति के अनुरूप विचारों की आंधी के सामने दृढ़ता से खड़े हो सके। मुश्किल के वक्त की कविता यही बात प्रतिपादित की गई है जबकि वह चाहता है सीप के अन्दर मोती बनना। यहाँ सागर, सीप, और मोती क्रमशः समूह रीति–रिवाज और

---

1. टूस की आंग, पृ0सं0 63.
2. वही, पृ0सं0 84.
3. वही, पृ0सं0 91.

व्यक्तित्व के प्रयुक्त रूप में प्रतीक है–

कुछ भी न बने तो
हम ऐसा करे
आदमी न रहे
हो जाये कूड़ा कचरा
और बहे जमानें की
तेज हवा के साथ गति में[1]
X X X X
हो जाता है या नहीं
जैसे देखिये मोती पैदा
सागर–भर निष्प्रयोजन
तैरते रहने वाली सीप में
एकाध सीप में तो
हो ही जाता है और
कई द्वीपों की
एकाधिक सीपों में[2]

कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने कविता की सीमा और संभावना प्रकट करते हुए यह प्रयास किया कि पहले के महाकवि तुलसी, सूर, मीरा, अपनी कविता के संस्कारों से समाज को बदल देते थे। किन्तु आज का कवि संवेदना शून्य हो रहा है। कविता की सामर्थ्य का प्रतीकात्मक उपयोग करते हुए कवि ने यह भावना व्यक्त की है। कि अच्छा श्रेष्ठ कवि वही है जो अपने विचारों से आकाश को गुंजायमान कर दे–

संवेदना से भर हजारों लाखों लोग
अपने को कविता लिखने में जुटा दे
और गुंजा दे सारा आकाश
संवेदना से भर कहो
वेदना से भरे कहो
शब्दों से
बदल जाये तब वातावरण
लोग तब किसी भी रणभावना से
रिक्त हो जाये
न रहे कोई छोटी बड़ी स्पर्धा
बदलने लागे आपाधापी
प्रेम और पारस्परिकता में[3]

---

1. टूस की आग, पृ०सं० 91.
2. वही, पृ०सं० 93.
3. वही, पृ०सं० 117.

समाज में रहने वाले व्यक्तियों के मन अलग–अलग भावनाओं से सम्प्रक्त रहते है। इस मन रूपी समुद्र में सु और कु विचार उसके जीवन की दिशा ही बदल डालते है। कवि ने सागर, तूफान, फेन, कहर, इत्यादि शब्दो का प्रतीक समाज में रहने वाले अजनबीपन और अकेलेपन के दर्द को सहन करने वाले व्यक्ति के प्रतीक के रूप में व्यक्त किया है–

तब जो
लहरे उठती है
मब डालती है वो मन को
अपने पन के एहसास पर
फेन छा जाता है
याने भीतर मन में
भंयकर एक
तूफान आ जाता है।[1]

गांधी पंचशती में कवि ने प्रायः ऐतिहासिक घटनाओं को प्रतीकात्मक रूप में प्रयोग किया है। नया तूर्य नामक कविता में नवीन नेता का उदय सूर्य के प्रतीक रूप में किया है जिसके आलोक में भारतीय समाज स्वतंत्र प्राप्ति हेतु सन्मद्र हो उठा है–

जो कुछ कल था वह सारा का सारा
बदल चुका है अब तक
जब तक इसको समझोगे तुम
और तनिक सी बदल चुकेगी
इस क्षण की यह धारा तब तक
नये सूर्य को नये तूर्य को अनुक्षण समझो[2]

कृति कर्ता का स्मारक होती है। जैसे सूर्योदय के पूर्व आकाश में कुछ धुधलापन होता है ऐसे ही भारतीय राजनीतिक छितिज में महात्मा गांधी का उदय इस प्रकार हुआ जैसे नक्षत्रों की आँखों में आगत सूर्य के प्रकाश का भय समां गया हो। ऐसे अप्रतिम नायक सूरज के समान समाज को प्रकाशित करेगा और गंगा की तरह उसका जीवन इस प्रकार पवित्र रहेगा जैसे पाप नासिनी गंगा सब को पवित्र कर देती है–

है हवा में कुछ किरन हल्का स देखा–सा
तारको की आँखों में रवि का अदेसा–सा
हिम रही है कभी कुछ मुसकान पीती सी[3]
तुम सारे अमरों से ज्यादा अमर रहोगें
जब तक सूरज है प्रकाश दोगे तुम तब तक
जब गंगा है तब तक तुम विमल बहोगें[4]

भारतवासियों की औदा सीन्य प्रवृत्ति के अनुरूप महात्मा गांधी ने सत्याग्रह और अहिंसा का जो आन्दोलन चलाया। उसमें सर्वथा अकल्पनीय उत्तेजना और उत्साह जन

---

1. टूस की आग, पृ0सं0 127.
2. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 40.
3. वही, पृ0सं0 65
4. वही पृ0स0 78

मानस में दिखाई पड़ा। दीन हीन दरिद्र नारायण जब संगठित होकर अपनी गुरू गंभीर गर्जना करेगा तो व्यक्ति ही नहीं आकाश भी थराने लगता है। मिश्र ने निमंत्रण के गीत में अभागों की टोली दुनिया, का मालिक, नया घर, नया खेत, को प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार स्वतंत्र उल्लास और उसकी प्राप्ति (15 अगस्त 1947) का जन मानस इतना उद्वेलित रहा होगा इसे हम युगो की अंधेरी निशा, नया प्राण लेकर आने वाली हवा, किरन का खिलना, कमल दलो का प्रफुल्लित होना अपने मूल अभिधा के साथ आर्थी व्यंजना के माध्यम से भारतीय जन मानस का आल्हाद प्रकट किया है–

अभागों की टोली का सुर जब चढ़ेगा
तो दुनिया का मालिक नया कुछ गढ़ेगा
भले वह न चेते हमें चेत होगा
हमारा नया घर नया खेत होगा
छिनाये गये को चलो छीन लाओ
कि गा–गा के दुनिया को सिर पर उठाओ
चलो गीत गाओं चलो गीत गाओं[1]

X X X X X

उठो आँख खोलो कि पौ फट गयी है
युगों की अंधेरी निशा कट गयी है
नया प्राण लेकर हवा आ रही है
नया गान लेकर सबा आ रही है[2]

यह स्वतंत्रता की प्राप्ति अनेक आशा, आकाक्षाओं का परिणाम थी किन्तु दुर्भाग्य वश राजनीतिक शीर्ष नेताओं के हठवादिता के कारण सुराज नहीं मिल सका, जनता की कामनायें पूर्ण नहीं हो सकी फिर भी कवि उत्साहित होकर शेर का प्रतीक भारतीय जन मानस को बना कर कहता है–

कभी तुम बड़े शेर थे ठीक है
उसी ख्याल में डूबना ठीक है
जमाना कहाँ से कहाँ जा चुका
जरा भाग अपना बदलते चलो
लहरों में लपटों में पलते चलो[3]

रक्त कमल नायक कविता में समाज में रहने वाले व्यक्तियों की विभिन्न मानसिकताओं का परिचय दिया है। कुछ व्यक्ति दुखी है तो कुछ स्वप्नों में मस्त है तो कुछ नदीं के समान अविरल धारावत है तो कुछ समुद्र के समान कभी शान्त तो कभी अशान्त मन वाले होते है। समुद्र की एक विशेषता है कि उसमें चाहे कितना पानी नदियां पहुचा दे अथवा सूर्य द्वारा चाहे कितना जल अवशोषित कर लिया जाये उसका जल कभी घटता बढ़ता नहीं इसी प्रकार के कुछ मन होते है कवि ने लिखा है–

---

1. गॉधी पंचशती, पृ0सं0 92.
2. वही, पृ0सं0 112.
3. वही, पृ0सं0 147.

समुद्र रहता है शान्त
अशान्त भी कभी–कभी
वैसे में उगा हूँ
बहा हूँ
रहा हूँ बंधा या खुला
लगभग पचास बरस[1]

समय का पहिया नामक कविता में कवि ने प्राकृतिक परिवर्तन विविधि रूपों को प्रस्तुत किया है। यह समय ही वर्तमान को भूत और भविष्य बनाता है। यह कभी टिकता नहीं कवि ने ज्योतिपुंज प्रतीक के माध्यम से महापुरूष का आर्विभाव और तद्जन्य उसकी चिंता का सार्थक प्रयोग इस कविता में किया है–

ज्योतिपुंत महाकाश में
उगती है ज्वलन्त
कोई अनजानी सूरत
और जागती है
उसके साथ–साथ
चिन्ता
हमारी हर सुबह को
चिड़िया की तरह
जागता है दर्द रोज़ के जैसा
लेकर अंगड़ाई
बच्चा मन की
चीखता है जिन्दगी[2]

समाज में रहने वाले व्यक्ति की अनेक सपने और आकाँक्षायें होती है। स्वप्न जो अयथार्थ है, अवास्तविक है, मिथ्या है, झूठ है। सूरज के प्रकाश में जिनका कोई अस्तित्व नहीं है। जबकि सूरज में समाज में नई चेतना का संवाहल करने वाला माना जाता है। किन्तु कभी–कभी दिवा स्वप्न देखने वाले व्यक्ति सूरज से कुछ भी नहीं सीखते है।

अभी सूरज निकल रहा है
नये दिन का साफ सुथरा सूरज
और आवाजें सचमुच की
पुकार रही है मुझे
मगर अब वापस लौटना भी चाहूँ मैं।
तो लौट नहीं सकता
बहुत दूर निकल आया हूँ
सचमुच के देश से
और ताकत का हाल ये है
कि नसे तो नसे
हडिड्यों तक में घड़कता लगता है
मुझे अपना दिल[3]

---

1. अंधेरी कविताएं पृष्ठ–135.
2. वही, पृ0सं0 – 36.
3. वही, पृ0सं0 43.

देश की नई तस्वीर प्रस्तुत करने के लिये कवि ने चित्रकार को प्रतीक रूप में चित्रित किया है। चित्रकार रंग और दृश्य से चित्र बनाता है। इसी प्रकार कवि भी श्रमिक क तरह खून–पसीना बहाकर जीवन में नया रंग भरता ह।

चित्रकार मेरे जनम और करम आर उन दोनो के बीच का
इन दिनों
न खून से खुश है
न पसीने से
न धोलता है वह
आसुओं में रंग
तंग गलियों की बदबू
और अंधेरे को
इकट्ठा कर रहा है वह
मेरी किसी नयी तस्वीर के लिये[1]

समाज में बायोवृद्ध पेड़ के सृदश होते है। जैसे पेड़ तूफान और वर्षा से रक्षा करता है। उसी प्रकार बयोवृद्ध भी हमें सामाजिक सुरक्षा देता है–

बड़े पुराने पेड़ो के बीच से
गुजर रहे है हम
और तूफान तेज हो रहा है
कोई चारा नहीं है
तूफान से बचने के लिये
पेड़
वैसे भी
कोई सहारा नहीं है[2]

व्यक्ति और समष्टि के लिये प्रायः परम्परित रूप में बूँद और समुद्र का प्रतीक रूप में प्रयोग किया जाता है। कवि मिश्र जी ने संतु लहर कविता में व्यष्टि के समाष्टि में विलीन करने की भावना का वर्णना सिंधु और लहर से किया है। जैसे समुद्र और लहर में कोई अन्तर नहीं है ऐसे ही आत्मा–परमात्मा का सम्बंध भी आदि काल से व्यंजित किया जा रहा है–

विराट् किसी
तरल रूप सिन्धु की लहर
आत्मा के मेरे तट
तोड़ रही है
तकलीफ हो रही है मगर
आवश्वासन मिल रहा है एक
कि लहर
रूप से अरूप को
जोड़ रही है।[3]

---

1. अंधेरी कवितायें, पृष्ठ–87.
2. इदं न ममं, पृष्ठ – 27.
3. वही, पृष्ठ– 50.

समाज में रूढ़िया अंध विश्वास तथा सामाजिक सम्बन्ध परस्पर इतने गहरे भाव–बोध से जुड़े है कि उनको अलग करना कठिन प्रतीत होता है। धरती के नीचे गहराई में अवस्थित जड़े रस खींचकर वृक्ष के शीर्षक तक पहुँचाती है। इसी प्रकार व्यक्ति भी सामाजिक समरस होकर अपने परिवेश से जीवन्तता प्राप्त करता है।

शरीर की इस हालत में
डालकर धरती में जड़े
रस तक खींचना पड़ेगा
और सींचना पड़ेगा
अपने आस पास को
उस रस से[1]

फूल वृत्त पर खिला अपने चरम सौन्दर्य को व्यक्त ही नहीं करता अपितु वह कल कल की नियति का भी प्रतीक है कि उसे धूल में मिल जाना है। इसी प्रकार व्यक्ति अपने रूप, गुण यौवन शक्ति, से क्षण भर के लिये अपने को अमर होने का चाहे जो सुख उठा ले अन्त में उसे समाज के कंधे पर चढ़कर श्मसान घाट पहुँचाता है। इस मूल को स्वीकार नहीं करता।

धूल भी हूँ मैं
फूल भी हूँ मैं
और कोरी भूल भी हूँ मैं
रात को कोहरा बन कर नहीं
दिन को गीत बनकर
छा जाऊँगा
गा जाऊंगा हिम्मत से भरे
किसी क्रांति गीत की कड़ी
ठिठुरती हुई घड़ी में
रास्ते पर चलते चलते
या खिल जाऊंगा बनकर फूल
एकाएक
काँटों में पलते पलते[2]

गायें कोई गीत नायम शीर्षक में कवि ने यह प्रतिपादित किया है भक्ति के सीधा–सादे गीत सुनकर मनुष्य आत्मालोचन के लिये विवश तो होता ही है क्योकि ऐसे गीत उसके जीवन के शास्वत क्षण होते है। कवि ने तुलसी, सूर, और कबीर, के गीतों की नई पीढ़ी की दृष्टि से अप्रासंगिक मानने के पीछे यह तर्क दिया है नई पीढ़ी के गीत चाहे कितने आधुनिक हो जाये लेकिन एक दिन ऐसा आता ही है जब मनुष्य के पैरों के नीचे से धरती खिसकने लगती है–

तुलसी मीरा सूर और कबीर के
पुराने गीत
पीले पड़ने लगे

---

1. इदं न ममं, पृष्ठ–61
2. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–21.

खून पिये हुए सुर्ख चेहरे
भांपकर गये बीते गीतों के
नये अभिप्राय[1]

समाज निर्माण की प्रक्रिया का प्रतीकात्मक अर्थ व्यक्त करते हुए कवि ने यह व्यंजित करने का प्रयास किया है कि सत्ता के मद से चूर व्यक्ति छोटे–छोटे संगठनों को बनाकर स्वयं बड़ा नेता बन जाता है जो जितना ही शक्ति सम्पन्न होता है उतना ही उसका महत्व बढ़ जाता है का प्रतीकात्मक प्रयोग अत्यन्त सटीक बन पड़ा है

शक्ति से मद पैदा होता है
सो भी आदम कद पैदा होता है
और फिर गठित होती है
आदमकद मद की टोलियाँ
ढाली जाती है उनके हाथों से
तलवारें और गोलियाँ
तय होताहै बडप्पन
जातियों और देशों का
शस्त्रों के अम्बारों से
दो और दो चार से
इनकार करता है ऐसा मद[2]

भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य की यह विशेषता है कि वह साधारण सी बात के लिये साधारण ही प्रतीकों का प्रयोग कर असाधारण अर्थ की व्यंजना करते है। जिस प्रकार नदीं में पानी के साथ अच्छी बुरी वस्तुयें बहती रहती है और फिर भी पानी स्वच्छ रहता है। इसी प्रकार व्यक्ति के मन में सुविचार या कुविचार आते अवश्य है किन्तु मन निर्लिप्त नहीं हो पाता–

जैसे नदी में
सिर्फ पानी नहीं बहता
फूल पत्ते लकड़ी नावें
दीप और
मुर्दे तक बहते है
इसी तरह मन में
सिर्फ विचार नहीं रहता
सुंगध और प्रकाश
और विश्वास और उदासी
सब रहते है एक साथ
वहाँ बहाव का आधार पानी है
यहाँ प्राण है और वाणी है[3]

1. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–33.
2. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–52
3. वही, पृष्ठ –65.

बादलों से ढकें नायक में कवि ने बादलों के रंग बिरंगे चित्र खींचकर उनके माध्यम से श्रम की सार्थकता और उसके सुखद अनुभूति का चित्रांकन किया है। समाज के सभी वर्ग यदि परिश्रमशील हो जाये कोई किसी का शोषण न करे अपने हाथों की कमाई खाने में ही आनन्द और गर्व अनुभव करे यही मनुष्य की चरम् सार्थकता है–

खीचते हुए रिक्सा
कई खुले खेतों में
धरती को चीरते है हल से
सीते है अनाज से
और फल से और आदमी है
ये सब कन ऐसा होगा
कि हम सब सचमुच के
आदमी हो जायेगें
सब कठिन श्रम करके
रोटी खायेगें
कब ऐसा दिन आयेगा
जब बैठा ठाला आदमी
आदमी नहीं गिना जायेगा[1]

प्रकृति के छोटे–छोटे बिम्बों को प्रतीक रूप में प्रयोग करने में भवानी प्रसाद मिश्र अत्यन्त सफल कवि है। प्रातः कालिक सुखद स्पर्श वाली किरन का प्रतीकात्मक प्रयोग कर प्रसन्न मन के आल्हाद का चित्रांकन इस प्रतीक के द्वारा हुआ है–

हल्की सुनहली किरन ने
हवा का आंचल हुआ
और हुआ है
वातावरण का मन
किरन हो जाने का[2]

सवाल यह है कविता के माध्यम से शहर और गॉव की विषमता का प्रतीकात्मक चित्रण किया गया है। देश में उन्नति के लिये अरबों रूपयों से पंचवर्षीय योजनायें चलती किन्तु उनका परिणाम कितना खोखला थोथा और अयर्थाथवादी है। गरीब और गरीब हो गया है अमीर और अमीर हो गया है। यहाँ सुदर्शन, व्यवस्था चमकीला, जर्जर, कीला इन शब्दों के माध्यम सेवर्ग वैषम्य के साथ शहरी और ग्रामीण व्यवस्थागत दोष का व्यंग्यात्मक चित्रण कवि ने किया है–

उन्होने जो मजबूत
और सुदर्शन
एक व्यवस्था स्त्री है
जिससे शहर

---

1. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–79.
2. वही, पृष्ठ–85.

रोज–रोज सम्पन्न होता है
और चमकीला भी
जिससे गॉव
रोज–रोज जर्जर होता है
और पीला भी
उस व्यवस्था का क्या होगा[1]

बिन्दुसार से राजाज्ञा लेकर अशोक जब उज्जैनी पहुँचें वहाँ की नैसर्गिक वन्य सुषमा से अविभूत हो उठे और उनके मन में वहाँ सामाजिक जीवन में जो विषमता व्याप्त थी उसे नष्ट करने का दृढ़ संकल्प जाग उठा नीचे कविता में कोमल किस लय, पत्थरों में प्राण, लहर का मचलना, मरूस्थल में ज्वार भॉटा उठ आना। इन प्रतीकों के माध्यम से कवि ने उच्चावच्च अवस्था में समरसता के भाव को व्यंजित किया गया है–

उस दिन सूरज–किरन
उतरते ही फूलों को रंग दे चली
उस दिन हवा प्राण को मानों
सुधा निमज्जित संग दे चली
कोमल किसलय हिले कि
पत्थरों के प्राणों में प्यार भर उठा
लहर मचलकर उठी कि
मरू के जीवन में भी ज्वार भर उठा।[2]

जिजीविषा सामाजिक जीवन की ऐसी प्रवृत्ति है जो सर्वत्र पायी जाती है। यद्यपि सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं में निर्वाण या मोक्ष को चरम काम्य माना जाता है। समाज में रहकर दुख अभाव झेलकर पता नहीं किस आनन्द की प्राप्ति की आशा में मानव जीता है। इसी भाव को व्यक्त करने के लिये कवि ने ग्रीष्म वर्षा, साध, अपराध, सुकृत इत्यादि शब्दों का ऐसा प्रयोग किया है जिनसे समूह की मानसिकता प्रतिबिम्बित होती है–

ग्रीष्म वर्षा शीत में
जो नग्न है छाया रहित है
किस लिये वह चाहता है यह
कि जीवन बचा रहता
किस लिये वह कष्ट सहता ही चला जाता है?
आशा कौन सी है, साध क्या है
और जो न्यायी कहा जाता है
उससे अगर हम पूंछे
कि वह अपराध क्या है
दण्ड जिसका अन्यतम दरिद्रय दुःख है रोग है

---

1. परिवर्तन जिये, पृष्ठ--104.
2. कालजयी, पृष्ठ– 57.

कौन से वे सुकृत जिनका फल
विभव, धन–धान्य सुख का भोग है[1]

अमर होने की कामना मनोविज्ञान में शास्वतमूल वृत्ति कही गई है। मैक्ड्गल ने यह प्रतिपादित किया है कि पिता पुत्र में अपनी अमरता का भाव देखता है। इसी प्रकार उच्च वर्ग राजा, कुआँ तालाब बावड़ी बनवाकर इसी भावना से तृप्त होते है। अशोक ने गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों को पत्थरों की शिलाओं में उत्टंकित कराकर सर्वत्र स्थापित किया था जो उसके अमरता की कहानी आज भी कहते है। मन की पीड़ा को दुख द्वंद पत्थर की लकीर को शाब्दी एवं आर्थी व्यंजना के द्वारा अमरता का प्रतीक कहा है–

जहाँ–तहाँ कण–कण में भर दो
तो वे कालातीत बनेगें
किसी समय फिर से फूटेंगे
बद्ध शिलाओं से निर्झर की तरह
कभी सहसा छूटेंगे
और भरेगी उसकी वाणी
कोलाहल से ऊपर उठकर[2]

समुद्र की लहरों में नामक कविता में कवि ने समाज में रहने वाले व्यक्तियों से क्षणभंगुरता पर प्रकाश डाला है। प्रायः प्राकृतिक उपमानों के द्वारा दृश्य बिम्ब को रूपायित कर फिर उसके माध्यम से प्रतीकात्मक अर्थ व्यंजना मिश्र जी की निजी विशेषता है। उदृवेलित समुद्र में सूरज का आस्थिरता होना जीवन की क्षणभंगुरता को व्यंजित करता है। कवि ने अत्यन्त सरल शब्दों से बिम्ब बनाकर इस कविता का प्रतीकात्मक अर्थ रूप में व्यक्त कर दिया है–

समुद्र की लहरो में
सूरज का शरीर
जैसे अधीर लगता है
X X X X
कर्ता की इच्छा से कर्म का होना
ऐसा ही है जैसे शेष नाग का ढोना
मूलक का भार[3]

जीवन में दुख–द्वंद उत्थान–पतन हर्ष–विषाद, ये शास्वत तत्व है जिनका योग व्यक्तियों को करना ही पड़ता है। हर्ष में हर्ष आनन्द, उल्लास में व्यक्ति में जो जोश और उत्तेजना होती है विपरीत अवस्था में वह सक्रियता निष्क्रिय हो जाती है। इस भाव की व्यंजना के लिये सूरज की किरण को प्रतीक रूप में प्रयोग किया है–

बिना कुछ सोचें
उतर तो पड़े हम नीचे
किरनों की तरह

---

1. कालजयी, पृष्ठ– 83.
2. वही, पृष्ठ– 100.
3. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–34.

मगर अब उठ नहीं पा रहे है ऊपर
किरनों की तरह[1]

लोकेषणा व्यक्ति की चरम आकाँक्षा है इस भावना की अभिव्यक्ति के लिये कवि ने सूरज का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है क्योंकि डूबते हुए सूरज की ललिमा काफी देर तक बनी रहती है। इसी प्रकार उसे क्या नाम दू नामक कविता में नक्षत्र मण्डित आकाश को कामना से युक्त मन से उपमित किया है। प्रतीक कितना दूर तक अपनी अर्थ छवि देता है निम्नलिखित दोनों कविताओं में दृष्टव्य है–

डूबे जब मेरा सूरज
तो छायी रहे उसकी लाली
शाम के बाद भी दो चार पहर[2]
X X X X
भरा था वातावरण जिसमें
डूब की तरह हरा था
और कोमल[3]

प्रतीकों की दृष्टि से भवानी प्रसाद मिश्र की कवितायें वैविध्यपूर्ण है। इसमें जीने से लेकर मरने तक की सामाजिक जीवन की विविध अनुभूतियों, भावनाओं और क्रिया कलापों के चित्र प्राकृतिक प्रतीकों से व्यंजित किये गये है। तीर, निरभ्र, आकाश हल्का लाल बादल, चहरे की चमक, में उपमा अलंकार के द्वारा हर्ष और विषाद को एक साथ व्यंजित किया गया है–

तीर की तरह छूटकर प्राण
बिंध गये एक उड़ते हुये गीत में
X X X X
हल्का लाल बादल
और लाल खून का सा धब्बा
उसके चेहरे पर दमक रहा था[4]

कवि ने प्यार के लिये आग का प्रयोग किया है। जीवन में कर्मठता विपरीत परिस्थितियों में भी खड़े रहकर उनका सामना करने का अदम्य साहस इस प्यार में होता है इसे हम चाहे मन की आग या भीतर का प्रकाश कहे किन्तु इसकी अनुभूति व्यक्ति को कष्ट सहिण्णु बना देती है–

प्यार जिसे लोग भीतर की आग
और भीतर का प्रकाश कहते है।[5]

टूटा लटका या फाटक नामक कविता में सूरजमुखी का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है। कवि सुन्दर स्त्री के लिये इस उपमान का प्रयोग किया है। स्मरण अलंकार के माध्यम से सौन्दर्य के गति अविमूत होने और प्रातः काल पुनः उसके देखने की लालसा का चित्रण निम्न

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–43.
2. वही, पृष्ठ–45.
3. वही, पृष्ठ 51.
4. वही, पृष्ठ 53.
5. वही, पृष्ठ 59.

कविता में किया है–

तब से ऐसा भाया है
सूरजमुखी का मुखड़ा
कि जहाँ दिख जाता है
ताजा और टटका वह
तो मन थोड़ी देर
भटका–भटका फिरता है
और आ धिरता है आखों के आगे हर बार
वही प्रातः काल
वही टूटा और लटका सा फाटक
वही एक बगीचा[1]

सौन्दर्य उसके प्रति आकर्षण तथा जिज्ञासा ये तीनों मनोभाव इतने पुराने है कि इनके प्रति कौतूहल आज भी लोगों के मन में है। आम्रमंजरी में बौर अभी आई नहीं है किन्तु भौरे और कोयल उसके आकर्षण से खिंचकर पता नहीं कहाँ से चले आते है। कवि ने कोयल का प्रतीक रूप में प्रयोग किया है जिसमें सुगन्ध के प्रति तीव्र गाढ़ा अनुबंध है और वह आम्रपत्तों में छिपकर प्रिय का आहवान करती है। इसी प्रकार समाज में सौन्दर्य के प्रति आकषर्ण और युवकों के हलचल को कवि ने यहाँ पर रेखांकित किया है।

महक से खिचकर जाने कहाँ से आ जाती है
कुहलती कोयल
मच जाती है माटी मारों के भीतर अजब हलचल
भिद जाते है पाषाणी अतल तक इसके तीर
उनके तौर[2]

मोह से अधिक नामक कविता में कवि ने यह निरूपित करने का प्रयास किया है कि यह मनोभाव सर्वाधिक शक्तिशाली होता है। इस मोह के कारण व्यक्ति इतना विवेक शून्य हो जाता है कि उसे ऐसा लगता है कि उसके क्रिया कलापों को कोई चुनौती नहीं दे सकता है। प्रस्तुत कविता मं सूरज इसी मोह का प्रतीक है–

सूरज हमारे इशारे पर
निकलता डूबता है शायद
पहाड़ियाँ जो तरल नहीं है
सो इसलिए कि हम उन पर
चढ़ सके धूमें फिरे नाम आंके[3]

नौका बिहार पर अनेक कवियों ने अलग–अलग दृष्टि से अपनी रचनायें प्रस्तुत की है किन्तु यहाँ भवानी भाई ने नौका बिहार के समस्त गाते हुए गीतो को सुनना उससे प्राप्त आनन्द की उपलब्धि, का चित्रांकन अधिक सजगता से किया है। क्योंकि नौका बिहार के बाद

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–60.
2. वही, पृष्ठ सं0–69.
3. वही, पृष्ठ सं0–73.

नाव से उतर कर उसे रस्सी से साथ गड़े हुए खूटें में बांध देना ही कर्म शेष रहता है। इसी बिम्ब का प्रतीकात्मक प्रयोग कवि ने किया है–

और जब आये पल उतरने के
तो घांट पर बांध देना तरी
पुराने नये गीतों से भरी
फेंककर रस्सी उनकी कड़ी की
चाँद के उस पार तक[1]

प्रस्तुत कविता में निरर्थक वस्तुओं की अनुपयोगिता का प्रतीकात्मक प्रयोग वृक्ष के माध यम से किया है। समाज में जो कुछ अनपयोगी है वह स्थिर नहीं रह पाता नष्ट हो जाता है। वृक्ष की हरी डाली का प्रतीकात्मक प्रयोग इसी अर्थ का व्यंजना करता है।

हरी डाली वृक्ष की
फूलों से फलों से
सदा खाली रहे
तो उसे कोई
सिर्फ छाया के लिए
नहीं बढ़ने देता।[2]

सांस्कृतिक प्रतीक :-

आदि काल से न जाने कितने क्रियाकलापों को सम्पन्न कर मनुष्य ने सभ्यता के अनेक सोपानों को पार किया है। वस्तुतः उसे दो स्तरों में जीना पड़ता है। शारीरिक स्तर पर, दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विभिन्न वस्तुओं के अविष्कार और क्रियाकलाप आते है तो मानसिक स्तर पर चिंतन, विचार, आत्मा–परमात्मा सम्बन्धी क्रिया कलाप या पद्धतियाँ निर्मित होती है। संस्कृति में उक्त दोनों तत्व आ जाते है। वस्तुतः संस्कृति किसी जाति देश के व्यक्तियों के चरम शक्तियों के उपलब्धि का सुदीर्ध है। इसके अन्तर्गत खान–पान से लेकर, वस्त्राभूषण तथा आत्मा परमात्मा सम्बन्धी क्रिया कलाप या विचार आते है। कवि इन्ही सांस्कृतिक तत्वों की वितृत्ति हेतु उस क्षेत्र के परिभाषिक शब्दों का प्रयोग आधुनिक सन्दर्भ में करते है। जैसे आत्मा के लिये हंस या चकई अथवा नव वधू का प्रयोग सांस्कृतिक क्षेत्र से ग्रहीत है। भवानी प्रसाद मिश्र भारतीय संस्कृति पर पूर्ण आस्था रखने वाले गांधी वादी विचारक है। समाज, प्रकृति, का सूक्ष्म निरीक्षण उन्होनें किया है। सांस्कृतिक प्रतीकों के अन्तर्गत हम ऐसे ही कुछ प्रतीकों के उदाहरण देकर उनकी व्याख्या करेगें जिनसे भारतीय संस्कृति के किसी न किसी पक्ष का उद्घाटन किया गया है। इस हेतु कवि का बहुपठित होना बिना किसी पूर्वाग्रह के सांस्कृतिक क्षेत्र शब्दों का प्रयोग करना कवि की निजी मानी जाती है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है–

कवि ने पद्यात्मक भूमिका प्रस्तुत करते हुए यह कहने का प्रयास किया है कि नाम रूप से परे किसी ईश्वर की खोज सूक्ष्म तर मन की शक्ति द्वारा हो सकता है। जिसे पाकर मन को आत्मोप्लब्धि होगी। सांसारिक नश्वरता पर टिप्पणी करते हुए कबीर की पंक्ति को

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–86
2. वही, पृष्ठ संख्या–96.

उद्वधृत कर प्रत्येक आत्मा की सार्थकता पर प्रकाश डाला गया है–

चलती चक्की में
कबीर की
कौन चीजें कब पिसे
काम किसके आ जायें
यह किसको मालूम[1]

हिमालय मन की उस उच्चावस्था का प्रतीक है जहाँ पहुँचकर मन के सारे ताप कल्मश नष्ट हो जाते है और शेष रह जाता है भौतिक तीर्थ नदी, पहाड़ जिनके माध्यम से मन पुनः ऊपर की ओर उठने की प्रेरणा ग्रहण कर सकता है–

हिमालय के खड़े रहने का ढंग
उसका मन जाहिर करता है
ओकारेश्वर होशंगाबाद या मण्डला में[2]

कवि ने नीचे की पंक्तियों में वैदिक युगीन यज्ञ कर्ण का सांस्कृतिक महत्व निरूपित किया है। स्थूल रूप में बनी बेदी उस पर पड़ने वाली समिधा से उत्पन्न अग्नि की ज्वाला स्वाता और स्वधा इस बिम्ब को कवि ने अपने आखों में विद्रोह की आग को अधिक ज्वाजत्यमान बताया है क्योंकि उसमें तो आहूत ही नष्ट होती है जबकि आग की लपट में स्थूल संसार नष्ट हो जाता है–

आखों की आग भी मेरी
अलग है इस वेदी की ज्वाला से
स्वाधा और स्वाहा
दो शक्तियाँ है
साधरणतया[3]

पुस्तक के नाम पर लिखी गई लम्बी कविता एक वृहत परिवेश को प्रस्तुत करती है। आगत अनागत से परे व्यक्ति का तेजस्वीरूप वैदिक या पौराणिक युगीन चंदन चर्चित ब्राह्मण के स्वरूप के सदृश दिखता है। जो आज भी विषाम्त युग में दर्शनीय है–

दिखता है जैसा
चंदन चर्चित
तेजस्वी
किसी ब्राह्मण का माल
दिख सके
क्षण दो क्षण
घूल और धुएँ से मरा
आज का हमारा
काल
लोगों को[4]

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ–11.
2. वही, पृष्ठ–19.
3. वही, पृष्ठ–68.
4. वही, पृष्ठ–135.

शब्दों के तल पर नामक कविता एक प्रकार से साहित्य विकास की गतिविधि को प्रस्तुत करती है। वस्तुतः साहित्य में शब्द और अर्थो के समन्वय से प्राप्त शब्दार्थ ही मानव भावों की विहप्ति कर सकता है। यहां पर सर्प, समुद्र, गरुण, तारा जैसे–पौराणिक शब्दों का प्रयोग कर समुद्र मंथन के उपरान्त अर्थरूपी अमृतोलब्धि का चित्रांकन किया गया है।

बन गये है डोंगी या नौका या जहाज
जब जैसा जरूरी लगा है उनको
प्रायः पहुंचा दिया है उन्होंने मुझे पड़ावों तक
मगर पड़ाव कुछ
गंतव्य तो नहीं है मेरे
नहीं ले जा रहे है गंतव्यों तक
मुझे मेरे शब्द
सौंप कर अर्थो को गति सर्प की
समुद्र की गरुण की
तारा के प्रकाश की[1]

सत्य प्राप्ति हेतु न जाने कितने लोग वलिदानी बन गये क्योंकि उसका मार्ग तलवार की धार के समान तीक्ष्ण होता है। पाश्चात्य संस्कृति में सत्योपलब्धि के लिए ईशा को क्रूसो पर लटकाया गया तो सुकरात को जहर का प्याला पीना पड़ा है। यहां पर कवि ने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि स्वतंत्रता प्राप्ति सत्य को पाने के लिए न जाने कितने सुकरातों को जहर पीना पड़ेगा। इसी सत्य की विवृत्ति निम्नलिखित पंक्तियों में की गयी है–

जहर पिला पिलाकर समूची संस्कृतियों को
हम प्रतिष्ठा में बढ़ते हैं
तुमने हमारी बातें क्यों पढ़ी क्यों सुनी
तुम्हें हमारी बातें क्यों पढ़ी क्यों सुनी
तुम्हें तो काम रहता था तुम्हें तो काम आता था
तुमने हमारी बातें क्यों सुनी[2]

ऊपर कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति में आत्मा को दुल्हिन कहा गया है। प्रस्तुत कविता में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात जो नये सत्व की उपलब्धि होगी शासन की आत्मा बदल जायेगी। आशा के नये दूत जन सामान्य के ऑसू पोंछ सकेंगे और भूतों का राज्य समाप्त हो जायेगा। कवि ने दुल्हन आत्मा, भूत, आकाश गंगा, सांस्कृतिक क्षेत्रों से शब्दों को प्रयोग कर एक नये शासन रूपी फूल खिलने की बात कही है –

उस दिन धरती दुलहिन की तरह आरास्ता था
उसी दिन पहला फूल फूटा था
उस दिन जीवन विहीन दीन कल्पों का भयानक
स्वप्न टूटा
और केवल एक ही फूल के बल पर

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ–152.
2. गॉधी पंचशती, पृष्ठ–253.

थल पर जल पर शायद नभ में भी
एक कोने से दूसरे कोने तक
आना जाना हो रहा था आशा के दूतों का
कि समाप्त हो गया है राज्य जीवन विहीन भूतों का
अब धरती पर गंगाए उतरेगी आकाश से
निज्य नया सृजन होगा माटी मे सर्वनाश से[1]

सूरज और लड़का नामक कविता में कवि ने वामन अवतार के साथ विराट पुरूष वामन द्वारा धरती के नायने की घटना का प्रतीकात्मक प्रयोग सूर्य के माध्यम से किया है।

सफेद लम्बी टांगों वाला सूरज
धंटो रौंदता रहा धरती
और फिर जानें क्या हुआ
डूब गया समुन्दर के गहरे नीले पानी में
वहाँ, जहाँ चला रहा था जाने किस जरूरत से
एक लड़का नाव तब से[2]

नये साल की बधाई नामक कविता में उस रश्मि पर प्रकाश डाला गया है जब अंग्रेज लोग नये वर्ष के आगमन पर हर्ष व्यक्त करते हुए एक दूसरे का बधाई देते थे। जिसका अनुकरण अंग्रेज गुलाम मानसिकता वाले व्यक्ति आज भी करते है। क्योंकि भारतीय परम्परा नया वर्ष चैत्र शुक्ल कवि ने किया है–

गाता है अंगरे जी में नये साल की बधाई
और हमारा गॉव ताकता है उठाकर मुंह चारो ओर
कि यह अटपटी आवाज किस तरफ से आयी
मगर हमें क्या मालूम पड़े न जिनके न हाथ
न पांव है न सिर है न आँखें
पीठें ही पीठें है जिनकी कंधे ही कंधे है जिनके[3]

स्वातंत्रयोत्तर समाज में पंचवर्षीय योजनाएं, गरीबी दूर करने के नारे, तथा देश के विकास के लिये शासन और देश वासियों द्वारा जो कार्य किये गये वह कवि को विकास की व्यर्थ भाग दौड़ लगती है। बसन्त और पतझड़ प्राकृतिक प्रतीक अवश्य है किन्तु प्रयोग उनका सांस्कृतिक दृष्टि से हुआ है क्योकि यहाँ तो बसन्तोत्सव को मदनोत्सव के रूप में मनाने की परम्परा रही है–

मैं तुम्हें अपना बसन्त देता हूँ
और पतझड़ मांगता हूँ
उदारता नहीं है इसमें कोई
एक खोई–खोई सी धुन है मेरे बसन्त मेरे लिये
मैं कभी इसके मारे पलभर उदास नहीं रह पाया

---

1. गॉधी पंचशती, पृष्ठ–259.
2. वही, पृष्ठ–289.
3. वही, पृष्ठ–351.

उदासी के मौसम में भी हसंता फिरा हूँ
पकड़कर हवा का आंचल[1]

बेचारी चेतना नामक कविता में कवि ने मानव मन में निहित चेतना उसकी सत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि यह चेतना अत्यन्त दुर्घष शक्ति रखती है। समुद्र हवा और फूल जैसे कोमन कठोर शक्तियाँ इसके सम्मुख पराजित हो जाती है। दर्शन के क्षेत्र में ऐसी ही शक्ति का प्रयोग ही–

समुन्दर
और हवा
और फूल
यही है इसकी परम शक्ति
कि कुछ नहीं रहता
अनुकूल
इसके अपने परम रूप पर आ जाने पर
तब सब इसका
विरोध करते है।[2]

चलते– चलते नामक कविता में कवि ने एक बालक के बचपन से लेकर युवावस्था तक की आकाँक्षाओं को गीत लिखे है जिसमें कभी आशा तो कभी निराशा कभी सुख तो कभी दुख आते है। इनसे परे जो व्यक्ति होते है उन्हे सांस्कृतिक क्षेत्र में सिद्ध पुरूष कहा जाता है। वे राग द्वेष से परे इसी का चित्रांकन कवि ने किया है–

एकाध को छोड़कर
ज्यादातर
मेरे जैसे ही सिद्ध हुए
याने केवल
स्नेह से बिद्ध हुए
बंधे रहे आपस में
चतुर मुझे कुछ भी
कभी नहीं भाया
न औरत
न आदमी
न कविता[3]

विचार का पंछी नामक कविता में अनेक सांस्कृतिक प्रतीकों का वर्णन हुआ है जिसमें पूजन–सामग्री देव विषय भावनायें बृंदावन, मोर, (कृष्ण से सम्बंधित) नामों का उपयोग कवि ने किया है। यह चेतन पक्षी कभी आकाश में उड़ता है तो कभी डरकर किसी कोटर में छिप जाता है–

पूजन की भावनायें तक
जगाता है वह

1. गॉधी पंचशती, पृष्ठ–371.
2. अंधेरी कविताएं – पृष्ठ–13.
3. वही, पृष्ठ–133.

कभी–कभी भीतर
बृंदावन के मोर की तरह
किसी धन की ध्वनि पर नाचंता है
मंडल देता है मन के विस्तार भर
फैले और लगभग स्थिर डैनों से
और यह सब रास आता है मुझे[1]

ईश्वर के समक्ष, स्तवन, प्रार्थना, श्रवण जैसे कर्मकाण्ड प्रत्येक संस्कृति में मान्य है। इनसे मन में आस्था और विश्वास जगता है। इसी भाव को कवि ने व्यक्त किया है। यहाँ यह अवश्य इसीलिये ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, हठयोग, राजयोग की तरह यह प्रार्थना अनुत्तर योग है–

प्रार्थना का जबाव नहीं मिलता
हवा को हमारे शब्द
शायद आसमान में हिला जाते है
मगर हमें उनका उत्तर नहीं मिलता
बंद नही करते
तो भी हम प्रार्थना
मंद नहीं करते हम
अपने प्राणिपातों की गति
धीरे–धीरे
सुबह शाम ही नहीं
प्रतिपल[2]

निराशा और हताश मन को कोई अतीन्द्रिय सत्ता ही धैर्य बंधाती है। उसे आस्वस्त करती है। तुलसी की विनय पत्रिका ऐसी स्तुति काव्य है जिसको पढ़कर व्यक्ति के स्वतः किये गये अपराध बोध, पाप, स्मरण हो आते है। और वह अपने मन को आस्वस्त करने हेतु उच्च स्वर से विनय पत्रिका या विष्णु सहस्र नाम का पाठ कसा अधिक श्रेयस्कर समझता है।

सुबुकने लगते हो
बच्चे की तरह
और ऐसा ही
होते देखा है मैनें कई बार
पढ़ते हुए तुम्हें
विनय पत्रिका के पद
सुनते हुए
विष्णु सहस्रनाम का पाठ
अभंगतुका राम के[3]

---

1. इदं न ममं, पृष्ठ–630
2. वही, पृष्ठ–68.
3. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–42

आज के सन्दर्भ में नामक कविता में कवि ने तद्‌गुण अलंकार के माध्यम से सूर्य का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है जो हाथ पीला करना वैवाहिक संस्कार का प्रतीक है।

सूरज ने हरे खेतों को
पीला कर दिया है
तुम चाहो तो कहो
सुनहला कर दिया है
सुनहला भी
रंग की हद तक अच्छा है
मगर सच्चा नहीं है वह
आज के सूरज
और आज के खेतों के
सन्दभ में।[1]

कालजयी कविता में सत्यम् शिवम् का प्रसार एवं प्रचार की बात कही गई है। प्रलय और निर्माण विवाह और मरण के समान होते है। प्रस्तुत अंश में नाश की लहर मनीषा की जाग्रति एवं प्रीति के मंगलगान से ही भैरव–भैरती का लय वर्णित है। ध्वंस पर ही निर्माण का प्रसाद खड़ा होता है। इसी शास्वत सत्य की अभिव्यक्ति प्रस्तुत कविता में हुई है–

नाश की लहर तो
एक झोंका और फैलती है
संकल्प किंतु निर्मित का
निकल एक मुख से अखिल भारती ही मांगता है
जागेगी मनीषा यदि
एक–एक व्यक्ति में कि
शांति और स्नेह से ही
धरती सजेगी
प्रीति मंत्र मंगलगान
गूंजेगे चारों ओर
भैरव तब विलीन होगा
भैरवी बजेगी[2]

ऊपर कहा जा चुका है कि ध्वंसावरोषों में ही निर्माण के सूत्र अनस्यूत रहते है। युद्ध की भिभीषिका में से सृजन के मंगलगान गाये जाते है। कवि ने भैरव नृत्य, सांस्कृतिक प्रतीक में प्रयुक्त कर मृत्यु की विभीषिका को रेखांकित किया है–

कण–कण में आग है
क्योंकि बड़ा दाग है
तोप जो दगी रही
इसमें आदि काल से

---

1. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–88.
2. कालजयी, पृष्ठ–25.

भैरव नृत्य ताल से
नांचा है आदमी[1]

संगीत में भारू राग या भैरव राग युद्ध में प्रयुक्त होता है तो शांति के समय शहनाई या बासुरी। कृष्ण को बासुरी सर्वाधिक इसीलिये प्रिय थी कि युद्ध और शांति में उसने ही सेतु का काम किया है। अशोक की क्रूरता युद्ध की भयाबहता, रक्त की प्रियासा अचानक ही मधुमास पर्व में बदल गई और उनकी ऑखों में करूणा का प्लावन बह चला इसी की प्रतीकात्मक व्याख्या निम्न कविता में हुई है–

गंध रेणु की वेणु
ओंठ पर गीत गान का सेतु बनी थी
स्रोत अधिक निर्मल थे जैसे
पर्वत रेखा अधिक धनी थी[2]

देवा नाम प्रिय नाम अशोक शक्ति का उपासक था। उसकी दृष्टि में किसी भी समस्या का समाधान युद्ध ही है। जिसमें शक्ति का सर्वाधिक और बहुमुखी उपयोग होता है। किन्तु भारतीय संस्कृति सत्य प्रेम, अहिंसा, कारूण्य पर आधारित है। कलिंग विजय के पश्चात रक्त की विभीषिका देख अशोक का मन दहल उठा। अब उसके मन में ताण्डव की जगह लाष्य का उद्भव हुआ। कवि ने शैव, ताण्डव, लक्ष्य जैसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग कर हृदय परिवर्तन की सूचना प्रतीकात्मक रूप में दी है–

मैं था अब तक शैव
शक्ति का पूजक था मैं परम्परा से
किन्तु कलिंग विजय के तांडव लास त्रास ने
मुझे समूचा हिला दिया है
हल करने का साधन हो सकती है
शक्ति समस्याओं के
मेरा यह विश्वास[3]

कवि की उपत्ति यह है कि घृणा को स्नेह से विजित किया जा सकता है। मठ और मन्दिर पूजा के बाह्रय आवरण है। वस्तुतः देवता वहाँ न रहकर मन में ही स्थित है। अतः घृणा, प्रहार, व्यक्ति के पतन के सूचक है। वस्तुतः अखिल जीव मात्र के प्रति करूणा करना, उसकी सेवा करना जगदीश्वर की सेवा है। यही भारतीय संस्कृति का उद्घोष है जिससे कवि ने अपनी श्लेषाकार्थक कविता का कालजय किया है–

यह है स्पर्श गंध है मन का
यह प्रवाह है गति है यति है
अभी छंद है खनका खनका
मत अनुमान लगाओं इसका
इसे पकड़ लो
स्नेह करो छाती तक खीचों

---

1. कालजयी, पृष्ठ–42.
2. वही, पृष्ठ–58.
3. वही, पृष्ठ–92.

सहज जकड़ लो
घृणा प्रहार गिरावट फसना
सब हास्यास्पद, सच है हसनां
मठ मंदिरमन से छोटे है
स्नेह सही है सब खोटे है।[1]

भारतीय जनमानस धर्मप्रवण होता है। उसकी आकॉक्षा होती है उसके घर में एक छोटा सा ठाकुर द्वारा कृष्ण का मंदिर हो। यद्धपि वह जानता है। कि ईश्वर के नाम और रूप का चाहे कितना विवेचन या विश्लेषण करो निष्कर्ष कुछ पल्ले नहीं पड़ता है। कृतज्ञता, अस्तित्व आंगन, ठाकुर द्वारा इन शब्दों से कवि ने एक सांस्कृतिक भाव बोध की व्यंजना की है–

हाथ कुछ नही लगता
न नाम न रूप
आस्तित्व का आंगन
कृतज्ञता की घूप से भरा है
और तिस पर भी/सूना है विस्तार
देहरी से ठाकुर द्वारें तक का[2]

सांस्कृतिक तत्वों में मन की प्रमुखता, एक मत से स्वीकार की गयी है क्योंकि गीता में कहा गया है कि चंचलय ही मनः कृष्णः इस मन को वशीमूत करने के लिये अनेक उपायों की चर्चा की गयी है। व्यंजना कवि ने प्रतीक रूप में यहा की है–

मेरा सदा मुट्ठी में
रहने वाला मन
चीर कर मेरी उगंलियाँ
मेरे हाथ से निकलकर खो गया
X X X X X
भटक रहा हूँ इस लिए उसे खोजता हुआ
अबाबील में कोयल में सारिका में
चंदा में, सूरज में, मंगल में तारिका में।[3]

पहले कहा चुका है कि प्रतीक विधान में ऐसा कोई शब्द प्रयोग करते–करते अपने अर्थ का विस्तार कर मूल अर्थ के साथ अन्य अर्थ की भी व्यंजना करने लगते है। गरूण पक्षी विष्णु का वाहक है किन्तु धीरे–धीरे यह मन की स्वच्छंदता के लिये भी प्रयुक्त होने लगा। होकर इस प्रकार मन के समान यह गरूण स्वेच्छाचारी यह न जाने कहाँ भटकता रहता है–

गरूण
उड़ता ही नहीं रहता
खिलता ही नहीं रहता फूल

---

1. कालजयी, पृष्ठ–104.
2. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–36.
3. वही, पृष्ठ–39.

मूल मगर वश मर खीचता रहता है रस
दर्पण प्रतिबिम्बित करता रहता है रूप[1]

कहना नही होगा कि भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य दृष्टि अत्यन्त व्यापक है। बिम्ब प्रतीकों के लिये उन्हें ऐतिहासिक पौराणिक या सांस्कृतिक क्षेत्रों से शब्दों का चयन कर अत्यन्त भाव–प्रवण रूप में नये अर्थ की व्यंजना कराने में वे सिद्ध हस्त है। इतिहास अतीत का दर्पण होता है। अपनी सांस्कृतिक विरासत की समृद्धि की ओर वे बारम्बार उसकी ओर उन्मुख होते है। क्योंकि इनसे नैतिक मूल्य, आस्था, और विश्वास, को प्रतीकों के माध्यम से अक्षुण्ण रखा जा सकता है। गाँधी पंचशती में ऐतिहासिक घटनाओं को वस्तु रूप में न चित्रित कर प्रतीक रूप में कवि ने जिस ढंग से चित्रित किया है। वह उनकी दृष्टि की व्यापकता को सूचित करता है। कवि स्वयं गाँधीवादी विचारक रहा है अतः अधिकांश ऐतिहासिक प्रतीक इसी स्वातंत्य संग्राम से सम्बद्ध रहा है। सांस्कृतिक प्रतीक पौराणिक क्षेत्र से चयनित शब्दों से कवि की अध्यापन के गहन विशिष्टता का द्वोत्टक है।

आधुनिक जीवन के प्रतीक :-

पिछले पृष्ठों में यह कहा गया कि प्रतीक देश, परिस्थिति, वातावरण एवं युग बोध के कारण अपनी अर्थवत्ता बदलते रहते है। वस्तुतः शब्द रूढ़ हो जाने के कारण प्रतीक बन जाते है और इनके प्रयोग आज का जीवन वैज्ञानिक विकास के परिणाम स्वरूप नवीन आकाँक्षाओं, चिंतन, के कारण व्यक्ति के मन में कुंठा, संत्रास, विषाद, तनाव, आदि द्वंदो को उत्पन्न करते है। कवि अपनी कविता के माध्यम से आधुनिक जीवन के मूल्यों को सुरक्षित रखने के लिये जहाँ एक ओर इन नवीन मूल्यों की अभिव्यंजना हेतु शब्दों में नई अर्थ छवियाँ भरता है वहीं दूसरी ओर कुंठित मन को धैर्य या सांत्वना देने के लिये नये युग बोधों के अनुरूप प्रतीकों का प्रयोग भी करता है। भवानी प्रसाद मिश्र के युग तक उपभोक्ता वाद या बाजारवाद का इतना प्रचलन नहीं हुआ था लेकिन क्षयुष्णु जीवन में आवेगों, अविश्वास, द्वंद, लघु मानव, आदि की विचारधारा उत्पन्न होने लगी थी। मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, आधुनिक सौन्दर्य बोध से अनुप्राणित मनुष्य जितना अनुप्राणित हुआ उसका जीवन जटिल से जटिलतर होता गया है। कवि आधुनिक युग बोधों से सम्बंधित काम, प्रेम, नैतिकता के साथ–साथ फैशन परक जीवन चिंतन के आधुनिक प्रतिमानों की अभिव्यक्ति इन प्रतीकों के माध्यम से की है–

फल दर्पित फल में कवि ने इगो और इड़ का प्रयोग किया है। कहना नहीं होगा कि व्यक्ति का मूल स्वरूप इड़ में निहित रहता है और इगो उसका बाहय स्वरूप है। चेतन, अचेतन के इन द्वंदों को कवि ने पुल और दर्पित पुल के माध्यम से व्यक्त किया है। बाहय समाज में हम अपना आदर्श रूप दिखाना चाहते है। परिणाम स्वरूप इड़ मूल वृत्तियों का दमन करते है। यह दर्पित पुल सेतु का काम करता है– जो आकाँक्षा और दमन का प्रतीक है–

पुल और दर्पित पुल
दोनों एक है अपनी चेतनता में

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–54.

एक को
क्षीण करता है काल
दूसरे को सिमटता हुआ किरण जाल[1]

ज्या–पाल–सात्र और अल्वर्ट कामू ने मनुष्य की जिजीविषा और उसके अस्तित्वादी बोध की उद्घोषणा आधुनिक मानव के पुरूषार्थ के रूप में स्वीकार किया है। आस्मिता की रक्षा इस युग की सबसे बड़ी समस्या। वस्तुतः काम कोई छोटा या बड़ा नहीं होता है उस काम के करने वाले व्यक्ति का मन जो तथा कथित समाज में बड़े लोगों के बीच से अपने अस्तित्व की रक्षा करने की प्रवृत्ति को जीवित रखता है–

रंग और प्रकाश भरना
छोटे काम करके ही तो
बचायें रख सकते है हम
अपने छोटेपन को
इन बड़े–बड़े काम करने वालों की भीड़ में[2]

एक किस अधिक मूल नामक लम्बी कविता में अनेक प्रकार के ऐसे वैयक्तिक प्रतीकों का प्रयोग किया गया है जो निजी होते हुये समष्टि के बोधक होते है। जीवन की आषाधापी या दौड़–भाग के पीछे यही जिजीविषा कार्य करती है। छोटे–छोटे कार्यो से ही आदमी महान बनता है। आवश्यक इस बात की होती है कि कार्य करने के पीछे दृष्टि का बोध कैसा है। रंग भरना, छोटे–छोटे शारीरिक श्रम करना, व्यक्ति की महत्ता को तभी वृहत्तर बनायेगा जब उसमें कार्य के प्रति स्पर्धा होगी

वे श्रम थोड़े ही करते है
श्रम का स्पर्धा से
संबंध ही क्या है
श्रम का उद्देश्य और स्वभाव
और शील सब कुछ अलग है स्पर्धा से
जो आयास होता है स्पर्धा में
सो किसी मसरफ़ का नही होता
मगर मैं इस बहस में नहीं पडूंगा
मैं तो इतना ही कहना चाहता हूँ
कि हम स्पर्धा से बचे और रंग भरे
और बने तो
आगे चल कर प्रकाश[3]

वैज्ञानिक प्रगति के पूर्व मनुष्य का जीवन सीमित क्षेत्र में ही आबद्ध रहता था। वैज्ञानिक प्रगति के कारण जीवन एक महासमुद के समान हो गया है। व्यक्ति के अजनबीपन को व्यक्त करने के लिये महासमुद्र और लहर का प्रयोग कर दृष्टि और समष्टि बोध को व्यंजित किया

---

1. खुशबू के शिलालेख, पृष्ठ–30.
2. वही, पृष्ठ–40.
3. वही, पृष्ठ–47.

गया अकेलेपन अब और अजनबीपन महासमरोत्तर प्रवृत्तियाँ है जिनका भवानी प्रसाद मिश्र ने सटीक प्रयोग किया है –

जिन्दगी के महासागर का किनारा
चाहता हूँ अभी सूना रहे
लहरे आती जाती रहे केवल
तबियत का हाल पूंछने वालो की तरह[1]

कवि ने अधेरा और पश्चिम इच्छा का उद्‌गम इन शब्दों का ऐसा प्रयोग किया है जिनसे आधुनिक युगबोध की भावनायें व्यंजित हुई है। भारतीय जनमानस में इतना मानसिक संघर्ष नही था कि कुंठायें दमित होकर उसके चरित्र को ही कलंकित कर दे। पश्चिमी वैज्ञानिक ज्ञान ने हमें आकाँक्षाओं के अधेरे क्षेत्र में इस तरह से ढकेल दिया है कि व्यक्ति अधिक से अधिक कुंठित होकर दमनात्मक प्रवृत्ति के कारण ऐसा जीवन व्यतीत करने पर विवश हो गया है जिसमें कोई प्रकाश की किरण नहीं दिखाई देती है–

और भूल गये है कि अंधेरे ही की तरह
अंधेरे की उनकी इच्छा
छायी है उतरकर पश्चिम से
उनके मन पर[2]

शब्दों के तल्पपर नामक शीर्षक लम्बी कविता वस्तुतः आधुनिक साहित्यकार के जीवन को रेखांकित करती है। साहित्य में शब्द, और शब्दार्थ का विशिष्ट महत्व है। इन्ही के समुचित, सुव्यवस्थित प्रयोग से श्रेष्ठ साहित्य का सृजन होता है जिसमें साहित्यकार के मनोभाव प्रतिबिम्बित होते है। इसी श्रेष्ठता के लिये कवि ने परिछाई, शब्द पेशवाज अर्थ इत्यादि का प्रयोग आधुनिक साहित्यकार के जीवन की व्याख्या करते है

परछइयाँ सच्ची हो जाये
चीजे केवल उनका आभास देने वाले प्रतीक बन जाये
किसी न किसी तरह प्रतीक अपने शब्दों को
परछाइयों तक जीवन्त बनाना पड़ेगा
या मनाना पड़ेगा परछाइयों ही को
कि वे अपने शब्दों के तल्प पर
अल्प नहीं चलें फिरे
लगभग पेशवाज पहनकर
धानी मानी हो जाये
कि जानी हुई दुनिया[3]

कवि ने पैर कंनीचें ठंढा पानी और उसके नीचे पत्थर तथा पानी के ऊपर बहती हुई नाव का प्रयोग इस प्रकार किया है– मन एक नदी है अचेतन में पड़ी हुई आकाँक्षायें ही पत्थर है जो दमितरूप में अचेतन मस्तिक में पड़ी है। पानी के ऊपर बहने वाले नावे तृप्त आकाँक्षायें है। इस प्रकार मनोविश्लेषण शास्त्र विशेष रूप से फ्रापड़ के अनुसार चेतन मस्तिक, अवचेतन

1. खुशबू के शिलालेख– पृष्ठ–82.
2. वही, पृष्ठ–108.
3. वही, पृष्ठ 147.

अचेतन मस्तिक में दबी, कुचली, वर्जनायें किस प्रकार पत्थर के समान जड़ हो जाती है। तृप्त सन्तुष्ट मन नाव की तरह कितना हल्का हो जाता है। इसी जीवन की अभिव्यक्ति प्रस्तुत कविता में हुई है–

रात ने पांव के नीचे के
पत्थरों को ठंढा कर दिया है
और हवा में भर दिया है
एक चमकदार सपना
मैं उस सपने को
देखता हुआ चल रहा हूँ
ठंठे पत्थरों पर[1]

कवि ने निस्सीम आकाश, पक्षी की उड़ान, उसके घोसले, नष्ट नीड़ की चर्चा कर समाज, व्यक्ति की आकाँक्षा, उसकी जिनीविषा और दमित कुंठा का बड़ा सटीक प्रयोग किया है। व्यक्ति रहता तो समाज में है फिर भी उसकी आकाँक्षायें यौन वर्जनायें नीड़ के समान है जिन्हें सुपरइगों के कारण दमन कर या उदात्तीकरण कर उसके चरित्र को श्रेष्ठ आदर्शमय बनाया जा सकता है–होने को आकाश है

और पंछी भी है
मगर अवकाश
आकाश का
उड़ने भी दे सकता है
पंछी को घोसले तक
और उठाकर आंधी
निगल भी ले सकता है उसे
अब आकाश
जगह है[2]

भवानी प्रसाद मिश्र की शब्द प्रयोग और उसकी समार्थ्य का पता इस बात से लगता है कि सामान्य से शब्दों से जहाँ एक ओर ऐतिहासिक तथ्यों की विवृत्ति की है वही एक ओर आधुनिक जीवन से सम्बंधित भाव–बोध की अनुभूति के लिये शब्दों में नये अर्थ घरे है। स्वतंत्रता संग्राम जो 1857 में लड़ा गया था जिसमें एक ओर तो तलवारें थी तो दूसरी ओर बन्दूके थी। तलवार मध्यवीर मानसिकता और बन्दूक, वैज्ञानिक प्रगति की द्योतक है और इतिहास साक्षी है कि इस युद्ध में आधुनिक वैज्ञानिक क्षेत्र की प्रगति को विजय श्री मिली थी

आदमी की हार पहली और पक्की तब हुई थी
जब कि म्यानों में छिपी तलवार और बन्दूख निकली
क्या शिकायत उस जमाने से कि जिसको
इस जमाने तक अकल बढ़ जायेगी इतनी अधिक
इस बात का सपना नहीं था।[3]

---

1. टूस की आग, पृष्ठ–12.
2. वही, पृष्ठ–41.
3. गॉधी पंचशती, पृष्ठ–166.

पश्चिमी जीवन में भारतीय जीवन पद्धति को अनपढ़ जाहिल और गवारों की सभ्यता कहा है। इसी द्वंद उभारने के लिये कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों को उल्लेख कवि ने यहाँ किया है– जहाँ सर्वहारा वर्ग, बुर्जुवा, पूंजीपति, शोषक और शोषित, वर्गो का उल्लेख किया गया है। सभ्य और असभ्य के क्रिया कलापों का प्रतीकात्मक प्रयोग यहाँ है। हिरोशिमा, नागाशाकी की आवाज, वायुवान, भरपूर पूंजी, वैज्ञानिक ग्रंथों तथा नवीन आविष्कार जून से सने जबड़े यही तो आधुनिक सभ्यता के श्रेष्ठ प्रतिमान है–

आप सभ्य है क्योंकि हवा में उड़ पाते है ऊपर
आप सभ्य है क्योकि आग बरसा देते है भूपर
आप सभ्य है क्योंकि धान से भरी आप की कोठी
आप सभ्य है क्योंकि जोर से पढ़ पाते है पोथी
आप सभ्य है क्योंकि आप के कपड़े स्वयं बने है
आप सभ्य है क्योंकि आप जबड़े खून से सने है[1]

भारतीय समाज की संकीर्णता, कूपमंडूकता का ढिठोरा पीटकर अग्रेजों ने अपने और अपनी सभ्यता को श्रेष्ठ कहा है। गॉव में बसने वाले भारतीय, समाज की सोंच का चित्रण कर आधुनिक वैलासिक क्रिड़ाओं को श्रेष्ठ कहना कम से कम शब्दों में भवानी प्रसाद मिश्र की अपनी विशेषता है–

कम्बख्त है अब के लोग और अब के दिन याने
क्योंकि अब पहले से ज्यादा पानी गिरता है
और कम गायें जाते है पक्के गीत
और मैं सोचता हूँ ये सब कहने वाले
है शहरों के रहने वाले
इन्हे न पचास साल पहले खबर थी गावों की
न आज है।
यह शहरों का रहने वाला ही
जैसे भारतीय समाज है।[2]

अब क्या करू नामक शीर्षक कविता में स्वातंत्रोत्तर भारत के विकास हेतु लागू की गई पंचवर्षीय योजनाओं की विफलता पर कसाधात यहाँ पर किया गया है जिसमें देश को जंगल कहकर पक्षी, हरिण, सांगर, पीतल, और नील गाय के अभाव को बताकर दरिंदों की चर्चा कर आधुनिक युग जीवन में शोषणवादी प्रवृत्ति का उजागर कवि ने किया है। इन पंचवर्षीय योजनाओं की निष्फलता ने अहिंसावादी विचारक भवानी प्रसाद मिश्र को भी मोह भंग की स्थिति में ला खड़ा किया है। जहाँ से कालमार्क्स की ओर रास्ता जाता है–

जिसमें पंछी नहीं है हिरन नहीं है
नही है सांभर पीतल और नील गाय
दरिन्दे ही दरिन्दे है अब इनमें

अब धधका नहीं सकता मैं अपनें मन की चिंगारियाँ/इसमें सारे देश को कैसे जला दूँ[3]

---

1. गाँधी पंचशती, पृष्ठ–177.
2. वही, पृष्ठ–225.
3. वही, पृष्ठ–335.

दो अक्टूबर को गांधी का जन्म दिन याद आता है लेकिन जन्म दिन के समय मृत्यु दिन की याद कसा अस्वाभिवक तो लगता है किन्तु गांधी जी के जीवन दर्शन में व्यवहारिक रूप से दिखते खोखलापन के प्रति लेखक का आक्रोश उचित प्रतीत होता है। टूटा तारा, गांधी की मृत्यु का प्रतीक है किन्तु यदि हम इस टूटे तारे के आलोक से अपने जीवन को क्षणभर के लिये सही प्रकाशित करलें तो सामाजिक जीवन में चाँदनी ही नही छिटकेगी, गॉव–गॉव में विकास का प्रकाश फैल जायेगा–

देखों कि टूट रहा है इस तड़के में एक तारा
तुम्हें दिशा और गति दिखने के लिये
अनगिन छिन लिये तुमने अचूक इस छिन को ले लो
अपना सब कुछ इस छिन को दे दो
अंधेरे में छिटका दो एक चांदनी सी[1]

मनोरथ शीर्षक कविता योग रूढ़ होते हुए श्लेषार्थक है। टूटे एवं बुझे मन से कोई बहुत बड़ी प्रगति हम नही कर सकते क्योंकि शारीरिक थकान से ज्यादा मानसिक कलांति हमें अपेक्षित मार्ग में बढ़ने नहीं देती। शरीर चलता अवश्य पैरों से है किन्तु उसका संचालन मन से नियंत्रित होता है और यह रूपक एक ओर औपनिषद युगीन है तो दूसरी ओर आधुनिक मानव मन की महत्काँक्षाओं को भी प्रकट करता है–

रथ था मेरा मन
शरीर के लिये
टूट चुका है
अब वह मनोरथ
किसी डाल के पत्ते सा[2]

मृत्युंजय शब्द नामक कविता में मानवीय संवेदना, सहानुभूति, की अभिव्यक्ति व्यंजित की गयी है। जिजीविषा के लिये प्रोत्साहन उद्वेलन/का काम करते है। जिन्दगी में कर्म के प्रति आस्क्ति और उत्प्रेरक के रूप में ऑसू शब्द का प्रयोग इन्ही संवेदनाओं के लिये किया है–

ऑसू की तरह गरम
टपके उसके
दो शब्द
झपके–झपके ख्याल
जागे और रूप
मन के आगे
दो शब्द गीले और गरम
दे गये भरम इतना[3]

चट्टानें शीर्षक से ली गई निम्न कविता व्यक्ति जिजीविषा को व्यक्त करने के लिये प्रतीक रूप में प्रयुक्त है। जिस प्रकार चट्टानें गर्मी–सर्दी, वर्षा सहन करती है इसी प्रकार यह

1. गॉधी पंचशती, पृष्ठ–349.
2. अंधेरी कविताएं, पृष्ठ–11.
3. वही, पृष्ठ–62.

जीवन सुख–दुख, लाभ–हानी, जय–पराजय देखता हुआ जीवन मार्ग में अग्रसर रहता है–

काली ये चट्टाने
ठण्डी गीली या गरम है
कहने भर को
पैदा हुई है ये
हर हालत में रहने
रहने भर को[1]

मनुष्य के जीवन में दो वस्तुएं, अपने सत्य रूप में दिखाई पड़ती है, कटु यथार्थ और आदर्श, स्वर्ग और नर्क पौराणिक प्रतीक होकर आदर्श और यथार्थ की व्यंजना करते है। इस जीवन में हम सुख, सन्तोष, वैभव, धन–धान्य की जैसी चाहत रखते है इससे अच्छी वस्तुओं की प्राप्त की कल्पना स्वर्ग में पाने की चाहत रखते है किन्तु यथार्थ अत्यन्त कटु और सत्य होता है क्योंकि जिन्दगी सपना नहीं यथार्थ की भूमि पर चलती है–

रतन हाथी घोड़े
माल असबाब पाने के
स्वर्ग तक की कल्पना ने
नहीं हुआ मुझे कभी
और फिर
धीरे–धीरे तो
सब समझ में आने लगा
कि जिन्दगी सपना नहीं है
ठोस एक चीज है[2]

प्रयोगवादी कविता में क्षणवाद की बड़ी चर्चा थी। कवि की क्षणिक अनुभूति की अभिव्यक्ति ही सच्ची कविता कही गयी है। यहाँ कवि ने मौसम परिवर्तन शीलता का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है जैसे एक क्षण पक्षी आकर उड़ जाता है। ऐसे हमारे जीवन में विभिन्न ऋतुएं क्षणिक दुख–सुख प्रदान कर चली जाती है। मन उनसे बहुत दिनों तक बंधा नही रहता–

एक क्षण
आता है ठीक अपने क्षण पर
जैसे आता है कोई मौसम का पंछी
और चला जाता है जैसे मौसम का पंछी
अपने तय शुदा क्षणों तक रहकर
प्रतीक्षा नहीं करता मैं उसकी
न चकित होता हूँ जब आता है वह
और न महसूस करता हूँ सूनापन
चला जाता है जब वह क्षण[3]

---

1. अंधेरी कवितायें, पृष्ठ–67.
2. वही, पृष्ठ–131.
3. इदं न मम, पृष्ठ–38

कवि के लिये जैसे कल्पना महत्वपूर्ण होती है इसी प्रकार मनुष्य के लिये स्वप्न या कल्पना महत्वपूर्ण होती है। कल्पना जीवी–व्यक्ति छोटी–छोटी सुखकर सपने बनाता है और उन्ही की पूर्ति हेतु जीवन भर परिश्रम करता रहता है–

खरीदना चाहते हो
कोई सपना
तो आज के दिन खुला है
सपनों का बाजार
कल तक के लिये
मत रूकना
सपनों का बाजार
आज भर के लिये है[1]

विवश कविता में कवि ने जीवन की सत्यता को व्यक्त किया है। जीवन और मृत्यु ये दो शश्वत तत्व है जिसे कवि ने सूर्य की स्थितियों से प्रतीकात्मक रूप में जोड़कर व्यंजित किया है–

मुझे बहुत अखरा उस दिन/हाय/
कवि कोई मदद नहीं कर सकता/सूरज की ऐसे भी
क्षणों में[2]

आज के प्रदर्शन भरे युग में मनुष्य के वाघ्यांडवर पर प्रतीकात्मक रूप से कवि कहता है कि नव कुबेर या धनाड्य व्यक्ति अर्थ–पिशाच बनकर अपने लिये व्यर्थ की वस्तुयें एकत्रित करता है चाहे इस हेतु इसे कितने भी निष्ठुर कार्य क्यों न करने पड़ते हो जैसे दवाओं में जहर घोलना, दूसरे के दुख पर हर्ष मनाना, आदि–

अपने लिये कारखानें खोलता है
दवाईयों में जहर घोलता है
अंबार लगाता है
अपने लिये पैसे के
बड़े–बड़े घर बनाता है
जो सचमुच में गमी है
उसे जश्न की तरह मनाता है
एकदम निरर्थक चीजों को
घरों में लाता है
निरर्थक उन चीजों से
घर को सजाता है
आओं इसे समझों और
देखों और चक्कर खाओं[3]

---

1. इदं न ममं, पृष्ठ –45.
2. वही, पृष्ठ–71.
3. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–39

भवानी प्रसाद मिश्र ने जीवन वैविध्य को व्यक्त करने के लिये अनेक प्रकार की अर्थ छबियों का प्रयोग किया है। जीवन की व्यस्तता के लिये कोलाहल, पैसे के लिये पुल का प्रयोग और धनार्जन हेतु नैतिक मानदण्डों की तिलांजलि के सटीक प्रतीक प्रयुक्त है–

जिन्दगी शोर गुल हो गयी है
दो पैसे से
दस पैसे तक पहुचनें का पुल हो गयी है
और लोग इस पुल पर से
यों गुजरते हुये
कि दो के दस कैसे हो जायें
न दाहिनें देखते है न बायें
न शर्म महसूस करते है[1]

गांधी मृत्यु तथा पंचवर्षीय योजनाओं की असफलता ने कवियों का राजनीति के प्रति मोह भंग हुआ है। प्रजातंत्र की मृत्यु की उद्‌घोषणा और इस हेतु संक्रांति पर्व का प्रतीकात्मक प्रयोग अत्यन्त सटीक रूप से हुआ है जैसे--पर्व में आदमी स्नान करता है ऐसे ही प्रजातंत्र की मृत्यु के पश्चात उस शोक को दूर करने के लिये स्नान करने की पृथा का उल्लेख किया है–

कुछ लोग
प्रजातंत्र मर गया कहकर
उदास है
जैसें जिंदा था कभी
वह बेचारा
लोगों को तो
उदास होने का कोई
बहाना चाहियें[2]

कालजयी शब्द स्वयं में एक लाक्षणिक प्रयोग है जिसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति कवि ने इस खण्ड काव्य में की है। गौतम बुद्ध के जीवन में आया हुआ संघर्ष कि एक दिन मेरी यशोधरा भी इसी प्रकार जराग्रस्त हो जायेगी, अशोक के कलिंगयुद्ध के पश्चात जो मानसिक व्यथा का संघर्ष हुआ, ऐसा ही विकार या संघर्ष हर आदमी के अन्दर अच्छाई और बुराई के प्रति होता है इस लियें हमी गौतम बुद्ध और अशोक भी है

ठीक कहती हो
बड़ा है आदमी
हर बुराई से लड़ा है आदमी
किंतु वह आड़े न आया युद्ध के
बुद्ध तक के वचन
बंधकर रहे गये उपदेश में
व्याप्त करना है उन्हे अब जगत भर में[3]

---

1. परिवर्तन जिये, पृष्ठ–51.
2. वही, पृष्ठ–69.
3. कालजयी, पृष्ठ–89.

जीवन में चाहत और उसकी प्राप्ति दो अलग–अलग दशायें है। इसका प्रतीक बुनी हुई रस्सी है। जीवन को सीधें धुमाते पतले–पतले, क्षीण, रेशे या तन्तु कल्पना की मोटी रस्सी बन जाते है किन्तु जब इन्ही को विपरीत दिशा में धुमाते है, सारे कल्पना के रेशे बिखर जाते है। इस प्रकार कवि ने यथार्थ आदर्श के रूप को इस प्रतीक से व्यक्त किया है–

बुनी हुई रस्सी को धुमायें उल्टा
तो वह खुल जाती है
और अलग–देखें जा सकते है
उसके सारे रेशे[1]

कवि ने रौदें हुए धरौंदे, मुरझाई कलिया, सूखे, फूल, टूटे इन्द्र धनुष चिड़ियों की क्लांत आवाजे इस प्रकार प्रतीक रूप में व्यक्त किया है जिसमें अंधकार को काली नाव कहकर इनके विनष्ट होने के कारक तत्व का उल्लेख किया है–

काली नावें
क्या लदा है इनमें
शायद रौंदे हुए घरौदें
मुरझाई कलियाँ सूखे फूल
टूटे इन्द्र धनुष[2]

आशा और निराशा जीवन के दो ऐसे तत्व है जिनसे बंधकर हम सक्रिय या निष्क्रिय होते है। निराशा के लिये अंधेरी रात प्रयुक्त कर जीवन में व्याप्त उत्साह का विनष्ट रूप ये इस अंधकार के माध्यम से व्यक्त किया है–

अंधेरी रात
पी लेती है जैसे
छाया को
ऐसे पी लेता है
अर्थो को अंधेरा मन[3]

सांस मंगल की कविता में कवि ने इस का प्रतीक रूप में प्रयोग किया है जैसे घनी बस्ती की हवा में जो उमस व प्रदूषण होता है। और यही हवा बस्ती से बाहर निकलने पर स्वच्छ और ताजी हो जाती है। इसी प्रकार शरीर से निकली वायु निश्चित ही मांगलिक बनेगी ऐसा कवि को पूर्ण विश्वास है–

अगर इस नगर में घूमने वाली हवा
इससे बाहर निकल जाकर
ताजा हो जाती है
तो सांस जो धूम रही है इस शरीर में
मुक्त होकर इससे
बदलेगी
अच्छे की दिशा में[4]

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–17
2. वही, पृष्ठ–19
3. वही, पृष्ठ–25.
4. वही, पृष्ठ–29.

कवि भवानी प्रसाद मिश्र सहज जीवन के असाधारण कवि कहे गये है। क्योंकि हमारे चतुर्दिक परिवेश में व्याप्त हवा, पानी, सूर्य, दिन, अंधकार, ऐसे शब्द है जिनका प्रयोग कवि ने अमिधा, लक्षणा के साथ ही नई अर्थ छवियों की व्यंजना हेतु किया है। हमारे अन्दर सुप्त भावनायें कब सिर उठाकर खड़ी हो जायेगी इस हेतु कवि ने हवा का प्रयोग अत्यन्त साधारण अर्थ में प्रयोग कर प्रतीक के माध्यम से असाधारण अर्थ की व्यंजना की है–

और सिर उठाती फिर
वक्त पाकर
आसमान में चुप पड़ी हुई
हवा की तरह[1]

मन और सागर का उपमेय उपमान में प्रयोगकर कवि ने यह वैशिष्टय बताने का प्रयास किया है कि आज की व्यस्तता और भोगवादी प्रवृत्ति के कारण मन में अकेलापन और अजनबीपन आ गया है। जबकि सागर की अनन्त लहरें पछाड़ खाती हुई अपनी व्यंजनाओं की अभिव्यक्ति करती है–

जिसे समझा जा सकता है
आर–पार जाया जा सकता है जिसके
दिन में सौ बार
कोई सागर नहीं हैं
न वन है
बल्कि एक मन है
हमारा तुम्हारा सबका अकेलापन[2]

भवानी प्रसाद मिश्र को सागर का प्रतीक रूप में प्रयोग करना बहुत अच्छा लगता है क्योंकि सागर से अनेक चीजों की व्यंजना हो जाी है। लहरों की शक्ति को हम अपनी ताकत से पीछे नहीं लौटा किन्तु वज्र सदृश वक्ष स्थल से उसे रोक सकते है। इसी प्रकार जीवन के झंझावात को सहने के लिये मजबूत संकल्पयुक्त वक्ष स्थल चाहियें। यहाँ सागर विषम परिस्थिति और लहरे द्वंद का प्रतीक है–

कुछ लहरे जो पकड़ रही है जोर
और चली आ रही है जोर से इस ओर
ठेली नहीं जा सकती सिर्फ हिम्मत
और आशा से जोरदार भाषा से
उसके लिये तो चाहिये शक्ति
शरीर की और खासकर छाती की[3]

निष्कर्ष यह है कि जब कोई शब्द प्रयोग करते–करते अपने रूढ़ अर्थ के साथ एक नयें अर्थ की व्यंजना करने लगता है तब वह शब्द प्रतीकात्मक बन जाता है। यह प्रतीकात्मक अर्थ जीवन के सामाजिक, धार्मिक राजनीतिक आर्थिक सांस्कृतिक मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों के अर्थ की

---

1. खुशबू के शिलालेख–40.
2. वही, पृष्ठ–41.
3. वही, पृष्ठ–99.

व्यंजना करते है। कवि गांधी वादी विचार धारा का सशक्ति समर्थक ही नहीं अपितु प्राकृतिक परिवेश से शब्दों को लेकर तादृशय क्षेत्रों की अर्थ व्यंजना के लिये इनका प्रयोग किया है। कवि ने आकाशीय क्षेत्रों से सूर्य, चन्द्रमा, चॉदनी, नक्षत्र, वायु, पार्थिव क्षेत्र से विभिन्न पुण्प, सरिता, समुद्र तथा जीवन के वैविध्यपूर्ण परिस्थितियों से शब्द लेकर उनका प्रतीकात्मक प्रयोग किया है। यह शब्द विधान इतने सरल और सहज रूप में प्रयुक्त है कि पाठक कल्पना ही नहीं कर सकता है कि किन शब्दों से कैसे–कैसे अर्थो की व्यंजना हो सकती है। पौराणिक क्षेत्रों के साथ ही ऐतिहासिक क्षेत्र तथा आधुनिक जीवन के विविध क्षेत्रों की मनोवृत्तियों का प्रकाशन इन प्रतीकों से हुआ है।

काम यौवन के प्रतीक :-

प्रयोगवाद तक आते आते कविता की यात्रा में अनेक पश्चिमी आन्दोलन उसमें सम्लित होते गये जिसमें फ्रामड़ का मनों विश्लेषण सिद्धान्त प्रमुख है। द्विवेदी युग की कविता में श्रृंगारिक का सूक्ष्म रूप ही अभिव्यक्त हो पाया है। प्रयोगवाद में इड–इगों के संघर्ष, काम के दमन, वर्जना की अतिशयता के कारण कुंठा अपने वास्तविक रूप में न प्रकट होकर दमित रूप में व्यक्त हुई है। भवानी प्रसाद मिश्र गांधी वादी विचारधारा के कवि है। अतः भावनाओं के उदात्तीकरण पर उनका अधिक विश्वास है। उनके कारण में दमित या सुप्त वासनाओं की अभिव्यक्ति के अवसर बहुत कम है फिर भी यत्र–तत्र युग का उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है।

टहलते–टहलते शीर्षक कविता में कवि ने व्यंजित किया है कि हरी दूब पर टहलने की सिहरन मन में ऐसे भाव–बोध को जगा जाता है। दूब के स्पर्श से उत्पन्न यह सिहरन किसी स्त्री के क्षणिक स्पर्श से उत्पन्न सिहरन सी लगे तब मन में अंकुरित काम के विकार स्पर्श जन्य सुख का बोध समान रूप से लगते है। ऐसा लगता है कि मन में सुप्त दमित यह सिहरन दूब के स्पर्श से उद्बेलित होकर मूल सिहरन की अभिव्यक्ति कर रही है–

लिखते हुए यह सब
लेखनी तक पर रोमांच जग रहा है
चाहता हूँ यह बोध
चेतना बन जाये और
आये कोई बड़ा सुख–संस्पर्श इस रास्ते[1]

जवान था जब शीर्षक कविता में कवि ने युवावस्था एवं प्रौढ़ावस्था के सुख दुखों की विवृत्ति हुई है। युवावस्था में चंलन मन किसी एक वस्तु में नही ठहरता, काम जन्य चंचलता, प्रौढ़ावस्था में स्थैर्य में परिवर्तित हो जाती है। किसी सुन्दर स्त्री को देखकर युवा मन जितनी तीव्रता से उद्वेलित होगा प्रौढ़ और वृद्ध मन उतनी शीघ्रता से बैठ जायेगा। पुरूष आसमान युवती धरती को देखकर जितना आहलदित होता है पेड़–पौधों, वृक्ष, हरियाली से युवती धरित्री आसमान को आकृष्ट करती है किन्तु प्रौढ़ा धरित्री रूपी नायिका को यह आसमान

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–33.

पुरूष अत्यन्त उपेक्षा से देखता है। काम सूत्र और नायिका भेद में इस प्रकार की मनोवृत्तियों का विस्तृत निरूपण किया गया है कि युवावस्था में सुन्दरी स्त्री को देख मन में उच्छलित, कामनायें, वासनायें, अन्त में सूनी सांसों के रूप में ही रह जाती है क्योंकि वृद्धावस्था में कामनायें भले ही उद्वेलित हो किन्तु शारीरिक शैथिल्य के कारण मात्र उदासीनता ही हाथ लगती है।

जवान था जब आसमान
दिलचस्पी थी उसे तब धरती में
मगर दिलचस्पी जवानों की
किसी चीज में ज्यादा दिनों तक नहीं टिकती[1]

तात्पर्य यह कि कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने काम और कुण्ठित वासनाओं के बिम्ब, कुछ दर्शन और कुछ चिंतन के कारण प्रयोग नही किया है। क्योंकि गांधीवादी दर्शन वासनाओं के दमन में विश्वास नहीं रखता क्योकि कुण्ठित मन विकृत हो जाता है। कामनाओं के उदात्तीकरण से वह अपनी उदात्त रूप में व्यक्त होता है।

---

1. बुनी हुई रस्सी, पृष्ठ–50.

अष्ठम्-अध्याय

अध्याय–8
आलोच्य कवि के काव्य में आस्वादन की समस्या

नई कविता नया रूप एवं शील लेकर हिन्दी साहित्य में आई है। छायावाद से भिन्न एक बड़ी विशेषता इसमें यह है कि पलायन शील नही है। अपने लिये किसी पृथक संसार की स्रष्टि की कामना से आकुल नहीं है। प्रगतिवाद में भिन्न बड़ी विशेषता यह है कि इसमें बुर्जुआ के प्रति व्यर्थ का आक्रोश नहीं है। इसमें न तो स्त्रैणता ही है न ही धमकी देने वाली ''बुली'' की मनोवृत्ति है। यह अपने वर्तमान परिवेश के प्रति सजग है। यह इसी लोक और इसी समाज की कविता है। नई कविता में ऐसा उद्यान है जिसमें नाना प्रकार के फूल खिले हैं– कुछ चमकीले, कुछ धुँधले, कुछ आकर्षक, कुछ विकर्षक। इसमे सौरभ भी एक जाति का नहीं है। कुछ मन तथा आत्मा को आप्यायित करते हैं। कुछ मे गन्ध इस प्रकार की होती है कि उसकी अनुभूति से मन में ग्लानि उत्पन्न हो जाती है। किन्तु, यह भी अन्तिम विश्लेषण में उस समाज की ही प्रसूति है जिसमें आज का मनुष्य है। कवि भवानी भाई की कविता में आस्वादन के विविध रूप हैं–

''कलम अपनी साघ
और मन की बात बिलकुल ठीक कह एकाघ
यह कि तेरी भर न हो तो कह
और बहते बने सादे ढंग से तो वह
जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख
और इसके भी हम से बड़ा तू दिख।।''[1]

आसूँ और हँसी के अर्थ से निरपेक्ष होकर ''मुक्तिक्षण'' की कामना करने वाला मन छायावाद के पलायन शील मन का ही प्रयोगशील संस्करण जान पड़ता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि नई कविता पलायन वादी नही है। प्रयोगशील कविता को कभी–कभी प्रच्छन्न छायावाद समझ लिया जाता है। वास्तव में, नई कविता छायावादी नहीं है। भवानी प्रसाद मिश्र की कविता व्यक्तिगत होकर भी समष्टिगत है–

---

1. गीत फरोश, पृ0 सं0 1.

"अभिव्यक्ति तो होती ही रहती है
मैं उसके ढंग नहीं सोचता
सोची हुई अभिव्यक्ति से
मैने अपने को कभी व्यक्त नहीं किया
छुपता ही हूँ मैं उससे।"[1] –

भवानी प्रसाद मिश्र जन सामान्य से लेकर बौद्धिक वर्ग के लिए कविताएं लिखते हैं, लेकिन बौद्धिकता का आग्रह कभी भी हावी नहीं होने दिया, इसी कारण सभी को रसास्वादन उनकी कविताओं से सहज ही हो जाता है।

नई कविता में "नई टीस" और "नई चीख" है। इनका कुछ मतलब भी होता है। प्रयोगों के माध्यम से वह 'मतलब' निकलेगा इसीलिए नई कविता प्रयोगवादी है– न छायावादी न ही कायावादी।

प्रश्न उठता है कि इन प्रयोग–परायण कविताओं का आस्वादन कैसे किया जाये? नये कवि या तो वैसे प्रबुद्ध विवेकशील आस्वादकों के लिए लिखते है जो उनके समान धर्मा हैं। या फिर ऐसे व्यक्तियों के लिये जो पूर्ण रूप से समान धर्मा न होते हुए भी, उनकी ईमानदारी पर संदेह नहीं करते हैं, 'फतवे नहीं देते' तथा नूतन प्रतिभाओं की क्षणिक असफलताओं और कठिनाइयों के प्रति सहानुभूति शील होते हैं। वास्तव में सभी कालो तथा सभी प्रवृत्ति के कवियों के लिये सहानुभूतिशील भावक वर्ग की अपेक्षा रही है। कवि सर्वदा अपने युग का प्रवक्ता रहा है। युग के अस्पष्ट स्पन्दनों को इस कौशल के साथ वाणी देना कि युग अपनी ही भूखों और प्यासो को समझ जाये, कवि अथवा समर्थ कवि का कर्तव्य रहा है। इसी लिए प्रसिद्ध अमेरिकी मनीषी "इमर्सन" ने लिखा है कि प्रत्येक युग अपने कवि की प्रतीक्षा किया करता है। किन्तु यही कवि का दायित्व गहन बन जाता है। कवि को अपनी भावनाओं को समाज की भावनाओं की कसौटी पर कसना होता है। जो भाव या प्रतीतियाँ उसे उद्वेलित कर रही हैं, क्या उनके कीटाणु समाज की धमनियों में प्रवाहित हो रहे हैं– यह कवि की खोज का प्रथम विषय होता है। कभी–कभी युग इतनी क्षिप्र गति से बदल जाता है कि उसकी नई अर्थवत्ता का बोध समाज को नहीं होता है। ऐसी अवस्था में कवि नवीन संकेतों को पकड़ता है। वह युग की भावधारा में ही नवीन मोड़ उत्पन्न कर देता है।

---

1. चकित है दुःख पृ0 सं0 80

समाज शब्दों को हमने ऊपर बिल्कुल वर्तमान लोक तान्त्रिक अभिप्राय में ग्रहण नहीं किया। कला या कविता का आस्वादन इस अर्थ में समाज द्वारा शायद कभी नहीं हुआ है। हिन्दी साहित्य में केवल सूर, तुलसी और कबीर को ही इस अर्थ में 'सामाजिक कवि' कहलाने को गौरव प्राप्त हुआ है। किन्तु उनकी इस गौरव प्राप्ति में भारतीय इतिहास की एक विशिष्ट अवस्था और भारतीय धर्म साधना के प्रवाह के एक विशिष्ट सोपान का अमूल्य योगदान रहा है। कदाचित् वह स्थिति पुनः लौट कर नहीं आयेगी, न ही आनी चाहिए। 'समाज' से अभिप्राय कम से कम कला, कविता और संस्कृति के क्षेत्र में वैसे वर्ग से रहा है जो अप्रेक्षाकृत प्रबुद्ध, जागरुक तथा नवविकास का समर्थक रहा है। वही जीवन के लिये नए मूल्य, नये प्रतिमान स्थापित करनेमें सदेव प्रयत्नशील हुआ है। प्रतिभाशाली कवि सदेव इसी श्रेणी के भावों की अभिशंसना के लिए कामनाकुल रहें है।

भवानी प्रसाद मिश्र भी ऐसे कवि है–

"पुराना और कठोर जैसे स्फटिक/हर चोट पर।
फेंकता है नयी से नयी चिनगारी/ऐसी जलाने और सुलगाने के।
गुणों में और चमक में। ....सन्दर्भ पुराने हो सकते हैं/नये हो सकते हैं।
यह संयोग है कि मन मेरा/आज एक नया सन्दर्भ है/ मरग फिंकना तो चाहिए।
पुराने ही शब्दों से/नये इस सन्दर्भ की चिनगारी।"[1]

प्रयोगवादी कवि के लिए सबसे बड़ी समस्या यह है कि प्रबुद्ध और सुसंस्कृत समुदाय भी उसे अपने स्नेह और सहानुभूति का दान देने में संकोच कर रहा है। कुछ बात तो यह भी है किसी महनीय कला कृति की उचित अभिशंसा के लिए लालायित कोई भी वर्ग कभी प्रतीक्षा शील नहीं रहा है। धीरे–धीरे और प्रायः कष्ट के साथ उस कला–कृति ने अपने भावक वर्ग का निर्माण किया है। अतएव नई कविता के सामने भी अपने लिए भावक समुदाय की निर्मित का प्रश्न प्रमुख बन गया।

वास्तव में नई कविता हमारे लिए बिल्कुल नई है रूप में भी और भाव में भी। छायावाद की नवीनता ने हमें वह "शॉक" नहीं दिया जो प्रस्तुत कविता से हमे मिला है। अब तक के जाने पहचानें हमारे सभी प्रतिमान खण्डित जैसे भासित हो रहे हैं। आज रसानन्द की मॉग युगधर्म की विरोधी जान पड़ती है। इस काल का उपदेश तो एकदमAnachronisn है।

---

1. अंधेरी कविताएं–पृ0सं0 95–96

छायावाद ने भावों के स्वच्छन्द प्रवाह तथा काल्पनिक सौन्दर्य को रसानन्द के स्थानापन्न रूप में प्रतिष्ठित किया। तब भी, काव्य के आस्वादक वर्ग ने थोड़ी बहुत हिचक के साथ अपनी परम्परा पोषित रस भावना को इस नए काव्यादर्श की संगति में अभियोजित कर लिया। काव्य चेतना की सूक्ष्मता के बावजूद, छायावाद मानव हृदय की मौलिक विशेषता भावोद्रेक ध्रुवतारे की ओर अपनी आँख गड़ाए रहा प्रगतिवाद ने जब युगवाणी के अन्यास बहने की घोषणा की तब हमारा आस्वादक व्यक्तिगत यह समझ कर सन्तोष कर गया कि हमने दीर्घका तक हृदय की गंगा का जलपान किया है। अब लोक चित्र की यमुना के श्यामलनीर का भी स्वाद चखना चाहिए। जब प्रगतिवाद उग्र बन गया और अपने को लालरथ के पहिए से जोड़ दिया तब भी हमने सन्तोष किया कि अच्छा एक नए जीवन दर्शन की सम्भावनाओं को तो बोध हमें हो रहा है। किन्तु प्रयोगवाद ''गोताखोर'' के मोती देने की प्रतीक्षा करता हुआ भी, अपने को तथा चाय की प्याली को ही सच मानने लगा और आज पूरे दशक के बाद भी वह केवल घोंघे प्रदान करने का संकल्प सामने आता है।

> ''पता नहीं चलता जिनके उद्‌गम का / ऐसी धाराएं
> बीज नहीं मिलता जिनका ढूंढ़े / ऐसी कविताएँ
> सिचते हैं फिर भी जिनसे खेत / आँख खुलने के पहले खिलता है जिनका शतदल।
> हर प्रातः काल में और पूर्व दिशा के घुलने से पहले / जाने कितने प्रकाश कोस से।
> चलते–चली आने वाली ओस से / सज उठते हैं जिनके शतदल।
> ऐसी अबिरल कविताएं धाराएँ जैसे जल की
> न बीज मिलते हैं जिनके
> न उद्‌गम।''[1]

वैयक्तिक अनुभूति के प्रति ईमानदारी का जहाँ तक प्रश्न है मुझे ऐसा लगा है कि यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि जहाँ नए कवि के पास वस्तुतः कोई अनुभूति है ही नही और वह अनुभूति का नकाब पहन कर, पाठको को प्रभावित करना चाहता है। किन्तु जहाँ कवि सचमुच किसी अनुभूति से आन्दोलित है, वहाँ उस व्यक्तगत अनुभूति के प्रति ईमानदारी बरतने की चेष्टा इतनी उग्र है कि प्रयोगवाद सामान्य पाठकों को विकर्षित करता है। उसकी अभिव्यक्ति में वह अपना मानसिक सन्तुलन नष्ट कर देता है। सामाजिक उत्तरदायित्व की

---

(1) बुनी हुई रस्सी– पृ0 सं0 104

भावना के अभाव की बात कुछ, शायद बहुत कुछ अर्थो में सही हो सकती है। लेकिन, हम जानते है कि इस प्रकार का आरोप रीतिकालीन तथा छायावादी कविताओं पर भी लगाया जाता रहा है। तथापि काव्य रसिकों की ममता का प्रसाद उन्हें प्राप्त हुआ है। सामाजिक दायित्वों के प्रति जागरूक नहीं रहने वाली कविता भी अपने अन्य गुणों के कारण, सहृदय–समर्थ आचार्यो द्वारा सम्मानित रही है। ये गुण प्रायः भाव–सौन्दर्य तथा शिल्प–सौष्ठव रहे है। नई कविताओं में प्रायः इन दोनों तत्वों की अवहेलना दिखाई पड़ती है और तब सामाजिक दायित्व की उपेक्षा का तथ्य, इस पृष्ठ भूमि में, सतह पर किन्तु सभी नई कविताएं ऐसी ही है, नहीं कहा जा सकता है। पुनः सामाजिक दायित्व की भावना तथा उसकी पूर्ति के प्रकारों के विषय में भी भिन्नता का यथेष्ट अवकाश है। प्रयोगवादी कविता 'अतिरिक्त बुद्धिवाद' से ग्रस्त अवश्य है : और उसी कारण उसे ''काव्य की चौहद्दी'' में अंगीकृत नहीं करने का प्रश्न अवश्य विचारणीय है।

मैं अभी समीक्षा कर चुकी हूँ कि काव्य–विषयक हमारी चिर–पोषित धारणाओं को प्रयोगवाद ने गहरा धक्का दिया है। काव्य के स्वरूप और जीवित का भिन्न–भिन्न युगों में भिन्न–भिन्न आचार्यो द्वारा निरूपण किया गया है। तथापि सिद्धान्तो और व्यवहार दोनों दृष्टियों से 'रस' को काव्य की आत्मा, अलंकार, रीति इत्यादि को उसका शोभा धायक एवं उपकारक धर्म माना गया है। 'ध्वनि' के प्रस्तावकों ने भी, अन्तिम विश्लेषण में, 'रसध्वनि' को महत्व देकर, रस की ही सर्वोत्कृष्टता स्वीकार की है। ईमानदारी की बात यह है कि रस की निष्पत्ति के लिए उसके घटकों का जो निरूपण हुआ है, उससे आज हम पूर्ण रूपेण सन्तुष्ट नहीं है। यह तो हम मानते हैं कि कविता में कोई रसनीय तत्व होना चाहिए, किन्तु यह रसनीयता कुछ निश्चित आयामों के सन्निवेश से ही उत्पन्न होगी, यह मानने में हमें गहरी आपत्ति का अनुभव हो रहा है। दूसरी बात यह है कि रस की कल्पना में मावन की अनुभूतियों की मौलिक निर्विशेषता को सहज सत्य रूप में स्वीकार कर लिया गया था अथवा यह कहना चाहिए कि मनुष्य के भाव राज्य में उपलब्ध 'महत्तम समापवर्त्त' (Grealeat Commam Meadure) को ही काव्य का उपादान मान लिया गया था। किसी परिस्थिति विशेष में सभी व्यक्तियों की प्रतिक्रियाएँ समान होगी, यही धारणा रस–स्थापन के मूल में कार्यशील थी। रस–वाद की भित्ति संश्लेष की आधार शिला पर निर्मित थी और वह मनुष्य को व्यष्टि के रूप में न देखकर, समष्टि के रूप में देखने का आग्रही था। मानव प्रकृति में वैविध्य भी है,

उसका विश्लेषण भी होना चाहिए– यह प्राचीन काव्य रसिकों के लिए नितान्त गौण वस्तु थी। रसवाद ने जहाँ हमारे साहित्य को एक संगठित, सुसंस्कृत तथा मानवतावादी स्वरूप प्रदान किया, वहाँ व्यक्ति वैचित्र्य के अनुरोधों को उससे सम्मान नहीं मिला। अतएव आज जब विज्ञान ने हमें विश्लेषण और परीक्षण का दृष्टिकोण प्रदान किया है, हमारा साहित्य रस–वादी नहीं हो सकता है। नई कविता को इसीलिए रस की कसौटी पर नहीं करना जा सकता है।

आज का कवि जीवन के किसी तथ्य के प्रति रागात्मक दृष्टि से नहीं, बौद्धिक दृष्टि से संवेदन–शील होता है। वह मुख्यतया चिन्तक है और जीवन विषयक उसकी प्रतिक्रियाएँ एवं प्रतीतियाँ भावना–प्रसूत नहीं, बुद्धि–प्रसूत होती है। उसकी बुद्धि के तार, भावना के तारों की अपेक्षा अधिक सरल, तरीके से खन–खनाते हैं। इसी लिए वह कुछ कठोर, कुछ निर्मम, कुछ असंस्कृत जैसे लगता है। रसवादी परम्पराओं की प्रतिक्रियाएँ भावना–मूलक होती है। उनमें मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय अधिक मुखर होता है। इसलिए प्रयोगवादी कवि कुत्ते के समान रिरियाता है तो जीवन की कुण्ठाएँ होम करने के लिए संकल्प लेता है, मृत्यु को जीवन के रूप में हँस कर स्वीकार करता है।

भवानी भाई इन सभी के लिए कृत संकल्पित है–

"मत दो मेरे पाँवों को अपना पथ/हल्का कोई गतिवान रथ

क्या जाने वह कहाँ/ले जाये मुझे/अच्छा और निरापद लगना है मुझे

पॉव–पॉव चलना/कभी–कभी तुम्हारे भी पथ पर चल लूंगा।

मगर रास्ता जो मुझे/अच्छा लग जाये/उसे एकदम छोडू नहीं।

पॉव अपने बिलकुल दूसरी ही दिशा में मोडू नहीं।

इतना मत कसो मुझे/संभव है पथ तुम्हारा भी ठीक हो।XXX ठीक है/जीवन है

मुक्ति है जीवन से।"[1]

इस समय उसकी संवेदनाएँ बौद्धिक होती है, रागात्मक नहीं, अर्थात् वह उन सत्यों को चिन्तन के माध्यम से उपलब्ध करता है। संशय एवं सन्देह, अवास्था एवं निराशा के स्वर भी जब वह क्वणित करता है, तब भी उसकी मनोभंगी बौद्धिक ही रहती है। अतएव यह स्पष्ट है कि नया कवि जीवन को चिन्तन के चश्मे से देखता है जिस कारण उसके निष्कर्ष अधिक बौद्धिक होते है और भावनात्मक कम।

1. खुशबू के शिलालेख– पृ0सं0 99

तो यह स्पष्ट है कि चिन्तन से उपलब्ध सत्य रस प्रतीत की मर्यादा में नहीं बँध सकते है। तब प्रश्न यह है कि क्या प्रयोगवादी कविता काव्य की सीमा में गृहीत होगीं या नहीं? यह प्रश्न अत्यन्त का प्रवाह, सम्पूर्ण मान्यताओं की माला खण्डित हो जाने के संकट में पड़ गई है। काव्य का प्रयोजन क्या होना चाहिए, इस प्रश्न के उत्तर पर भी यह निर्भर कि नई कविता काव्य की चौहद्दी में समाविष्ट होगी या नहीं।

मनोविनोद, उपदेश अथवा आनन्द का दान प्राचीन युग में कविता के अभीष्ट बताएँ गये हैं। सुप्रसिद्ध आलोचक आई0ए0 रिचार्डस ने कविता के मनों वैज्ञानिक अनुवचन करते हुए, यह प्रतिपादित किया है कि कविता मनुष्य का आन्तरिक सामजस्य सम्पन्न करती है। अतएव, उनके मतानुसार काव्य में वैसे शक्तिशाली भाव या संवेग का चित्रण होना चाहिए जिसकी परितृप्ति से अधिकाधिक अन्य संवेगों की परितृप्ति हो सके। उनका कथन है कि प्रेम का संवेग सर्वाधिक शक्तिशाली है और उसके इर्द–गिर्द अन्य संवेगों की श्रृंखला घूमती रहती है; अतएव उस प्रधान संवेग की संतृप्ति से अन्य बहुतेर संवेग सन्तुष्ट हो जाते हैं और मानव का मानसिक सन्तुलन व्यवस्थित बना रहता है। यही कारण है, रिचार्ड्स के अनुसार, कि संसार के काव्य का पृथुल परिमाण प्रेम से सम्बन्धित है। भारतीय आचार्यो ने बताया है कि 'रीति' स्थायी तीन–चार व्यभिचारियों को छोड़कर, अन्य सभी संचारी भाव नियोजित हो सकते है। रिचार्ड्स के प्रकारान्तर से श्रृंगार की सर्वोत्कृष्टता ही उपपादित की है यद्यपि वे अपने विवेचन के मनोविज्ञान के परिधान में प्रस्तुत करते हैं। प्राचीन यूनानी समीक्षाकों ने दुखान्त नाटकों की विवेचना करते समय, 'विरेचन' सिद्धान्त (कैथार्सिस) का निरूपण किया था और यह बताया था कि दुखान्तको के प्रेक्षण से जो भय एवं करूणा (Pity and Teov) के संवेगों का अतिशय आप्लावन होता है, उससे दर्शक का मानसिक सन्तुलन व्यवस्थित हो जाता है। इसका कारण यह है कि इस श्रेणी की मानसिक व्याख्याएँ काव्य के वास्तविक प्रयोजन को विज्ञप्त नहीं करती है और, अन्तिम विश्लेषण में, यह मानसिक सामरस्य आनन्द का ही रूप है। अतएव, जैसे काव्य का प्रयोजन आनन्द–दान नहीं माना जा सकता है, वैसे ही मानसिक सन्तुलन भी नहीं।

आचार्य शुक्ल जी ने बताया है कि कविता मानव मन का शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करती है। यह व्याख्या उपर्युक्त सभी स्थापनाओं से अधिक संगत एवं सार्थक है। इसीलिए वह कविता को मानव तथा शेष सृष्टि के बीच सम्बन्ध–स्थापन का एक सुन्दर साधन मानती है। शेष सृष्टि के अर्थ को थोड़ा और व्यापक बना देने से यह कहा जा सकता

है कि कविता मानव और उसे परिवेश के बीच मानसिक सम्बन्ध स्थापित करती है। मनुष्य निसर्गतः व्यक्तिवादी होता है। जीवन के स्थूल प्रयोजन उसे स्वार्थ परायण बना देते है और वह चारो ओर से आकर भी अपने छोटे से वृत्त में आकर सिमट जाना चाहता है। कविता उसे उसके संकीर्ण वृत्त में से खींच कर बाहर लाती है। उसे वह उसके परिवेश में ला पटकती है जहाँ वह प्रत्येक तथ्य किवां सत्य के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ता है। प्रश्न केवल इतना रह जाता है कि उस सम्बन्ध का स्वभाव क्या हो? केवल रागात्मक ही या उसके अतिरिक्त कुछ और?

रामचरित–मानस के अन्त में तुलसीदास जी ने जो अभिलाषा व्यक्त की है कि जिस प्रकार कामी को नारी प्रिय होती है उसी प्रकार उन्हें सीता–राम प्रिय लगे। क्या वह उपलब्धि उन्हे केवल 'राग' के माध्यम से हुई? तब तो उनका सम्पूर्ण चिन्तन एवं विवेचन जो मानस में दिखाई पड़ता है वह व्यर्थ सिद्ध हो जायेगा। उसी प्रकार, भावक को भी जो उपलब्धि मानस के अध्ययन के उपरान्त होगी, वह केवल रागात्मक नहीं बल्कि उसमें उसके चिन्तनात्मक ऊहा–पोह का भी, ही प्रमुख योग रहेगा। संसार के महान रचयिता प्रायः सभी महान चिन्तक थे और उनकी कृतियों में उनके गहन चिन्तन की रेखाएँ साफ झलकती हैं। इसी कारण, उनके काव्य का आस्वादन प्रायेण चिन्ताजन्य होगा। हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि राग के संस्पर्श का उसमें चिन्तन भी तथा विषय वा सम्प्रेष्य वस्तु की प्रकृति की अनुरूपता में इन दोनों तत्वों का अनुपात घटता–बढ़ता रहेगा। पुनः कवि का व्यक्तित्व भी इसी अनुपात के निर्धारण में एक बड़ा कारण होगा। अतएव, काव्य का वास्तविक प्रयोजन यही है कि वह मानव तथा उसके परिवेश के बीच उत्पन्न होती रहती खाई को पाढतां जाय, कि वह मनुष्य को एक दृष्टि प्रदान करे जिससे वह अपने परिवेश को सही ढंग से देख सके, समझ सके, उसे स्वायत कर ले तथा अपने अनुकूल बना ले।

रागात्मक सम्बन्ध की बात दूर तक नहीं जाती किसी सुन्दर फूल के प्रति अथवा सुन्दर चन्द्रमा के प्रति हमारी प्रतिक्रिया रागात्मक हो सकती है, साधारणतया रागात्मक रही है। किन्तु, हमारा परिवेश जटिल एवं वैविध्यपूर्ण है और हमारे मानसिक विकास या परिष्कार की स्थिति भी गतिशील है। ऐसी अवस्था, मे यह सम्भव नहीं है कि हमारी अपनी स्थिति परिवेश के विविध उपादानों के प्रति संवेदनाएं सदैव रागात्मक हो। एक बात और ध्यान में रखनी होगी– यह कि मनुष्य में जिजीविषा बड़ी प्रबल होती है। यह जीना चाहता है, यह सबसे बड़ा

सत्य है। फ्रायड ने मृत्यु या विनाश की प्रवृत्ति को भी एक अन्य विरोधी वृत्ति माना है। यदि विनाश–वृत्ति को स्वाभाविक मान लिया भी जाए, तो यही कहना अधिक संगत होगा कि यह वृत्ति सक्रियता मूलक नहीं, निष्क्रियता–मूलक है, Possitive नही Negetive है। काव्य भी हमारी जिजीविषा का प्रतीक है, कदाचित सबसे सूक्ष्म और शक्तिशाली भी नृ–तत्व वेत्ताओं का भी कथन है कि कला के उत्स हमारे मृत्यु–भय तथा अमरत्व की एषणा में सन्निहित है। शेक्सपियर में एक Sonnet में काल से अनुरोध किया है कि वह उसके प्रेमास्पद को वह पुरातन, जीर्ण–जर्जर काल उसके अनुरोधों को तिरस्कृत कर दे तो उसका प्रिय उसकी पक्तियों में अमर रहेगा, सदा जीवित रहेगा।

वस्तुतः जिजीविषा की चिनगारी को निरन्तर सुलगती रखना एक कला है। यही कविता का एक मुख्य उद्‌देश्य। किन्तु, इस जीव नैषणा के लिए मनुष्य का अपने परिवेश के साथ सम्यक् सन्तुलन आवश्यक है। यह सन्तुलन सदैव रागात्मक नहीं होगा। मानव विकास की आदिम अवस्था में वह रागात्मक ही था, किन्तु परिवेश के जटिलतर होने के साथ वह बौद्धिक बनता गया। अतएव कला या कविता मनुष्य का परिवेश के साथ बौद्धिक सन्तुलन भी स्थापित करती है। इस प्रकार उसकी जिजीविषा का प्रतीक एवं प्रमाण बन जाती है।

लेकिन कविता के इस बौद्धिक सामजस्य की एक अपनी विशिष्टिता है। इस बौद्धिकता में तर्क की प्रधानता नहीं होती है, चिन्तन की प्रधानता होती है। चिन्तन सदैव तर्कयुक्त नहीं होता है। अतएव कविता परिवेश के साथ जो हमारा बौद्धिक परिवेश जोड़ेगी वह तर्क मूलक नहीं होगा वह चिन्तन मूलक होगा।। तर्कना का आश्रय लेने से कविता शास्त्र बन जायेगी और तब उसकी विशिष्टता नष्ट हो जायेगी कविता सूचना नहीं शक्ति देती है। यह शक्ति कवि के चिन्तन की प्रसूति है। सुप्रसिद्ध विचारक (D, Quenci) डी क्वीन्सी, ने जो 'ज्ञान साहित्य' और शक्ति के साहित्य का भेद दिखाया है, उसमें यही भाव ध्वनित है कि कविता मानव के उस उच्चतर एवं गम्भीरतर व्यक्तित्व को स्पर्श करती है जो केवल राग नहीं है, केवल तर्क नहीं है, अपितु अन्तस का वह सुन्दर संगठन है जो चिन्तन की चन्द्रिका में उद्‌भाषित हुआ कविता के प्रभाव की पद्धति, इसी कारण, हमें वह Shok देना है जो हमारे व्यक्तित्व को विचलित कर दे कि हमने जीवन अथवा संसार के साथ सम्बन्धों का जो पैटर्न बना लिया है, वह परीक्षणीय है, शायद परिवर्तनीय भी। इसी प्रणाली से कविता हमें जीने

और जागने की शक्ति प्रदान करती है। लारेन्स डरेल का कथन है कि यदि कला का कोई संदेश हो सकता है, तो यही है कि वह हमें यह स्मरण कराए कि बिना उचित ढंग से जिए हुए भी, हम मर रहे हैं।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों के प्रकाश में यह स्पष्ट हो गया कि कविता रागात्मक संस्पर्श से आगे बढ़कर, बौद्धिक उद्वेलन से भी प्रसूत होती है। अर्थात् काव्य की सीमा को नई कविता के प्रयत्नों के मूल्यांकन के लिए बढ़ाना पड़ेगा, उसे कुछ विस्तृत कुछ उदार बनाना पड़ेगा। पुरानी मान्य कसौटी पर कसने से ये नई रचनाएं एकदम वाणी का व्यायाम जान पड़ेगी। हमें अपनी मान्यताओं को थोड़ा ढ़ीला बनाना पड़ेगा जो हमारी काव्य विषयक दृष्टि–भंगी के परम्परागत लचीले पन के सर्वथा अनुरूप है। काव्य की आत्मा से सम्बन्धित जो विवेचन यहॉ शताब्दियों से होता आया है, वह इस बात का प्रमाण है कि कविता को सही–सही पकड़ने और समझने के लिए हमने अपने मानस को सदा उन्मुक्त रखा है। मम्मटाचार्य ने नैषधकार श्री हर्ष से कहा था कि यदि उनका महाकाव्य 'काव्य प्रकाश' की रचना के पूर्व मिला होता तो काव्य दोष वाले प्रकरण को और भी स्पष्ट करने में उन्हें सहायता मिलती।

प्रयोगवादी कविताएं अस्पष्ट एवं दुरूह बन गई हैं, इसे हम पहले ही स्वीकार कर चुके हैं। यह भी कहा है कि जाने–अनजाने इन कविताओं पर प्रतीकवाद, बिम्बवाद विदेशी मतवादों का पाउण्ड हापॅकिन्स जैसे लेखकों का प्रभाव पड़ा है। प्रयोगवादी कवि अपनी वक्तव्य वस्तु को सही–सही नहीं पकड़ पाते और गहराई में जाने की अभिलाषा से अनुप्राणित होने के कारण, उनकी अनुभूतियाँ उलझ जाती हैं जिस कारण उनकी अभिव्यक्तियाँ भी उलझी एवं दुर्बोध जान पड़ती है। डॉ0 नगेन्द्र के इस वाक्य में पर्याप्त सार है – ''परिणाम स्वरूप एक गहन बौद्धिकता के कारण इन कविताओं पर सीसे के पर्त की तरह जमती जाती है।''[1] इन नए कवियों के पास सुनिश्चित या सुस्थिर विचार या दर्शन नही है जिसे सही मानकर, ये जीवन के प्रश्नो अथवा असंगतियों का साक्षात्कार करें। अज्ञेय की यह टिप्पणी आज भी सही है कि नए कवि अन्वेषी हैं, अर्थात परिवर्तित जीवन सन्दर्भो के साथ अपने को अभियोजित करने के लिये नये मार्गो की खोज कर रहे है। उनकी मानसिक छटपाहट राग पर उन्हें विश्वास नहीं करने देती है। परिणामतः उनकी संवेदनाएं रागात्मक नहीं है, बौद्धिक होती हैं और इसी बौद्धिक तत्व को ही अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टां करते हैं यदि संवेदनाएं मूलतः रागात्मक होती तो उनकी रागात्मक अभिव्यक्ति के लिए उन्हें बिल्कुल नवीन मुहावरों और प्रतीकों की खोज नही करनी पड़ती। प्रयोगवाद की सबसे बड़ी समस्या यह है कि बौद्धिक

1- It art has any massage it must be this : to remind us that we are dying without having properly lived. " (Lawrence Durrell)

2- वाद–विवाद समीक्षा पृष्ठ–59.

अनुभूतियों को वह रागात्मक अभिव्यक्ति क्यो कर प्रदान करें।

जिस दिन वह इस समस्या का समाधान प्राप्त कर लेगा, उसी दिन उसकी प्रयोग–वृत्ति सार्थक हो जायेगी और वह हमारी परिशंसना का भाजन बन जायेगा।

उपर्युक्त सिद्धान्त भवानी प्रसाद मिश्र पर लागू ही किये जा सकते है ऐसा कहना 'सब धान बाईस पसेरी तौलना सदृश्य होगा।

कुछ बिम्ब या प्रतीकों को छोड़कर वे सहजता का आश्रम लेते हैं, वे चाहते है कि वे ऐसी काव्य सर्जना करें, जो सर्व ग्राहय, सर्व जनीन हो। कभी उनकी कविता स्वान्त सुखाम प्रतीत होती है तो कहीं बहुजन हिताय–

"इन कविताओं में वही सब जुटा रहा हूँ मैं
इनमें मेरा कुछ नही है/सिर्फ मेरा होने से इतने बड़े देश और इतनी बड़ी दुनिया
और आने वाले देशों/और कालों का क्या बनेगा।
गांधी–त्योहार तो मनेगा तब जब आज और आगे के माथे से
छोटी बड़ी क्रूरता का कलंक धुल जायेगा
जब धरती पर हर जीव के निर्भय और समंजस/जीने का द्वार खुल जायेगा।
जानता हूँ मेरी इन कविताओं से ही/इतना सब नहीं हो जायेगा।
यह तो एक आवाज है अंधेरी रात के कोलाहल में
कोलाहल से ऊपर उठकर कुछ करने वालों को पुकारने वाली/जब इस पुकार पर
पुकार लगाने वाले/ और कोलाहल के बीच में सही स्वर जगाने वाले
अनन्त लोगों के बीच फूटेगी सुबह की लाली।
तब टूटेंगी घृणा और क्रूरता और उपेक्षा
और अभाव और भय/और दब्बूपन की कड़ियां
हजारों ही नहीं करोड़ो जब जगायेगें पहले अपने अपने मन में
उजाले और स्नेह की घड़ियां,
तब ये कविताएं अकेलापन महसूस नहीं करेगी
और तभी मरेंगी ये सुख का कोई एक कोना
मगर तब तक के लिए कह नहीं रहा हूँ मैं/शुरू कर रहा हूँ
जितना बन सकता है मुझसे उतना छोटा एक काम

लेकर समूची मानवता की परम्परा में

अब तक के सबसे सीधे–सादे निर्भय और स्नेही आदमी

गांधी का नाम।''[1]

अभिव्यक्ति नहीं नई शैली नवीन रचनाओं में देखी जाती है जिससे पाठक अद्यापि अपरिचित है। ऐसी कविताओं को समझने के लिये पाठक में भी नवीनता को ग्रहण करने की तत्परता होनी चाहिए। कभी–कभी केवल वातावरण के चित्रण से कवि अपनी मनः स्थिति की विज्ञप्ति करने का प्रयत्न करता है। ऐसी रचनाएं प्रथम अवलोकन में खिलवाड़ प्रतीत होती है। परन्तु उन्हे काव्य की परिधि से बहिस्कृत नहीं किया जा सकता है–

भवानी प्रसाद मिश्र नयी शैली का प्रयोग तो करते है, लेकिन उनकी कविताओं में आस्वाद की समस्या कहीं नहीं हैं–

''अभी जीवन / कम ज्यादा छन्द है / सॉसो का कम–ज्यादा

मगर किसी नियम से घटना–बढ़ना / छाती का कम–ज्यादा / मगर घड़कते रहना

बन्द भी आंखो का जलना / सपनों में तहर–लहर / उड़ना विचारो का

हिलना हाथ पॉवो का / अभी सब / छन्द है कम–ज्यादा / जानता हूँ

संगीत हो जायेगा जीवन / जब शरीर से / छूटेगा यह / कण्ठ से छूटे

स्वर की तरह / धड़कने बदल जायेगी / मूर्च्छना में / साँसे हो जायेगी लय

प्रलय की तरह / तरंगे पैदा करेंगे / डाल गये हाड़

सरसराते हुए किनारे

बन के साथ

गूँजूँगा मै वर्षा में तूफान में

अभी जीवन छन्द है

जानता हूँ

शरीर से छूट कर संगीत हो जायेगा यह।''[2]

इन पंक्तियों में अलग–अलग बिम्ब अंकित हुए है जो एक दूसरे से विच्छिन्न लगते है। किन्तु सबको मिलाकर, कवि का अभीष्ट रहा है– प्राणवत्ता, शक्ति मत्ता उत्पन्न करना।

---

1. गांधी पंचशती, पृ0 6–7.
2. अँधेरी कविताएं पृ0सं0 98

जिजीविषा की उत्कृटता अभिलाषा, आशा का संचार , सदाशयता का व्यवहार जीवन है एक प्रेमोपहार। अनवरत संघर्ष की प्रेरणा, तूफानो से जूझना। यही सब तो है भवानी प्रसाद मिश्र की कविता, जो सहज ग्राह्रय के साथ साधारणीकृत करती है।

"फूल, हाँ अच्छे लगते हैं/ऊष्मा मिलती है/सर्दी में भी उन्हें पास पाकर
हवा का झोका/हाँ ताजगी देता है/उतरवा लेता है जैसे/सिर पर को बोझ
लगाकर हाथ/लहरें नदी की/या समुद्र की/टकराती रहे तट पर
तो पहरों/देखता रह सकता हूँ उन्हे
मगर ये ज्यादातर
केवल सुख है
और इसलिए कम है तुमसे
जो ज्यादातर
चिन्तन हो चिंता हो दुःख हो/दुःख को/मालूम रहता है/कब आना चाहिए
दर्द को मालूम रहता है/कब गाना चाहिए।"[1]

प्रस्तुत कविता में भवानी प्रसाद मिश्र की कला का सुन्दर नमूना है इसमें जो वर्णन किया गया है वह बहुत ही ह्रदयवर्जक है।

भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में जीवन के विविध रंग हैं गरीबी भुखमरी

"भदरंगी
एक तंगी
नंगी खड़ी है सबके सामने
यह तंगी
जितनी तन की है
उससे ज्यादामन की है
बेशक तंग दिली ने
पैदा किया है इसे
मगर स्पर्धा से लबरेज

---

(1) इदं न मम–पृ0सं0–76

व्यवस्था में

इसकी परवा है किसे

नाथ के साथ की साथरी

इसमें दरिद्रता का पर्याय

बन गयी है

मर रहे है इसमें/भूखे या ख–खाकर

गमी नियम बन गयी है/खुशी अपवाद।"[1]

महानगरीय सभ्यता पर करारा व्यंग्य, गरीब के लिए प्रजातंत्र आया ही नहीं, वह तो अमीरों की कैद में है–

"लोग जो नहीं चाहते

एक ऐसा खेल है

जिसका मेल है अगर

आदमी के मन के किसी तत्व से

तो उसका नाम बदमाशी है

यह काशी है

लोग यहाँ आकर तर जाते हैं

इसे देखो

यह प्रगतिशील ढंग का जीवन है

इसे जीकर लोग

नाक तक भर जाते हैं

इसे देखों आओ

पेरिस, लन्दन– न्यूयार्क के

चक्कर खाओ

इसे देखो समझो और गाओं

यह प्रजातंत्र है

आदमी में व्यक्तिमत्ता

---

1. परिवर्तन जिए, पृ0 सं0 13.

जगाने का मंत्र है
इसे देख सुन समझकर
आदमी आपे में आता है
वह समाज को पूरी तरह
भूल जाता है
अपने लिए कारखानें खोलता है
दवाइयों में जहर घोलता है
अंबार लगाता है
अपने लिए पैसे के
बड़े–बड़े घर बनाता है
जो सचमुच में गमी है
उसे जशन की तरह मनाता है
एकदम निरर्थक चीजों को
घरों में लाता है
निरर्थक उन चीजों से
घर को सजाता है
आओ इसे समझो और
देखो और चक्कर खाओं
याने यहाँ गाओं प्रजातंत्र को
वहाँ समाजवाद को
भूलो वह सारा
जो सचमुच था तुम्हारा।
जहाँ जिस–चीज की प्यास
जगाई जाये
वही तुम्हें भाये
तो तुम प्रगतिशील हो
देशभक्त हो

नहीं तो प्रतिक्रियावादी हो

गये–गुजरे वक्त हो

तुम्हें गया गुजरा कर दिया जायेगा

तुम्हारें निरर्थक अस्तित्व को उठाकर

किसी खासे ऊँचे ताक पर

धर दिया जायेगा।"[1]

मिश्र जी कविता न तो मुक्ति बोध की भाषा के समान क्लिष्ट है और बुद्धिबोझिल है और न अज्ञेय की कविता के समान प्रतीक बहुल। घूमिल, नागार्जुन की तरह अशिष्ट और बेलगाम। इसके विपरीत उसमें आशा का सौरभ और विश्वास का आलोक है –

"अभी स्वर है।अभी सुगंध है/ अभी लय हैं/अभी छन्द है/आग भी है एकाध बार/ पारम्परिकता के आड़े आने वाले/तत्वों के लिए/ज्यादातर पराग है/कि उड़कर शून्य मे/सुवास भर दे।"[2]

ऊपर जो हमने कतिपय उदाहरण दिय है वह यह दिखाने के लिये कि नई कविता के प्रयोग में से ऐसे भी तत्व वर्तमान है जो रक्षणीय एवं परिवर्धनीय हैं और ऐसी कविताओं का परिमाण यथेष्ट है। आश्चर्य की बात यह है कि न तो समालोचक ऐसी कविताओं को कहीं उद्धृत करते है और न ही कवि आलोचक ही। पहली श्रेणी के समालोचकों को भी नई कविता की भर्त्सना के लिए लचर, ऊल–जलूल पक्तियाँ मिल जाती है और साथ ही दूसरी श्रेणी के आलोचक भी ऐसी ही प्रहेलिका–मूलक रचनाओं का प्रदर्शन कर पाठकों को प्रभावित तथा आतंकित करने का उद्योग करते हैं।

प्रस्तुत प्रकरण में ऊपर हमने कविता में किसी रसनीय तत्व के वर्तमान रहने की बात कही है। यह रसनीय तत्व सदैव पुरानी शैली का स्थायीभाव रागविष्ट चित्रण भी नहीं। कवि की प्रतिक्रिया अथवा संवेदना बौद्धिक हो सकती है। किन्तु, यह एवं अनुभूति में Emation का कोई तत्व विद्यमान नहीं हैं। प्रत्येक अनुभव, मनोविज्ञान की दृष्टि से, तीन तत्वों का समाहार होता है–Knowing: Feekling और Sinving अर्थात् वस्तुओं के सबसे पहले 'जानना' तब उसके प्रति मन में किसी प्रकार का 'भाव' का उदय होना और तब उसके लिये 'चेष्टा' करना।

---

1. परिवर्तन जिए, पृ0 सं0 39–40.
2. व्यक्तिगत, पृ0सं0 159.

वस्तुतः ये तीनों क्रियाएँ साथ–साथ घटित होती है और किसी भी अनुभव के आवश्यक अंग है। अतएव, कवि का कथ्य चाहे उसके ऊपर बौद्धिकता की कितनी ही मोटी पर्ते क्यों न जमी हों, कही न कहीं किसी सूक्ष्मतातिं सूक्ष्म 'भाव'– तत्व से अवश्य रंजित होगा। साधारणतया कविता पहले पाण्क के 'राग' को स्पर्श करती है और तब वह राग स्पर्श से उसे बौद्धिक चिन्तन या विचारणा के लिये अनायास बिल्कुल रीति, से प्रेरित करता है। कविता इसी राजमार्ग से मानवचित को प्रभावित करती आई है लेकिन जैसे मानवता की विकास यात्रा में आस्था मूल मान्याताएं प्रश्न–परायण मनोवृत्ति से आक्रान्त होकर, सम्प्रति बुद्धिवादी रंगो में निमज्जित हो गई है, वैसे ही कविता, जैसे यूरोप में वैसे भारत में भी, अपना व्यावर्तक धर्म बदल चुकी है। जहाँ पुरानी कविता की पहचान 'राग अथवा भाव से होती थी, वहाँ नई कविता की पहचान आज है जिसका प्रस्कुरण प्रायः बुद्धि अथवा चिन्तन के प्रश्रयण का परिणाम है।

इसी लिए जहाँ पहले हम मुख्य तथा भाव दृष्टि से प्रभावित होते थे, वहाँ अब हमे मुख्यातया बुद्धि–दृष्टि से प्रभावित होने का प्रयत्न करता है ऊपर भी हमने कहा है कि कविता परिवेश के साथ हमारा रागात्मक ही नहीं, बौद्धिक सम्बन्ध भी स्थापित करती है। तथापि, उस बौद्धिक सम्बन्ध में रसनीय तत्व का एकान्त बहिष्कार हो, ऐसी बात नहीं है। भावक नई कविता में उस तत्व का आस्वादन करेगा। जो बौद्धिकता की खटाई में सने होने पर भी, किसी न किसी प्रकार, भाव की हल्की मिठास से अवश्य रंजित होगा। कभी–कभी कविता में चित्रित बौद्धिक अनुभूति जिसमें भाव तत्व नितान्त विरल हो, मानस द्वारा गृहीत हो जाने पर हमारे लिए वैसी ही रसनीय बन जायेगी जैसा कोई विशुद्ध राग तत्व। ऑवला खट्टा होता है, किन्तु दॉत से कुचले जाने पर खटाई अनुभव कराने के बाद, वह मुहँ में एक क्षीण, हल्की मिठास भी छोड़ जाता है। प्रयोगवादी कविता में आस्वादन के लिए हमें यही ऑवला मिलता है जो हमें अपनी प्रस्फुट खटाई से सचेत भी करता है और हमें अपनी हल्की मिठाई से ललचाता भी है। ऑवला स्वास्थ्य के लिये हितकारी भी होता है। इसी कारण नई कविता भी अपनी सम्पूर्ण खटाई के बावजूद नई पीढ़ी के लिये गुणकारी एवं प्रयोजनीय है।

तात्विक दृष्टि से अवलोकन करने के बाद मैने ऊपर जो यह बताया है कि जिजीविषा को जाग्रत करना कविता का एक प्रमुख उद्देश्य है, इस कथन का हमारी मूल स्थापना 'जीवन बोध' से कोई विरोध नहीं है। प्रयोगवादी कविता के आस्वादन की समस्या के सुलझाव के लिए मैने उचित यही समझा कि किसी आधुनिक उपत्ति को ही अपने निरूपण का आधार

बनाया जाये जिससे मेरी अपनी उपपत्तियाँ उच्द्‌खल न समझी जाएं, इसी से मैं इसी से मैं आचार्य शुक्ल की स्थापना को स्वीकार, आगे बढ़ी हूँ। काव्य में सत्य 'सौन्दर्य' तथा शश्वत' का विशेष महत्व अंकित किया गया है, और शायद नई धारा की आलोच्य कविता में इन तत्वों की प्रतिष्ठा का प्रश्न विवाद की परिधि से बाहर नहीं होगा। लेकिन महत्वपूर्ण तत्वों और प्रमेयों के विषय में अधापि अन्तिम निर्णय नहीं हो सका है, कभी होगा भी, इसमें गहन सन्देह है। लॉरेन्स डरेल का यह कथन मुझे अत्यन्त सटीक प्रतीत हुआ –

"I do not think I hed to remind you how in every age the greatest Can Ceptual like 'Truth' ' beauty and eternity have been discussed and examined nad defined without any final judgmant being reached upan them for our Purpose we might us as well lable these gneat abstractins irreducible qvantili X X X X X X theve is no final truth to be fond theve is only Provisinal truth Within a qivin contx"[1]

अर्थात 'सत्य' 'सौन्दर्य और शाश्वत' अस्थिर और अपरिभाष्य वस्तुएं है और ये अन्तिम निर्णायक व्याख्यान की पकड़ में नही आ सकती जीवन के कतिपय प्रेरक तत्व यथा प्रेम, घृणा इत्यादि, शाश्वत कहें जा सकते है, किन्तु भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में इनकी जो भिन्न–भिन्न अभिव्यक्तियाँ देखी जाती है, उनसे 'शाश्वत' के स्वरूप का आत्यान्तिक बोध होता नहीं समझा जा सकता है। नई कविता के मूल्य मापन के लिए आत्यतिंक समझे जाने वाले इन समस्त प्रमेयों की कसौटी को शिथिल बनाना पड़ेगा।[2]

नई कविता डरेल के शब्दो में, यह स्मरण दिलाने का सफल प्रयास कर रही है कि ऐसा न हो कि बिना उचित ढंग से जिये हुए ही हम मरते चले जायें। यह भी व्यापक तथा मौलिक अर्थो में जीवन बोध ही है, और इस प्रकार प्रयोगवादी कविता 'कविता' के गोत्र से विच्छिन्न नहीं की जा सकती है– उसका संसार आपाततः एवं अनाकर्षक भले ही जान पड़े और कविता के वर्गीकरण में उसे शिखर पर आसीन करने में भले ही कठिनाई उत्पन्न हो जाय।

कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने इसके लिए विविध उपकरण या पक्ष प्रस्तुत किये हैं चित्रवृत्तियों का रसत्व, व्यंग्स से आस्वादन, जन सामान्य घटनाओं के द्वारा। इनके उदाहरण

---

1. Key to Modern Poetry. Page 3-4.

2.

मैं पूर्व में लिखा चुकी हूँ। चित्रवृत्तियों के रसत्व में 'स्व' को स्वीकार किया, व्यग्य में–अमीर वर्ग राजनीतिज्ञ उनके केन्द्र बिन्दू बने तो उन्होनें अधिकाधिक जन सामान्य घटनाओं का सहारा लिया है। इसके लिए मैं उनकी 'कालजयी' रचना को भी प्रस्तुत करना चाहूँगी जिसमें उन्होनें 'अंहिसा' का सन्देश दिया है, इस कार्य को वे ' पंचशती' में भी प्रस्तुत कर चुके है।

भवानी प्रसाद मिश्र की एक दर्जन काव्य कृतियों के बीच मात्र एक ही प्रबन्धात्मक काव्य रचना है।– कालजयी। अपने नाम के अनुरूप यह न मात्र कालजयी भारतीय संस्कृति के प्रतीक सम्राट अशोक के जीवन से सम्बन्ध है, वरन् स्वय कवि की काल जयी रचना बन पड़ी है। इस रचना का महत्व इसमें निहित मानव मूल्यों की स्थापना के कारण है। मनुष्य की चेतना के विकास में जिस अध्यात्मवादी दर्शन का महत्वपूर्ण योगदान है, यह काव्य–कृति उसी दर्शन के वरेण्य बताती है जिसकों कि गौतम और गांधी ने अपनाया था। मानवता वादी इस चेतना की पुनर्प्रतिष्ठा का उद्देश्य लेकर ही इस कृति की रचना की गई है।

इस प्रकरण में हम 'कालजयी' का विस्तृत अनुशीलन करेगे।

'कालजयी' का कथानक और रचना-विधान

भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी इस रचना का कथानक प्राचीन भारतीय इतिहास के सम्राट श्रेष्ठ अशोक के राज्यभीषेक विषय अपेक्षया अल्पज्ञात घटना से सम्बन्ध है। मौर्य वंशी चक्रवती सम्राट अशोक के ब्याज से कवि ने भारतीय संस्कृति और वैचारिकता का उद्घाटन किया है, इस लिए यह स्वीकार करके चलना चाहिए कि:

यह कथा व्यक्ति की नहीं,
एक संस्कृति की है;
यह स्नेह शान्ति
सौन्दर्य शौर्य की, घृति की है।

—कालजयी पृष्ठ।।

संक्षेप में 'कालजयी का कथानक साररूप में इस प्रकार है: पाटलि पुत्र के मौर्य वंशी शासक चन्द्र गुप्त के पुत्र का नाम बिन्दुसार था। बिन्दुसार की अनन्त रानियाँ थी उनमें से दो का उल्लेख मिलता है। एक रानी ग्रीस की थी, दूसरी चंपक प्रदेश की राज पुत्री शम्पा। उनके पुत्र–पुत्रियां भी रही होंगी, लेकिन उल्लेख चार पुत्रों का ही मिलता है– सुसीम, महिन्द

और तिष्य। ये चारो भाई लगभग एक ही उम्र के थे और उनकी शिक्षा–दीक्षा भी समान ही थी। बिन्दुसार के बाद उनका उत्तराधिकारी कौन बनेगा, इसको लेकर बिन्दुसार चिन्तित थे; क्योंकि चारों भाइयों में से सभी के दावे उचित ही ठहरते थे। बिन्दुसार सर्वाधिक प्यार सुसीम से करते थे और चाहते थे कि उनके बाद वही सिंहासनारूढ़ हो तथापि उन्होनें अपनी यह इच्छा दवा कर राजगुरू से निर्णय मांगा। राजगुरू ने जो निर्णय दिया वह अस्पष्ट था। तथापि राजा निश्चित हो गए। उन्होने माना कि निर्णय सुमीम के पक्ष में है। जब कि गुरू के मन में अशोक थे, किन्तु वे भी इसे स्पष्ट नही कहना चाहते थे।

अशोक की माँ शम्या अपने पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने के लिये बहुत अधिक उत्सुक नहीं थी। वह चाहती थी कि अशोक ऐसे नैतिक और राजनीतिक संस्कारों से दीक्षित ही जाए जिनसे वह एक उदान्त गुणों वाला मनुष्य बने और छल बल, उत्पीड़न की प्रवृत्ति से दूर रहे। इसीलिए वह उसे ऐसी ही शिक्षा दे रही थी। इसी समय राजा बिन्दुसार को समाचार मिला कि तक्षशिला में जन–विद्रोह हो गया है। मंत्री ने सुझाव दिया कि सुसीम को तक्षशिला भेज दिया जाये क्योकि उसकी राय में सुसीम अपने ननिहाल की समस्याओं को ठीक तरह सँभल सकेगा। किन्तु बिन्दुसार को यह सुझाव सुसीम के हित में नहीं जान पड़ा। अतः उन्होनें शम्पा के सुझाव पर अशोक को तक्षशिला भेजा अशोक ने रक्तपात और नरसंहार के बिना ही उस जन विद्रोह को शांत कर लिया। इसके पश्चात् उज्जयिर्नी की समस्या उठ खड़ी हुई अशोक को अब उज्जयिनी भेजा गया। अशोक जब वहाँ गया तो उज्जयिनी के सेठ की पुत्री देवी के संसर्ग में आया। दोनों का विवाह हो गया। जब बिन्दुसार के देहावसान की सूचना उसे मिली तो वह सपलोक पाटलिपुत्र लौट आया। कुछ दिनों बाद सभी की सहमति से अशोक का राज्यभिषेक हुआ तत्कालीन परम्परा के अनुसार नये सम्राट को अपनी क्षमता का परिचय देने के लिये कोई नया राज्य जीतना पड़ता था। इसी परम्परा का पालन करने के लिये अशोके ने भयंकर नरसंहार के द्वारा कलिंग में विजय प्राप्त की। कलिंग विजय के पश्चात् अशोक को पश्चाताप हुआ कि अन्ततः इसी रक्तपात से क्या मिला? विक्षोम और आत्म प्रताड़न से दुःखी अशोक बौद्ध धर्म के एक प्रचारक भिक्षु उप गुप्त की राख में गया। बौद्ध धर्म विधिवत् दीक्षित होने के बाद उसने मानवता और शान्ति की रक्षा करने वाले सम्राट के रूप में अपने राज्य में स्तूप और शिलालेख लणवाल और अपनी पुत्री तथा अन्य प्रचारकों को सारे विश्व में बौद्ध धर्म की शिक्षा का प्रसार–प्रचार करनें के लिये भेजा।

इस संक्षिप्त कथानक को इस कृति में विन्यसित करने के लिए मिश्र जी ने इतिहास और कल्पना के सहयोग से काम लिया है। इतिहास और कल्पना से बुनी हुई इस कथा को छह सगो में विभक्त किया गया है। बीज, अकुर, विकास, वट, छाया और निर्वाण।

प्रथम सर्ग :–बीज में पृष्ठ भूमि के रूप में भारतीय संस्कृति का गौरव गान है। तदुपरान्त बिन्दुसार का परिकरिक परिचय और उसी के साथ बिन्दुसार का उत्तराअधिकारी विषय अन्तर्दन्द्ध दिखाया गया है। इस प्रश्न को लेकर वे राज गुरू के पास गये है। राज गुरू ने अस्पष्ट उत्तर दिया है " महाराज! आया श्रेष्ठ वाहन पर, लाया जो श्रेष्ठ भोजन, जिसका आसन भी श्रेष्ठ होगा उस कुमार के हाथों पूर्ण सपना। राजा ने सोंचा यह निश्चय ही सुसीम है। लेकिन गुरू का वास्तविक अभिप्राय अशोक ने समझ लिया। मन में उल्लास लेकर वह अपनी मॉ शम्पा के पास जाता है। लेकिन मॉ उसे अत्याधिक उल्लसित देखकर समझाती है कि सिंहासन, आकांक्षा धन कभी नही इन्द्र का ऐरावत........ नगण्य है सब अभी है अभी नही। और उसे दया ममता, करूणा और त्याग की शिक्षा देती है। इसके विपरीत सुसीम झूठी दुराशा में भरकर अपने साथियों को बटोरकर नगर में निकलकर नगर में निकल गया और जो भी पड़ा उसका अपमान करने लगा। उसने सम्राट के तीब्र बुद्धि सचिव खल्लाटक से राजगुरू के निर्णय का अर्थ पूछा। खल्लाटे ने अंततः यही कहा कि अर्थ अस्पष्ट ही है इस लिए अटकलें लगाना व्यर्थ है। सुसीम ने उसे पक्षपाती माना और क्रोध में आकर खल्लाटक पर हस्तत्राण शक्ति पूर्वक फेंका। आश्चर्य से उसे ऐसा करने देखकर खल्लाटक ने यही कहा कि राजगुरू की वाणी का जो भी अर्थ रहा हो आपने यह अनर्थ भरा काम किया है। और आपके इस व्यवहार से मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि आप मगघ राज यदि होगे तो अकल्याण होगा और यदि मगघ राज होने है अशोक तो उनके विनय के कारण राज्य का भाण होगा।"

इसके बाद दूसरा सर्ग आरम्भ होता है– अंकुर। संध्या समय का अंकन कर कवि ने मगध राज बिन्दुसार और शम्पा के वार्तालाप का प्रसंग उठाया है। इस आत्मीय प्रसंग का सारांश यह है कि बिन्दुसार ने जो परामर्श राजगुरू से किया, उसे उन्होने एक दुश्चिंता के भार से मुक्ति के रूप में शम्पा के सम्मुख कहा। शम्पा समझ गई कि राजा को स्वेच्छा भ्रम हुआ है कि राजगुरू ने सुसीम के राज्यारोहण का निर्णय किया है। लेकिन राजा को इस भ्रम से निकाल पाना कठिन है। वह मन में सोचती है कि अशोक तो संयत रहने के लिए समझा

दिया है अब आगे काल पुरूष जाने। इसी के पुरन्त बाद तक्ष शिला में जन–विद्रोह का समाचार राजा बिन्दुसार को मिलता है। महामात्य परामर्श देते है कि सुसीम को वहाँ भेज दिया जाए। लेकिन राजा ऐसा नहीं चाहते। शम्पा से परामर्श करते है तो शम्पा अशोक का नाम सुझाती है राजा भी यही चाहते है ताकि अशोक पाटलिपुत्र से दूर तक्षशिला में रहे, तो लोग लगभग उसे भूल जाएँ और वे स्वेच्छानुकूल सुसीम को उत्तराधिकारी बना सके। शम्पा अशोक को समझा कर भेज देती है–वत्स। युद्ध यदि टलता हो तो निश्चय उसे टालना क्रोध न करना, स्नेह से काम लेना।

इसके बाद तृतीय सर्ग है– विकास। यह सर्ग युद्ध की चिन्ता से शुरू होता है– युद्ध विराट् नदी/अविच्छिन्न अविरल धार/इसे कौन करे पार।

कवि का विचार उसे इस आदिम वृत्ति का कोई पार नही है। फिर दृश्य है तक्षशिला में मृत्यु नदी के आर–पार दोनों ही तट पर सजे हुए सैनिकों का। लड़ने मरने–मारने को तत्पर। प्रतीक्षा–प्रतीक्षा–प्रतीक्षा आक्रमण की। सज्जित सेना समझाकर अशोक मन्त्रणा के लिए जाता है कि तत्पर रहना सब, जब मेरी मेरी पड़े सुनाई चलना तब तक्षशिला की जनता और सेना में आक्रोश अपनी चरम सीमा पर है इस आक्रोश का कारण इन शब्दों में ध्वनित हुआ है– 'जो चाहे सो घुस आता है/और लादकर माल यहाँ का/यों जाता है जैसे हमने उसके लिए जुटाया था सब। मगध राज से बदले में कुछ तो पायेगे। हमने ऐसा सोच–साचकर उनके लिए लुटाया था सब।..........यह तो निपट दासता ठहरी। रोज हो हो रही गहरी–गहरी/हालत यह बर्दाशत न होगी/हमसे उसकी काश्त न होगी। तभी भीड़ को चीरता अशोक समझाता है कि किससे युद्ध कैसा युद्ध और क्यों हमें हमारी भुटि बतायें। मेरे पिता ने भेजा है मुझे इसी लिए कि तुम्हारे लिए जितना कुछ मैं कर सकूँ करूँ। वही करने आया हूँ। प्रजा कहती है राजा को हमारे सुख–दुख का ध्यान रखना चाहिए, यहाँ रहकर। अशोक स्वीकार करता है। युद्ध रूक जाता है।

इसके बाद आरम्भ होता है "कालजयी" का चौथा सर्ग–वट। कवि मानवीय गुण–अवगुणों पर विचार करते हुए बिन्दुसार, सुसीम, तिण्य, महिन्द के विषय में छोटी–सी टिपण्णी करता है कि राजा को सुन्दर सुसीम का पुत्र मोह था। सुसीम निश्छल था मोह–रहित, तिण्य महिन्द सुसीम महत्वाकांशी कभी न थे। लेकिन बिन्दुसार को अशोक से फिर भी भय था। इस लिए अशोक की तक्षशिला–विजय पर वे प्रसन्न न होकर उन्मन हुए। उन्होने सोचा अब अशोक को

उज्जयिनी भेजा जाय। जीते हुए तक्षशिला–राज्य को सुसीम को सौंप दिया जाय। अशोक उज्जयिनी जाता है। उज्जयिनी की रम्यता का वर्णन यहाँ कवि करता है जहाँ उज्जयिनी के एक सेठ की सुन्दर कन्या 'देवी' अशोक को मिलती है। दोनो का प्रेमालाप चलता है। यहाँ अशोक का चरिभ इस बार्तालाप में मुखर हुआ है। सर्ग के अन्त में बिन्दुसार की मृत्यु की सूचना है। देवी और अशोक तुरन्त उज्जयिनी से पाटलिपुत्र जा पहुँचते है।

पाँचवा सर्ग – छाया, दुःख में डूबे पाटलिपुत्र से आरम्भ होता है। शम्पा देवी को बाहुपास में लेती है और बताती है कि इस क्षण में भी तीनों कुमार शांत है कर्मरत है लेकिन अन्य लोग इस आपाधापी में है किसे गद्दी दिलाई जाए। सुनकर अशोक भी दुःखी होता है। ऐसे में सचिव खल्याटक और राधा गुप्त की भूमिका सराहनीय दिखाई गई है। क्रियाकर्म के बाद महामात्य राधा गुप्त राज गुरू को सादर बुलाते है, राज्यभिषेक के निर्णय की प्रार्थना करते है। राजगुरू पूर्ण निर्णय को समझाते है। सब चुपचाप स्वीकार कर लेते है और अशोक विर्विध्न राजा बनता है लेकिन परम्परा के अनुसार अभिषेक पूर्ण तब ही माना जाएगा, जब वह राज्य विस्तार करेगा प्रतिवेशी राज्य कलिंग पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। अनिच्छा से उसने आज्ञा दी जाओ कलिंग जीता जाए। कलिंग पर विजय प्राप्त कर ली गई। अशोक को नरसंहार का विषाद घेर लेता है। वह विनष्ट कलिंग की यात्रा करता है। उसका मन विचलित हो जाता है। वह निश्चय करता है कि कभी युद्ध नहीं करेगा शान्ति का प्रचार–प्रसार करेगा। यहाँ अशोक का चिन्तन विस्तृत रूप में दिखाया गया है। उसका जीवन परिवर्तित हो गया।

अन्तिम सर्ग– निर्वाण है। संसार की निस्सारता और जीवन–मृत्यु के चितंन से कवि ने इस सर्ग का आरम्भ किया है। इसी के साथ ही शान्ति और युद्ध हिंसा और अहिंसा प्रेम और क्रूरता के प्रश्नों पर भी कवि ने विचार किया है। अशोक इन प्रश्नों को लेकर चिन्ता कुल दिखाया गया है। अशोक की पत्नी देवी खिन्न है। दोनों के वार्तालाप के माध्यम से कवि ने इन्ही प्रश्नों के इर्द–गिर्द अपने विचार बुने है। आशा–निराशा के कुहासे में से कवि अशोक की स्थापनाओं को मुखर करता है। मनुष्य की स्वतन्त्र चेतना और मृत्यु पर विजय की भावना के संकेत के साथ उसमें अनेक अच्छाइयाँ और शक्ति को मानते हुए भी उसकी युद्ध–लिप्सा की भर्त्सना की गई है। चिन्तित अशोक अन्ततः स्थाविर उपगुप्त के पास पहुँचता है। उसका समर्पण दिखाया गया है और निश्चय कि मौर्य का साम्राज्य आज से अक्कोधेन जिने कोंध (अक्रोध से क्रोध को जीता जा सकता है) के पथ पर चलेगा मैं अब शैव शक्ति का पूजक था

परंपरा से किन्तु कलिंग–विजय ने मुझे समूचा हिला दिया है। मेरा यह विश्वास घूल में मिल गया है कि समस्याओं के हल करने का साधन शक्ति है। इसलिए मै सारे राज पाट की धारा बदल देना चाहता हूँ। वह स्थविर से दिशा माँगता है ताकि अपना इस इच्छा के अनुरूप वह जनसेवा कर सके सुख, शान्ति ,समता का प्रसार कर सके। दोनों के वार्तालाप से यह बात छनकर आती है कि शक्तिवान राजा अपनी शक्ति का दुखी तक मोड़े, सुख, भाव (करूण) शान्ति का प्रसार करे। अशोक ने व्यापक स्तर पर धर्म विजय का आह्वान किया। शिला लेख अंकित कराये। अपनी पुत्री को देश–देश में भेजा।

इस प्रकार इस कथा–विन्यास में कवि के मत से कहानी प्रधान हो गई है और विचार पृष्ठभूमि में है। लेकिन सही तो यह है कि विचार–प्रधान प्रबन्ध काव्य बन पड़ा है–इसकी विशेषता यह है। कि द्वन्द्व और घात–प्रति घात इस काव्य में लगभग अनुपस्थित हे। एक यथा शक्ति निर्द्वन्द्व मानसिकता परिपूर्ण द्वन्द्व हीनता की ओर बढती है। इस कृति के वस्तु विन्यास का वैशिष्ट्य और जो इस कृति की सब से महत्वपूर्ण चीज है वह है इसकी गुरू–गम्भीर गति इसके प्रारम्भिक स्वर बडज है किन्तु जिसका नाद कवि का अपना है। एक शान्त, डुबा देने वाले मंथर गति से बहने यह काव्य अपनी कथा को स्नेह की ऊष्मा और करूणा की शीतलता देती है।

''कालजयी'' में इतिहास और कल्पना

कालजयी मूलतः एक ऐतिहासिक काव्य है। और उस श्रेणी में आता है जिसे ऐतिहासिक रोमांस कहा जाता है। सम्राट अशोक विषयक कुछ ऐतिहासिक तथ्यो को रोचक ढंग से विन्यासित कर इस खण्ड काव्य का निर्माण किया गया है। इन ऐतिहासिक तथ्यो का उल्लेख भवानी प्रसाद मिश्र ने ''कालजयी'' की भूमिका में किया है। संक्षेप में कालजयी में जिन ऐतिहासिक तथ्यों का उपयोग हुआ है वे इस प्रकार है–

(1) बिन्दुसार के सम्मुख अपने उत्तराधिकारी को चुनने की समस्या।

(2) अशोक द्वारा तक्षशिला के विद्रोह को शान्त करने का प्रसंग।

(3) अशोक तक्षशिला से सीधे उज्जयिनी भेज दिया जाना।

(4) उज्जयिनी के एक श्रेष्ठी (सेठ) की कन्या से अशोक का विवाह।

(5) पाटलिपुत्र में बिन्दुसार की उस समय मृत्यु जब अशोक उज्जयिनी में था।

(6) अशोक का अपने पिता की मृत्यु के चार वर्ष बाद गद्दी पर बैठना

(7) कलिंग–विजय और उसके कारण अशोक का पश्चाताप

(8) अशोक का भिक्षु उप गुप्त से बौद्ध धर्म में दीक्षित होना और देश–विदेश में बुद्ध के संदेश का प्रसार करना।

(9) अपनी पुत्री (संघमित्रा) सहित विभिन्न धर्म–दूतो को बौद्ध सिद्धांतो के प्रचार हेतु अलग–अलग देशों में भिजवना, शिलालेख उत्कीर्ण कराना आदि।

इन सब तथ्यों का उल्लेख प्रायः सभी इतिहास ग्रन्थों में मिलता है। अशोक के विषय में सर्वाधिक चर्चित और विवादास्पद तथ्य है कि कलिंग–विजय के बाद उसका हृदय–परिर्वतन हुआ। कई इतिहास कार इस घटना को कल्पना–विलास किवदंती अथवा कोरो वाग्विलास मानतेहै। भवानी प्रसाद मिश्र ने भूमिका में लिखा है। कि यह बड़ा हृदय–परिर्वतन केवल इस युद्ध के कारण हुआ ऐसा बौद्ध कहानियों का कहना है। कि उनमें कहा गया है कि अशोक पहले चंड अशोक था अर्थात वह एक बड़ा क्रूर राजा था और उसका सारा जीवन बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के कारण बदला तथापि इस बात की सूचनाएँ जहाँ–तहाँ मिलती है कि मौर्यवंश शैव धर्म को मानते हुए भी चन्द्र गुप्त के समय में ही जैन–सिद्धान्तों से प्रभावित होने लगा था और अशोक को बचपन से ही किसी न किसी रूप में प्रेम और करूणा का महत्ता का अभास दिया जाने लगा था। इतिहासकार जे0एम0 मैक हेल ने कहा कि " युद्ध उन दिनों में गौरवास्पद माने जाते थे, इसी लिए किसी भी युद्ध के बाद इतिना बड़ा परिर्वतन स्वाभाविक नही जान पड़ता। यह मानना अधिक ठीक होगा कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अशोक के मन पर करूणा और प्रेम संस्कार प्रारम्भिक जीवन से ही पड़ने लगे थे।"

इस स्पष्ट है कि मिश्र जी का मूल उद्देश्य अशोक के हृदय–परिवर्तन को व्याख्यायिता करना और अशोक की मानवीय करूणा को स्थापित करना है। इनके मूल में वे अशोक की माँ शम्पा द्वारा दिए गय संस्कारों को स्वीकार करते है। इस लिए वे सारे ऐतिहासिक पात्रों और ऊपर बताये गए तथ्यों को लेकर काल्पनिक संवादों के माध्यम से कथा बुनते है। उनकी कल्पना का सर्वाधिक उत्कर्ष परिवेश बुनने और वैचारिक पृष्ठभूति के निर्माण में दिखाई देता है। क्योंकि यह एक इतिहास ग्रंथ नहीं है इस लिए काव्योपयोगी कतिपय मौलिक उद्भावनाएं (कल्पाएं) इस प्रकार है–

1. मगध का उत्तराधिकारी चुनने के लिए बिन्दुसार द्वारा राजगुरू से परामर्श और राजगुरू द्वारा अपनाई गई परीक्षण पद्धति सवर्था काल्पनिक है। इससे अशोक की

सादगी विमग्रता, मर्यादा शीलता आदि का संकेत किया गया है।

2. उसी समय शम्पा और अशोक का संवाद, शम्पा द्वारा अशोक को शिक्षा देना काल्पनिक है। यह कल्पना इस लिए की गई है ताकि बताया जा सके कि अशोक में प्रेम और करूणा आदि सद्‌गुण शम्पा द्वारा दिए गए संस्कारों का देन थे।

3. इतिहास में कहीं ऐसा उल्लेख नहीं कि अशोक ने तक्षशिला में बिना युद्ध किये ही शांति स्थापित कर दी थी। लेकिन 'कालजयी' अशोक द्वारा जनता से सीधी बातचीत कराकर युद्ध को टालने की उद्‌भावना की गई है।

4. इतिहास में इस बात का उल्लेख नहीं मिलता कि उस युग में जन सामान्य में दुख दारिद्रय व्याप्त था। कवि ने इस बात का संकेत कई स्थलों पर किया है और अशोक द्वारा जनता की दुर्दशा के प्रति असीम संवेदना व्यक्त की है। यह अशोक के चरित्र का उज्जवल पक्ष उद्‌घाटित करने के लिए विशेष रूप से किया गया है।

5. इतिहास में उल्लेख मिलता है कि अशोक के राज्यभिषेक के प्रश्न पर भाइयो में भीषण संघर्ष हुआ था, लेकिन कवि ने इसके विपरीत सबको मौन दिखाया है। यह संभवतः अन्य भाइयों पर अशोक के स्नेह, विश्वास और उन सब के चरित्र की रक्षा के लिए ही किया गया है।

6. कलिंग युद्ध के लिए अशोक को इतिहास में सर्वत्र दोषी बताया गया है, लेकिन कवि ने इस तथ्य को तत्कालीन परम्परा के कारण आपद् धर्म या मजबूरी का ओढ़ा हुआ युद्ध बताकर एक नया मोड़ दिया है। कवि का कथन है कि यह युद्ध अशोक व्यथ मानता था लेकिन अन्य राज्यधिकारियों ने उसे विवशकर दिया।

7. कालजयी में कुछ पात्रों के नाम काल्पनिक है यथा–अशोक की मॉ का नाम 'शम्पा' (इतिहासो में यह नाम सुभद्रा या धर्मा' मिलता है) राज गुरू एवं मंत्रियों आदि के नाम भी काल्पनिक है।

8. इतिहास को काव्य की भूमि पर उतारने और अपने मूल उद्देश्य की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने अहिंसा, शान्ति और करूणा सम्बन्धी विचारों को अपनी कल्पना से ही रचा है। सारे संवाद भी काल्पनिक है। इन संवादो से बौद्धिक चिन्तन, कविका मन्तव्य और पात्रों का चरित्र मुखर हुआ है।

इस प्रकार हम पाते है। कि कालजयी में इतिहास के तथ्यों की रक्षा करते हुए

रचनात्मक कल्पना के उपयोग से कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने अशोक के चरित्र के मानवीय पक्षों को ठोस रूप में दिखाया है। इस सबके माध्यम से उसका उद्देश्य रहा है मानव, प्रेम, विश्व शान्ति बन्धुत्व करूणा और युद्ध का विरोध आदि का संदेश देना।

चरित्र-चित्रण :-

"कालजयी में यथानुकूल सभी पात्रों का चरित्र मुखर हुआ है। लेकिन सर्वाधिक प्रभावशाली चरित्र है अशोक और शम्पा का। अशोक इस काव्य कृति का नायक है और शम्पा एक प्रकार से उसकी प्रेरणा शक्ति या नायिका। ये दोनों ही चरित्र और विशेष रूप से शम्पा का चरित्र कवि भवानी प्रसाद मिश्र के विचारों का वाहक है। फिर भी केन्द्रीय चरित्र अशोक का ही है।

पहले 'कालजयी' के केन्द्रीय पात्र अशोक का चरित्र–चित्रण देखे। यही इस काव्यकृति का नायक है। सम्पूर्ण कथानक एवं सभी पात्र इसी चरित्र के चारों ओर घूमते दिखाई देते है। इसके साथ ही 'कालजयी' नामकरण का भी केन्द्र बिन्दु अशोक ही है। इस कृति में भवानी प्रसाद मिश्र ने जो समस्या चुनी है वह है– अशोक के व्यक्तित्व का क्रमिक विकास दिखाना और विशेष रूप से उसके हृदय परिवर्तन वाला इतिहासिक घटना का विश्वसनीय पक्ष प्रस्तुत करते हुए उसकी दार्शनिक परिणति दिखलाकर इस रचना को उत्कर्ष बिन्दु तक पहुँचाना यदि धार्मिक दृष्टि से इस समस्या की प्रस्तुति को देखना चाहे तो यह भी कहा जा सकता है कि मिश्र जी ने अशोक के इस हृदय परिवर्तन के माध्यम से यह बताने का प्रयत्न किया है कि कैसे एक अशोक जैसा शैव धर्म अनुयायी सम्राट धार्मिक दृष्टि से यह मतान्तर क्यों और कैसे होता है।

चरित्राकंन का कौशल किसी भी प्रबन्ध रचना की सफलता के लिए आवश्यक है। वही रचना कार इस परीक्षा में सफल होता है, जो चरित्रों को विशेषतः केन्द्रीय चरित्र को विश्वसीय ढंग से प्रस्तुत कर सका हो। इस दृष्टि से हम देखेगे कि अशोक जैसे चरित्र को मिश्र जी ने कालजयी में किस प्रकार से प्रस्तुत किया है।

इस रचना में अशोक से सम्बन्ध पूरा कथानक संक्षिप्त रूप में इस प्रकार है–

अशोक बिन्दुसार के चार पुत्रो में से एक है। बिन्दुसार अपने सबसे बड़े पुत्र सुसीम को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते है। राजगुरू से परामर्श लेते है किन्तु राजगुरू अस्पष्ट संकेत देते है जिसे अशोक ही ठीक समझता है कि वह सिंहासन का अधिकारी होगा। उसके

उल्लास को उसकी मां शम्पा अपनी शिक्षा से संतुलित करती है। उसमें वह एक सुयोग्य शासक, प्रजा हितैषी राजा तथा मानवावादी महा पुरूष के संस्कार भरती है। तक्षशिला के जन विद्रोह को शान्ति, सेवा–भावना और बुद्धि चातुर्य से हल करके अशोक एक सुयोग्य उत्तराधिकारी का परिचय देता है पिता की आज्ञा से वह उज्जयिनी चला जाता है जहाँ वह श्रेष्ठी कन्या देवी के सम्पर्क में आता है। युवकोचित प्रेम–भावना का परिचय देने के बावजूद अशोक मानवता और प्रजा के हित–चिन्तन के मूल विषय पर सदैव चिन्तित दिखाई पड़ता है। बिन्दुसार की मृत्यु का समाचार पाकर वह देवी को लेकर पाटलिपुत्र पहुँचता है और मंत्रियों के परामर्श से बिना किसी छल–कपट और सैन्य शक्ति के अपने सभी भाइयों की सहमति से चक्रवर्ती सम्राट बनाता है। फिर परम्परा के निर्वाह के लिए अधिकारियों के कहने पर उसे अनिच्छा से ही कलिंग युद्ध करना पड़ा लेकिन जब उसने सोचा कि नरसंहार की उपलब्धि क्या है? उसकी कलिंग–यात्रा ने उसके कि हृदय में विवाद और चिन्ता भर दी। फलतः वह बौद्ध धर्म की शरण में जाता है और शान्ति, करूणा, मानवता के प्रचार में अपनी पुत्री और अन्य साथियों को देश–विदेश में भेजता है।

इस छोटे–से कथानक को इतिहास और कल्पना के मिश्रण से अंकित करने का प्रयास मिश्र ने इस प्रकार किया है। कि वह अपने मूल उद्देश्य–अशोक के माध्यम से मानवतावादी संस्कृति के मूल तत्वों मानवीय ममता और करूणा, सहिष्णुता और पारस्परिक सौहार्द्र को स्थापित कर सके। कवि इस मानवतावादी संस्कृति की कड़ियों के रूप में शंकराचार्य, कबीर, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर और गांधी के नाम गिनाते हुए उसके प्रवर्तनकर्ता के रूप में सम्राट अशोक को सामने लाया है। इस गौरवमयी भारतीय संस्कृति से अभिभूत कवि कहता है–

यह धारा संस्कृति की

विशिष्ट अतिवेगवान

केवल भारत की धरती पर

थी प्रवहमान

इस महापुरूष ने

इसे प्रवाहित किया वहाँ

x x x x

इस महा पुरूष ने
धर्म और
सेना का साथ नही माना
इसने/हित को फैलाने में
हिंसा का हाथ नहीं माना।

अशोक के भीतर मानवीय सहिष्णुता और ममता–करूणा का संस्कार भरने में उसकी मॉ शम्पा का बहुत बड़ा योगदान है। राज गुरू के यहॉ से प्रफुल्ल मन से लौटे अशोक को वह समझाती है –

सिंहासन, आकांक्षा–धन कमी नही
इन्द्र का ऐरावत/अश्व स्वयं सूर्य के;
बेटा नगण्य है सब/अभी है, अभी नहीं।
मूल्य प्रेम करूणा के/ममता के साध्य अपने
पंथ है अतीव कठिन/इन तक पहुँचने के
किन्तु वे ही सेत्य है/शिव है, आराध्य अपने।

अशोक मॉ की भावना को स्वीकार कर आश्वासन देता है कि दण्डनीति, कूट नीति बरतने के विधान में भी वह सच्चे नैतिक विधान का ध्यान रखेगा। लेकिन मॉ कहती है–

दण्ड नीति आदिकभी
नैतिक होती ही नही।

इस प्रकार यही आरम्भ से ही अशोक को एक आज्ञाकारी, विनीत, सुंसस्कारों में दीक्षित राजकुमार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। तक्षशिला में जन विद्रोह का हल करने में शम्पा की शिक्षा अशोक के काम आई, उसने शान्ति तथा सौहार्द्र से काम लिया। वह सम्राट के रूप में नही, बल्कि एक जन–सेवक के रूप में अपने को जनता के बीच में प्रस्तुत करता है, यद्यपि वह पर्याप्त पराक्रमी और शक्ति सम्पन्न है। विकास नामक तृतीय सर्ग में चरित्र के इस पक्ष का उद्घाटन हुआ है।

उज्जयिनी में अशोक का चरित्र कर्तव्य के प्रति सजग प्रेमी के रूप में मुखरित है–

चतुर्थ सर्ग– वट इस चरित्र का ही सर्ग है। वह एक सेठ की कन्या देवी से प्रेम करता

है–

देवी और अशोक

महा मधु भास पर्व की रजनीगंधा;

रूप आरती–सी करता था

जब ऐसे में उतरी संध्या।

इसी क्रम में जब देवी समझती है कि अशोक कहीं और मग्न रहता है। वह पूछती है– कि यह कैसे होता है। इस निमग्नता में भी जैसे/सब कुछ मग्न नही होता है/आप विलीन नही होते है/ कोई अंश सजग रहता है।

इसका कारण अशोक अपने चरित्र के अनुकूल इस प्रकार देता है–

मुझे व्यक्ति तुम से प्रिय/कोई नही जगत में,

कमलिपाणि को छूकर/मेरे सारे पत्थर/गल जाते है

बीच–बीच में किन्तु/अंधेरा मन में घिरता

और विचारों के तारे–से जल जाते है।

x x x x x

सदा सोचता रहता हूँ मैं। क्षुद्र क्षुद्रता भूले अपनी

निज महत्व भूले महानता/अनाहूत आनन्द

बरस कर धरती पर/भरदे समानता।

प्रजा तथा मानवता के भविष्य की यह चिन्ता अशोक को सदैव ही सजग रखती है। कहीं भी निश्चित सॉस नहीं लेने देती। पाटलिपुत्र का उत्तरदायित्व ग्रहण करते समय भी वह निश्छल, संयत और सरल ह्रदय का परिचय देता है। युद्ध की उसकी इच्छा नही है, किन्तु कलिंग–युद्ध उसे परम्परा निर्वाह के लिए करना पड़ रहा है, उस समय भी उसका चरित्र उज्जवल होकर सामने आया है–

चल पड़ी बात/अभिषेक नही होगा पूरा

जब तक अशोक/प्रति वेशी राज कलिंग/नही करता अपना....

वह सुन कर ध्यान पूर्वक भी/सब परामर्श

कर देता था उनको निरस्त

हमने धरती जीती

तो इससे क्या जीता

यदि मन पर कोई छाप / नही हम डाल सकें–

तो नाम मात्र के शासन से / किसका उत्कर्ष सँभाल सकें।

लेकिन यह युद्ध नही टला। वह इस घटना से दुःखी हो गया। उसका अन्त र्द्वन्द्व 'छाया और निर्वाण सगो में दिखाई देता है। 'छाया' सर्ग में देखें–

हो गया एक सपना पूरा / मिट गया देश छोटा कलिंग

पर किस विनास के बदले / कितना मिला मुझे

जब इसको तौला राजा ने / राजा समाप्त

फिर दृश्य विनष्ट देश का / उसने जा देखा,

मन पर विषाद की / खिचीं बड़ी गहरी रेखा.......

यहाँ अशोक की मानवीय करूणा की मूर्ति निखर उठी है। उसकामन युद्ध की शाश्वत समस्या से जूझने लगता है। यही अशोक का कालजयी चरित्र उद्‌घटित होता है। अशोक युद्ध के मूल में अंधराष्ट वाद के विष को कारण रूप में खोजता है। अन्ततः वह इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि शान्ति, करूणा और सेवा के द्वारा ही नये संसार का निर्माण संभव है। उसका वही संकल्प इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है–

फिर शस्त्रों की जगह स्नेह भेजा जाएगा

महिमा आज रूढ़ है जैसे / शस्त्र–शक्ति की खो जायेगी।

महिमा वान आदमी होगा / शस्त्र–शक्ति जबहीन बनेगी।

दम शक्ति छीनी जायेगी

तभी सभ्यता / वस्तु बहुलता से हटकर चीन्ही जायेगी।

देश प्रेम का यही अर्थ है / धर्म प्रेम का यही अर्थ है।

यही अर्थ है मानवता का।

x x x x

मै इसको करके देखूगा, दिखलाऊँगा।

और वह बौद्ध धर्म में दीक्षित होता है। उसका विनम्र व्यक्तित्व बौद्ध भिक्षु के समक्ष प्रगट हुआ है–

कंपित गात अशोक झुके तब भिक्षुचरण में

किसी प्रकंपित शिखा सरीखे........

विरक्त अशोक को गुरू की वाणी, शम्पा के संस्कार, पत्नी देवी की प्रेरणा तथा स्वयं अशोक का स्वयं का आत्ममंथन उसे नया मनुष्य बनाते है। उसके व्यक्तित्व का स्थानान्तरण हो जाता है। चण्ड अशोक कालजयी अशोक बन जाता है। अशोक के चरित्र यह बिन्दु है उसका प्रस्कुटन अन्तिम सर्ग में तब हुआ के सर्ग में हुआ है जब वह अपनी पुत्री संघमित्रा को धर्म प्रचारार्थ देश–देशांतर में भेजते हुए कहता है–

बेटी। तुम निश्चय जाओ,

निर्भय होकर/विकल मनो में/शान्ति प्रभा फैलाओ।

इस प्रकार हमारे विचार से कालजयी के रूप में अशोक के चरित्र का ऐसा चित्रण आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक उपलब्धि है जिसमें गौरवपूर्ण भारतीय संस्कृति मुखरित हुई है।

अब शम्पा का चरित्र–चित्रण देखें।

शम्पा इस रचना की सबसे प्रभावशाली और सशक्त नारी पात्र है। इस चरित्र का महत्व इसलिए और बढ़ गया है कि नायक अशोक के चरित्र की निर्मात्री है तथा कवि की मूल संवेदना की वाहक है। एक ओर वह मातृ शक्ति का प्रतीक है तो दूसरी ओर विश्व शन्ति की।

प्रारम्भ में ही शम्पा को एक आदर्श माँ के रूप में चित्रित किया गया है। उसके शब्दो में वह अपने मातृत्व की सार्थकता उस समय मानेगी–

हाथों से तेरे यदि/अब तक की आधुरी इस

धरती का/सँवर गया कोई एक कोना।

उसके चरित्र में एक आदर्श माँ, आदर्श पत्नी और उदार ह्रदय नारी के सभी गुण चरितार्थ हुए है। इस लिए अशोक उसे हर स्थिति में अपना दर्शक मानता है। एक आदर्श पत्नी के रूप में वह बिन्दुसार की सच्ची सलाहकार, सहचरी, शुभचिन्तक और सही अर्थो में अर्द्धागिनी है। पति के हर सुख–दुःख में वह सहभागी बनती है। द्वितीय सर्ग में बिन्दुसार और शम्पा के बार्तालाप से यह बात सिद्ध हो जाती है। चिन्तातुर बिन्दुसार जब उसके निकट पहुँचता है, तब वह पूछती है–

मैन सुनूँ कौन सी चिन्ता थी...

और जब बिन्दुसार राजगुरू के परामर्श वाली बात उससे कहते है, तो निःस्वार्थ

शम्पा–

समझ गई/राजा का स्वेच्छा भ्रम

पर...../है व्यर्थ उन्हे समझाने का उपक्रम।

उनको चिन्ता में/क्यों फिर डाला जाये

"और" मैने तो समझाकर उससे (अशोक से)

सभी कह दिया है/ उसने भी मुझको

समक्ष लिया है/ठीक संयत रहने का/बचन भर लिया है।

अब काल पुरूष के हाथों में है बात।

शम्पा में नारी में प्रायः मिलने वाला सौतिया डाह नहीं है। न ईर्ष्या। राजा बिन्दुसार सुसीम को गद्दी सौंपना चाहता है, जो उसका अपना बेटा नही है। फिर भी वह मन में इस बात को नही लाती। बिन्दुसार जब उससे तक्षशिला समस्या पर परामर्श लेते है, तब शम्पा उस कठिन घड़ी में अशोक को ही वहाँ भेजने का परामर्श देती है। उसकी वैचारिकता और सहृदयता इन शब्दों में देखी जा सकती है........

बड़ी बहन को हम/चिन्ता में क्यों कर डालें

तक्षशिला–विद्रोह दमन के लिए

न भेजे क्यों अशोक को।

यद्यापि शम्पा से 'कालजयी' का कथानक प्रकटतः कही जुड़ा हुआ नहीं है, तथापि इस अन्तर वर्ती चरित्र की अपेक्षा नही की जा सकती। कवि के विचार शम्पा के रूप में प्रवाहमान है। और ये विचार ही शम्पा के माध्यम से अशोक के चरित्र में संस्कार रूप में विद्यमान है।

काव्य–रूप :– "कालजयी" का काव्य–रूप क्या है? यह एक प्रबन्धक काव्य है मुक्तक काव्य? यह विचारणीय प्रश्न है।

सामान्यतः काव्य के दो भेद माने गए है– प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य। प्रबन्ध काव्य के भी दो भेद है– महाकाव्य और खण्डकाव्य। प्रबन्ध काव्य का एक तीसरा उपभेद भी माना गया है– एकार्थ काव्य। महाकाव्य में व्यक्ति और समाज या किसी व्यक्ति के समय जीवन की अभिव्यक्ति की जाती है किन्तु खण्ड काव्य में समाज या किसी व्यक्ति के जीवन के किसी एक ही अंग, रूप या पक्ष का चित्रण होता है जो महाकाव्य के समय जीवन का एक

खण्ड होते हुए भी अपने आप में पूर्ण होती है। खण्डकाव्य, क्योंकि प्रबन्ध काव्य का एक भेद है, इस लिए उसमें एक कथा होती है और उस कथा में तार तम्य रहता है किन्तु महाकाव्य की अपेक्षा उसका क्षे सीमित होता है। उसमें महाकाव्य की तरह जीवन की अनेक रूपता का समग्र चित्रण नही होता। 'एकार्थ काव्य' (या इसे केवल 'काव्य' भी कहा जाता है) लिखा तो महाकाव्य की प्रणाली पर ही जाता है, किन्तु उसमें महाकाव्य की–सी विशदता एवं व्यापकता का अभाव रहताहै। इस लिए इसे 'महाकाव्योन्मुख' प्रबन्ध काव्य कहा जा सकता है। कालजयी यदि प्रबन्ध काव्य है तो वह प्रबन्ध काव्य की कौन–श्रेणी में आता है, इसके निर्धारण के लिए महाकाव्य और खण्डकाव्य के लक्षणों का संकेत कर देना आवश्यक है।

सामान्यतः महाकाव्य के लक्षण है–

(अ) बाह्य लक्षण :-

(1) कथात्मकता और छन्दोबद्धता,

(2) सर्गबद्धता या खण्ड–विभाजन और कथा का विस्तार

(3) जीवन के विविध और समग्र रूप का चित्रण

(4) नाटक, कथा और गीति काव्य के अनेक तत्वों के सम्मिश्रण से– सुसम्बद्ध कथानक का निमार्ण,

(5) शैली की गम्भीरता, उदान्तता और मनोहारिता

(6) छन्द परिर्वतन।

(ब) अन्तः लक्षण :-

(1) महान घटना का वर्णन, कथानक में नाटकीय अन्विति और सुसम्बद्धता।

(2) महान उद्देश्य।

(3) प्रभावान्तिति।

समग्रतः डॉ0 शम्भू नाथ सिंह के शब्दों में 'महाकाव्य वह छन्दोबद्ध कथात्मक काव्य रूप है जिसमें क्षिप्र कथा प्रवाह या अलकृत वर्णन अथवा मनो–वैज्ञानिक चित्रण से युक्त ऐसा सुनियोजित सांगोपांग और जीवन्त कथानक होता है जो रसात्मकता या प्रभावान्तिति उत्पन्न करने में समर्थ होता है, इसके साथ ही वे महदुद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी युग के सामाजिक जीवन के प्रतिनिधि चरित्र को आवश्यक मानते है। खण्ड काव्य के सामान्य लक्षण भी लगभग महाकाव्य जैसे ही है लेकिन इसमें महाकाव्य के एक देश या अंश का चित्रण होता

है (खण्ड काव्य भवेत् काव्यस्यैक–देशानुसारिच।) इसका दूसरा लक्षण है– एक घटना विशेष का चित्रण। कहने का अर्थ यह है कि खण्ड काव्य ऐसी पद्यबन्द्ध रचना है जिसमें किसी महापुरूष या विशिष्ट व्यक्ति के जीवन की किसी एक या कुछ महान् घटनाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन होता है। ''खण्ड काव्य में'' खण्ड शब्द का अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह बिखरे हुए कथानक वाला है या महाकाव्य का खण्ड है। यह शब्द वस्तुतः उस अनुभूति के स्वरूप की ओर संकेत करता है जिससे जीवन अपने सम्पूर्ण रूप में कवि को प्रभावित न कर आंशिक या खण्ड रूप में ही प्रभावित करता है।

कवि भवानी भाई ने 'कालजयी' की भूमि में यह संकेत किया है कि किसी भी जीवनपरक काव्य के लिए कहानी आवश्यक होती है। अशोक पर पर्याप्त साम्रगी के आधार पर मैने कक्षा–सूत्र को जोड़ा। कहानी के सूत्र जुड जाने के बाद कहानी प्रधान हो गई और विचारों को पृष्ठ भूमि में रखना पड़ा।'' और इस खण्डकाव्य ने मुझे मुख्य बात को फिर कभी विस्तार से कहने का आधार दे दिया है।''

अर्थात स्वयं मिश्र जी इस रचना को खण्ड काव्य मानते है और वे जिन विचारों को लेकर चले है उनमें कथात्मकता प्रधान हो गई है। खण्ड काव्य के लिए भी एक सुदृढ़ कथानक की आवश्यकता है ही। फिर कभी विस्तार कुछ कहने की इच्छा महाकाव्य लिखने की हो सकती है। अतः उनकी दृष्टि में 'कालजयी' एक जीवन परक खण्डकाव्य है।

खण्डकाव्य में एक निश्चित और सुदृढ़ कथानक हो इसकी ओर हम ऊपर संकेत कर चुके है। 'कालजयी' इस कसौटी पर ठीक उतरता है। इसमें मौर्य साम्राज्य के एक निश्चित कालखण्ड से सम्बन्धित महत्वपूर्ण चरित्र अशोक के जीवन एक पक्ष (अशोक का राज्यारोहण और कलिंग विजयोपरान्त ह्दय परिवर्तन) कथा के फलक पर अंकित किया गया है। अशोक का चरित्र स्वयं में ही एक महत् चरित्र है और उसके जीवन की यह घटना महत् संदेश देती है। कथानक भी सुगठित है, उन्मुक्त कल्पना– विलास में कवि इधर–उधर नही भटका है।

कथानक के अतिरिक्त रस, द्द और वर्णन भंगी की बहुरूपता, लय, विधान में भाव और चिन्तन के अनुरूप उतार–चढ़ाव की दृष्टि से भी 'कालजयी' एक सफल खण्डकाव्य सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि 'कालजयी' एक सफल खण्ड काव्य है। जीवन परक इस खण्डकाव्य को केन्द्रीय चरित्र अशोक है। अशोक के जीवन

की हृदय–परिवर्तन विषयक घटना से कवि बहुत प्रभावित हुआ है और इस माध्यम से उसने एक महत् सन्देश समाज को दिया है : वह है मानवतावादी जीवन–दर्शन की स्थापना करूणा, ममता, शांति, मानवता का प्रसार इस प्रकार यह एक सौद्देश्य रचन है।

कालजयी का उद्देश्य (प्रतिपाद्य) और वैचारिकता

यद्यपि मिश्र जी ने 'कालजयी' की भूमिका में यह संकेत किया है कि कहानी के सूत्र जुड़ जाने के बाद कहानी प्रधान हो गई और विचारों को पृष्ठभूमि में रखना पड़ा और यदि कथा सूत्र इतने न जुड़ते तो विशेष रूप ही से युद्ध और शान्ति के विचार ही सामने आते; किन्तु तब काव्य का रूप बहुत ही अधिक काल्पनिक हो जाता। तथापि इसका अर्थ यह कदापि नही है कि यह एक विचार–रहित काव्य है इसमें विचार बहुत सत ही या कमजोर है अथवा युद्ध और शान्ति की कोई बात कवि ने की ही नही है। सच तो यह है कि जहाँ भी कवि को अवसर मिला है उसकी वैचारिकता शब्द पाती गई है। चारत्रों के माध्यम से भी कवि अपनी वैचारिकता की व्याख्या किया करता है। यदि के उद्देश्य का भी वहन कथानायक या अन्य मुख्य पात्र किया करते है। अतः पृष्ठ भूमि में रहते हुए भी विचार तारों में प्रवहमान विद्युत्–शक्ति की तरह शक्तिशाली, जो दिखाई तो नही देते, किन्तु उतने ही प्रभावपूर्ण है।

तो "कालजयी में पृष्ठ भूमि में ही शक्ति शाली विचारों का संचार है। लेकिन यह बताना आवश्यक है कि यह विचार धारा क्या है?

मैं पूर्ववर्ती अध्याय में बता चुकी हूँ कि मिश्र जी ने कहा था कि कभी कोई दर्शन वाद या जिसे टेकनीक कहते है मैने नही सोचा। दर्शन में अद्वैत वाद में गांधी का और टेकनीक में सहज ही मेरे लक्ष्य बन जाए ऐसी कोशिश है।" और यह सब होते हुए भी उन्होनें किसी एक मत या वाद का पिछलग्गू होना स्वीकार नही किया। गो कि वे गांधीवादी रचनाकार है। गांधी जी की जीवन पद्धति ही समन्वय वादी है और गांधी दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता उसकी समाहार शक्ति है। सही अर्थो में गांधीवादी दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता उसकी समाहार शक्ति है। सही अर्थो में गांधी वादी विचारधारा का मूल स्त्रोत मानव–संस्कृति के वे आदर्श है जो समस्त मानवता के लिए हर युग और हर काल में उपयोगी है। बौद्ध दर्शन भी दृष्टि से उल्लेखनीय है। कालजयी में मुख्य रूप से उसी मानव संस्कृति की व्याख्या की गई है। यही इस काव्य का प्रतिपाद्य या उद्देश्य है। काव्य के आरम्भ में ही कवि ने उद्घोषणा की है।

यह कथा व्यक्ति की नहीं

एक संस्कृति की है

यह स्नेह शान्ति

सौन्दर्य शौर्य की, घृति की है।

कवि मिश्र भारतीय संस्कृति की इस गौरवमयी परम्परा से अभिभूत है। कवि इस कृति के माध्यम से सन्देश देता है कि– यदि प्रेम और करूणा, स्नेह और सौहार्द्र से सामाजिक जीवन का संचालन हो तो समाज की समस्याओं में समाधान हो सकता है। हिंसा रूक सकती है। यही मानवता वादी दृष्टि इस कृति में ऐतिहासिक फलक पर अशोक के चरित्र के रूप में पूरे प्रभाव के साथ चित्रित की गई है। कवि की मान्यता है कि –

वह धारा अब तब / बरस सहस्त्रों बीत गए

आखों के आगे आती है / घर रूप नये।

है कभी शंकराचार्य / कभी नानक कबीर

वह कभी / विवेकानन्द / कभी है रवि ठाकुर / फिर कभी

गूँजरे लगती है / बन कर / गाँधी का गौरव स्वर।

मिश्र जी ने इस मानवता संस्कृति के मूल तत्वों को क्रमशः परिभाषित किया है। संक्षेप में– पशुबल शस्त्रबल अथवा भौतिक शक्ति से समस्या सुलझती नही बल्कि– उलझती ही चली जाती है। युद्ध से किसी भी समस्या का समाधान नही होता। झूठे अहंकार राष्ट्रबाद, और दर्प शक्ति कारण ही सब समस्याएँ भयंकर रूप ले लेती है। नर संहार रक्तपात से कुछ भी उपलब्ध नही होता। सभी समस्याएँ स्नेह सौहार्द्र, शान्ति प्रेम और सुमति से सुलझाई जा सकती है। केवल इसी मानवता वादी संस्कृति से संसार में सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया जा सकता है।

मानवतावादी संस्कृति का उद्घोषक यह काव्य अध्यात्मवादी दर्शन का पोषक है। यह कृति मनुष्य की चेतना के निर्माण में उसके भौतिक अस्तित्व को नगण्य बना देती है इस भावादी दर्शन के अनुरूप कालजयी का स्वर यह है कि मनुष्य जिस प्रकार की सामाजिक अवस्था में रहता है उसके प्रभाव से मुक्त होकर अपनी चेतना का विकास स्वतन्त्र रूप से कर सकता है।

मानवतावादी संस्कृति का उद्घोषक यह काव्य अध्यात्मवादी दर्शन का पोषक है। यह कृति मनुष्य की चेतना के निर्माण में उसके भौतिक अस्तित्व को नगण्य बना देती है इस भाववादी दर्शन अनुरूप कालजयी का स्वर यह है कि मनुष्य जिस प्रकार की सामाजिक

अवस्था में रहता है उसके प्रभाव से मुक्त होकर अपनी चेतना का विकास स्वतन्त्र रूप से कर सकता है।

इसके अतिरिक्त 'कालजयी' में प्रजातन्त्र के मूल्यों की स्थापना का भी प्रयास है। इस में राजा और प्रजा दोनों के लिए आदर्श निर्धारित किया है–

किसने कहा, निर्णय का/प्रजा को अधिकार नहीं

आप सच्चे स्वामी है/सेवक है चक्रवर्ती भी तो प्रजा का ही।'' और'' हम सम्राट बने बैठे है।

भूल भालकर दुःख प्रजा के

अन्य हीन पेटों में दाने/वस्त्र हीन देहों पर धागे

हमने नहीं जुटाए तो हम/राजा होकर निपट अभागे।

सारांशतः कालजयी एक साथ ही अशोक और गांधी का सारस्वत श्राद्ध है। मानवतावादी संस्कृति की पुन प्रतिष्ठा इसका मुख्य उद्देश्य है। समतावादी दृष्टि, शान्ति करूणा और ममता के साथ ही प्रजातान्त्रिक मूल्यों का स्थापना कवि का इष्ट है, जो आज युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यही कारण है कि कालजयी का अशोक अपने युग की सीमाओं को लाँधकर सार्वदेशिक और सार्वकालिक चरित्र लेकर उपस्थित हुआ है।

'कालजयी' का काव्य-सौन्दर्य

किसी भी काव्य कृति के मूल्याकंन के लिए उनके सौष्ठव के दो पक्ष माने गए है, एक–अनुभूति पक्ष या वस्तु दूसरा–अभिव्यक्ति पक्ष या रूप। इन्हें क्रमशः 'भाव पक्ष' और 'शिल्प' पक्ष भी कहा जाता है। एक सफलकृति में दोनों पक्षो का उत्कृष्ट रूप मिलता है। जहाँ वस्तु पक्ष रूप पक्ष से भिन्न नही लगता। आधुनिक काव्य में विशेषतः प्रगतिवादी कविता में वस्तु पक्ष प्रधान है, रूपया शिल्प उसका अनुवर्ती होकर आया है। कवि मिश्र जी की तो मान्यता है कि –

मछली को पकड़ो/तो पानी के लिए तड़पती है,

शेर गोली खाकर/चटानें चबा जाता है

अभिव्यक्ति तो/होती ही रहती है/मैं उसके ढंग नही सोचता।

कहने का अर्थ यह कि कथ्य अपने अनुकूल अभिव्यक्ति ढंग स्वयं चुन लेता है। भवानी मिश्र अभिव्यक्ति के ढंग सोचते नही, अपितु विषय के अनुकूल शिल्प या अभिव्यक्ति का ढंग

सहज रूप से उनकी कविता में आकार पा लेता है या उनके कथ्य को आकार दे देता है।

''कालजयी का विषय विविधा लिए है। इसमें मिश्र जी की वैचारिक मान्यताएँ अनेक स्थलों पर विभिन्न पात्रों के वार्तालाप में और स्वतन्त्र रूप से भी, मुखरित हुई है। उनकी वैचारिकता के प्रधान–बिन्दु इस प्रकार देख जा सकते है–

1. भारत और भारतीय संस्कृति से प्रेम

कृति के आरम्भ में ही उनकी इस वैचारिक भाव भूमि के दर्शन होते है। वे कहते है, यह धारा संस्कृति की/विशिष्ट अति वेगवान/केवल भारत की धरती पर/थी प्रवहमान। इस संस्कृति का मूल मंत्र ही है विश्व बन्धुत्व, प्रेम, करूणा और शान्ति। अशोक इसी संस्कृति का प्रतीक है जिसका मूल मंत्र ही यह है कि–

मनु के बेटे सब एक हो/सबकी आँखे खुलें हर्ष में
सब शंका से हीन हो सकें......... तेज क्षमा घृति शौच।

सत्य अक्रोध आर्जव, नाति मानिता दया अहिंसा'' इनका आचरण प्रतिष्ठित हो।

2. मानवता वादी दृष्टिकोण :-

उन्हें मानवीय सद्गुणों में आस्था है। उसके गुणों को विस्तार देकर मानवीय करणा, स्नेह, ममता के प्रसार की कामना मिश्र जी की है। इस लिए ''कालजयी' में वे कहते है–

जागेगी मनीषा यदि
एक–एक व्यक्ति में कि
शान्ति और स्नेह से ही
धरती सजेगी।

और इसके लिए संस्कार ग्रहण करना अनिवार्य है–

स्नेह का त्योहार पहले प्राण में अपने मने
वह तब कहीं बाहर मनेगा।

'अशोक का ह्रदय– परिवर्तन सभी के लिए एक संदेश है, मानवतावादी दृष्टि कोण अपनाने का

3. युद्ध का विरोध और शान्ति की स्थापना :-

इस कृति में युद्ध और शान्ति की समस्या को विचार और व्यवहार के धरातल पर समझा गया है। अशोक में कलिंग युद्ध के बाद की चिन्ता और अन्तद्धर्न्द्व इसी समस्या को उभारते है। देवी और अशोक के बीच का संवाद और अशोक का चिन्तन इस निष्कर्ष पर ले

जाता है–

आदमी जब से हुआ तब से लड़ा है
किन्तु लड़कर किस दिशा में वह बढ़ा है?
सिर्फ लड़ने की दिशा में
प्रात से मानो निशा
और आगे भी दिशा यदि की साधी
मरण की आँधी उड़ाएगी हमें
आप अपनी शक्ति खाएगी हमें
युद्ध से कोई समस्या हल न होगी
आज तक होने न पाई/कल न होगी;

अन्त में अशोक शान्ति–प्रचार के लिए अपनी बेटी को देश–विदेश में भेजते हुए कहता है–

बेटी। तुम निश्चय जाओं/निर्भर होकर
विकल मनों में/ शान्ति–प्रभा फैलाओं।

4. क्षण की सार्थकता :-

नई कविता का एक प्रमुख विचार है, क्षण का महत्व। इसे मिश्र जी ने इस रूप में ग्रहण किया है–

मै तथापि कहता हूँ तुमसे
सपना नहीं अनागत होता
तुमने क्षण को ठीक सँभाला
तो वह कभी अंकुरता ही है

अर्थात् भविष्य का निर्माण वर्तमान क्षण को सँवारने पर ही होगी।

ये सभी विचार एक सहृदय कवि के विचार है। काव्य में रस की स्थिति आत्मतत्व की भाँति मानी गई है। रस की दृष्टि से भी 'कालजयी' एक सफल कृति है। उसमें वात्सल्य, करूण श्रृंगार और शान्त रस का प्राधान्य है। शम्पा वात्सल्य की मूर्ति है तो देवी श्रृंगार की है। यह अद्‌भुत संयोग है कि 'कालजयी' में श्रृंगार रस (रीति और निर्वेद या वैराण्य) के द्वन्द्ध को परस्पर पूरक रूप दिया गया है। अशोक और देवी बार्तालाप में यह रूप भूर्तमान हुआ है।

श्रृंगार रस के स्थल 'कालजयी' में पर्याप्त है, यथा....

अंकुर सर्ग में बिन्दुसार और शम्पा के बार्तालाप के अवसर पर कवि ने अंकित किया है..........

राजा ने उठकर/प्रेम–विवश कस कसी।
वे वज्र भुजाएं/जिनने बिजली कसी।
शम्पा ने कहा/ मगर चिन्ता तो कहो।
बोले राजा/बस क्षण–भर ऐसे रहो;
तुम शम्पा हो/मैं बिन्दुसार वासव,
से वज्र भुजाएं/क्षण भर सही, सहो।''

इसी प्रकार अशोक तथा देवी के प्रेमालाप का चित्रण द्रष्टव्य है–

देवी को पास खींचकर/उसके अलक कपोल ओंठ पर
हंसते–हंसते प्रीति/नींचकर/नृप अशोक ने कहा ने कहा, देवि। ऐसी है
इस मेरे जीवित की इच्छा/इसमें मुझको साथ चाहिए/साथ तुम्हारा

शान्त रस का प्रभाव इस वार्तालाप के मध्य कहीं–कहीं आया है, किन्तु उसका पूर्ण परिपाक छाया और विवाग सर्गो के कई स्थलों पर हुआ हे। एक उदाहरण लें–

कौन समझा है कि क्यों जो मल्लिका
सॉझ को प्रस्फुटित होती वृन्त पर
बिखर जाती है ऊषा के पूर्व ही?
और फिर उद्देश्य खिलने–बिखरने का
इस विपुल संसार में कुछ है कि कुछ भी नही?

इन पंक्तियों में जीवन–मरण और जीवन की सार्थकता–निरर्थकता के प्रश्न को प्रकृति के माध्यम से समझाया गया है।

इस प्रकार मिश्र जी ने 'कालजयी' में अनेक 'मार्मिक स्थलों का समावेश किया है। यथा, बीज सर्ग में मॉ शम्पा और अशोक के बार्तालाप के क्रम में गद्‌गद अशोक का चित्रण, अशोक और देवी के बार्तालाप के क्रम में देवी का अंकन, अन्त में अशोक और पुत्री का संवाद आदि।

सग्रतः एक विचार–बहुल कृति होने पर भी 'कालजयी' का भाव पक्ष शिथिल नहीं है,

उसमें मिश्र जी का ह्रदय बोल रहा है। इसमें सरसता, संवेदन शीलता और भावुकता पर्याप्त मात्राएं है। अब हम 'कालजयी' के शिल्प–पक्ष का विश्लेषण करते है। कवि जीवनानुभवों को काव्य–भाषा में इस तरह रचना है कि वे एक जटिल सौन्दर्य की सृष्टि बन जाया करते है। कवि की सफलता ही इस बात पर निर्भर है। इसमें सर्वाधिक योगदान शब्द प्रयोग, बिम्ब–विधान, प्रतीक–विधान और लय का होता है। भवानी प्रसाद मिश्र की विशेषता ही यह है कि ऐसी भाषा का प्रयोग करते है, जो पाखण्ड नही जिन्दगी रचती है। उसमें एक सहज प्रवाह होता है। वह निरर्थक बाक्‌जाल के स्थान पर संवाद रचती है। वह अर्थ को व्यापक भाव और विचार भूमि प्रदान करती है। कालजयी की भाषा में भी उपर्युक्त सभी गुणों का समावेश हैं। इसमें नाटकीयता, वक्रता, लाक्षणिकता, ओज एवं प्रसाद गुण का एक ऐसा घाल मेल है कि उसकी भाषा छटा कुछ अलग ही दिखाई देती है। मुहावरे और लोकोक्तियां अपना पूरा प्रभाव लेकर उपस्थित है तत्सम तद्‌भव शब्दावली का पात्रो के अनुकूल भाषा में ऐसा प्रयोग हुआहै कि तत्कालीन परिवेश ही मुखर हो उठा है। तत्सम शब्दों की यह पंक्तियां स्वयं बोलती है–

परामर्श–प्रवृत्ति : पृच्छा बन गयी तब
भिक्षु शरण गत अरूणिमा धन गयी तब
रवि–निकर–निष्ठा तमिस्या चीर जागी
तर्क–तृष्णातीत, प्यास गंभीर जागी।

मुहावरे–लोकोक्तियों का प्रयोग इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

1. महाराजा ने तिनके का/गह लिया सहारा
2. राजा को लगा/कि धरती खिसक गई
3. तभी कही से आकर/काटा–सा लग जाता है आदि

बिम्ब काव्य–भाषा का महत्वपूर्ण है।"कालजयी" को प्रायः चाक्षुष स्मृति और स्पर्श बिम्बों का प्रयोग हुआ है। ये बिम्ब वस्तु का प्रतिरूप ही खड़ा नहीं करते, बल्कि भाव–संवेदना को जागृत करते है। आवेगों का परिष्कार करते है यथा–

उस दिन सूरज किरन/उतरते ही फूलों को रंग दे चली
उस दिन हवा प्राण को मानो/सुधा–निमज्जित संग दे चली
कोमल किसलय हिले कि/पत्थर के प्राणों में प्यार भर उठा
लहर मचलकर उठी कि/मरू के जीवन में भी ज्वार मर उठा

बिम्ब ही क्या, इन पंक्तियों में उत्प्रेक्षा की सहज छटा भी विद्यमान है। एक श्रव्य बिम्ब भी इस क्रम में देखे।

कोयल कुह की भर कि/दिशाओं में बधुओं का भाव समाया
भौरे गूँजे–भर कि/अबोलो में गीतों का चाब समाया

मिश्र जी प्रतीको का कम ही प्रयोग करते है। लेकिन "कालजयी" में कुछ ऐसे प्रतीकों का सार्थक प्रयोग है जो इस रचना को अर्थ विस्तार तो देते ही है, पाठको की साझेदारी में भी वृद्धि करते है। ये गहरे संकेत नाम–रूप से बचने का छल नही है भाषा इनसे और अधिक प्राण बान और संक्रिय बनी है। स्वयं कृति का नाम कालजयी अमर, मानव, संस्कृति और आज तक प्रसिद्ध अशोक–दोनों का प्रतीक है। इसी तरह स्थान–स्थान पर मेघ शुक्रतारा, पराग, सुगन्ध आदि शब्दों का प्रयोग प्रतीकात्मक है जिनका अर्थ है (क्रमशः) विपत्ति या युद्ध शान्ति और नई आशा, मनुष्य के सद्‌गुण करूणा ममता, हर्ष आदि। एक उदाहरण देखें–

'हट गए मेघ/प्राची दिगन्त में/शुक्रतारा झिलमिला उठा।

विपत्तिया युद्ध के बाद शुक्रतारा के रूप में शान्ति और नई आशा का आगमन इन पंक्तियों में प्रतीकात्मक रूप में उमरा है।

मुक्त छन्द का प्रयोग इस कृति में है। लेकिन इसमें एक सहज प्रवाह है। यह प्रवाह या लय, अर्थ लय और अन्तः प्रवाह के रूप में विद्यमान है; जो शब्द–प्रयोग की कुशलता के कारण है। इसी प्रकार अलंकारों का प्रयोग भी सहज सौन्दर्य की सृष्टि के लिए यथा स्थान किया गया है।

इस तरह से भवानी प्रसाद मिश्र के समस्त काव्यों का विहगावलोकन करने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि उनकी काव्य धारा का अविछिन्न प्रवाह, सहजता के साथ तरलायित होकरमन मस्तिष्क से उतरता हुआ ह्रदय तक जा पहुँचता है। उनकी काव्य भाषा सहज, सुग्राह्रय, होने के कारण ही ह्रदयग्राही है, वे न तो कठिन बिम्ब के कवि है और न ही अप्रचलित प्रतीक के कवि, इसी कारण पाठक उनकी कविता से साधारणीकृत होता है। उनकी कविता में कहीं भी आस्वाद की समस्या ही नहीं है।

उनकी कविता जीवन का भुगतान है पर जीवन को तोड़–मरोड़कर प्रस्तुत करने के बजाय उसके स्वाभाविक रूप मे प्रस्तुत करती है। वह पूर्वाग्रह और बाह्रय हस्तक्षेपों से बची

हुई स्वतन्त्रता की अनुभूति में लिखी गयी है इसलिए वह सरल तो है पर उथली या सहती नहीं है। इस दृष्टि से वह उन्मुक्त कवि–मानस की निरभ्र भाषा कविता है। श्री मिश्र उन कवियों में से है, जिनकी कविता दो आधारों पर समझी जा सकती है, एक तो स्वयं उनकी कविता का ही आधार है किन्तु वह स्वयं भी अपने आप में आधार है। उनकों देखना, उनसे परिचित होना, उनसे बातचीत करना और उस बातचीत को हमेशा–हमेशा के लिए जारी रखना भी एक कविताएं अनुभव ही है। इसे बहुत रोमानी भाव–बोध न समझ लिया जाए, इसीलिए मैं यह स्पष्ट करना चाहूँगी कि कविता और जिन्दगी को निकट लाने का जितना प्रयास उनकी कविता में उतना इस युग के किसी कवि में नहीं। श्री मिश्र जी के काव्य में जो सहज खुलापन गहरी संवेदन और पारखण्डहीन सृजनात्मकता है, उसका नतीजा उनके काव्य की व्यापक अपील में देखा जा सकता है। वे आधुनिक और नव्यतर चेतना के अकेले कवि हैं, जिन्होने सही किस्म की कविता का जनता से सीधा साक्षात्कार कराया है। वे हमारी आदि से आज तक सांस्कृतिक चेतना से घनिष्ठ रूप से जुड़े रहकर अपने को जीवन्त रखते है। फल यह हुआ है कि उनकी रचनात्मकता में मानसरोवर के सहस्र दल कमलों और चमकते हुए द्धादश मार्तण्डों की प्रभा, प्रकाश और तेजस्विता भरी है।

उपसंहार

उपसंहार

नई कविता के इस जमाने में हम वर्षो से आशा लगाये बैठे है कि कहीं से नई कविता आयेगी। पुरानी पीढ़ी, निचली पीढ़ी, नई पीढ़ी एवं एकदम आज की पीढ़ी सभी ने चली आ रही कविता से भिन्न कविता लिखने की कोशिश की हमें कभी इस ओर से, कभी उस ओर से भरोसा–बंधता–सा दिखा किन्तु मुझे कहना पड़ रहा है– "मेह न बरसा और घटा छाई बहुत"

अनुभव हम सबको होते रहते है ज्यादातर तो ऐसा होता है कि वे हमें दबाते रहते है, धेरते रहते है और अकेला कर देते है। यूं तो अकेला हो जाना हमारे अनुभवों का राजा है, मगर जो इस अनुभव को अपने अकेलेपन से समझ नहीं पाता और समझकर रंगो, रेखाओं, शब्दों स्वरों या किसी और ढंग से उसे ठीक–ठीक खिला नहीं पाता वह अकेला ही रह जाता है, इतना ही नहीं, किसी के अकेलेपन को चाह पाने पर भी बटाँ नहीं पाता।

अकेलेपन पड़ जाना एक उत्सव है किन्तु उस अकेले पड़ जाने से भीतर–बाहर सब कुछ गूंगा हो जाना या समुदायों के अनुकरण में जुट जाना मृत्यु है। जो अकेलेपन को जितना ठीक रूप दे पाता है, रूप देकर बाहर रख देता, जिन्दगी के अनन्त अभिव्यक्ति प्रकारों में से एक या एकाधिक किसी या किन्ही माध्यमों के द्वारा उसे अनेक लोगों के सामने परोस देता है, वह अकेलापन नहीं परोसता, उत्सव परोसता है। कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने सदैव यही उत्सव परोसा है।

एम0ए0 की शिक्षा ग्रहण करते समय भवानी प्रसाद मिश्र को पढ़ा गुना चिंतन मनन किया और पाया कि कवि भवानी प्रसाद मिश्र आकाश धर्मी कवि थे और इसीलियें प्रकाशधर्मी भी। पाव जिसके धरती पर थे और शील जिसका अभंकस, उस तेजस्वी भारतीय परम्परा का प्रवाह उनकी सजर्नात्मकता को गुणानुबंधी वैचारिक उन्मुक्तता को शक्ति देता है। मैनें यह पाया कि उनकी कविता इस अर्थ में जितनी भव्य है उतनी दिव्य भी तभी तो वे उन आधुनिक कवियों में अग्रगण्य है जिन्होनें अपनी ताजा कलम और तट की काव्यात्मकता से पाठकों को आस्वस्त किया है। उनकी कविता अपने समय की सांस्कृतिक चेतना के तीखे

बोध के भीतर फूटती है यह उनके सृजन का एक विशिष्ट पक्ष है। भवानी प्रसाद मिश्र हमारी आदि से आज तक भी सांस्कृतिक चेतना से धनिष्ठ रूप से जुड़े रह कर अपने को जीवन्त रखते है। फल यह हुआ कि उनकी रचनात्मकता में मानसरोवर के सहस्र दल–कमलों और चमकते हुये द्वादस मार्तपड़ों की प्रभा, प्रकाश और तेजस्विता भरी है।

कवि को इस बात की प्रतीति तो है कि यदि हम अपने जातीय चेतना सरोवर से सूर्य के प्रकाश और खिले हुए कमलों से अलग कर लें तो हमारे जीवन से उत्सर्ग और अर्पण का भास्वर भाव ही तिरोहित हो जायेगा।

उत्सर्ग और अर्पण के भाव को सहेज कर प्रवाह मान उनकी कविता में भारतीय संतो की कविता के स्वभाव को स्व–भाव बना लिया। इस तरह कवि यह कभी नहीं भूलते कि हमारे रस कृषि जीवी देश में नदियाँ जीवन की हरियाली है। हमारी रक्त प्रवाहिनी सांस्कृतिक नाड़िया है नहीं तो उनकी कविता में पहाड़ और नदी, खेत और मैदान, लता और पंछी, किरन और फूल के रूप में वनस्पति जगत की ऐसी बहुतायत कैसे होती। कवि सदैव सतपुड़ा के जंगलों और विंध्याचल के पर्वतों को रखते है।

इस शोध के दौरान मैनें यह पाया कि भवानी भाई फक्कड़, आशावादी, हंसते–हसाँते चलने वाले सैलानी कवि है। उनकी कविताओं में जहाँ एक ओर प्रेम की गर्माहट है तो गुदगुदी और गबरूपन भी है जो उन्हे कवियों की भीड़ से अलग करता है। मैं यह कह सकती हूँ कि

"उसकी रचना का प्रभाव सर्वत्र दिखाई दे।
वह भीड़ में भी जाये तो तन्हा दिखाई दे"

वे हमेशा अंधकार और अकेलेपन से लड़ने वाले कवि रहे, उनकी कविताओं में प्राकृतिक झिलमिलती चॉदनी भी रही, उनकी भाषा ने सदा ही महतावें जलाई है छोटी मोटी फुलझड़ी छोड़ने वाले से उनकी कोई तुलना नहीं।

इस शोध प्रबंध में आठ अध्याय है। पहला अध्याय "आधुनिक काव्य यात्रा" का है जिसमें आधुनिक युगीन परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। लम्बे अर्से की दासता के उपरान्त 15 अगस्त सन् 1947 को भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। आजादी के बाद भारतीय संविधान लागू होने के बाद देशवासी भविष्य के प्रति आशान्वित हुये कि उन्हे अपने व्यक्तित्व विकास तथा सम्रद्ध जीवन यापन का सुअवसर प्राप्त होगा। पंचवर्षीय योजनाओं को क्रियांवित

किया गया, जमीदारी उन्मूलन, न्यूनतम वेतन अधिनियम, अस्प्रस्यता अधिनियम बनाकर देशवासियों के उत्थान के लिये शैक्षिक शिक्षा, स्वास्थ्य विषयक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा परन्तु इन प्रयासों के बावजूद कुछ गतिरोध भी आये। नेतागण देश की सेवा न करके स्व की सेवा कुछ लगे, रक्षक ही भक्षक वन गये और भारत देश की जनता का हाल यह हुआ कि–

आजादी होगी किसी नेता के भाषण में
अपनी तो रामकहानी हो जायेगी चन्द मुठ्ठी रासन में

स्वातंत्रोत्तर समाजिक जीवन के रहन–सहन, आचार,–विचार और व्यवहारों में काफी परिवर्तन आया। परम्परा और नवीनता का द्वंद–पीढ़ी संघर्ष आदि इसी काल की उपज है। संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा। शिक्षित बेरोजगार कुहासा भरा जीवन जीने को विवश हुआ। वह पलायन वादी बना।

भारतीय संविधान ने भारत को धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया है किन्तु खेद का विषय है कि आज राजनीतिक लोग ही धार्मिक या साम्प्रदायिक दंगे स्वार्थ की सम्पूर्ति हेतु कराते है। उनके सम्बन्ध में मुझे एक कवि की यह पंक्तियां सरीक लगती है कि –

'लाज लजानी जिसकी कृति से घृति उपदेशक वह है
कुपथ कुपथ रथ दौड़ता जो, पथ निर्देशक वह है।''

'सम्बंधो की बात है झूठी रूपया ही भगवान बन गया' आज अर्थ गम्भीर अर्थ रखने लगा। अर्थ के पीछे दौड़ने वाले वर्ग का उदय हुआ जिसका परिणाम नैतिकता का ह्रास रिश्वत खोरी और बेईमानी का जन्म।

स्वतंत्रता के बाद देश की सांस्कृतिक स्थिति ने बड़ी तेजी से करवट बदली। सांस्कृतिक मूल्यों का पालन करने के बदले व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना अधिक बढ़ने लगी। व्यक्ति भौतिकता का उपासक बन गया वह परम्परा का विद्रोही असंतोष और विद्रोह का प्रतीक बन गया।

इस अध्याय के 'ख' भाग में आधुनिक काव्य प्रवृत्तियाँ है जिसे भारतेन्दु युग कहते है–यह युग नव युग का प्रथम उत्थान मात्र था। इसलिये हमें इस समय की कविता में उस कलात्मकता के दर्शन नहीं होते जो कालान्तर में सतत् प्रयत्नों से उत्पन्न हुई। काव्य विषयों

के सर्वथा नवीन प्रकट होने के कारण इसकी काव्यपूर्ण अभिव्यक्ति के लिये समय की आवश्यकता थी। भारतेन्दु युग की प्रमुख प्रवृत्तियों में राष्ट्रीयता की भावना, जनवादी विचारध ाारा, प्राचीन परिपाटी की कविता, भक्ति, कलात्मकता का अभाव, कविता में ब्रज भाषा का प्रयोग लेकिन गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग प्रमुख विशेषतायें है।

द्विवेदी युग में नवीन शिक्षा के प्रचार एवं वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रभाव बड़ा व्यापक पड़ा। गद्य में खड़ी बोली का प्रांजल रूप दिखाई पड़ने लगा। इस युग की विशेषताओं में देशभक्ति मानवता वादी विचार धारा, नारी स्वातंत्र्य एवं समानता की भावना, न्यायिकाओं के नवीन भेद, श्रृंगार का बहिष्कार, इतिवृत्तात्मकता। जिस समय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने भारी–भरकम बौद्धिक व्यक्तित्व का प्रभाव जमा रहे थे तो कुछ नये कवि उनकी पाठशाला से निकलकर नई कविता के सृजन में लग गये जो छायावाद के नाम से अभीत हुई। इसकी प्रमुख प्रवृत्तियों में – व्यक्तिवाद की प्रधानता, प्रकृति चित्रण नारी के सौन्दर्य एवं प्रेम का चित्रण, रहस्यवाद, देश प्रेम, वेदना और निराशा, विज्ञान का प्रभाव, प्रतीकात्मकता, चित्रातत्मकता, छायावादी कविता अतिशय कल्पना की कविता थी जिसके फलस्वरूप प्रगतिवादी कविता का जन्म हुआ जो साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित थी जिसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ है– रूढ़ि विरोध, शोषितों का करूण गान, शोषकों के प्रति घृणा और रोष, क्रान्ति की भावना, मार्क्स तथा रूस का गुणगान, मानवतावाद, सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण, समसामयिक घटनाओं का यथार्थ चित्रण आदि।

दूसरा अध्याय 'प्रयोगवाद एवं भवानी प्रसाद मिश्र' संबधित है छायावादोत्तर काल में प्रगतिवाद के समान्तर हिंदी कविता में व्यक्तिवाद की परिणति घोर, अहंवादी, स्वार्थ प्रेरित, असामाजिक, उच्छृंकल और असंतुलित मनोवृत्ति के रूप में हुई जिसे कि प्रयोगवाद का नाम दिया गया। प्रयोगशील कविता में नये सत्यों या नई यर्थाथताओं का जीवंत बोध भी है। उन सत्यों के साथ नये रागात्मक संबंध भी और उनकों पाठक या सहृदय तक पहुचानें की शक्ति है। इसलियें कलाकार व्यक्ति सत्य को व्यापक बनाने का उत्तरदायित्व भी निभाना चाहता है। 1943 में अज्ञेय जी के सम्पादकत्व में विभिन्न कवियों की कविताओं का संग्रह तारसप्तक प्रथम भाग प्रकासिक हुआ। इन कविताओं में प्रवृत्तिगत साम्य की अपेक्षा पारस्परिक वैषम्य अधिक है। इस सप्तक को पढ़ने के पश्चात् यह कहा जा सकता है, कि कवियों के एकत्र होने

कारण यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं है, किसी मंजिल तक पहुँचे नहीं है, हमराही नहीं राहों के अन्वेषी है। 1951 में द्वितीय तार सप्तक प्रकाशित हुआ जिसके प्रमुख कवि श्री भवानी प्रसाद मिश्र है। इसके अतिरिक्त प्रयोगवाद के प्रवर्तक अज्ञेय जी ने प्रतीक नामक, पत्रिका निकाली जिसमें समय–समय पर प्रयोगवादी कवियों की कवितायें प्रकाशित होती रही। प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियों धोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद, सामाजिकता का अभाव, लधुता के प्रति दृष्टिपात, निराशावाद, बौद्धिकता की प्रतिष्ठा प्रेम का स्वरूप विद्रोह का स्वर, अतृप्त रागात्मकता, सामाजिक एवं राजनैतिक विद्रूपता, वैचित्य प्रदर्शन, प्रकृति चित्रण, प्रतीक चित्रण, प्रतीक विधान, ध्वन्यातमकता, सुरमैत्री, रंगों का ज्ञान तथा गंध चित्र, बिम्ब एवं प्रतीक विधान। प्रयोगवादी प्रमुख कवियों में धर्मवीर भारती, भारतभूषण अग्रवाल, दुण्यन्त कुमार गिरिजा कुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, कुँवर नारायण, भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर प्रभाकर माचवें, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, त्रिलोचन, नेमिचंद्र प्रमुख है।

भवानी प्रसाद मिश्र का जन्म 29 मई 1913 को ग्राम तिगरियाँ तहसील सिवनी मालवा जिला होसिंगावाद में हुआ। बी0ए0 की शिक्षा उन्होनें जबलपुर से प्राप्त की। 1947 में आकाशवाणी दिल्ली में प्रोड्यूसर रहे। भवानी प्रसाद मिश्र का देहावसान 20 फरवरी 1985 कसे नरसिंहपुर में हुआ। उनकी प्रमुख रचनाओं में– (1) गीतफरोश (1956) 68 कवितायें है (2) चकित है दुख (1968) में 65 कवितायें है (3) अंधेरी कवितायें (1968) में 55 कवितायें है। (4) गॉधी पंचशती (1969) में पहले खण्ड में 308 व दूसरे खण्ड में 200 कवितायें है। (5) बुनी हुई रस्सी (1971) में 128 कवितायें है। (6) खुशबू के शिलालेख (1973) में 21 कवितायें है। (7) व्यक्तिगत (1974) में 76 कवितायें है। (8) परिवर्तन जियें (1976) में 99 कवितायें है। (9) अनाम तुम आते हो (1976) में आठ बहुत लम्बी कवितायें है। (10) त्रिकाल संध्या (1976) में 97 कवितायें है। यह कवि का एक मात्र खण्ड काव्य है। (11) समृप्रति (1982) में 77 कवितायें है। (12) नीली रेख तक (1984) में 44 कवितायें है। (13) तूस की आग (1985) में 170 कवितायें है। (14) इदं न मम (1985) में 98 कवितायें है। इनकी अन्तिम काव्यकृति मानसरोवर है।

तीसरा अध्याय 'आलोच्य कवि की काव्य प्रवृत्तियाँ' से सम्बन्धित है। भवानी प्रसाद मिश्र का यह मानना है कि तब तक कुछ न लिखों जब तक कोई सत्य तुम्हें लिखने के लिये

बाध्य न करे। अपने अनुभूति सत्य को व्यापक सत्य बनाने की समस्या मिश्र जी को सदैव सचेष्ठ किये रही यही कारण है कि सहजता के उपासक कवि ने जो कुछ भी लिखा है उसे जिया है यही कारण कि सहजता के उपासक कवि ने जो कुछ लिखा है उसे जिया है उनका रचना संसार है। उनकी साधारण सी लगने वाली या दिखने वाली रचना उसमें भी यह वस्तु विद्यमान है। भवानी प्रसाद मिश्र का गहन अध्ययन करने के बाद मैनें यह पाया कि कविता में है कि कवि अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम बन जाये। उसके प्रति अपने को समर्पित कर दे। मिश्र जी की रचनायें यदि विश्लेषित की जाये तो ऐसा लगता है कि जीवन और जगत के तीखें अनुभवों ने उत्तरोत्तर उनमें अकेलापन, विरूप प्रतिक्रिया, अप्रत्यासित व्यवहार बोध की इतनी मात्रायें दी है जिससे उनका व्यक्तित्व मुखर होने के लिये विवश हो उठा है। अपने व्यक्तित्व का समग्रता में साक्षात्कार करना और उसको व्यक्त करने के लिये अपेक्षित माध्यम से सघर्ष करते रहना उनकी काव्य साधना है यही कारण साधना है कि उनका व्यक्तित्व और कृतित्व एक है। उनकी कृतियाँ इस बात का प्रमाण है कि उनकी जिन्दगी कविता में डूबी उतराई और कविता जीवन के रेले में वही तथा आसपास की आशाओं तथा आकाँक्षाओं से जुड़ी और वास्तव में कहना चाहे तो यह कविता में जिन्दगी और जिदन्गी में कविता।

भवानी प्रसाद मिश्र हिन्दी के ऐसे आधुनिक कवि है जिन्होनें मानव–मूल्यों और साहित्यिक मूल्यों दोनों को बराबर अपनाया है। मिश्र जी का जीवन दर्शन है कि जिदंगी एक ठोस चीज है, छोटी बड़ी बातों में ही जीवन के ठोस तत्व समाहित है। अहंकार, बड़बोलापन और अधिकार का मद व्यर्थ भटकाता है। मिश्र जी ने परिवेश को समझा है, सम सामयिकता के प्रति सतर्क रहें है। जीवन मूल्यों को उजागर किया है, जन जीवन से सहज सामीप्य उनकी विशेषता है। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि भवानी प्रसाद मिश्र जनवादी चेतना के कवि है, वे अपनी व्यक्तिगत रचनाओं के भीतर से बाहर निकले, जब व्यक्ति–व्यक्ति से मिले उन्होनें खुली आखों से देखा और लिखा है। वे जमीन से जुड़े कलाकार कवि है, विरक्ति का प्रकाश और अनुरक्ति की माया, दोनों का सामंजस्य उनके काव्य में परिलक्षित है। उन्होनें मानव मन की पकड़ को ठीक से समझा है द्वंद का आभास किया है, स्थितियों ने उन्होनें झकोरा है, उन्होनें भीतर और बाहर बीहड़ बंजरों को गुलाब सदृश शोभित किया है। उनकी

प्रमुख प्रवृत्तियों में, भारतीयता, आस्तिकता, निर्भीकता, स्वाभिमानता, मानवीय सद्‌गुणों की अभिव्यक्ति, सहः आस्तित्व वादिता, संवेदनशीलता, स्वस्थ्य जीवन बोध प्रगतिशील चेतना, वर्तमान त्रासदी के चित्र, युद्ध की विस्फोटक स्थितियों के चित्र, अतिशय बौद्धिकता एवं विषमतायें, आशावादिता एवं संकल्पशक्ति, आत्मविश्लेषण और निर्वैयक्तिकता, साहस और संकल्प की अभिव्यक्ति नये व्यक्तित्व की तलाश, आन्तरिक विकास की अनिवार्यता, पारिवारिक स्थितियाँ, प्रकृति चित्रण, एकता और शांति।

चर्तुथ अध्याय ''भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में यथार्थवाद'' से सम्बन्धित है। साहित्य की एक विशिष्ट्य चिंतन पद्धति, जिसके अनुसार कवि को अपने कृति में जीवन के यथार्थ का अंकन करना चाहिये। यह दृष्टिकोण वस्तुतः आदर्शवाद का विरोधी माना जाता है; पर वस्तुतः तो आदर्श उतना ही यथार्थ है जितनी की यथार्थवादी स्थिति। जीवन में अयथार्थ की परिकल्पना करना दुष्कर है किन्तु अपने पारिवारिक अर्थ में यथार्थवाद जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति ईमानदारी का दाबा करते हुये प्रायः सदैव मनुष्य की हीनताओं और कुरूपताओं का चित्रण करता है। यथार्थवादी कवि जीवन के सुन्दर अंशों को छोड़कर असुंदर अंशों का अंकन करना चाहता है। यह उसका एक प्रकार से पूर्वाग्रह है। भवानी प्रसाद मिश्र इस पूर्वाग्रह से अलग हटकर यथार्थवाद का दाय स्वीकार करते है। वे जीवन की तुच्छ से तुच्छ परिस्थिति को भी साहित्य में चित्रित करते है। उन्होनें युद्ध की विभीषिका का ग्राहय बनाया, एक गरीब मनुष्य जो अनवरत संघर्ष करते हुये भी दो जून की रोटी नही जुटा पाता उस पर लेखनी भी चलायी। आज समाज में चर्तुदिक विद्रूपतायें, कुरूपतायें ही है। राजनीतिज्ञों के कुल्हाड़े मानवीय मूल्यों को जड़ से काटने में लगे है। कदाचार, दुराचार चर्तुर्दिक व्याप्त है। स्त्रियों का शोषण हो रहा है, अमीर और अधिक अमीर होता जा रहा है, गरीब बद से बदतर होता जा रहा है। राजनीतिज्ञों का रूप बदल चुका है वे नित नया मुखौटा धारण करते है, धड़ियाली आँसू बहाना एक उनका अंग बन गया है, और मुझे यह लिखना पड़ रहा है—

'वो जाने आजादी क्या
आजाद देश की बातें क्या'

इन सब बातों को भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने काव्य में सहजता के साथ अंगीकार किया है।

जहाँ तक राजनीतिक यथार्थ चित्रण की बात है भवानी प्रसाद मिश्र जी ने परतंत्रता को सबसे बड़ा माना है। स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये उन्होनें नवयुवकों का आवाहन किया है वे स्वयं देश को स्वतंत्र कराने में सक्रिय भूमिका अदा करते है व जेल की यात्रनायें सहते है। स्वतंत्रता का विहान आया, नये संदेशे लाया लेकिन ये संदेशे अभिजात्य वर्ग तक ही रह गये, गांधी की हत्या को वे अहिंसा के पुजारी मानवता की हत्या मानते है। पूरे भारत का अन्तस हाहाकार हो उठता है। देश का विभाजन वे राजनीतिकों का खेल मानते है, इस स्वतंत्रता ने लोगों के चरित्र का हनन किया मानवीय मूल्यों का क्षरण किया, अनैतिकता की पराकाण्ठा हो गयी, देश को आपात काल की त्रासदी से गुजरना पड़ा, आपातकाल के क्रूरतम दृश्य मिश्र जी ने जिस सहजता के साथ उकेरे है प्रयोगवादी शायद ही कोई कवि ऐसा कर सका। उनकी कविता यथार्थवाद के साथ एक व्यापक तथा उदात्त मानवतावाद की भावना प्रवृत्तियों के सहयोग से साहित्य के क्षेत्र में अधिक कलात्मकता तथा सामाजिक वन सका है।

पंचम अध्याय 'आलोच्य कवि की काव्य भाषा' से सम्बन्धित है। मिश्र जी की मान्यता रही है कि प्रेषणीयता के क्षेत्र में प्रयोग आवश्यक थे क्योंकि प्रयोगशीलता को ललकारने वाली प्रमुख समस्या यही थी कि किस प्रकार व्यक्ति की अनुभूति हो उसकी सम्पूर्णता में समष्टि तक पहुंचाया जाये।

भवानी प्रसाद मिश्र प्रतिभा सम्पन्न कवि है इनका प्रत्येक शिल्प नवीन, सबल और सार्थक है, अनुकृति मिश्र जी को काव्य में अमीण्ट न थी यहीं कारण है कि मिश्र जी आधुनिक कवियों में अपनी अलग पहचान रखते है। इतना तो निर्विवाद है कि शिल्पगत नवीनता को मिश्र जी ने सहज अभिव्यक्ति के रूप में अपनाया है, उनकी भाषा का स्वरूप एक सा नही रहता विषय के साथ–साथ परिवर्तित हो रहता है। नये कवियों में मिश्र जी भाषा के सफल प्रयोक्ता के रूप में सामने आते है, उन्होनें भाषा में एक नया सांस्कृतिक बोध भरा है, यथार्थ परिवेश में उन्होनें शब्दों के अन्तस को पहचानने की शक्ति दी है। वास्तव में शब्द तो अपने आप में निर्मूल्य है किन्तु मिश्र जी ने उन्हें सही अर्थ प्रदान किया है। मिश्र जी तत्सम्, तद्भव, देशज, विदेशी, लोक शब्दावली, लोकोक्ति, और मुहावरों का प्रयोग करते है, सूक्ति विधान को स्वीकार करते है, अमिधा, लक्षणा, व्यंजना का प्रयोग करते है। उनकी कविता में लगभग सभी अलंकार सहजता के साथ आये है। उपमा और रूपक के प्रति उनका विशेष प्रेम रहा

है।

मिश्र जी के काव्य में परम्परागत छंद बहुत कम है। कहीं कहीं दो परम्परागत छंदों मिश्रण से मिश्रित छंद का निर्माण किया है जिनको हम क्रमशः कह सकते है कि उन्होनें प्रवासी तथा मल्लिका छंद मिलाकर मिश्रित छंद निर्मित किया है। उन्होनें भुजंग प्रयास, राधिका छंदों का प्रयोग किया है। मिश्र जी ने कुछ अन्य भाषाओं के छंदों को भी स्वीकार किया है गज़ल जो कि एक विदेशी छंद माना जाता है जिसका प्रयोग मिश्र जी ने किया है। यदि मिश्र जी की भाषा की विशेषतायें वर्णित की जायें तो वे इस प्रकार होगी,– प्रेषणीयता, माधुर्य एवं द्रवणशीलता, सरलीकरण की प्रवृत्ति, संगीतात्मकता, चित्रातमक सौन्दर्य।

षष्ठ अध्याय ' भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में बिम्ब विधान' से सम्बन्धित है। बिम्बे अंग्रेजी शब्द इमेज का पर्यायवाची है। काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानव छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है। ये बिम्ब अदम्य भावना से सम्प्रक्त ऐसे शब्द चित्र है, जिनमें ऐंद्रिक ऐश्वर्य निहित है जिसके फलस्वरूप आनन्द की उत्पत्ति होती है।

भारतीय काव्य शास्त्र में जिस चित्रकाव्य को अधम काव्य की संज्ञा दी गई थी वही चित्र विधान नये रूप में व्याख्यायित होकर काव्य का मापक प्रतिमान बना। प्रतीक और अप्रस्तुत प्रारम्भ से ही कविता के समीक्षा के प्रतिमानों के रूप में स्वीकृत थे अब बिम्ब भी कविता की मूल्यांकन कसौटी के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। प्रयोगवाद और नयी कविता में बिम्बों की अतिशयता रही, बिम्ब केन्द्रीय माध्यम द्वारा बौद्धिक सत्य तक पहुँचने का मार्ग बना। यदि बिम्बों की विशेषता को व्यांख्यायित किया जाये तो इस प्रकार से कहा जा सकता है कि बिम्ब कल्पना स्रोत से प्रस्फुटित होते है, इनमें भावात्मकता होती है, ऐन्द्रियता बिम्ब का प्रधान गुण है, ये शब्द निर्मित चित्र होते है, बिम्ब सूक्ष्म और अर्मूत भावनाओं को स्थूल एवं मूर्त रूप में प्रस्तुत करते है।

समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि बिम्ब सूक्ष्म और अर्मूत मनोंभावों को स्थूल और मूर्त रूप में प्रस्तुत करने का वह शब्द निर्मित प्रभावशाली माध्यम है जिसमें भावप्रवणता, ऐन्द्रियता एवं चित्रात्मक आकर्षण होता है।

विद्वानों ने बिम्बों के कई प्रकार के वर्गीकरण प्रंस्तुत किये है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में बिम्ब को चार प्रकार से वर्गीकृत किया गया है– वस्तुबिम्ब, अलंकृत बिम्ब, मानस बिम्ब, ऐन्द्रिक बोधक बिम्ब (ध्वनि, घ्राण, स्पर्श, रंग, भास्वाद बिम्ब)

भवानी प्रसाद मिश्र प्रयोगधर्मी और नवीनता प्रिय कवि है उनके काव्यों में बिम्बों का जीवंत रूप मिलता है। कवि भावुकता जब सधन हो जाती है उसकी आनुभूतिक प्रक्रिया तीव्र आवेश के साथ मानस को आन्दोलित करती है तब अनेकानेक बिम्बों की सृष्टि होती है और ऐसी ही मिश्र जी के काव्य में पाया गया है। मिश्र जी मानस बिम्बों को प्रमुखता देते है और वास्तव में उन्हें बिम्ब का कवि कहा जा सकता है।

सप्तम् अध्याय 'भवानी प्रसाद मिश्र के काय में प्रतीक विधान' से सम्बंधित है प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति तिन् धातु में प्रति उपसर्ग पूर्व कन् प्रत्यय लगाने से हुयी है इस व्युत्पत्तिमूलक अर्थ के अनुसार जिस वस्तु या साधन के द्वारा बोध या ज्ञान की प्रतीति अथवा विश्वास होता है, उसे प्रतीक कहते है। प्रतीक ऐसे संकेत है जिनके माध्यम से अभिव्यक्ति को प्रेषणीय सार्थक और अर्थगर्मित बनाया जा सकता है। जब मनुष्य अधिक भावुक, विचारक, और संवेदनशील हो उठता है तभी वह प्रतीको की वाणी में बोलने लगता है, इससे यह स्पष्ट है कि मनुष्य अपनी अभिव्यंजना के लिये प्रतीकों का सहारा लेता है। प्रतीकों का जन्म मानव और उसकी भावनाओं के विकास के साथ ही होने लगा था। सामान्यतः विस्तृत भाव को कम से कम शब्दों में और सांकेतिक रूप से कहने की प्रवृत्ति के कारण ही प्रतीकों का प्रचलन बढ़ता जाता है। अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षताओं के कारण जब कोई वस्तु या कार्य अप्रस्तुत वस्तु भाव, विचार, क्रिया–कलाप, देश–जात, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है तो वह प्रतीक बनता है। प्रयोगवाद और नयी कविता प्रतीकों की कविता कही गयी है। कुछ कवियों के प्रतीक तो बहुत ही जटिल और अबोधगम्य है किन्तु भवानी प्रसाद मिश्र के प्रतीक भाषा में सधनता, संरशलिण्टता, और अर्थवत्ता लाते है, चिंतन को प्रेषणीय बनाते है। इसी कारण से उन्होनें प्रतीकों की अपेक्षा अप्रस्तुतों की विविधता और मौलिकता की ओर विशेष ध्यान दिया है।

भवानी प्रसाद मिश्र जी के काव्य में ऐतिहासिक प्रतीक, सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक प्रतीक, आधुनिक जीवन के प्रतीक, सहजता से मिलते है। काम और यौन के प्रतीक का प्रयोग

उन्होनें कम किया है। वे प्रतीकों का प्रयोग तभी करते है जब अनिवार्य हो। उन्होनें एक जगह लिखा है कि 'संसार में हर चीज का मतलब है। मतलब कहो, अर्थ कहो, अभिप्राय कहो, सब सापेक्ष और परस्पर बंधे हुये है और एक अर्थ दूसरे अर्थ को सूचित करने वाला प्रतीक बन के आता है। फूल आदमी है और काँटा भी आदमी है, ऐसी परिस्थिति में शब्दों और प्रतीकों के विभिन्न सन्दर्भो में कविता के द्वारा नये–नये अर्थो की उद्भावना और इसलियें उनके माध्यम से प्राप्ति की हर संभावना हर क्षण बनी रहती है।

अष्ठम् अध्याय ' आलोच्य कवि के काव्य में आस्वादन की समस्या' से सम्बन्धित है। नयी कविता ऐसा उद्यान है जिसमें नाना प्रकार के फूल खिले है कुछ चमकीले, कुछ धुंधले, कुछ आकर्षक कुछ विकर्षक, इसमें सौरभ भी एक जाति का नहीं है कुछ मन तथा आत्मा को आप्यामित करते है तब प्रश्न यह उठ खड़ा होता है कि इन प्रयोग पारायण कविताओं का आस्वादन कैसे किया जाये? नये कवि या तो प्रबुद्ध विवेकशील आस्वादकों के लिये लिखते है जो उनके समानधर्मा है या फिर ऐसे व्यक्तियों के लिये जो समानधर्मा ने होते हुये भी उनकी ईमानदारी पर संदेह नहीं करते, फतवे नही देते और नूतन प्रतिभावों और क्षणिक असफलताओं और कठिनाइयों के प्रति सहानुभूतिशील होते है। वास्तव में होता ये है कि कभी–कभी युग इतनी क्षिप्र गति से बदल जाता है कि उसकी नयी अर्थवत्ता का बोध समाज को नहीं होता है। ऐसी अवस्था में कवि नये संकेतों को पकड़ता है वह युगकी भावधारा में ही नवीन मोड़ उत्पन्न कर देता है तभी कविता में आस्वादन की समस्या खड़ी होती है वास्तव में नयी कविता हमारे लिये बिल्कुल नयी है। रूप में भी और भाव में भी लेकिन इन्ही कवियों के बीच कुछ ऐसे कवि हुये जिन्होनें जन सामान्य के लिये प्रेरणीय कविताओं का सृजन किया, इन कवियों में से एक कवि भवानी प्रसाद मिश्र है जिनकी कविता मानव मन के साथ रागात्मक सम्बंध स्थापित करती है। भवानी प्रसाद मिश्र की कविता जिजीविषा की चिंगारी को निरंतर सुलगती रखने की कला में दक्ष है। बौद्धिकता के साथ साकांरात्मक विचार भी वे रखते है। इस मामलें में वे विस्तृत और अतिशय उदार है क्योंकि जब प्रयोगवादी कवितायें अस्पष्ट और दुरुह बन चुकी थी तब उन्होनें सरल–सहज और साधारणीयकृत कर देने वाली रागात्मक कविता का सृजन किया जा जन मानस में छा गयी। भवानी प्रसाद मिश्र नयी शैली का प्रयोग तो करते है लेकिन उनकी कविता में कहीं भी आस्वाद की समस्या नहीं है। मिश्र जी की

कविता न तो मुक्तबोध की भाषा के समान क्लिष्ट और बुद्धि बोझिल है और न अज्ञेय की कविता के समान प्रतीक बाहुल्य तथा धूमिल, नागार्जुन की तरह अशिष्ट और बेलगाम। इसके विपरीत उसमें आशा का सौरभ और विश्वास का आलोक है जो सत्य शिव और सुन्दर को प्रस्तुत करती है। चित्रवृत्तियों के रसत्व में स्व को स्वीकार किया, व्यंग्य, में अमीर, वर्ग, राजनीतिज्ञ उनके केन्द्र बिन्दु बने तो उन्होनें अधिकाधिक जन सामान्य घटनाओं का सहारा लिया है। वे अपनी कृतियों के द्वारा अहिंसा का भी संदेश देते है। इस तरह से भवानी प्रसाद मिश्र के समस्त काव्यों का विहगावलोक करने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि उनकी काव्य धारा का अविछिन्न प्रवाह सहजता के साथ तरलायित होकर मन मास्तिक से उतरता हुआ हृदय तक जा पहुँचता है। कविता और जिन्दगी को निकट लाने का जितना प्रयास उनकी कविताओं में है उतना इस युग के किसी कवि में नहीं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आलोच्य काव्य

(1) गीत फरोश

(2) चकित है दुख

(3) अंधेरी कवितायें

(4) गांधी पंचशती

(5) बुनी हुई रस्सी

(6) खुशबू के शिलालेख

(7) व्यक्तिगत

(8) परिवर्तन जिये

(9) अनाम तुम आते हा

(10) त्रिकाल संध्या

(11) शरीर, कविता, फ़सले और फूल

(12) कालजयी

(13) सम्प्रति

(14) नीली रेखा तक

(15) तूस की आग

(16) इंद न मम

(17) मानसरोवर दिन

सहायक ग्रंथ सूची

(1) चालीसोत्तर हिंदी कविता– डॉ0 राम अजोर सिंह प्रकाशन केन्द्र लखनऊ

(2) कालजयी कवि : भवानी प्रसाद मिश्र– डॉ0 हरिमोहन, वाणी प्रकाशन दिल्ली

(3) भवानी प्रसाद मिश्र : सम्पादक सुरेश चन्द त्यागी

(4) भवानी भाई– सम्पादक प्रेमशंकर रघुवंशी

(5) आज के लोकप्रिय हिंदी कवि भवानी प्रसाद मिश्र सम्पादक विजय बहादुर सिंह

(6) हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ–डॉ0 जयकिशन खण्डेलवाल–विनोद पुस्तक मंदिर आगरा

(7) प्रयोगवादी काव्य धारा–डॉ0 रमाशंकर तिवारी चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी

(8) हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियों–डॉ0 शिवकुमार शर्मा अशोक प्रकाशन दिल्ली

(9) आधुनिक हिंदी कविता में बिम्ब विधान का विकास–डॉ0 केदारनाथ सिंह भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन

(10) आधुनिक हिंदी कविता में अलंकार विधान–डॉ0 जगदीश नारायण त्रिपाठी अनुसंधान प्रकाशन कानपुर

(11) आधुनिक हिंदी काव्य में प्रतीक विधान–डॉ0 नित्यानन्द शर्मा साहित्य सदन कानपुर देहरादून

(12) काव्य बिम्ब–डॉ0 नागेन्द्र पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली

(13) नयी कविता नये कवि–विश्वम्भर मानव– लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद

(14) बिहारी सत सदी में बिम्ब विधान–डॉ0 शिवचरण वर्मा अनुसंधान प्रकाशन मेरठ

(15) हिन्दी सन्त काव्य में प्रतीक विधान डॉ0 देवेन्द्र आर्य नेशनल पब्लिकेशन हाउस दिल्ली

(16) हिंदी सूफी काव्य में प्रतीक योग– डॉ0 सरोजनी पाण्डेय युगवाड़ी प्रकाशन कानपुर

(17) जायसी की बिम्ब योजना–डॉ0 सुधा सक्सेना

(18) हिंदी साहित्य का विकास–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

(19) भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम–डॉ0 शम्भू नाथ

(20) गीत फरोश संवेदना और शिल्प–डॉ0 स्मिता मिश्र

(ख) संस्कृत

(1) काव्यालंकार — आचार्य भाम:

(2) काव्य प्रकाश — आचार्य मम्मट

(3) साहित्य दर्पण — आचार्य विश्वनाथ

(4) ध्वन्यालोक — आनन्द वर्धन

(ग) अंग्रेजी

(1) Imagiqm - S.K. Cffman (Jr)

(2) Imagihation - E.S. Fulangetal.

(3) Imagihation and its wonder Arthen Larell.

(4) Ramantic Imagihation - C.M. Bowra.

(5) The Paetic Image - C.D. Lewis